खण्ड-6

महीप सिंह रचनावली

संपादक
अनिल कुमार

लेखक को अपने परिवेश और उसकी समस्याओं के प्रति न केवल जागरूक होना चाहिए बल्कि उनके साथ गहरी संसक्ति और अन्तर्लिप्तता होनी चाहिए। उसे उनका मूक दर्शक मात्र ही नहीं होना चाहिए, किसी सीमा तक उनका सहभागी भी होना चाहिए। हर व्यक्ति बहुत व्यस्त और भीड़ से घिरा होने के बावजूद कहीं बहुत अकेला होता है। यह अकेलापन उसे उसके 'स्व' के सामने खड़ा करता है और उससे उसकी पहचान कराता है। लेखक के लिए 'स्व' को निरन्तर जानने और पहचानने की ज़रूरत रहती है। 'स्व' को पहचानने के दर्द को वे भी नहीं जान पाते जो आपके बहुत निकट या अंतरंग होने का दावा करते हैं। इस संदर्भ में मुझे गुरु नानक के जीवन का एक प्रेरक प्रसंग याद आता है। बहुत छोटी आयु में ही जब वे अपने 'स्व को पहचानने की प्रक्रिया से गुजर रहे थे उनके परिजनों की समझ में नहीं आ रहा था कि आखिर नानक को कष्ट किस बात का है। उन्होंने वैद्य को बुलाकर उन्हें दिखाया। वैद्य बेचारा नब्ज देखकर शारीरिक बीमारी को ही ढूंढ़ने का यत्न कर सकता है लेकिन गुरु नानक का असली दर्द तो कहीं ओर था। उन्हीं के शब्दों में-

बैद बुलाया बैदगी पकड़ि ढढ़ोले बांह
भोला बैद न जानई करक कलेजे मांह।

लेखक (या कोई भी संवेदनशील व्यक्ति) कलेजे की इस करक को पहचानने की कोशिश करता है। इसी में से उसके पात्र जन्म लेते हैं और रूपायित होते हैं।

महीप सिंह

ISBN 81-8129-132-8

मूल्य : 6000/-
(दस खण्डों में)

महीप सिंह रचनावली

आदिग्रंथ में संगृहीत संत कवि, सिख विचारधारा : गुरु नानक से गुरु ग्रंथ साहिब तक, गुरु नानक, गुरु तेग बहादुर : जीवन और आदर्श, स्वामी विवेकानन्द

खण्ड - 6

संपादक

अनिल कुमार

नमन प्रकाशन

नई दिल्ली -110002

समर्पण

दिवंगत अग्रज भजन सिंह की स्मृति में

क्या लिखूँ?

जीवन में बहुत कुछ लिखा। पीछे मुड़कर देखता हूं तो दूर मीलों तक हरे भरे खेत दिखाई देते हैं। लगता है कि उन्हीं में से निकलता हुआ यहां तक पहुँचा है। चारों ओर नजर दौड़ाकर देखता हूं तो लगता है कि अभी भी बहुत हरियाली है जिसमें मैं वर्षों तक विचर सकता हूं, किन्तु कितने वर्षों तक?

जो कुछ भी लिखा, उसके प्रति सार्थकता बोध से प्रेरित होकर लिखा। इसलिए लिखा कि उसके प्रति बड़ी अंतरंगता से यह अनुभव किया कि यह मुझे लिखना चाहिए। ऐसा कुछ नहीं लिखा जो मुझे नहीं लिखना चाहिए था। यह अवश्य है कि ऐसा बहुत कुछ है जो मुझे लिखना चाहिए था, किन्तु नहीं लिख सका। इसकी कसक वर्षों से अंदर ही अंदर मुझे चूहे की भांति कुतरती रही है और आज भी कुतर रही है। उपन्यास लेखन को ही लें। पहला उपन्यास वर्षों तक अंदर पलता रहा। 1974-75 में जापान के एक विश्वविद्यालय में एक रिसर्च प्रोजेक्ट 'समकालीन भारतीय साहित्य में सामाजिक परिवर्तन' पर कार्य कर रहा था। अपने शोध कार्य के साथ-साथ उपन्यास पूरा किया - 'यह भी नहीं'। फिर प्रारम्भ किया, 'अभी शेष है'। प्रारम्भ करने और पूरा करने के मध्य का अंतराल है बीस वर्ष। 'अभी शेष है' की त्रयी के लेखन का दूसरा चरण मंथरगति लिए हुए है।

यह सब कुछ बड़ी खीझ पैदा करता है। नए वर्ष का कैलेण्डर झटपट अपने पन्नों को पलटता हुआ कब दिसम्बर की तारीखों पर आ टिकता है, पता ही नहीं लगता। जीवनावधि का एक और वर्ष देखते देखते समुद्र तट की मुट्ठी भरी बालू की तरह हाथ की उंगलियों में से नीचे झर जाता है।

कहानियां तो ढेर सारी जीं किन्तु लिखीं बहुत कम। पचास वर्ष में सवा सौ के आसपास। वर्ष में तीन का औसत भी नहीं।

दूरदर्शन के लिए कुछ सीरियल लिखे- लोक-लोक की बात, रिश्ते, गदर की गूंज, 'सच तां पर जाणिए' (पंजाबी)। एक निर्माता ने महाराजा रणजीत सिंह पर एक मेगा

सीरियल की योजना सामने रखी। उसका विचार था कि इसे कम से कम 100 कड़ियों का बनाया जाए। ऐसे सीरियल में मेरी रुचि भी बहुत थी। मैंने प्रारम्भिक 10 एपीसोड लिख भी लिए, किन्तु निर्माता के सम्मुख कुछ आर्थिक संकट आ गए। योजना अधर में लटक गई। इसी प्रकार पंजाब सरकार द्वारा गठित आनन्दपुर साहिब फाउण्डेशन ने प्रसिद्ध फिल्मकार और महाभारत जैसे प्रख्यात सीरियल के निर्माता बी. आर. चोपड़ा से सम्पर्क करके सिख इतिहास पर एक धारावाहिक बनाने की योजना बनाई। उसकी पटकथा लिखने का दायित्व मुझे सौंपा गया। उस धागवाहिक की भी मैंने आठ कड़ियां लिख लीं। पंजाब की सरकार बदल गई (2002)। योजना ठप हो गई।

पत्र-पत्रिकाओं के लिए लेख लिखने का कार्य निरन्तर चलता रहा है। पंजाब में 1949-50 से भाषा विवाद उभरना प्रारम्भ हुआ। अविभाजित पंजाब की सरकारी भाषा उर्दू थी। विभाजन के पश्चात यह प्रश्न सामने आया कि उर्दू का स्थान किस भाषा को ग्रहण करना है। पंजाब में पंजाबी भाषा सदा उपेक्षित रही। वहां सभी लोग पंजाबी बोलते अवश्य थे, किन्तु कामकाज और व्यवहार में आते ही रास्ते अलग-अलग हो जाते थे। उन्नीसवीं शती के अंत में आर्य समाज के बढ़ते प्रभाव के कारण संभ्रांत हिन्दू परिवारों में हिन्दी का प्रचलन हुआ। पंजाबी से सिखों का धार्मिक लगाव था। गुरुओं के समय से ही गुरुवाणी गुरुमुखी लिपि में ही लिखी जाती रही है। उनका आग्रह यह था कि पंजाबी धरती की भाषा है और धार्मिक विभिन्नताओं के बावजूद यहां का जन-जन इसी भाषा में बातचीत करता है। इसकी समृद्ध साहित्यिक परम्परा है। सिख गुरुओं के प्रभामंडल के अतिरिक्त मुसलमान सूफी शायरों ने अपनी रचनाओं द्वारा इसमें महत्वपूर्ण योगदान दिया है। इसलिए स्वाभाविक रूप से उसे पंजाब़ की राजभाषा होने का गौरव मिलना चाहिए।

उस समय मैं कानपुर के डी. ए. वी. कालेज का छात्र था। पंजाब में उभरे भाषा विवाद और उस कारण हिन्दुओं-सिखों में निरन्तर बढ़ती हुई खाई के कारण मैं बहुत उद्विग्न महसूस करता था। मेरी मान्यता थी कि राष्ट्रीय स्तर पर हिन्दी इस सम्पूर्ण देश की भाषा है। यह बहुभाषी देश है और विभिन्न राज्यों की भाषाओं को अपने-अपने क्षेत्र में वही स्थान प्राप्त होना चाहिए जो राष्ट्रीय स्तर पर हिन्दी के लिए अपेक्षित है। पंजाब में पंजाबी को उसका उचित स्थान प्राप्त हो, मैं इस बात का भी पूरा समर्थक था।

1950 में मैंने 'पांचजन्य' साप्ताहिक में पंजाब की भाषा समस्या पर एक लम्बा लेख लिखा जो पांच किस्तों में प्रकाशित हुआ। उसके बाद मैं इस विषय पर निरंतर लिखता रहा। पंजाब में यह मानसिकता बन गई थी कि हिन्दी हिन्दुओं की भाषा है और पंजाबी सिखों की। मैंने अपने लेखों में सदा ही यह आशंका व्यक्त की थी कि पंजाब का भाषा विवाद दोनों समुदायों के मध्य ऐसी खाई उत्पन्न कर देगा, जिसे पाटना बहुत दूभर हो जाएगा। ऐसा ही हुआ। पंजाब में आंतक की ऐसी भयंकर लहर उठी कि उसने वहां के जनजीवन को पूरी तरह आच्छादित कर लिया। हत्याओं के उस दौर में गहरे पारिवारिक और सामाजिक संबंध दरकने लगे। कुछ वर्षों में प्रदेश जिस दौर से गुजरा उसमें पच्चीस हजार से अधिक लोगों ने अपने प्राण गंवा दिए।

इस दौर में मैंने निरन्तर लिखा– हिन्दी में भी और पंजाबी में भी। सरकार की नीतियों की भी आलोचना की और आतंकवादियों के अमानवीय कार्यों की भी। आंतकवादियों द्वारा संत हरचंद सिंह लोंगोवाल की हत्या के पश्चात, सरकार को मेरी सुरक्षा की चिंता अनुभव हुई। मुझे एक सिक्योरिटी गार्ड दिया गया और मेरे घर पर सिक्योरिटी गारद बिठा दी गई।

मेरा ऐसा लेखन कुछ दशकों में फैला हुआ है। यह मेरे सर्जनात्मक लेखन का भाग नहीं था। यूं कहूं कि यह सव कुछ मैंने अपने सर्जनात्मक लेखन के मूल्य पर लिखा। मुझे इसका अहसास है, किन्तु यह सोचता हूं कि यह लिखना भी मेरा दायित्व था। आन्तरिक रूप से मुझ पर इसका दबाव भी था- मैं न लिखता तो कौन लिखता?

गत कुछ वर्ष से मैं 'दैनिक जागरण' के लिए प्रति गुरुवार को एक स्तम्भ लिखता हूं। दलित समस्याओं पर, पाकिस्तान पर, इस्लामी आंतकवाद पर, धार्मिक कट्टरता और कठमुल्लावाद पर, अकाली और गुरुद्वारा राजनीति पर, असमानतामूलक समाज की विद्रूपताओं पर तथा अन्य अनेक विषयों पर। इन लेखों की संख्या भी 400 पहुंच गई है। ऐसे लेखों के कारण मुझे बहुत ख्याति मिली है और मुझे कथाकार की अपेक्षा पत्रकार के रूप में अधिक पहचाना जाने लगा है। यह करक भी कम चुभने वाली नहीं है।

संचेतना की चर्चा किए बिना बात अधूरी रह जाएगी। 1965 में 'आधार' का सचेतन कहानी विशेषांक प्रकाशित होने के पश्चात सचेतन कहानी की चर्चा प्रारम्भ हो चुकी थी। इस बात को अधिक पुष्ट करने और चर्चा को व्यापक मंच देने के लिए मित्रों में विचार-विमर्श हुआ कि एक त्रैमासिक पत्रिका प्रारम्भ की जाए। ऐसी पत्रिकाओं का आर्थिक पक्ष कभी साहित्यिक पत्रिकाओं की जड़ें गहरी नहीं होने देता। इस कारण सहयोगी लेखक मित्रों में सिर फुटव्वल भी हो जाती है।

मैंने अपने मित्रों से कहा कि संचेतना के लिए सहयोग सभी का, किन्तु इसके आर्थिक पक्ष को केवल मैं वहन करूंगा। दूसरे अंक के संपादकीय में मैंने यह भी स्पष्ट कर दिया कि इस पत्रिका की जीवनविधि का हम कोई दावा नहीं कर रहे हैं। बिना किसी दावे के संचेतना अपने जीवन के चार दशक पूरे कर रही है।

मुझे इसमें कोई संदेह नहीं है कि संचेतना ने इस अवधि में बड़ी सार्थक भूमिका निभाई है। हमने कभी इस मंच को छोटे दायरे में नहीं घेरा, किन्तु यह भी सच है कि मित्र लेखक/ लेखिकाओं को यह अपनी पत्रिका लगे, इससे हमने उन्हें कभी विरत भी नहीं किया। हमने यह प्रयास भी किया कि संचेतना साहित्यिक चिंताओं के साथ उन चिंताओं की ओर भी ध्यान दे जो साहित्य की परिधि में चाहे न आती हों किन्तु उनके सरोकार लेखक-मानस से जुड़े हुए हों।

संचेतना को लेकर एक एडवेंचर भी किया गया था। 1985 में इसे समसामयिक विषयों की मासिक पत्रिका बनाने का दुस्साहस कर डाला। पांच वर्ष तक मासिक बनाए रखकर हमने यह अनुभव कर लिया कि सचमुच बड़ा दुस्साहस था। तीन वर्ष तक स्थगित रखने के पश्चात डॉ. (सुश्री) कमलेश सचदेव और डॉ. गुरचरण सिंह के सहयोग से पुनः

इसका त्रैमासिक प्रकाशन प्रारम्भ हुआ। इस बात को भी आज तेरह वर्ष होने को आए हैं।

और क्या लिखूँ?

चाहता हूं कि 'अभी शेष है' की त्रयी शीघ्र पूरी हो जाए। यह भी चाहता हूं कि अनेक अनुभवों, संघातों और मोड़ों से भरी अपनी आत्मकथा भी लिख लूं। दो-तीन उपन्यास और कुछ कहानियां भी लिखना चाहता हूं। किन्तु-

नर चाहत कछु अउर,
अउरै की अउरै भई,
चितवन रहिओ ठगउर,
नानक फासी गल परी।।

दस खण्डों में अपनी रचनावली देखकर लगता है करक, संतोष, आनन्द और आने वाले कुछ वर्ष जीवनकक्ष के चार कोनों में खड़े मुँह बिरा रहे हैं। इनमें से किसी को भी देखने का साहस मुझमें नहीं है।

रचनावली का काम कुछ वर्ष और लटका रहता, यदि प्रिय अनिल कुमार ने पीछे पड़कर मुझसे उसकी सामग्री इकट्ठी न करवा ली होती। इस आयोजन में उन्होंने जितना श्रम किया है, मैं उसका साक्षी हूँ।

नमन प्रकाशन के श्री नितिन गर्ग ने जिस गति से इस रचना के प्रकाशन को संभव बनाया है उसके सामने मेरी कृतज्ञता छोटी पड़ती है।

एच-108, शिवाजी पार्क, नई दिल्ली-110026

महीप सिंह

सम्पादक की ओर से

1960 के बाद हिन्दी कहानी में एक नया आन्दोलन प्रारम्भ हुआ-सचेतन कहानी। इसके अगुआ थे डॉ. महीप सिंह। डॉ. महीप सिंह का मानना है कि "सचेतन कहानी सक्रिय भाषा बोध की कहानी है, वह जिन्दगी की स्वीकृति की कहानी है। पश्चिम की भौंडी नकल और ओढ़ी हुई मानसिकता से प्रेरित होकर जिन्दगी की व्यर्थता, नितान्त अकेलेपन और बनावटी घुटन का प्रदर्शन नहीं करती।" सचेतन कहानी आयातित शिल्प पद्धति पर आधारित होकर भी भारतीय कथा परिवेश में अपनी मौलिक पहचान बनाए हुए है। निराशा, अकेलेपन, विसंगति, ऊब, उदासी, कुण्ठा, शोपण, अन्याय आदि के खिलाफ चेतना का आन्दोलन है जो संघर्ष का मार्ग प्रदर्शित करती है और जीवन में आस्था जगाती है।

डॉ. महीप सिंह ने आधार पत्रिका के सचेतन कहानी विशेषांक में लिखा है कि सचेतनता एक दृष्टि है जिसमें जीवन जिया जाता है और जाना भी जाता है। इसमें भविष्य की सम्भावनाओं का स्वर है। आत्म सजगता और व्यक्ति के अपराजेय संघर्ष क्षमता में सचेतनता एक आस्था है। कहें कि इस कहानी में सृजन की सम्भावना, आशामय भविष्य की कल्पना, संघर्षशीलता और आत्मविश्वास का भाव व्यक्त हुआ है।

डॉ. महीप सिंह जब मैट्रिक (1948) में थे तव से ही लिखना शुरू कर दिया था। प्रारम्भ में इन्होंने छोटी-छोटी ऐतिहासिक कहानियां लिखनी शुरू कीं जो उस समय की पत्र पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई थीं, पर लेख लिखने प्रारम्भ किये 1949-50 में, जब सच्चर फार्मूला नाम से पंजाब (उस समय उसे पूर्वी पंजाब कहा जाता था) में भाषा संबंधी नयी नीति लागू की गयी और पंजाब में आर्य समाज के नेतृत्व में उसका व्यापक विरोध शुरू हुआ। उन दिनों (1950 में) पंजाब की भाषा समस्या पर इन्होंने अनेक लेख लिखे। सही ढंग से कहानियां लिखना डॉ. महीप सिंह ने 1956 से शुरू किया।

प्रथम कहानी 'मैडम' (1956) से लेकर 'निगति' (2006) तक कहानीकार के रूप में अप्रतिम ख्याति प्राप्त किये डॉ. महीप सिंह को पचास वर्ष हो चुके हैं या कह सकते हैं कि महीप सिंह का कहानीकार 50 वर्ष का जीवन पूर्ण कर चुका है।

डॉ. महीप सिंह के माता-पिता देश के विभाजन से काफी पहले पश्चिमी पंजाब के जिला गुजरात के एक गांव सराय आलमगीर से उत्तर प्रदेश के उन्नाव जिले में आकर बस गये। उन्नाव में ही जन्म होने के कारण इनकी सम्पूर्ण शिक्षा कानपुर में हिन्दी माध्यम से हुई। मातृभाषा पंजाबी से प्रेम होने के कारण घर पर ही इन्होंने इसे पढ़ना-लिखना सीखा और पूरी तरह से इसका अध्ययन मनन किया ताकि सूक्ष्म भावों की कलात्मक अभिव्यक्ति सहज हो सके। इसी कारण महीप जी पंजाबी में भी उसी सहजता से लिखते हैं जिस सहजता से हिन्दी में। इनके परिवार में लेखन का कोई वातावरण नहीं था और इनके बच्चों में भी लेखन के प्रति कोई रुचि नहीं है, हां इनकी धर्मपत्नी का भरपूर सहयोग इन्हें मिलता रहा है।

डॉ. महीप सिंह के अब तक 'सुबह के फूल' (1959) 'उजाले के उल्लू' (1964), 'घिराव' (1968), 'कुछ और कितना' (1973), 'मेरी प्रिय कहानियां' (1974), 'भीड़ से घिरे चहरे (1977), 'कितने संबंध, (1979),' 'इक्यावन कहानियां, (1980),' 'महीप सिंह की चर्चित कहानियां, (1994), 'धूप की उंगलियों के निशान' (1993), 'सहमे हुए' (1998), महीप सिंह की समग्र कहानियां, (तीन खण्ड) (2000), 'दिल्ली कहां है' (2002), तथा ऐसा ही है, (2002) कहानी संग्रह प्रकाशित हुए हैं।

डॉ. महीप सिंह के साहित्यक लेखन की शुरुआत सन् 1956 में जिन कहानियों से हुई थी, वे कहानियां 'मैडम' और 'उलझन' अच्छी और मुकम्मिल कहानियां हैं। 'मैडम' में अगर सबके द्वारा बुरी समझी जाने वाली और चौतरफा अफवाहों से घिरी एक औरत के भीतरी दर्द और उजाड़ को समझने की संवेदनशील और ईमानदार कोशिश है तो 'उलझन' दाम्पत्य सम्बन्ध के तनाव को लेकर लिखी गई कहानी है। ये दोनों ही कहानियां स्त्री मन के दर्द को सहानुभूति से समझने की कोशिश ही नहीं करतीं बल्कि उसकी उलझनों को भी खोलकर देखना चाहती हैं। यह चीज महीप जी की पूरी कथा यात्रा में स्थायी टेक की तरह है। अगर यह कहा जाए कि इनकी आधी से अधिक कहानियां या तो स्त्री पर लिखी गई हैं या स्त्री की उपस्थिति वहां प्रमुख रूप से नजर आती है तो अतिशयोक्ति नहीं होगी।

डॉ. महीप सिंह की प्रारम्भिक दौर की कहानियों में 'शास्त्री जी', 'लिफ्ट' 'सुबह के फूल', 'एक हंसी की बात' और 'पड़ोसी' जैसी कुछ अच्छी और अलग तरह की कहानियां भी हैं जिनकी अधिक चर्चा नहीं हुई। 'शास्त्रीजी' रामलीला में परसुरामी करने वाले शास्त्री जी और नौटंकी की एक बाई के संबंधों की ऐसी निश्छल और उदात्त कहानी है जिसे भुला पाना कठिन है। ऐसे ही 'लिफ्ट' एक अपाहिज की यादगार कहानी है। एक पैर वाला यह अपाहिज चिलचिलाती धूप में अपनी साइकिल के कैरियर पर संभ्रान्त कथानायक को बिठाकर किस तरह उसको मंजिल तक पहुंचाता है, यह पाठक को संवेदना से भर देता है। इसी प्रकार 'सुबह के फूल', 'एक हंसी की बात' और 'पड़ोसी' ऐसी कहानियां हैं जो छोटे-छोटे और विरल किस्म के अनुभवों से युक्त होने के साथ ही पाठक को अलग और विलक्षण चरित्रों से मिलवाती हैं।

दूसरे दौर में महीप जी की सातवें-आठवें दशक की कहानियां शामिल की जा सकती हैं। इस दौर में उन्होंने 'पानी और पुल' और 'कील' जैसी सशक्त कहानियां रचीं, जिनके जोड़ की कहानियां ढूंढ़ पाना कठिन है और इन कहानियों ने इन्हें खासी प्रतिष्ठा दिलाई।

व्यक्ति जब अपने सीमित परिवेश से आगे बढ़ता या ऊपर उठता है तो उसको राजनीति और धर्म जैसे उन प्रभावशाली तत्वों से सामना करना पड़ता है जो उसके दैनिक जीवन का महत्वपूर्ण अंग तो नहीं हैं किन्तु समय-समय पर इतने प्रभावशाली हो जाते हैं कि शेष समाज से संबंध कायम करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। भारतवासियों के जीवन में भारत विभाजन अथवा स्वतन्त्रता प्राप्ति की वेला में इन तत्वों का प्रभाव शिद्दत के साथ उभरकर आया जब धर्म और राजनीति के घालमेल ने सामान्य जनों के दिलों के बंटवारे कर दिए। सदियों से साथ-साथ रहने वाले प्यार भरे दिलों को अलग-अलग कर दिया। भारत विभाजन की रेखा कागज पर खिंची, भूमि पर उतरी और लोगों के दिलों को चीरती हुई निकल गई। 'पानी और पुल' में लेखक ने इन भावनाओं को बहुत ही मार्मिक ढंग से चित्रित किया है। कहानी में एक सिख परिवार धार्मिक स्थानों की यात्रा के सिलसिले में भारत से पाकिस्तान गया है। गाड़ी उस गांव से गुजरती है जहां से उजड़कर यह परिवार भारत आया है। रेलवे स्टेशन पर गाड़ी आधी रात को रुकती है तो भी उस गांव के मुसलमान लोग अपने बिछुड़े हुए पड़ोसी के परिवार से अत्यन्त गर्मजोशी से मिलते हैं। उपहार देते हैं और वापिस उस गांव में आकर बसने का अनुरोध करते हैं। लेखक को लगता है पत्थर और लोहे के बने पुल के नीचे जेहलम नदी का स्वच्छ और निर्मल पानी है जो दिलों को मिलाता है। यह कहानी धर्म और राजनीति से ऊपर उठकर मानवीय सम्बन्धों की व्याख्या करती है। इसी प्रकार की दूसरी कहानी है 'सहमे हुए'। यह कहानी आजाद भारत के नागरिकों में पनप रही धार्मिक मानसिकता की कहानी है जिसके चलते परस्पर अविश्वास और आशंका का वातावरण इतना अधिक घनीभूत अंधकार उगल रहा है कि अक्सर साम्प्रदायिक दंगे हो जाते हैं। एक ही कार्यालय में कार्य कर रहे हिन्दू, मुसलमान, सिख, ईसाई, हरिजन साथ-साथ रहकर भी दूर-दूर हैं क्योंकि राजनीति और धर्म उन्हें मिलने नहीं देते। साम्प्रदायिक झगड़ों के विषय में लेखक की अत्यन्त सटीक टिप्पणी है- झगड़ों के बीज हमारी पृष्ठभूमि में पता नहीं कब किसने क्यों वो दिए। उस बोई हुई फसल को हम कब से काट रहे हैं, काटते चले जा रहे हैं, काटते चले जाएंगे। मनुष्य अवश्य लड़ेगा। वह अकेले-अकेले लड़ता है तो लोग उसे झगड़ालू, गुंडा और बदमाश कहते हैं । वह झुण्ड बनाकर लड़ता है तो देशभक्त, धर्मवीर और गाजी कहलाता है। उसे सम्मानित किया जाता है। आखिर मनुष्य यह सम्मान क्यों न ले। यह पूरी स्थति का खुलासा है क्योंकि पांचों मित्र शिक्षित हैं इसलिए बिना किसी कड़वाहट के तर्क के आधार पर स्थितियों का विश्लेषण कर सकते हैं। इसीलिए साम्प्रदायिक दंगों के पीछे एक तर्क यह भी है कि सारी लड़ाई ताकत और दौलत की लड़ाई है।

आदमी सत्ता हथियाना चाहता है इससे उसका अहम् संतुष्ट होता है। सत्ता के पीछे-पीछे दौलत आती है। अब इस लड़ाई को चाहे देश के नाम पर लड़ो, चाहे धर्म के नाम पर, चाहे किसी चमकदार वाद के नाम पर। स्थिति निरपेक्ष होकर तर्क देने वाले चारों धर्मों के ये मित्र जब साम्प्रदायिक दंगों में फंसे एक शहर के प्लेटफार्म पर खड़ी रेलगाड़ी के कैबिन में घिर जाते हैं तो सहम जाते हैं। कैबिन चारों तरफ से बंद है फिर भी ऐसा लग रहा है जैसे बाहर बेहिसाब शोर फैला हुआ है। पसीने से तरबतर और सहमे हुए आठ हाथ आपस में

एक दूसरे को पलोसते जा रहे हैं। इस स्थिति की प्रतीकात्मकता को खोलें तो लगता है जैसे यह पूरा देश ही एक कैबिन हो और देशवासी धर्म या वाद के नाम पर होने वाले राजनीतिक दंगों से सहमे हुए जीवन गुजार रहे हैं। उन्नीस सौ चौरासी के दंगे इसका ताजा उदाहरण हैं।

'कील' डॉ. महीप सिंह की विशिष्ट कहानियों में से है। यौन समस्या पर आधारित होने के बावजूद यह देह से नहीं जूझती, बल्कि एक गहरे मानसिक द्वंद्व को उभारती है। 'कील' की मोना सम्पन्न बाप की, छब्बीस वर्षीय अविवाहित है-आर्थिक कारण से नहीं, मनोवैज्ञानिक कारण से। बाप उस सुंदर बेटी के योग्य वर नहीं पा रहा है किन्तु सच्चाई यह है कि बाप मोना का साथ नहीं छोड़ना चाहता। उसके अंतर्मन में मोना के सान्निध्य की जो चाह है उसे वह योग्य वर की अनुपलब्धि का जामा पहनाता है। माँ सुरेश के साथ उसकी शादी करना चाहती है क्योंकि वह समझती है कि लड़की कितनी ही सुंदर क्यों न हो, वह डाल पर लगे फूल जैसी है, मुरझाने में देर नहीं लगती। मोना इसी द्वंद्व में पड़ी हुई बाप की सेवा करती है। रूप गुण में वह कितनी ही असामान्य क्यों न हो, पर है तो वह नारी ही, उसे एक पुरुष चाहिए लेकिन बाप की दृष्टि में वह गाडेस है जब तक कोई देवता न मिले शादी कैसे हो सकती है। वह बाप की प्रशंसाओं सद्भावनाओं और प्यार को ढोती-ढोती अनजाने ही रीत रही है। अपने रीतने को वह स्वयं नहीं समझ पाती है। मां उसे समझाती है और अंत में अपने पति को लिखती है कि मोना सुरेश से शादी को तैयार है। जब बाप पूछता है तो मोना न जाने क्यों उत्तर दे देती है- 'हाँ, वह तैयार है।' वह फिर आइने के सामने खड़ी होती है और चाहती है कि कुछ ऐसा देखे जो पहले दिखाई नहीं पड़ता रहा है और आज दाहिने गाल पर उसे एक कील दिखाई पड़ती है। वह कील पहले से थी किन्तु दृष्टि के बदल जाने से दिखाई पड़ रही है। उस कील को वह खुरच कर फेंक देती है, उसे अपने नारी सुलभ निर्णय के बीच उगे हुए व्यवधान को फेंकना ही है। 'कील' मोना की ही कहानी नहीं है, बल्कि बदले हुए वक्त में, बदली हुई मनःस्थिति वाली उन तमाम युवतियों की कहानी है जो अपनी जिन्दगी आप जीना चाहती हैं।

इसी दौर में लिखी हुई एक अलग तरह की कहानी है 'बेसुर'। इसमें एक मध्यवर्गीय दम्पती शुरू में इस बात पर चौंकता है कि उनका नौकर फिल्मी दुनिया में जाकर एक बड़ी हस्ती बन गया है। बाद में पति-पत्नी दोनों इस बात का रस ले लेकर वर्णन करते है और इस बात पर गौरवान्वित भी होते हैं कि उनका नौकर कितना बड़ा आदमी हो गया है। 'उजाले के उल्लू', 'शिफ्टों में घिरा राजकुमार', 'शोर', प्याले', 'सीधी रेखाओं का वृत्त', 'गंध', 'दुख', 'ब्लाटिंग पेपर', 'पत्नियां', 'ठग', कितने संबंध', 'जीना मरना' जैसी कई महानगरीय बोध की कहानियां हैं जिनमें संबंधों में आई टूटन, निरर्थकता आज भी जगह-जगह झांकती नजर आ सकती है।

सन् 1980 में लिखी 'सहमे हुए' से डॉ. महीप सिंह की कहानी यात्रा के तीसरे दौर की शुरुआत माननी चाहिए। यह वह दौर है जब सिखों को एक करुण त्रासदी से गुजरना पड़ा। इस करुण विडम्बना को लेखक ने 'एक मरता हुआ दिन', 'आओ हंसें', 'पहले जैसे

दिन', 'शहर ' जैसी कहानियों में कितनी ही तरह से कहा है। निःसंदेह ये ऐसी कहानियां हैं जो 1984 की क्रूर दहशत के खौफनाक चहरे को सामने लाती हैं। इनमें सबसे संजीदा कहानी 'शहर' है, जिसमें इस त्रासदी का सीधा वर्णन न हुआ हो लेकिन बड़े भाई के मन पर पड़े उसके अक्सों, उनकी डबडबाई आंखों और जीवन नैया की डगमगाहट के जरिए लेखक ने यह दिखा दिया है कि साम्प्रदायिक आतंकवाद के खूनी पंजे बिना दिखाए भी मानो आंख के आगे आ जाते हैं। इसी तरह 'सहमे हुए' साम्प्रदायिक तनावों से घिरे उन बुद्धिजीवियों की कहानी है जो सीधे-सीधे इसे स्वीकार नहीं करते, लेकिन चाहे अनचाहे झेलना उनको यही सब पड़ता है। 'धूप की उंगलियों के निशान', 'बूढ़े', 'कितनी परछाइयां', 'शोक', 'अवश' 'शराब', 'डर' 'काल - सन्ध्या', 'ताल', 'कल', 'दिन' तथा 'दोस्ती के पानीपत की चौथी लड़ाई' इस दौर की अद्वितीय कहानियां हैं।

सन् 2000 से लेकर अगस्त 2006 तक डॉ. महीप सिंह की बारह कहानियां और प्रकाशित हुई हैं। इनमें से अधिकांश कहानियां अलग पहचान बनाने में सक्षम हैं। इनमें दिशांतर, बेटी, कितने सैलाब, आधी सदी का वक्त, दंश और निगति अपनी छाप छोड़ने में सक्षम हैं। तमाम कहानियों पर दृष्टिपात करने के उपरान्त कह सकते हैं कि डॉ. महीप सिंह ने अपनी कहानियों में नारी पात्रों को गिराया नहीं है, न उन्हें पुरुष के लिए खिलौने के रूप में प्रस्तुत किया है, बल्कि वे व्यक्ति, परिवार और समाज के विकास में सहभागी हैं। उनमें अपने विचार हैं अपना व्यक्तित्व है। उनमें निर्णय लेने की क्षमता है और वे अपना काम अपने ढंग से कर सकती हैं। वह आत्मनिर्भर होकर सम्मान से जीती हैं कहानीकार ने नारी पात्रों को विविध रूप में प्रस्तुत किया है जहां वे स्थितियों से पराजित नहीं होती हैं। इन कहानियों का दायरा केवल महानगरीय और मध्यवर्गीय जीवन तक ही सीमित नहीं है अपितु उसका विस्तार गांव, कस्बे, खोली और फुटपाथ पर रहने वाले व्यक्ति तक भी हुआ है और लेखक ने मानवीय संबंधों के बनते-बिगड़ते समीकरणों को बखूबी कहानियों में उभारा है। व्यक्ति और समाज के परस्पर टकराव और सहयोग का भी चित्रण किया है। कामेच्छा, विवाह संबंध; मित्रता, परिवार, धर्म, राजनीति आदि के आधार पर होने वाले रिश्तों के टकराव और उससे उत्पन्न विविध आयामों को भी इन कहानियों में देखा जा सकता है। अधिकांश कहानियों को देखकर अकसर लगता है ये इनकी अपनी जी हुई घटनाएं है और इनके बीच वे स्वयं उपस्थित हैं किन्तु अपनी उपस्थिति को इतना परोक्ष और सूक्ष्म रखा है कि कहानी किसी एक व्यक्ति की न होकर समाज के असंख्य व्यक्तियों की कहानी बन जाती है। कहानियों की यह विशेषता ही इन्हें समसामयिक कहानीकारों में विशिष्ट स्थान बनाने में सहायता करती है।

काफी समय तक कहानियां लिखने के उपरान्त डॉ. महीप सिंह का उपन्यास 'यह भी नहीं' 1976 में प्रकाशित हुआ। इसके विषय में उन्होंने स्वयं लिखा है कि यह उपन्यास मैंने अपने एक वर्ष के (1974-1975) जापान प्रवास के दौरान लिखा था, परन्तु इसकी कथावस्तु मेरे अन्दर अनेक वर्षों से पल रही थी। दूसरे शब्दों में इसे यों भी कह सकते हैं कि इस उपन्यास का भ्रूण तो वर्षों से पल रहा था परन्तु इसके पूर्ण विकास का समय विदेश प्रवास के दौरान ही मिल सका और इसकी प्रसूति (प्रकाशन) 1976 में हुई। इस उपन्यास की

लोकप्रियता का सहज अहसास इसी से हो जाता कि अब तक सात भाषाओं अंग्रेजी, पंजाबी, मलयालम, मराठी, गुजराती, उड़िया और कन्नड़ में भी इसके अनुवाद छप चुके हैं। सन 2005 में हिन्दी में इसका चौथा संस्करण प्रकाशित हुआ।

महानगरीय जीवन की आधुनिकता से प्रभावित उलझे जटिल संबंधों के भीतर टूटती, पनाह खोजती बेपनाह जिंदगी का जितना यथार्थ अंकन इस उपन्यास में हुआ है वैसा कम ही उपन्यासों में हो पाता है।

'यह भी नहीं' में बम्बई के प्रमुखतः मध्यवर्गीय और प्रसंगतः उच्च और निम्नवर्गीय जीवन का चित्रण किया गया है। मध्यवर्ग का भी वह तबका जो देश के विभिन्न भागों से आकर धीरे-धीरे बम्बई का होने लगता है। ये अधिकतर आजीविका की तलाश में आते हैं और कभी-कभी अपनी यौन स्वच्छंदता को प्रश्नहीनता का वातावरण देते हैं। यह भाग बम्बई का बहुत बड़ा भाग है और इनकी समस्याओं का महीप सिंह ने सूक्ष्म और वैविध्य सम्पन्न चित्रण किया है। बम्बई में पहुंचने वाले युवक-युवतियों को बम्बई कुंठाएं देती है क्योंकि किसी की नजर होटल मैग्नेटों की ओर है किसी की सिनेमा के थैलीशाहों की ओर तो किसी की सेठों की ओर और बाकी की कमी बम्वई का मायाजाल पूरी कर देता है जिसके परिणामस्वरूप कुंठाएं उत्पन्न होना स्वाभाविक है। इस उपन्यास में लेखक ने सांकेतिक दृष्टि से बम्बई की जिंदगी का केन्द्रीय स्पंदन ध्वनित करने में सफलता प्राप्त की है।

'यह भी नहीं' में समस्याओं से मुंह चुराने की बजाय आगे बढ़कर उन सभी समस्याओं को लिया गया है जो समसामयिक यथार्थ के कटु अंग हैं। स्त्री-पुरुष की समस्याएं अनन्त हैं फिर भी उनके कुछ प्रमुख रूप उपन्यास में आ गए हैं जो मोटे तौर पर पुराने विश्वासों और नई मान्यताओं के बीच संघर्ष की समस्याएं हैं। तनावपूर्ण संबंधों वाले पति-पत्नी के बीच पुत्र के पालन और विकास की समस्या का सूक्ष्म चित्रण पाठक को झकझोर जाता है। शिक्षित कन्या के विवाह की समस्या भी बहुत गहरे रंगों में चित्रित हुई है। भ्रष्ट प्रबंधक और चापलूस तथा बेईमान प्रिंसिपल के बीच की साठ-गांठ से उत्पन्न होने वाली शिक्षा संस्थाओं में स्वतन्त्रता और योग्यता के हनन की समस्या भी चित्रित हुई है। भाषा की समस्या विद्यालय की पत्रिका से लेकर राजनीतिक वातावरण की समस्या के रूप में चित्रित हुई है। इसी प्रकार सेठों द्वारा राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था को कमजोर करने वाली टैक्स चोरी और उसे कानूनी सुरक्षा देने के लिए बिचौलियों द्वारा टैक्स अधिकारियों को घूस देने की समस्या रेलवे प्रशासन से लेकर आम प्रशासन तक भ्रष्टाचार की समस्या, अनेक प्रकार से उभर कर सामने आती है। प्रादेशिकता को राजनीतिक रंग देकर मुंबई आमची आहे का नारा लगाकर बंद का आयोजन और तत्संबंधी तोड़-फोड़ की समस्या बम्बई में मकानों की भीषण समस्या, बाजारू फिल्मों के निर्माण और उससे जनता को मूर्ख बनाने की समस्या, क्लबों और होटलों की कृत्रिम एवं भ्रष्ट जिंदगी की समस्या और पश्चिम की भोंडी नकल और अन्त में पिछले दो तीन दशकों में उत्पन्न बुद्धिजीवियों के लिए चुनौती स्वरूप उत्पन्न होने वाले भगवानों की समस्या उपन्यास की महत्वपूर्ण विवृतियाँ हैं।

घटनाओं की ही भांति भाषा के प्रयोगों में भी विशेषता है। शुद्ध कथा भाषा-सीधी

सहज, बिम्बों, प्रतीकों और अप्रस्तुतों की औपचारिकता एव रहित भावात्मकता की उलझनों से रहित, जीवन के इर्द गिर्द की स्तरीय व्यावहारिक भाषा को सहज साहित्यिक संस्कार प्रदान कर कृति में प्रयोग किया गया है। कथाकार भावुकता के साथ दार्शनिकता और कुण्ठा आदि की रहस्याच्छादित मनोवैज्ञानिक परतों के अंकन से भी बचता गया है।

'यह भी नहीं' में डॉ. महीप सिंह ने अधिकांश कहानी परम्परागत शिल्प का उपयोग करते हुए कही है। बीच-बीच में पूर्व दीप्ति, फैण्टेसी, स्वप्न आदि का भी उपयोग किया गया है। उपन्यास सुगठित न होकर बिखरावपूर्ण है। जिस लक्ष्य को लेकर उपन्यासकार चला है उसकी दृष्टि से यह दोष नहीं है। अगर पूरे बम्बई महानगर का चित्र खड़ा करना है तो उपन्यास में बिखराव आएगा ही। इस बिखराव के बावजूद उपन्यास बेहद पठनीय है।

लगभग 29 वर्ष के लम्बे अन्तराल के बाद डॉ. महीप सिंह जी का नया उपन्यास 'अभी शेष है' आया। इस उपन्यास का समय 1970 के आसपास का है और उपन्यास की सीमा देश में 1975 में की गयी आपातकाल की घोषणा तक है। आजादी तो 1947 में मिल गयी परन्तु देश की जनता ने इतिहास से कुछ भी सबक नहीं लिया। आज भी देश में जब चाहे दंगे भड़क उठते हैं। चाहे वह उग्रवाद के नाम पर हो, मन्दिर-मस्जिद के नाम पर या मजहबी जुनून के नाम पर गोधरा काण्ड। आज तक भारत में जितने भी फसाद हुए हैं उनमें 1947 में हुए दंगों की मिसाल पूरे विश्व में नहीं मिलती। कल तक जो एक साथ रहते थे, साथ उठते बैठते थे, एक दूसरे के सुख-दुख में शरीक होते थे अचानक ही एक दूसरे के खून के प्यासे हो गये। सबकी अक्ल पर परदे पड़ गये, सोचने समझने की शक्ति ही खत्म हो गयी। जो नफरत के बीज उस समय बोये गये थे वे आज भी यों ही बोये जा रहे हैं। जहाँ तक आम आदमी की बात है वह इन सब चीजों से आजिज आ चुका है। आम आदमी तो शान्ति के साथ जीना चाहता है। देश का बंटवारा हुआ तो बहुतों को भारत छोड़कर पाकिस्तान जाना पड़ा और बहुतों को पाकिस्तान छोड़कर भारत आना पड़ा। सबके दिल में अपनी जन्मभूमि को छोड़ने की कसक थी । कोई भी बेवतन नहीं होना चाहता था परन्तु देश के नेताओं के आगे किसी की नहीं चली। जिसका नतीजा था पाकिस्तान का जन्म।

अंग्रेजों ने जाते-जाते देश को दो टुकड़ों में बांट दिया पर दिलों को नहीं बांट पाये। लाखों लोगों को अपना घर छोड़कर शरणार्थी का जीवन व्यतीत करना पड़ा। भाइया जी भी उन्हीं में से एक थे जो भारत में आकर बस तो गए परन्तु दिल से कभी भी अपने मुल्क को नहीं भुला पाए। उनकी यादों में, बातचीत में हमेशा वहां का जिक्र होता। कोई भी बात हो उनके बचपन से ही शुरू होती और पाकिस्तान की गलियों में घूमती रहती। एक जगह भाइया जी कहते हैं, 'हुकूमतें बदलती रहती हैं। राज भाग कभी किसी के सिर पर, कभी किसी के सिर पर, पर आम लोग तो अपने घरों में ही बसते हैं। हुकूमतों का बनना और बिगड़ना फसलों की भांति है, बोई सींची और फिर काट ली। मन किया तो गेहूँ बो दिए, मन किया तो बाजरा या मकई बो दी। आम जनता तो धरती की भांति होती है वह अपनी जगह से नहीं हिलती।' सच ही है कि हुकूमतें तो बदलती रहती हैं, पर आम आदमी तो वही रहते हैं। आम जनता धरती की तरह ही होती है उसे ही सब कुछ सहना पड़ता है और 1947 से लेकर अब तक जितने भी दंगे हुए उसमें जो कुछ भी सहा वह आम आदमी ने ही सहा।

गांव से बिछुड़ने का दर्द भाइया जी को मरते दम तक सालता रहा और इनकी आखिरी इच्छा भी यही रही कि मरने के बाद इनकी अस्थियां जेहलम में ही प्रवाहित की जाएं। यह दर्द केवल भाइया जी का ही नहीं है उन सभी का है जिन्हें अपने वतन से बेवतन होना पड़ा। आदमी कहीं का कहीं क्यों न पहुंच जाए परन्तु उस जगह को कभी नहीं भूल सकता जहां उसने अपना बचपन गुजारा होता है। जिस मिट्टी में खेल-खेलकर बच्चा बड़ा होता है उसे भूला भी कैसे सकता है। भाइया जी पचहत्तर पार कर चुके हैं और घर परिवार में सभी अपने-अपने काम गें व्यस्त हैं, किसी के पास इतना वक्त नहीं होता कि भाइया जी के पास फुरसत से बैठे। दूसरा यह कि भाइया जी जब भी बात करते हैं तो अपने बचपन के दिनों में पहुंच जाते हैं, जिसे सभी कई बार सुन चुके हैं और इनके किस्से को सुन सुनकर बोरियत महसूस करते हैं।

भाइया जी का सारा ज़ीवन संघर्ष में ही गुजरा। शादी के तुरंत बाद ही भाइया जी को बड़े भाई लाभ सिंह ने अलग कर दिया। इनके हिस्से में कुछ बर्तन, कुछ कपड़े, टूटी फूटी हवेली का एक हिस्सा और कुछ रुपए ही आए। साइकिल की मरम्मत का काम शुरू कर जीवन की गाड़ी को आगे बढ़ाना शुरू किया। काम आगे बढ़ा परन्तु इन्हें अपना मुल्क पाकिस्तान छोड़कर भारत आना पड़ा। यहां आकर इन्होंने दिल्ली में अपना घर बसा लिया। बच्चे बड़े होने लगे और सभी का काम धंधा बढ़ने लगा। भाइया जी मन में बेटी की चाह लेकर जीते रहे परन्तु इनके अपनी कोई बेटी नहीं हुई। बेटी की चाह पूरी हुई तो बेटे बलवंत की बेटी मनजीत के रूप में। समय के साथ-साथ भाइया जी की उम्र ढलने लगी और ये 75 पार कर गए। बच्चे सयाने होने लगे। मनजीत कालेज जाने लगी और वहां उसकी एक लड़के से दोस्ती हो जाती है जो उसे मन ही मन चाहता है। मनजीत भी उसे चाहती है परन्तु रोजगार न होने के कारण दोनों का विवाह नहीं हो पाता।

'अभी शेष है'* में कथानक केवल एक ही परिवार या एक ही समस्या के इर्द गिर्द नहीं घूमता। मनजीत और सुनंदा के माध्यम से नारी से जुड़ी समस्याओं को उठाया गया है। कालेज आते-जाते समय बस में मनजीत की कमलजीत से मुलाकात होती है और यह मुलाकात धीरे-धीरे प्रेम में परिणत हो जाती है। इनका प्रेम विवाह के बंधन में नहीं बंध पाता और मनजीत का विवाह लखनऊ के मनमोहन से तय होता है जो पढ़ा-लिखा और काबिल तो है परन्तु शक्ल-सूरत में मनजीत के लायक नहीं। मनमोहन नौकरी अमेरिका में करता है और मनजीत को भी विवाह के बाद अमेरिका में ही जाना पड़ता है मनमोहन कॉम्पलेक्स का शिकार हो जाता है। यहां तक कि उसे मनजीत का सजना-संवरना भी अच्छा नहीं लगता। इसी समय में अमेरिका का वियतनाम के साथ युद्ध छिड़ जाता है। वहां की राजनीति को लेकर वह अनजाने में अमेरिका के खिलाफ कुछ टिप्पणी कर बैठता है और उसके मन में डर बैठ जाता है जिसके चलते वह मानसिक रोग का शिकार हो जाता है। उसका कई जगह इलाज भी कराया जाता है परन्तु कोई परिणाम नहीं निकलता।

दूसरी तरफ सुनंदा है। उसके माता-पिता का एक दुर्घटना में देहांत हो जाता है। सुनंदा का भाई और पति अमेरिका में ही रहते हैं। शुरू में सुनंदा का पति उसके पत्रों का भी जवाब देता है परन्तु धीरे-धीरे उसकी उपेक्षा शुरू कर देता है। सुनंदा जब इसकी वजह खोजती है

तो उसके पैरों तले जमीन खिसक जाती है। उसके पति ने वहीं किसी दूसरी महिला से विवाह कर लिया, न तो उसे तलाक देना ही जरूरी समझा और न ही बताना कि उसके साथ यह सब क्यों किया जा रहा है। इस आघात को सुनंदा जैसे-तैसे झेल लेती है और खुद को व्यस्त रखने के लिए स्वतंत्र पत्रकार का व्यवसाय अपना लेती है। क्या व्यस्तता से ही किसी समस्या का समाधान किया जा सकता है? पति-पत्नी के संबंधों में कुछ वैयक्तीकरण और नितांत निजी संबंध भी होते हैं जिनकी पूर्ति वे आपस में बिना किसी औपचारिकता के करते रहते हैं परन्तु जब संबंध विच्छेद की नौबत आ जाती है तो नारी के सामने इस प्रकार की समस्या आती है कि वह इसकी पूर्ति कहाँ करें? ऐसे में ग्लैमर वीकली के सम्पादक आनंद से उसका परिचय होता है। लेखों के माध्यम से हुआ परिचय धीरे-धीरे बिस्तर तक पहुच जाता है। जब इन संबंधों का पता आनंद की पत्नी कोमल को चलता है तो घह भी काफी परेशान होती है। वह इस समस्या का समाधान सोच समझ कर निकालती है और सुनंदा को समझाती है जिसे सुनंदा मान भी लेती है।

नसरीन और अशरफ दोनों मुस्लिम समुदाय से हैं। दोनों ही एक दूसरे को चाहते हैं और पति-पत्नी के रूप में जीवन व्यतीत करना चाहते हैं परन्तु शिया सुन्नी की दीवार इनके बीच आ जाती है। इस कारण इनके माता-पिता इस रिश्ते के लिए तैयार नहीं होते। ऐसे में ये दोनों आनंद साहब की शरण में आकर अपनी समस्या से इन्हें अवगत कराते हैं और चाहते हैं कि कोर्ट मैरिज में आनंद साहब इनकी सहायता करें।

भाइया जी के बेटे बलवंत की टायर सोल की फैक्टरी है। एक मजदूर की वजह से एक दिन फैक्टरी में आग लग जाती है और उस मजदूर की मौत हो जाती है। ऐसे में यूनियन नेताओं को अपनी रोटी सेंकने का मौका मिल जाता है। यूनियन लीडर अपने स्वार्थों को साधते हैं। आनंद साहब समझौता करा देते हैं, मजदूर के परिवार को मिलता है थोड़ा सा मुआवजा और घर भरता है यूनियन लीडर चड़ती राम का।

कृति में सिख राजनीति और गुरुद्वारा कमेटियों पर कब्जा जमाने की होड़ और धांधलियों का भी खुलकर बखान किया गया है। 1971 के भारत-पाक युद्ध में पाक को पराजित करना और पाक युद्धबंदियों का रेडियो से अपने परिवारों को अपनी कुशलता का संदेश देना भाव-विह्वल करने के साथ ही 1971 के युद्ध की याद ताजा कर देता है।

1974 का छात्र आंदोलन, 1975 का आपातकाल पढ़कर ऐसा लगता है जैसे सभी पुरानी बातें एक-एक कर आंखों के सामने आ रही हैं। 1975 के आपातकाल में सरकार विरोधियों को अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ा। सरकार विरोधी बहुत दिनों तक तो अपने घर ही नहीं जा पाए थे। जहां भी उन्हें छिपने की जगह मिलती वहीं वे शरण लेते थे। पुलिस चुन-चुन कर इन्हें जेलों में भर रही थी। प्रेस को भी सेंसर कर दिया गया। बिना सरकारी अधिकारी को दिखाए कोई भी लेख या प्रतिक्रिया नहीं छप सकती थी और जो भी ऐसा कुछ छापने की कोशिश करता उसे रातोंरात उठाकर जेल में डाल दिया जाता था। आनंद के साथ भी ऐसा ही हुआ। पुलिस उसे जानती थी परन्तु ऊपर के आदेश के सामने विवश थी। आज अखबार छोटा हो या बड़ा, उसे सरकारी विज्ञापनों के लिए कई प्रकार के

हथकंडे अपनाने पड़ते हैं, सरकारी अधिकारियों की चापलूसी करनी पड़ती है तब जाकर कहीं अखबार चल पाता है। 'अभी शेष है' में लेखक ने मनजीत, सुनंदा, कोमल के माध्यम से नारी मन की व्यथा का गहराइयों से वर्णन किया है तो नसरीन-अशरफ के माध्यम से शिया-सुन्नी समस्या का, सतवंत के माध्यम से डेरे के संत की यौन पिपासा का, सोहन सिंह, संत निधान सिंह, संत बीर सिंह के माध्यम से डेरों और सिख राजनीति का स्पष्ट और बेबाक बखान है। उपन्यास की समाप्ति पर पाठकों के मन में जिज्ञासा रह जाती है कि आनंद का क्या हुआ। सुनंदा और कोमल जब साथ-साथ रहने लगीं तो उनका जीवन कैसा रहा। नसरीन अशरफ का जीवन कैसा चल रहा है। मनमोहन वापस मनजीत के पास आता है या नहीं आदि जहां पाठक के मस्तिष्क पर छाप छोड़ती हैं वहीं इन पात्रों के विषय में आगे की जानकारी चाहने की इच्छा भी।

हिन्दी साहित्य के गम्भीर अध्येता के रूप में डॉ. महीप सिंह ने यह महसूस किया कि न तो दार्शनिक चिंतन के क्षेत्र में और न ही साहित्य के क्षेत्र में सिख साहित्य का मूल्यांकन हो पाया है। ऐसे वर्णन तो पाये जाते हैं जिनमें गुरु नानक देव को सामान्य संत के रूप में देखा गया है और गुरु गोबिन्द सिंह को महान योद्धा के रूप में चित्रित किया गया है परन्तु 'दशम ग्रंथ' में गुरु गोबिन्द सिंह की रचनाओं के अध्ययन, सम्पादन और प्रकाशन आदि की ओर उपेक्षा का दृष्टिकोण ही अपनाया है। यह उपेक्षा मात्र दशम ग्रंथ तक ही सीमित नहीं थी, लगभग सम्पूर्ण सिख साहित्य और गुरु ग्रंथ साहब भी इसका शिकार रहा। डॉ. महीप सिंह ने 1954 में डी. ए. वी. कालेज कानपुर से हिन्दी साहित्य में एम. ए. करने के पश्चात गुरु गोबिन्द सिंह के काव्य को अपने शोध कार्य के लिए चुना और 1963 में आगरा विश्वविद्यालय से पी-एच. डी की डिग्री प्राप्त की। डॉ. महीप सिंह ने गुरु गोबिन्द सिंह के सम्पूर्ण काव्य के मंथन के पश्चात समकालीन वीर काव्य का गहन एवं विस्तृत अध्ययन एवं मूल्यांकन करने के वाद आश्चर्यजनक तथ्य विद्वानों के सामने प्रस्तुत किए।

डॉ. महीप सिंह ने गुरु ग्रंथ और दशम ग्रंथ के आधार पर यह सिद्ध किया कि अपने जीवन और साहित्य के बल पर भारतीय जनता की मनोवृत्ति को गुरु गोबिन्द सिंह ने बदला और यह बदलाव ऐसा आया कि कातरता, आत्मविश्वासहीनता की भावनाओं को त्याग कर 'सिंह' रूप में एक-एक व्यक्ति 'सवा लाख' से लड़ने मरने के लिए तैयार हो गया। गुरु गोबिन्द सिंह ने युद्ध कौशल ही नहीं दिया, साथ ही साथ एक विशिष्ट युद्ध दर्शन भी पैदा किया। डॉ. महीप सिंह के शोध के बाद विद्वानों का ध्यान सिख साहित्य की ओर गया और खासतौर पर पिछले चालीस सालों में कई महत्वपूर्ण रचनाएं प्रकाश में आईं।

सिख जगत में बेशक डॉ. महीप सिंह को उनके शोध और समालोचना 'गुरु गोबिन्द सिंह और उनकी हिन्दी कविता' के साथ जोड़कर जाना जाता है, परन्तु इनकी एक अन्य कृति 'आदिग्रंथ में संगृहीत संत कवि' के. के. बिड़ला फाउण्डेशन द्वारा प्राप्त शोध वृत्ति के लिए लिखी गई और भारतीय ज्ञानपीठ से प्रकाशित हुई। यह पुनः सिद्ध करती है कि डॉ. महीप सिंह कहानीकार, उपन्यासकार, अखबारों के स्तम्भकार, निबंधकार, धारावाहिकों के लेखक आदि होने के साथ-साथ गुरुवाणी के चिंतक, व्याख्याकार और गम्भीर पाठक भी हैं

जो अभी तक गुरुवाणी से सम्बन्धित अनसुलझे प्रश्नों का उत्तर खोजने में लगे हैं। इस विषय में महीप सिंह अपने विचार व्यक्त करते हुए बताते हैं कि मेरी दृष्टि में अध्यात्म अंतर की खोज है, स्वयं की पहचान है और लेखक होने के नाते इसमें मेरी गहरी जिज्ञासा है। गुरुवाणी से मेरा सम्बन्ध बचपन से है। उसका मैंने अध्ययन किया। उसने मुझे बहुत प्रभावित किया।

'आदि ग्रंथ में संगृहीत संत कवि' के उपरान्त डॉ. महीप सिंह की 'गुरु नानक से गुरु ग्रंथ साहिब तक' प्रकाशित हुई। यह पुस्तक भारत सरकार के प्रकाशन विभाग के आग्रह पर लिखी गई। इसमें गुरु ग्रंथ साहिब की वाणियों के आधार पर सिख जीवन दर्शन और गुरु गोविन्द सिंह के युद्ध दर्शन पर प्रकाश डाला गया है। सिख धर्म का आन्दोलन मात्र भक्ति आन्दोलन नहीं था, वह सामाजिक-आर्थिक और वैचारिक क्रांति का आन्दोलन था। इससे तत्कालीन मुगल साम्राज्य भी चिंतित हुआ और उसका दखल भी दिनोंदिन बढ़ता गया। परिणामस्वरूप इस भक्तिपरक सामााजिक आंदोलन को शक्ति की आवश्यकता महसूस हुई। अतः सत्ता के साथ टकराव में इस अनोखे भक्ति आन्दोलन ने शक्ति को भी अपनी जीवन शैली में रूपांतरित कर लिया यानी 'मीरी और पीरी' की विचारध ारा के साथ जीने वाला 'संत सिपाही'।

सिख इतिहास की गुरु ग्रंथ साहिब के सम्पादन के बाद सबसे क्रांतिकारी घटना थी आनन्दपुर में 30 मार्च 1699 को गुरु गोबिन्द सिंह द्वारा बुलाया गया सिखों का विशाल सम्मेलन और वैशाखी के दिन 'पाहुल संस्कार' द्वारा 'खालसा' पंथ की स्थापना और शस्त्रधारी पंज प्यारों का नया स्वरूप। इससे राजाओं, नवाबों और सूबेदारों से लेकर दिल्ली के तख्त तक को खतरे की घंटियां सुनाई देने लगीं। यह सिख विचारधारा की ऐतिहासिक परिणति थी। इससे युद्धों का और मुगल सल्तनत के लिए विनाश का इतिहास लिखा जाना था। सिख विचारधारा में युद्ध दर्शन और योद्धाओं के उत्थान का समय शुरू होना था। दलित जातियों में साहस शौर्य और आत्मसम्मान की सोच का विकास होना था। अंततः पूरा इतिहास ही करवट बदलने की तैयारी कर रहा था। इस काल खण्ड का पूरा ऐतिहासिक ब्योरा 'सिख विचारधारा गुरु नानक से गुरु ग्रंथ साहिब तक' में अंकित है।

डॉ. महीप सिंह कहानीकार के रूप में विख्यात हैं परन्तु उन्होंने समय-समय पर व्यंग्य भी लिखे हैं, जो 'एक नए भगवान का जन्म' तथा 'एक गुण्डे का समय बोध' संग्रहों में संकलित हैं। इनके व्यंग्य देश की राजनीति में व्याप्त विसंगतियों पर प्रहार करते हैं। सन् 1985-90 के दौरान देश की राजनीति में नैतिक मूल्यों का पतन, वंशवाद, गुंडागर्दी, भ्रष्टाचार, धार्मिक भावनाओं का राजनीतिक इस्तेमाल जैसे अनेक मुद्दे छाए हुए थे। लेखक ने इन सभी को अपने व्यंग्य का निशाना बनाया है। महीप जी ने समाज के अंतर्विरोधों और विसंगतियों को अत्यन्त धारदार भाषा में व्यक्त करते हुए व्यंग्य साहित्य में अपना विशिष्ट योगदान दिया है।

डॉ. महीप सिंह द्वारा समय-समय पर लिखे निबंध ''कुछ सोचा : कुछ समझा' में संकलित हैं। इनके अब तक प्राप्त निबंधों और लेखों की संख्या लगभग चार सौ है। इन

निबंधों को यहां राजनीति, साहित्य, धर्म, इतिहास, समाज आदि शीर्षकों के अंतर्गत प्रस्तुत किया जा रहा है।

डॉ. महीप सिंह के आधी सदी से ज्यादा के लेखन को दस खण्डों में प्रस्तुत किया गया है।

खण्ड एक- कहानी

खण्ड दो - कहानी

खण्ड तीन -उपन्यास

खण्ड चार - साक्षात्कार, व्यंग्य और रूपक

खण्ड पांच - शोध

खण्ड छः -आदिग्रंथ में संगृहीत सन्त कवि, सिख विचारधाराः गुरु नानक से गुरु ग्रंथ साहिब तक तथा अन्य जीवनियां

खण्ड सात - साहित्यिक लेख

खण्ड आठ - धर्म और इतिहास से संबंधित लेख

खण्ड नौ - सामाजिक लेख

खण्ड दस - राजनीतिक लेख

महीप सिंह रचनावली की सामग्री खोजते समय अनेक ऐसे दुर्लभ लेख भी प्राप्त हुए जिनकी उम्मीद स्वयं लेखक को भी नहीं थी। साथ ही कुछ चीजें खोजने पर भी नहीं मिलीं। सामग्री की खोज में डॉ. साहिब ने पूरा सहयोग किया। अप्रत्यक्ष रूप से कई और मित्रों का भी सहयोग प्राप्त होता रहा, जिनके प्रति मैं हृदय से आभारी हूं।

संपादक
अनिल कुमार

एच-3/72, विकास पुरी
नयी दिल्ली-110018
(मो. 09810226748)

अनुक्रम

अपनी ओर से

गुरुवाणी के अध्ययन के प्रति मेरी रुचि बचपन से ही रही है। मेरे पिता नियमित रूप से गुरु ग्रन्थ साहब का प्रातः और सायं पाठ किया करते थे। कभी-कभी मैं भी उनके पास बैठकर पाठ सुनता और अपनी बहुत-सी जिज्ञासाएं उनके सम्मुख रखता रहता।

साहित्य के प्रति मेरी रुचि उसी आयु में उत्पन्न हो गयी थी, जब मैं आठवीं कक्षा में था, तभी मैंने अपनी पहली कहानी लिखी थी जो एक ऐतिहासिक प्रसंग पर आधारित थी। कॉलेज में आकर तो मैंने नियमित लिखना प्रारम्भ कर दिया था और पत्र-पत्रिकाओं में भी छपने लगा था, किन्तु गुरुमत साहित्य के अध्ययन के प्रति मेरी रुचि कभी कम नहीं हुई। सम्भवतः यही कारण था कि बी. ए. की परीक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात् मैंने हिन्दी विषय लेकर एम. ए. कक्षा में प्रवेश लिया, क्योंकि मैं गुरु गोबिन्द सिंह जी की रचनाओं पर शोध-कार्य करने का निश्चय कर चुका था। यह कार्य मैंने 1963 में पूर्ण करके आगरा विश्वविद्यालय से पी- एच. डी. की उपाधि प्राप्त की थी।

यह बात मुझे उस समय भी आकर्षित और अचम्भित करती थी कि गुरु ग्रन्थ साहब के सम्पादक गुरु अर्जुन देव ने छः सिख गुरुओं के साथ ही इतने सन्तों तथा भाट कवियों की रचनाओं को इस ग्रन्थ में क्यों सम्मिलित किया?

जब मुझे इस बात का ज्ञान हुआ कि ये सन्त भारत के विभिन्न प्रदेशों के निवासी थे और उनका समय कुछ शताब्दियों में फैला हुआ था, यह जिज्ञासा भी बलवती हो गयी कि बंगाल से लेकर सिन्ध तक और महाराष्ट्र से लेकर मुलतान (पंजाब) तक फैले हुए इन सन्तों/सूफियों की रचनाओं को एकत्रित किस प्रकार किया गया होगा।

इन जिज्ञासाओं की तृप्ति के लिए मैं निरन्तर कुछ-न-कुछ पढ़ता रहता था। यह इच्छा भी होती थी कि इस दृष्टि से मैं कुछ काम करूं, किन्तु जैसे-जैसे आयु बढ़ती गयी, अनेक प्रकार की व्यस्तताएं अधिक क्रूर होकर घेरती गयीं।

यह मेरे लिए अत्यन्त सन्तोष और तृप्ति की बात बन गयी जब मुझे यह कार्य

करने के लिए के. के. बिड़ला फाउण्डेशन की ओर से एक वर्ष के लिए शोधवृत्ति मिल गयी। इस अनुग्रह के लिए मैं फाउण्डेशन तथा उसके निदेशक श्री बिशन टण्डन का हृदय से आभारी हूं।

अपने शोध कार्य के लिए मैंने 'आदिग्रन्थ में संगृहीत सन्त कवियों की सांस्कृतिक-वैचारिक पृष्ठभूमि का तुलनात्मक अध्ययन' विषय का चुनाव किया था। इस विषय का अध्ययन करते हुए मेरे सम्मुख अनेक नये क्षितिज उभरे और मुझे लगा कि यह कार्य और अधिक व्यापक और गम्भीर अध्ययन की मांग करता है, क्योंकि इसकी पृष्ठभूमि की सम्पूर्ण अवधारणा पूरे भक्ति-आन्दोलन और भारतीय चिन्तन को प्रभावित करती है।

हिन्दी के अध्ययन-क्षेत्र में भक्ति-आन्दोलन पर बहुत काम हुआ है। कई दशक पहले पं. परशुराम चतुर्वेदी की पुस्तक 'उत्तर भारत की सन्त-परम्परा' और डॉ. पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल का शोध ग्रन्थ—'हिन्दी साहित्य में निर्गुण सम्प्रदाय' प्रकाशित हुए थे। सन्त-साहित्य के अध्ययन की दृष्टि से इन ग्रन्थों का योगदान अप्रतिम है। डॉ. जयराम मिश्र ने हिन्दी में गुरु नानक देव की सभी रचनाओं का 'नानक वाणी' नाम से सटीक सम्पादन किया था। यह अपने आप में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कार्य था। डॉ. मिश्र की ही लिखी पुस्तक—'श्री गुरु ग्रन्थ दर्शन' आदिग्रन्थ के समग्र अध्ययन का एक उल्लेखनीय प्रयास था।

चार सौ वर्ष पूर्व आदिग्रन्थ के सम्पादन की परिकल्पना अपने आप में अद्भुत थी। धर्म, जाति, क्षेत्र, भाषा की सभी सीमाओं का अतिक्रमण करते हुए गुरु नानक देव ने अपनी यात्राओं में किस प्रकार सन्तों की वाणी का संग्रह किया, किस प्रकार उन हस्तलिखित पोथियों को पीढ़ी-दर-पीढ़ी सुरक्षित रखा गया, किस प्रकार पांचवें गुरु, गुरु अर्जुन देव ने, लगभग एक शती पश्चात् उस सम्पूर्ण परिकल्पना को एक ग्रन्थ के रूप में मूर्त रूप दिया, यह व्यापक अध्ययन और मनन की मांग करता है।

आदिग्रन्थ में 6 गुरुओं, 15 सन्तों तथा भट्टों सहित अन्य कवियों की रचनाए संगृहीत हैं। मैंने सन्त कवियों की वाणियों को अपने अध्ययन का केन्द्र बनाया है।

अध्ययन की कुछ सामान्य कठिनाइयां

हिन्दी के पाठकों को गुरुवाणी के पठन-पाठन और अध्ययन में कुछ असुविधाएं होती हैं। गुरु नानक देव ने अपनी रचनाओं को किस लिपि में लिखा था, इसका कोई पुष्ट प्रमाण उपलब्ध नहीं है, क्योंकि उनका कोई हस्तलेख नहीं मिलता, किन्तु जिन प्राचीन पोथियों से गुरु अर्जुन देव ने आदिग्रन्थ का सम्पादन किया था, वे गुरुमुखी लिपि में थीं। उन्हीं के निर्देशन में भाई गुरुदास जी ने जव मूल प्रति तैयार की थी, वह भी गुरुमुखी लिपि में थी।

प्राचीन ब्राह्मी लिपि से ही अधिसंख्य भारतीय लिपियों का विकास हुआ। देवनागरी का प्रयोग संस्कृत लिखने के लिए होने लगा। कश्मीर में ब्राह्मी का ही एक रूप शारदा प्रचलित था। कल्हण का 'राजतंरगिणी' ग्रन्थ इसी लिपि में लिखा गया था। चम्बा जैसे पहाड़ी प्रदेशों में टाकरी लिपि प्रचलित थी जो शारदा के बहुत निकट थी।

गुरु नानक देव के आगमन के समय पंजाब में कई लिपियां प्रचिलत थीं। देवनागरी पर ब्राह्मणों का एकाधिकार था। गुरुओं ने अपनी वाणी को लिपिबद्ध करने के लिए शारदा, टाकरी और लण्डे (महाजनी) के सुधरे हुए रूप का प्रयोग किया। द्वितीय गुरु, गुरु अंगद देव ने इस लिपि में एकरूपता लाने का विशेष प्रयास किया। आम लोगों में इस लिपि की मान्यता गुरुओं के माध्यम से हुई, इसलिए लोग इसे गुरुमुखी कहने लगे।

गुरुवाणी में कुछ शब्दों को लिखने के लिए एक विशेष वर्तनी अपना ली गयी। अनेक विद्वानों ने गुरुमुखी लिपि में प्रयुक्त वर्तनी और शब्द-संयोजन का गहन अध्ययन करके इसका व्याकरण निश्चित किया है।

गुरुमुखी लिपि से गुरुवाणी को जब देवनागरी में लिप्यन्तरित किया जाता है तो हिन्दी पाठकों को उसके उच्चारण में कुछ कठिनाई होती है। उदाहरण के लिए माया,

दया, पाया, भया, ध्यान, नारायण आदि शब्द गुरुमुखी में माइआ, दइआ, पाइआ, भइआ, धिआन, नाराइण लिखा जाता है, किन्तु इन शब्दों का उच्चारण सामान्यतः उसी प्रकार किया जाता है जिस प्रकार हिन्दी देवनागरी में।

भारत के विभिन्न प्रदेशों से जिन सन्तों की रचनाएं आदिग्रन्थ में संगृहीत हैं, मूल रूप से उसी प्रदेश की लिपि में होगी, जहां के वे रहने वाले थे। गुरु नानक देव और उनके परवर्ती गुरुओं ने उन्हें उस लिपि और वर्तनी में लिखा होगा, जिसका वे स्वंय प्रयोग करते थे। बहुत-सी रचनाओं को उन्होंने मौखिक परम्परा से लिया होगा। इसलिए नामदेव, कबीर, रविदास आदि सन्तों की रचनाएं जिस रूप में देवनागरी में प्राप्त हैं, आदिग्रन्थ में उनसे कुछ भिन्नता दिखेगी, किन्तु यह भिन्नता ऐसी नहीं है जिससे उसके अर्थ में कोई अन्तर आता हो।

सन्तों की वाणी में 'सबद' या 'शबद' का प्रयोग बार-बार हुआ है। यह शब्द का ही अपभ्रंश है, किन्तु सन्तों ने इसे एक पूरे पद के अर्थ में प्रयुक्त किया है, मात्र 'शब्द' के अर्थ में नहीं।

आदिग्रन्थ में संगृहीत रचनाकार

सन्त	भट्ट तथा अन्य कवि
शेख़ फ़रीद	भाई मरदाना
जयदेव	सुन्दर दास
त्रिलोचन	राइ बलवण्ड तथा सत्ता डूम
सधना	कलसहार
नामदेव	जालप
बेणी	कीरत
रामानन्द	भिक्खा
कबीर	सल्ह
रविदास	भल्ल
पीपा	नल्ह
सैण	गयन्द
धन्ना	मथुरा
भीखन	बल्ह
परमानन्द	हरिबंस
सूरदास	

गुरु

गुरु नानक	गुरु रामदास
गुरु अंगद देव	गुरु अर्जुन देव
गुरु अमरदास	गुरु तेग़ बहादुर

आदिग्रन्थ के सम्पादन की पृष्ठभूमि

आदिग्रन्थ अथवा गुरु ग्रन्थ साहब, आज सिखों का परम-पूज्य धर्मग्रन्थ उसी प्रकार स्वीकार किया जाता है जैसे विभिन्न धर्म समुदायों द्वारा वेद, गीता, बाइविल और कुरआन को स्वीकार किया जाता है। इस ग्रन्थ का सम्पादन पांचवें गुरु, गुरु अर्जुन देव ने किया था। उस समय इसका प्रचलित नाम 'पोथी' था, जिसे श्रद्धावश 'पोथी साहब' कहा जाता था। धीरे-धीरे इसके लिए ग्रन्थ शब्द प्रचलित हुआ। सिख परम्परा में इसकी ग्रन्थित प्रति को 'बीड़' कहने का चलन है।

इस ग्रन्थ का सम्पादन कार्य सन् 1604 ई. में पूरा हुआ था। इसे लिपिबद्ध करने के कार्य में भाई गुरदास ने अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी थी। भाई गुरदास तीसरे गुरु, गुरु अमरदास के भतीजे थे और उन्हें चार गुरुओं—गुरु अमरदास, गुरु रामदास, गुरु अर्जुन देव और गुरु हरिगोविन्द—का सान्निध्य प्राप्त हुआ था। उनका जन्म सन् 1551 और देहावसान सन् 1636 को हुआ माना जाता है। भाई गुरदास सिख धर्म के पहले व्याख्याकार थे। उन्होंने कुछ समय काशी में रहकर संस्कृत तथा धर्मशास्त्रों का अध्ययन किया था।

आदिग्रन्थ को संकलित किये जाने का अपना इतिहास है। गुरुवाणी की रचना का कार्य प्रथम गुरु, गुरु नानक के समय (सन् 1469 से सन् 1539) से प्रारम्भ हो गया था। गुरु नानक ने विधिवत् शिक्षा प्राप्त की थी, इसके प्रमाण उनकी रचना में से प्राप्त होते हैं। उनकी राग आसा में लिखी पट्टी से यह स्पष्ट होता है कि गुरु नानक अपने समय में उस भाग में प्रचलित वर्णमाला, जिसे तदनन्तर गुरुमुखी नाम प्राप्त हुआ है, में अपनी रचनाओं को लिखते थे। पट्टी में उन्होंने सभी अक्षरों को आध्यात्मिक अर्थ दिया है, किन्तु दुर्भाग्य से आज उनकी अपनी हस्तलिपि प्राप्त नहीं है।

गुरु नानक देव की वाणी को लिखने एवं एकत्र करने में कुछ श्रद्धालुओं ने अपना योगदान दिया था। कुछ पुरातन जनम साखियों में यह संकेत मिलते हैं कि उनकी यात्राओं के समय जो व्यक्ति उनके साथ रहते थे, वे उनके द्वारा उच्चरित वाणी को साथ-साथ लिखते जाते थे। एक जनम साखी में यह उल्लेख है कि दक्षिण भारत की यात्रा के समय सैदो और सीहा नाम के दो शिष्य उनके साथ थे। सैदो वाणी लिखने का कार्य करता था।

'तदहु सैदो घोहे लिखी संपूरन पढ़नी। बाणी सैदो जट्ट जात घोहे लिखी।'

सैदो के अतिरिक्त अन्य शिष्यों का भी इस सम्बन्ध में जनम साखियों में उल्लेख मिलता है।

'ततु बाणी हसू लोहार अत सीहै छींवे लिखी।'

एक साखी में मनसुख नाम के बनिये का उल्लेख है। उसने गुरु नानक के निकट तीन वर्ष रहकर अनेक वाणियों को लिपिबद्ध किया था—

'तीन बरस बाबे कोल रहिआ, फिर बाबे विदिआ कीता।
गुरु बाबे की बाणी बहुत लिखआसु, पोथीओं लिख लीती आसु।'

(पुरातन जनम साखी)

भाई गुरदास ने अपनी एक रचना (वार) में यह लिखा है कि गुरु नानक की मक्का-यात्रा के समय उनके पास उनकी वाणी की एक पोथी थी—

'आसा हथ किताब कछ पूजा बांग मुसलाधारी।'

पुरातन जनम साखी में यह भी लिखा है कि अपने देहावसान के पूर्व गुरु अंगद को गुरु-गद्दी देते समय उन्होंने अपनी वाणी की पोथी भी उन्हें दी थी—

'सो पोथी जुबानि गुरु अंगद जोग मिली।'

आदिग्रन्थ में संगृहीत विभिन्न भक्तों-सन्तों की रचनाओं को एकत्र करने का कार्य प्रथम गुरु, गुरु नानक देव के समय से प्रारम्भ हो गया था। वे स्वरचित रचनाओं को अपने साथ रखते थे। 22 वर्षों तक भारत के लगभग सभी भागों तथा सिंहल द्वीप (श्रीलंका), मक्का, मदीना और बगदाद तक की गयी यात्राओं में वे अपने से पूर्व और अपने समकालीन सन्तों-सूफियों की रचनाओं का संग्रह भी करते रहे। उन्होंने जीवन के अन्तिम कुछ वर्ष रावी नदी के किनारे बसाये नगर करतारपुर में व्यतीत किये थे। इन वर्षों में उन्होंने अपनी तथा अपने द्वारा एकत्र की गयी विभिन्न सन्तों की रचनाओं को

व्यवस्थित किया होगा। इसी स्थान पर उन्होंने अपने प्रिय शिष्य लहणा को अंगद बनाकर अपना उत्तराधिकारी घोषित किया जो 'गुरु अंगद देव' के नाम से दूसरे गुरु के रूप में जाने गये।

पांचवें गुरु, गुरु अर्जुन देव ने इन पोथियों को तीसरे गुरु, गुरु अमरदास के पुत्र बाबा मोहन से प्राप्त किया।

आदिग्रन्थ में गुरु नानक देव द्वारा रचित 974 'शबद' हैं, जिनमें पद, सलोक, पौड़ी आदि अनेक काव्य-रूप हैं। उन्होंने उत्तराधिकार के रूप में स्वरचित तथा अन्य सन्तों की रचनाओं को गुरु अंगद देव को सौंप दिया था। गुरु अंगद देव ने 62 सलोकों की रचना की और यह थाती तीसरे गुरु, गुरु अमरदास को सौंप दी। गुरु अमरदास की रचनाओं की गिनती 907 है, जो अनेक काव्य-रूपों में हैं। इन सभी सौंचियां अथवा पोथियों का विधिवत् लेखन कार्य संवत् 1627 (सन् 1570) में प्रारम्भ हुआ था और लगभग दो वर्ष में यह कार्य सम्मन्न हुआ था। इन पोथियों के सम्बन्ध में तीन नाम प्राप्त होते हैं—एक, सहंसर राम वाली पोथियाँ। गुरु अमरदास ने अपने पौत्र सहंसर राम को यह कार्य सौंपा था। दो—गोइन्दवाल वाली पोथियों इस नाम से इन्हें इसलिए पुकारा गया, क्योंकि इनका लेखन कार्य गोइन्दवाल नामक स्थान पर हुआ था। जहां गुरु अमरदास रहते थे। तीन-बाबा मोहन वाली पोथियां, क्योंकि काफी समय तक ये पोथियां गुरु अमरदास के पुत्र मोहन के अधिकार में रही थीं। इन पोथियों में प्रथम तीन गुरुओं के अतिरिक्त जयदेव, रामानन्द, नामदेव, सैण, त्रिलोचन, रविदास, कबीर और भीखण की रचनाएं भी शामिल थीं, जिन्हें गुरु नानक देव ने स्वयं एकत्र किया था।

गुरु अमरदास ने गुरु पद के लिए अपने जामाता भाई जेठा का चुनाव किया था जो गुरु रामदास के नाम से चौथे गुरु के रूप में गुरु-गद्दी पर बैठे। यह बात गुरु अमरदास के दोनों पुत्रों—मोहन और मोहरी—को रुचिकर नहीं लगी थी, सम्भवतः इसीलिए मोहन ने इन पोथियों को गुरु रामदास को न सौंपकर अपने ही अधिकार में रखा था।

गुरु रामदास का सिख-परम्परा में विशेष योगदान है। वे बहुत बड़े कवि, संगीतकार और भविष्य-द्रष्टा थे। अमृतसर नगर को भी उन्होंने ही बसाया था, जिसे प्रारम्भ में चक गुरु रामदास अथवा गुरु का चक कहा जाता था।

आदिग्रन्थ में गुरु रामदास के 679 पद संगृहीत हैं।

गुरु—गद्दी के उत्तराधिकार को लेकर कुछ विवाद गुरु-परिवारों में उभर आये थे। गुरु नानक ने अपने दोनों पुत्रों—श्रीचन्द और लखमीचन्द—को उत्तराधिकार के योग्य न समझते हुए अपने एक शिष्य भाई लहणा को 'गुरु पद' का भार सौंप दिया था। इसी प्रकार द्वितीय गुरु, गुरु अंगद देव ने अपने दोनों पुत्रों—दातू और दासू—को अपना उत्तराधिकारी न बनाकर अपने से बड़ी आयु के अपने शिष्य अमरदास को गुरु-गद्दी सौंपकर उन्हें तीसरा गुरु बनाया था।

यह बात गुरु अंगद के पुत्रों को रुचिकार नहीं लगी थी। उन्होंने गुरु अमरदास का अपमान भी किया था, किन्तु यह पारिवारिक तनाव गुरु रामदास के समय अधिक गम्भीर होकर उभर आया। गुरु अमरदास ने भी अपने दोनों पुत्रों—मोहन और मोहरी—को अपना उत्तराधिकारी नहीं बनाया था।

गुरु रामदास जी के तीन पुत्र थे—पृथ्वीचन्द, महादेव और अर्जुन देव। गुरुओं ने सदा ही उत्तराधिकार के प्रश्न को योग्यता के आधार पर परखा था। इस आधार में सर्वोच्च स्थान सेवा का था और उसी के साथ गुरु नानक के आदर्शों की सही समझ, विनम्रता, सहनशीलता, सहिष्णुता, उदारता और व्यापक मानवीय दृष्टि जैसे गुणों को भी विशेष महत्त्व दिया गया। गुरु रामदास के समय से गुरु-पद वंशगत अवश्य हो गया, किन्तु उत्तराधिकारी के आधारभूत गुणों में किसी प्रकार का समझौता नहीं किया गया।

गुरु रामदास ने अपने उत्तराधिकारी के रूप में अपने कनिष्ठ पुत्र अर्जुन देव का चयन किया था। उनके इस निर्णय से दोनों बड़े भाई पृथ्वीचन्द और महादेव केवल रुष्ट ही नहीं हुए थे, वे अपने छोटे भाई से वैर भाव को पालने लगे थे। सभी चार गुरुओं ने अपनी वाणी में रचनाकार के रूप में 'नानक' नाम का प्रयोग किया था। पृथ्वीचन्द के पुत्र मेहरबान तथा अन्य कुछ लोग भी नानक नाम से वाणी की रचना करने लगे थे। आम सिख जनता के लिए यह पहचान कर पाना कठिन होता जा रहा था कि कौन-सी रचना प्रामाणिक है और कौन-सी अप्रामाणिक।

इसीलिए उस समय 'सच्ची वाणी' और 'कच्ची वाणी' के रूप में दो शब्दों का प्रचलन हुआ। गुरुओं द्वारा रचित वाणी को लोग साची (सच्ची) वाणी कहते थे और उनके नाम से स्वार्थी लोगों द्वारा लिखित और प्रचारित रचनाओं को 'कच्ची वाणी' कहा जाता था।

इन स्थितियों में, गुरु पद का गुरुतर भार संभालते ही गुरु अर्जुन देव को यह बहुत आवश्यक लगा कि एक ऐसी पोथी या ग्रन्थ तैयार किया जाए जिसमें प्रामाणिक वाणी का ही संग्रह हो, जिससे सर्वसाधारण श्रद्धालु यह निर्णय कर सकें कि जो रचना इस ग्रन्थ में नहीं हैं नानक नाम से लिखे जाने के बावजूद वह प्रामाणिक नहीं है, वह कच्ची है।

पांचवें गुरु, गुरु अर्जुन देव ने जब सम्पादन का कार्य प्रारम्भ किया तो उन्होंने अपने कुछ प्रमुख सिखों को बाबा मोहन के पास से इन पोथियों को ले आने के लिए भेजा, किन्तु वे अपने कार्य में सफल नहीं हुए। तब गुरु अर्जुन देव इस कार्य के लिए स्वयं गोइन्दवाल गये।

सिख ऐतिहासिक परम्परा के अनुसार गुरु अर्जुन देव ने अपने मामा मोहन के चौबारे के नीचे खड़े होकर इस पद द्वारा उनकी अभ्यर्थना की—

मोहन तेरे ऊंचे मन्दर महल अपारा।

मोहन तेरे सोहनि दुआर जीउ संत धरमसाला।
धरमसाल अपार दैआर ठाकुर सदा कीरतन गावहे।
जह साध-सन्त इकत्र होवहि तहा तुझहि धिआवहि।
करि दइआ मइआ दइयाल सुआमी होहु दीन क्रिपारा।
बिनवन्ति नानक दरस पिआसे मिलि दरसन सुखु सारा।

हे मोहन, तुम्हारे ऊंचे मन्दिर हैं, अपार महल हैं। तुम्हारे द्वार पर सन्त जन वास करते हैं। ये सन्त जन एकत्र होकर तुम्हारा स्मरण करते हैं। नानक की यह विनती है कि अपने दर्शन देकर मुझे सुख प्रदान करिये।

कुछ विद्वानों ने इस पद का ईश्वरपरक अर्थ किया है, किन्तु परम्परा द्वारा यह स्वीकृत है कि यह पद सुनकर बाबा मोहन पसीज गये और उन्होंने ये पोथियाँ गुरु अर्जुन देव को दे दीं, जिनकी प्रतिलिपि करवाकर पंचम गुरु ने उन्हें वापस लौटा दीं। ये प्राचीन प्रतियां बाबा मोहन के वंशजों के पास आज भी सुरक्षित हैं।

गुरु अर्जुन देव ने बाबा मोहन वाली पोथियों के साथ अपने पिता, गुरु रामदास की वाणी संकलित की। बहुत-सी वाणी अनेक श्रद्धालुओं के पास लिखित और कण्ठस्थ रूप में सुरक्षित थीं, उसे भी उन्होंने बड़े श्रम से एकत्र किया। फिर सारी उपलब्ध सामग्री का पुनरावलोकन किया गया। इसके पश्चात् अन्तिम रूप देने का कार्य भाई गुरुदास को सौंपा गया, जिसे उन्होंने सन् 1604 में पूर्ण किया। इस मूल प्रति को हरि मंदिर (अमृतसर) में प्रस्थापित किया गया। इस प्रति को करतारपुरवाली बीड़ कहा जाता है, जो इस समय करतारपुर में सोढ़ी वंश के उत्तराधिकारियों के पास है।

आदिग्रन्थ को अन्तिम रूप देने का कार्य, लगभग सौ वर्ष बाद, दसवें गुरु, गुरु गोविन्द सिंह ने किया। छठे, सातवें और आठवें गुरुओं ने वाणी की रचना नहीं की थी। गुरु गोविन्द सिंह ने अपने पिता, गुरु तेग़बहादुर की वाणी (59 पद और 57 सलोक) को आदि ग्रन्थ में सम्मिलित किया। नान्देड़ (महाराष्ट्र) में अपनी ज्योति को परम ज्योति में विलीन करने से पूर्व उन्होंने देहधारी गुरु-प्रथा को समाप्त कर दिया और आदिग्रन्थ को गुरु-पद पर आसीन करने का आदेश दे दिया। उस समय से आदिग्रन्थ को गुरु ग्रन्थ साहब कहा जाने लगा।

आदिग्रन्थ के मुद्रित संस्करण में कुल पृष्ठ 1430 हैं। ग्रन्थ के अन्त में इसके सम्पादक गुरु अर्जुन देव ने उपसंहार के रूप में एक पद मुन्दावणी शीर्षक से लिखा है—

थाल विचि तिंनि वसतू पइओ सत सन्तोखु वीचारो।।
अमृत नाम ठाकरु का पइओ जिसका सभस अधारो।।
जे को खावै जे को भुंचे तिस का होई उधारो।।
एह वसतु तजी नह जाई नित नित कर उरि धारो।।
तम संसार चरन लगि तरीऐ सभु नानक ब्रह्म पसारो।।

इस पद का भावार्थ है–

इस ग्रन्थ रूपी थाल में सत्य, सन्तोष और प्रभु नाम का अमृत रखा गया है, जो सभी का आधार है। जो कोई भी इसका सेवन करेगा और इसके विचारों को आत्मसात करेगा, उसका उद्धार होगा। इस ग्रन्थ में जो वस्तु (विचार) है, उसे छोड़ा नहीं जा सकता। इसलिए इसे सदा अपने हृदय में धारण करना ही उचित है। इस ग्रन्थ में दिये गये उपदेश के चरणों से लगकर अंधेरे से मुक्ति पायी जा सकती है। इसका मूल उपदेश यह है कि परमात्मा की व्याप्ति सभी ओर है।

अनेक पक्षों से यह ग्रन्थ अनुपम एवं अद्वितीय है। इसमें बारहवीं शती के शेख फरीद और जयदेव से लेकर सत्रहवीं शती के गुरु तेग़ बहादुर तक पांच शतियों में अवतरित गुरुओं, सूफियों, सन्तों और भाट कवियों की भक्तिपूर्ण रचनाएं संगृहीत हैं। इस दृष्टि से इस ग्रन्थ को पांच शताब्दियों की, भारत की सांस्कृतिक, धार्मिक और साहित्यिक थाती का एक प्रतिनिधि ग्रन्थ स्वीकार किया जा सकता है।

आदिग्रन्थ की आन्तरिक संरचना

आदिग्रन्थ में रागबद्ध वाणियों के प्रारम्भ होने से पहले तीन वाणियां हैं—जपु, सोदर-सोपुरखु और सोहिला। आमतौर पर इन्हें जपुजी साहब, रहिरास और कीर्तन सोहिला कहा जाता है। ये सिख श्रद्धालुओं के नित्य पाठ (नितनेम) की वाणियां हैं। इनमें जपुजी का पाठ प्रातःकाल, रहिरास सन्ध्या में और कीर्तन सोहिला को रात्रि में शयन से पूर्व पढ़ा जाता है। इन तीनों वाणियों में पहली 'जपु' गुरु नानक देव की रचना है और शेष में एक से अधिक गुरुओं के पद हैं। ये तीनों रचनाएं एक प्रकार से आदिग्रन्थ का उपक्रम हैं।

जपुजी के प्रारम्भ में मूलमन्त्र है— ੧ੴ , सतिनामु, करतापुरख, निरभउ, निरवैरु अकाल मूरति अजूनी सैभं गुर प्रसादि।'

यह एक प्रकार का मंगलाचरण है। आदिग्रन्थ में किसी-न-किसी रूप में इसे पांच सौ से अधिक बार दोहराया गया है।

मूलमन्त्र को अनेक प्रकार से व्याख्यायित किया गया है। सार रूप में इसका अर्थ है—'परमेश्वर एक है, उसी का नाम सत्य है, वह कर्तापुरुष है, वह निर्भय है, वह निरवैर है, वह कालातीत है, वह अयोनि है, स्वयं से प्रकाशित है और गुरु की कृपा से उसकी प्राप्ति होती है।'

आदिग्रन्थ में संकलित वाणियों में 'जपुजी' सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण, बहुचर्चित, बहुपठित और बहुव्याख्यायित रचना है। इस रचना को आदिग्रन्थ का सार तत्त्व माना जाता है। इसकी रचना कब हुई इस सम्बन्ध में अनेक मत प्रकट किये गये है, किन्तु इतना निश्चित प्रतीत होता है कि यह गुरु नानक देव की प्रौढ़ावस्था की रचना है।

जपुजी में 2 सलोक और 38 पौड़ियां हैं। सभी पौड़ियां पहले और अन्तिम सलोक के बीच में हैं। पहले सलोक में गुरु नानक देव ने परब्रह्म की नित्यता तथा सर्वसातत्य पर अपनी आस्था प्रकट की है—

आदि सचु। जुगादि सचु।
है भी सचु। नानक होसी भी सचु।

(वह आदि में भी सत्य था, युगों के प्रारम्भ में भी सत्य था, आज भी सत्य है और भविष्य में भी सत्य रहेगा।)

पहली पौड़ी में एक स्थिति स्पष्ट की गयी है–

सोचै सोचि न होवई जे सोची लखवार।
चुपे चुप न होवई जे लाइ रहा लिवतार।।
भुखिआ भुख न उतरी जे बना पुरीआ भार।
सहस सिआणपा लख होहि त इक न चलै नालि।।

'यदि लाखों बार शौच-स्नान किया जाय तो भी शुचिता प्राप्त नहीं होती। यदि मौन धारण करके लम्बी समाधि लगा ली जाए, तो भी फल प्राप्त नहीं होता, इसी प्रकार सभी पुरियों के पदार्थों का भार बांध लेने पर भी एक क्षुधित व्यक्ति की भूख शान्त नहीं होती। यदि व्यक्ति में लाखों चतुराइयां हों, अन्त समय में एक भी चतुराई साथ नहीं देती।' इसी पौड़ी में उन्होंने साधक की इस जिज्ञासा को सामने रखा हैं–

किव सचिआरा होईऐ, किव कूड़ै तुटै पालि।
हुकमि रजाई चलणा, नानक लिखिआ नालि।।

'सत्य का साक्षात्कार किस प्रकार हो? झूठ का आवरण कैसे दूर हो?' दूसरी पंक्ति में इस जटिल प्रश्न का उत्तर है–प्रभु की आज्ञा और इच्छा को पहचानकर उसके अनुरूप चलना चाहिए–

हुकमि रजाई चलणा नानक लिखिआ नालि।।

अर्थात् प्रभु की आज्ञा और इच्छा में चलना, जिसका निर्धारण मनुष्य के जन्म के समय ही हो जाता है।

सम्पूर्ण सिख-चिन्तन में हुकम का बड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान है। इस पंक्ति में हुकम के साथ 'रज़ाई' शब्द है। रजाई अरबी का शब्द है जिसका अर्थ है आशावादी। सामान्यतः इसका शब्दार्थ किसी की आज्ञा और उसके द्वारा प्रचलित किया गया नियम समझा जाता है। यह किसी महापुरुष द्वारा रचे गये कोरे विधान का ही परिचायक नहीं है। गुरु नानक के अनुसार प्रत्येक वस्तु उसी के भीतर है, उसके बाहर कुछ भी नहीं। उस हुकम को यदि कोई भलीभांति समझ सके, तो फिर उसे अपने को भिन्न सिद्ध करनेवाले अहंभाव का बोध नहीं हो पाता।

हुकमै अंदरि सभु को, बाहरि हुकम न कोइ।

नानक हुकमै जे बुझे, त हउमै कहै न कोइ।।

(जपुजी, पौड़ी 2)

हुकम चलानेवाले ने हुकम को सदा के लिए प्रवर्तित कर दिया है और उसका पालन करते हुए निर्द्वन्द्व होकर अग्रसर होते रहना ही हमारा कर्तव्य है–

हुकमी हुकम चलाए राहु।। नानक बिगसै वे परवाहु।।

(जपुजी, पौड़ी 3)

अगली सभी पौड़ियों में मनुष्य की आध्यात्मिक यात्रा का क्रमिक वर्णन है, जो धीरे-धीरे निष्कर्ष की ओर बढ़ता है।

अन्तिम अड़तीसवीं पौड़ी में गुरु नानक देव ने अपने निष्कर्ष को एक उत्कृष्ट रूपक दिया है–

'समयरूपी दुकान और धैर्यरूपी सुनार विवेक की निहाई (अहरण) और ज्ञान रूपी हथौड़ी से, प्रभु-भय की धौकनी में तप की अग्नि द्वारा तपाकर प्रेम भाव की कुठाली में प्रभु के नाम रूपी अमृत को ढालता है। इस सच्ची टकसाल में ईश्वर नाम का सिक्का बनता है। यह कार्य उन मनुष्यों का है जिनपर प्रभु की कृपा-दृष्टि पड़ती है। वह मनुष्य ईश्वर की कृपा-दृष्टि पाकर कृतार्थ (निहाल) हो जाता है–

जतु पहारा धीरजु सुनिआरु।
अहरणि मति वेदु हथीयार।
भउ खला, अगनि तप ताउ।
भांडा भाउ अमृतु तित ढालि।
घड़ीऐ सबदु सची टकसाल।
जिन कउ नदरि करमु तिन कार।
नानक, नदरी नदरि निहाल।। 38 ।।

जपुजी का अन्त एक सलोक से होता है–

पवणु गुरु पाणी पिता माता धरति महतु।।
दिवसु राति दुई दाई दाइआ खेलै सगल जगतु।।
चंगिआइआ बुरिआइआ वाचै धरमु हदूरि।।
करमी आपों आपणी के नेड़ै के दूरि।।
जिनी नामु धिआइआ गये मसकति घालि।।
नानक ते मुख उजले केती छुटी नालि।।

'प्राण वायु गुरु के समान है, जल पिता के समान है, धरती सभी की माता है, रात्रि और दिवस सभी की सेवा करने वाले दाई और दाया हैं, जिनकी गोद में सम्पूर्ण संसार खेलता है। धर्म सभी लोगों की अच्छाइयों और बुराइयों की परख करता है। अपने कर्मों के अनुसार कुछ लोग उसके निकट स्थान पाते हैं और कुछ दूर रहते हैं। जो लोग प्रभु का नाम-स्मरण करते हैं उनकी साधना सफल होती है। प्रभु के सम्मुख वे उज्ज्वल मुख लेकर जाते हैं। अपने साथ ही ये अन्य अनेक लोगों की मुक्ति का कारण बन जाते हैं।'

सोदर-सो पुरख, दो पद-संचयन हैं। एक में पांच और दूसरे में चार पद हैं। सोदर के पांच पदों में आसा राग में तीन पद गुरु नानक के हैं। चौथा पद गूजरी राग में गुरु रामदास का है और पांचवां पद भी गूजरी राग में गुरु अर्जुन देव का है।

सोपुरख भाग के चारों पद आसा राग में हैं। पहले दो पद गुरु रामदास के, तीसरा पद गुरु नानक का तथा चौथा पद गुरु अर्जुन का है।

इन नौ पदों को 'रहिरास' कहा जाता है और सन्ध्या के समय इनका पाठ किया जाता है।

इस क्रम में तीसरी रचना सोहिला कीर्तन है। इसमें कुल पांच पद हैं। पहले तीन पद गुरु नानक के रचे हैं—पहला गउड़ी दीपकी राग में, दूसरा आसा राग में और तीसरा धनासरी राग में है। चौथा पद गउड़ी पूरबी राग में गुरु रामदास का है और पांचवां पद गउड़ी पूरबी राग में गुरु अर्जुन देव का है।

इस वाणी का रात्रि में शयन से पूर्व पढ़ने की परम्परा है।

ये तीनों रचनाएं आदिग्रन्थ के 14 पृष्ठों में सीमित हैं।

रागबद्ध वाणियां

रागबद्धता कविता को गायन योग्य बना देती है। विशेष रूप से भक्ति काव्य संगीतबद्ध होकर अत्यन्त प्रभावशाली बन जाता है। नाद का प्रभाव तो पशु-पक्षियों पर भी होता है। सन्त नामदेव ने इस महत्त्व को रेखांकित करते हुए कहा था—

नाद भ्रमे जैसे मिरगाए,
प्राण तजे वाको धिआन न जाए

(राग गौंड, आदिग्रन्थ, पृ. 873)

मन की एकाग्रता में संगीत का कितना महत्त्व है इस बात को सभी गुरु भली प्रकार समझते थे। गुरु नानक का जीवन भर का साथी भाई मरदाना एक निपुण संगीतज्ञ था। गुरु नानक की वाणी को संगीत के सुरों से सजाकर अपने रबाब द्वारा वह गायन में ढालता था।

सभी गुरु संगीत विद्या में निष्णात थे इसलिए जबसे वाणी रची जाने लगी तथा अन्य सन्तों की वाणियों का संग्रह किया जाने लगा, उसके राग का निर्धारण उसी समय से प्रारम्भ हो गया। आदिग्रन्थ के विधिवत् सम्पादन के पूर्व की प्राप्त पोथियों में भी गुरुओं-सन्तों की वाणी के प्रत्येक पद में उसके निर्दिष्ट राग का उल्लेख है। आदिग्रन्थ की लगभग सम्पूर्ण संरचना का विभाजन विभिन्न रागों के आधार पर ही किया गया है। गुरु नानक ने स्वयं अपने आपको अनेक स्थानों पर ढाढी (गायक) कहा है। आदिग्रन्थ के सम्पादन में विभाजन का आधार वाणी का रचनाकार नहीं है, वरन वह राग है जिसमें उसने वाणी की रचना की। प्राचीन परम्परा के अनुरूप ही आदिग्रन्थ के अन्त में उपसंहार के रूप में अंकित मुन्दावणी के पश्चात् कुछ पृष्ठों में रागमाला भी दी गयी है।

प्रारम्भिक तीन वाणियों के पश्चात् 31 रागों में गुरुओं, भक्तों, सन्तों, सूफियों की रचनाओं को रखा गया है। आदिग्रन्थ में निम्नलिखित रागों का उपयोग हुआ है—

सिरी (श्री), माझ, गउड़ी, आसा, गूजरी, देवगन्धारी, बिहागड़ा वडहन्स, सोरठ, धनासरी, जैतसरी, टोडी, बैराड़ी, तिलंग, सूही, बिलावल, गौंड, रामकली, नरनाराइण, माली गउड़ी, मारु, तुखारी, केदारा, भैरउ, वसन्त, मलार, कानड़ा, कलिआण, प्रभाती, जैजैवन्ती। इन रागों के साथ ही कुछ रागों के आपसी मेल से 27 और रागों का विधान भी किया गया है।

रागबद्ध वाणियों 14 से 1352 पृष्ठ तक हैं।

रागबद्ध वाणियों के संकलन के पश्चात् 77 पृष्ठों में ये रागमुक्त रचनाएं हैं—

सलोक सहसकिरती (गुरु नानक)	4
सलोक सहसकिरती (गुरु अर्जुन)	67
गाथा (गुरु अर्जुन)	24
फुनहे (गुरु अर्जुन)	23
चउबोले (गुरु अर्जुन)	11
सलोक सन्त कबीर	243
सलोक शेख फरीद	130
सवैये (गुरु अर्जुन)	20
सवैये (भट्टों के)	123
सलोक वारां ते वधीक (गुरु नानक)	33
सलोक वारां ते वधीक (गुरु अमरदास)	67
सलोक वारां ते वधीक (गुरु रामदास)	30
सलोक वारा ते वधीक (गुरु अर्जुन)	22
सलोक (गुरु तेगबहादुर)	57
मुंदावणी (गुरु अर्जुन)	
रागमाला	

प्रत्येक राग में संकलित वाणी का ब्यौरा सामान्यतः इस प्रकार है—

शबद, अष्टपदियां, छन्त, वार और सन्तों के शबद।

ये सभी एक विशेष क्रम में संकलित हैं। पहले गुरु नानक देव, फिर गुरु अमरदास, गुरु रामदास, गुरु अर्जुन देव की रचनाएं। गुरु अंगद देव ने शबद (पद) नहीं लिखे, केवल सलोकों की रचना की जो अनके वारों की पौड़ियों के साथ संकलित हैं। गुरु तेग़बहादुर के जो शबद जिस राग में हैं वे उसी राग के गुरु अर्जुन के शब्दों के साथ संकलित हैं।

शब्दों की समाप्ति के पश्चात् अष्टपदियां संकलित हैं। इसी क्रम में छन्त हैं। आदिग्रन्थ में प्रत्येक पद के साथ कुछ अंक दिये गये हैं। प्रत्येक शबद अष्टपदी, छन्त, बन्दों (टुकड़ों) में विभाजित है। आदिग्रन्थ में इन बन्दों को पद कहा गया है। सामान्यतः प्रत्येक बन्द की दो-दो तुकें (चरण) होती हैं। किन्तु कहीं-कहीं तीन और चार तुकों वाले बन्द भी मिलते हैं।

शबद में पहला अंक बन्द का है, जो प्रत्येक बन्द के बाद आता है। दूसरा अंक घरु (घर) का है। गुरवाणी संगीत में ताल पर विशेष ध्यान दिया गया है। घरु 1 से 17 तक हैं। प्रत्येक शबद के साथ बन्द के बाद घरु का अंक आता है। इसका अर्थ है कि इस शबद के निर्दिष्ट राग के इस घरु में गाया जाए। तीसरा अंक यह दरसाता है कि अमुक शबद अमुक राग मे किस क्रमांक का शबद है। उदाहरण के लिए निम्नलिखित शबद को लिया जा सकता है। शबद का प्रारम्भ इस प्रकार होता है।

आसा महला-5

जा तू साहिब ता भउ केहा, हउ तुधु बिनु किस सालाही
एक तू ता सभु किछु है, मैं तुधु बिनु दूजा नाही।।1।।
बाबा बिखु देखिआ संसारु।।
रखिआ करहु गुसाई मेरे, मैं नामु तेरा आधार।।2।। रहाउ।।
जाणहि बिरथा सभा मन की होर किसु पहि आखि सुणाइऐ।।
विणु नावै सभु जगु बउराइआ, नामु मिले सुखु पाईऐ।।2।।
किआ करीऐ किसु आखि सुणाईऐ करण सु प्रभ जी पासि।।
सभु किछु कीता तेरा बरतै, सदा सदा तेरी आस।।3।।
जे देहि वडिआई ता तेरी वडिआई इतु उतु तुझहि धिआउ।।
नानक के प्रभ सदा सुख दाते, मैं ताणु तेरा इकु नाउ।।4।।7।।46

'रहाउ' का अर्थ टेक है। यह किसी शबद के केन्द्रीय भाव को व्यक्त करता है। 'बाबा बिखु देखिआ संसारु' इस शबद का 'स्थायी' है। रहाउ में भी अंक 1 ही दिया

गया है। आगे फिर दो-दो पंक्तियों के तीन बन्द हैं। इस शबद के अन्त में अंक 4, चार वन्दों का सूचक है। अंक 7 घरु है, अर्थात इस ताल में गाया जाना चाहिए। अंक 46 इस बात का सूचक है कि यहां तक आसा राग में महला 5 (गुरु अर्जुन देव) के शबद आ गये हैं।

आदिग्रन्थ के सम्पादक गुरु अर्जुन देव इस सम्वन्ध में बहुत सतर्क थे कि भविष्य में कोई भी व्यक्ति इस ग्रन्थ में संकलित वाणी मे क्षेपक जोड़कर किसी प्रकार की मिलावट न कर सके। गुरुवाणी की प्रसिद्धि और उसकी मान्यता देखकर उस समय कई व्यक्ति अपनी रचनाओं को 'नानक' नाम देकर प्रचारित कर रहे थे। ऐसी रचनाओं को जानकार व्यक्ति 'कच्ची वाणी' कहते थे। इस 'कच्ची वाणी' की मिलावट से 'सच्ची वाणी' को सुरक्षित रखने के लिए गुरु अर्जुन देव ने अनेक उपाय किये। इस प्रकार क्रमवद्ध अंक देना एक ऐसा ही महत्त्वपूर्ण उपाय था।

आदिग्रन्थ में अनेक काव्य रूपों का विधान है। चौपदा, अष्टपदी, सोहिला, छन्त, सलोक आदि। ये सभी काव्य-रूप उस युग की साहित्यिक परम्परा में उपलब्ध थे, किन्तु 'वार' पंजाबी का बहुप्रचलित लोक छन्द था, जिसमें सामान्यतः युद्ध गीत लिखे जाते थे। 'वार' को इस प्रकार परिभाषित किया जा सकता है—

एक उत्साहवर्द्धक छन्दवद्ध गाथा जिसमें युद्ध चित्रण हो और उसमें युद्ध के नायक की प्रशंसा की गयी हो। इसमें वीररस का प्राधान्य होता है। हिन्दी में वीरगाथा काल में लिखे गये 'रासो ग्रन्थों' से इनकी तुलना की जा सकती है।

पंजावी में आज भी वारें लिखी जाती हैं। इनका गायन करनेवालों को ढाडी कहा जाता है। इसके एक जत्थे में तीन व्यक्ति होते हैं, दो के हाथ में डमरू और एक के हाथ में सरन्दा वाद्य होता है। वार सुनने के लिए हजारों की संख्या में लोग एकत्र होते हैं। सिख गुरुओं ने वार का विषय-विस्तार कर दिया। अब यह केवल लौकिक नायक की विजय-गाथा तक सीमित नहीं रही। उन्होंने इसकी लोकप्रियता का पूरा उपयोग करते हुए आध्यात्मिक क्षेत्र में इस छन्द का प्रयोग किया।

आदिग्रन्थ में कुल 22 वारें संकलित हैं। उसमें एक वार सत्ता-बलवण्ड नाम के भाट युगल कवियों की लिखी है। बाकी 21 वारें गुरुओं द्वारा लिखी गयी हैं—
गुरु नानक देव की तीन, गुरु अमरदास की चार, गुरु रामदास की आठ और अर्जुन देव की छह वारें आदिग्रन्थ में हैं। गुरु अर्जुन देव ने लोक-जीवन में प्रचलित नौ वारों की धुनों में ही इन वारों के भी गायन का निर्देश दिया।

उदाहरण के लिए गुरु नानक देव की माझ राग में रची वार के साथ यह निर्देश भी अंकित है कि इसे लोक-जीवन में प्रचलित वीर गाथा 'मलद मुरीद तथा चन्द्रहाड़ा सोहिया' कर धुन में गाया जाए। इसी प्रकार आसा राग में गुरु नानक की लिखी वार को 'टुण्डे असराजे' की प्रचलित धुन में, गुरु अमरदास की गूजरी राग में रची वार को 'सिकन्दर बिराहिम' की वार की धुन में गाने का निर्देश है। अन्य वारों के सम्बन्ध में भी इसी प्रकार के निर्देश दिये गये हैं।

वैचारिक पृष्ठभूमि

कबीर जी ने अपनी एक साखी में लिखा है कि सन्तों का लक्षण उनका निर्वैर तथा निष्काम होना, प्रभु-प्रेम में मग्न और विषयों से विरक्त होना है—

निरवैरी निहकामता साई सेती नेह।
विषियां सूं न्यारा रहे संतनि को अंग एह।।

चौथे गुरु, गुरु रामदास ने कहा—जिसे श्वास-प्रश्वास में अपने हृदय से हरि का नाम विस्मृत नहीं होता, वह धन्य है, वही पूर्ण सन्त है—

जिना सासि गिरासि न वीसरै हरि नामा मनि मंतु।
धंनु सि सेई नानका पूरनु सोइ संतु।।

(वार गउड़ी)

विषयों से निरपेक्ष रहते हुए केवल सत्कर्म करना, हर समय हरिनाम में लिप्त रहना, किसी के प्रति वैर भाव न रखना तथा प्रत्येक कार्य निःसंग होकर निष्काम भाव से करना ही सन्तों के लक्षण हैं।

सन्त शब्द के सम्बन्ध में विचार करते समय डॉ. पीताम्वर दत्त बड़थ्वाल ने अपनी पुस्तक 'हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय' की प्रस्तावना में लिखा है—'सन्त' शब्द की सम्भवतः दो प्रकार की व्युत्पत्ति हो सकती है। या तो इसे पालि भाषा के उस 'शान्त' शब्द से निकला हुआ मान सकते हैं जिसका अर्थ निवृत्ति-मार्गी का विरागी होता है अथवा यह उस 'सन्त' शब्द का बहुवचन हो सकता है जिसका प्रयोग हिन्दी में एकवचन जैसा होता है और जिसका अभिप्राय एकमात्र सत्य में विश्वास करनेवाला अथवा उसका पूर्णतः अनुभव कर लेने वाला व्यक्ति समझा जाता है।

'नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः'

(भगवद्गीता-16)

इन दोनों के अनुसार इस शब्द का प्रयोग इन सन्तों के लिए उपयुक्त ठहरता है। इस प्रकार सन्त शब्द एक अत्यन्त व्यापक अभिप्राय का सूचक बन गया है और इसे दुर्जन पुरुष के विपरीत एक सत्पुरुष का, सज्जन का समानार्थक भी समझा जाता है (वन्दउ) सन्त असज्जन चरण (तुलसीदास)।

सभी सन्तों ने अपनी प्रेरणा इस देश की दीर्घ सांस्कृतिक और धार्मिक परम्पराओं में से प्राप्त की थी और अपने अनुभव के प्रकाश से अपने सिद्धान्तों की रचना की थी, किन्तु उनके सिद्धान्त किसी शास्त्रीय पद्धति का अनुगमन करते हुए निश्चित नहीं हुए थे। उनका आधार निजी अनुभव था और वे पूर्ण स्वावलम्बी थे अधिसंख्य सन्त यह मानते थे कि किसी बात को केवल इसलिए स्वीकार नहीं कर लेना चाहिए कि वह किसी ग्रन्थ में लिखी हुई है अथवा किसी आचार्य ने कही है, प्रत्युत प्रत्येक बात को अपने अनुभव की कसौटी पर परखना चाहिए। यदि वह उपयोगी लगे तो उसे स्वीकार कर लेना चाहिए। सन्त कबीर ने अपने अनुभव पर आग्रह करते हुए शास्त्रमार्गी पण्डित से कहा था।

तू कहता कागद की लेखी।
मैं कहता आंखिन की देखी।।

गुरु नानक ने कहा था—मैं जो कुछ भी स्वयं अनुभव करता हूं, वही कहता हूं— 'जेहो डिट्ठा तेहो किहा।'

गुरु नानक ने अपने एक पद में आत्मारूपी हिरणाक्षी नारी से कहा था—'हे मुग्धे, हिरन जैसी आंखोंवाली सुन्दर नारी, मैं तुमसे एक गूढ़ बात कहता हूं। जीवन में तुम जिस भी विचार अथवा सिद्धान्त से अपने को जोड़ना चाहती हो, पहले उसकी पूरी पहचान कर लो'—

सुणि मुग्धे हरणाखीए गूढ़ा वैण अपारु।
पहला वसतु सिझाणि कै तां कीचै वापारु।।

(आदिग्रन्थ, पृष्ठ 1410)

आदिग्रन्थ में संगृहीत सन्त विभिन्न प्रदेश, विभिन्न परिवेश, विभिन्न संस्कारों में पले, विभिन्न धार्मिक-सांस्कृतिक प्रभावों से युक्त व्यक्ति थे, फिर भी अनेक बातों में उनमें वैचारिक और मानसिक एकता थी।

कालक्रम की दृष्टि से जयदेव और शेख फरीद बारहवीं शती के सन्त थे। इनमें से एक बंगाल का और दूसरा पंजाब (मुलतान) का निवासी था। एक के संस्कार पूरी तरह

वैष्णव थे और दूसरा सूफी सिद्धान्तों की पृष्ठभूमि में ही जन्मा-पला था।

त्रिलोचन, नामदेव, सधना, वेणी तेरहवीं शती के सन्त थे। इनमें पहले दो सन्तों–त्रिलोचन और नामदेव–का महाराष्ट्र का होना असन्दिग्ध है। पन्द्रहवीं शती के सन्त परमानन्द को भी महाराष्ट्र का माना जाता है। सधना सिन्ध के रहने वाले थे और वेणी भी पश्चिम भारत के किसी प्रदेश के थे।

रामानन्द, रविदास, कबीर, पीपा, सैण, धन्ना, भीखण और सूरदास ये सभी सन्त पन्द्रहवीं शती के हैं। इनमें रामानन्द, कबीर, भीखन, सूरदास आज के उत्तर प्रदेश के, पीपा और धन्ना राजस्थान के, सैण मध्य प्रदेश के रहनेवाले थे।

मुलतान से महाराष्ट्र और सिन्ध से बंगाल तक इन सन्तों की क्रीड़ाभूमि है। इनमें ब्राह्मण भी हैं (जयदेव, रामानन्द, सूरदास, परमानन्द,) क्षत्रिय भी हैं (पीपा), वैश्य भी हैं (त्रिलोचन) और पिछड़ी और अन्त्यज जातियों में जाट (धन्ना), कसाई (सधना), नाई (सैण), जुलाहा (कबीर), छीपा (नामदेव), चमार (रविदास) भी हैं। शेख फरीद, कबीर और भीखन मुसलमान परिवारों से आये सन्त थे।

मध्ययुगीन सन्तों को उनकी विचारधारा के अनुसार 'निर्गुण' और 'सगुण' में बांटने की प्रथा भी उतनी ही प्राचीन दिखती है जितनी इन सन्तों-भक्तों की रचनाएं। सन्त न तो परमात्मा के सोपाधि रूप का पूर्णतः बहिष्कार करते हैं और न उसके निरुपाधि को ही अपना अन्तिम आश्रय मानते हैं। वे इस बात पर आग्रह करते हैं कि उनका ब्रह्म इन दोनों स्थितियों से ऊपर है। वह निर्गुण भी है और सगुण भी। गुरु अर्जुन देव ने अपने एक पद में कहा है–

राज जोबन प्रभु तुं धनी।। तूं निरगुन तूं सरगुनी।।

(आदिग्रन्थ, पृष्ठ 211)

निर्गुण और सगुण की अवधारणा उस समय तक परम्परागत मान्यता प्राप्त कर चुकी थी और कबीर आदि सन्तों ने इसे ग्राह्य समझकर स्वीकार भी कर लिया था–

'संतन जात न पूछो निर्गुनिया।।'

अधिसंख्य सन्तों का आग्रह परमात्मा के निर्गुण स्वरूप की ओर था। वे अवतारवाद के विरोधी थे, मूर्तिपूजा का खण्डन करते थे। वर्ण-व्यवस्था, जात-पात, में उनका विश्वास नहीं था। सगुणवादी धारा परम्परागत वैष्णवधारा से जुड़ी हुई थी। उसके प्रस्तोता अधिकतर सनातनी ब्राह्मण थे। निर्गुण सन्तों में अब्राह्मणों का बाहुल्य था। उनमें अन्त्यज जातियों के ऐसे भक्त भी थे जिन्हें ब्राह्मणवादी व्यवस्था समान पूजन का अधिकार नहीं देती थी। अवतारों की मूर्तियों से सज्जित मन्दिरों में उनका प्रवेश निषिद्ध था। मन्दिर से बाहर खड़े रहकर उसके कलश मात्र के दर्शन से ही सन्तुष्ट हो जाना ही उनकी सीमा थी।

परमेश्वर की निर्गुण-निराकार अवधारणा उन्हें वर्ण और ऊंच-नीच की सीमाओं से मुक्त कर देती थी। सर्वव्यापी, घट-घट वासी ब्रह्म की प्राप्ति के लिए उन्हें किसी मन्दिर, किसी पुरोहित, किसी कर्मकाण्ड, किसी शास्त्र की आवश्यकता नहीं थी। इसलिए जिन सन्तों ने मूर्ति, मन्दिर और अवतार से अपनी भक्ति प्रारम्भ की थी वे भी आगे चलकर उसी प्रकार की आस्था और शब्दावली का प्रयोग करने लगे जो कबीर आदि सन्त करते थे। कबीर ने इस विभेद को अनेक स्थलों पर रेखांकित भी किया है–

जानसि कथ कथसि अयाना
हम निगुर्ण तुम सरगुण जाना

निर्गुण मत सोइ वेद को अंता।
ब्रह्म सरूप अध्यातम संता।।

इनके द्वारा व्यक्त किया गया धार्मिक भाव सीधा-सादा आडम्बरहीन एवं व्यापक है। परम्परागत धर्म की रूढ़िग्रस्त बातों की उपेक्षा करते हुए इन्होंने वास्तविक की व्याख्या करते हुए कहा है–परमात्मा के प्रति सच्चे रहो, दूसरों का ख्याल करो, फिर चाहे लम्बे केश रखो अथवा पूरी तरह मुण्डन करवा लो–

साई सेती पांच चलि, औरा सू सुध माइ।
भावैं लांबे केस करु भावै घुरड़ि मुडाइ।।

भारत में भक्ति-आन्दोलन का उदय

भक्ति काल का एक बहुचर्चित कथन है कि भक्ति का जन्म द्रविड़ प्रदेश में हुआ, जिसे स्वामी रामानन्द उत्तर में लाये और कबीर ने उसे सात द्वीप और नौ खण्डों में प्रचारित किया—

भगती द्राविड़ ऊपजी लाये रामानंद।
परगट किया कबीर ने सप्त दीप नव खंड।।

इस उक्ति से इस बात की पुष्टि होती है कि भक्ति का जन्म दक्षिण के द्रविड़ प्रदेश में हुआ था। तमिल प्रदेश के 'आडवार' अथवा 'आलवार' सन्तों द्वारा जिस ईश्वर-भक्ति की परम्परा वहां विकसित हुई, उसी से दक्षिण प्रदेश में आचार्यों का आविर्भाव हुआ और वही परम्परा महाराष्ट्र, गुजरात होती हुई उत्तर भारत में आ गयी। आलवार भक्तों की संख्या 12 मानी जाती है। ये समकालीन नहीं थे। उनके आविर्भाव का काल लगभग छः सौ वर्षों (ईसा की सातवीं शताब्दी से लेकर बारहवीं) तक व्याप्त रहा। इन आलवारों में दो-एक को छोड़कर, प्रायः सभी निम्न समझी जानेवाली जातियों में उत्पन्न हुए थे। इनका कोई साम्प्रदायिक क्रम नहीं था, किन्तु इनकी आध्यात्मिक मनोवृत्ति प्रायः एक-सी थी। इन भक्तों के पदों का संग्रह 12 वीं शती के वैष्णव सम्प्रदाय के आचार्यों द्वारा हुआ जिसे 'प्रबन्धम' कहा गया। इस ग्रन्थ को तमिल वेद भी कहा जाता है।

आलवारों के पश्चात् दक्षिण भारत में वैष्णव धर्म का प्रचार करने वाले भक्त 'आचार्य' के नाम से प्रसिद्ध हुए। रघुनाथाचार्य (दसवीं शती), यामुनाचार्य (ग्यारहवीं शती), रामानुजाचार्य (बारहवीं शती), निम्बार्काचार्य (बारहवीं-तेरहवीं शती), मध्वाचार्य (तेरहवीं-चौदहवीं शती) तथा बल्लभाचार्य (सोलहवीं शती) में उभरे इन आचार्यों के

कारण शंकराचार्य के अद्वैत सिद्धान्त की विविध व्याख्याएं हुईं और सन्त-भक्त कवियों पर उनका गहरा प्रभाव पड़ा।

तमिल प्रदेश में ही शिव-भक्ति को प्रचारित करने का कार्य अडियार भक्तों ने किया। उनकी रचनाओं को नम्बिआर नम्बी ने ग्यारहवीं शती के प्रारम्भ में ग्यारह भागों में विभाजित किया जिसे 'तिरु मुराइ' कहा जाता है।

भागवत पुराण में भक्ति के मुख से अपने विकास क्रम की चर्चा हुई है—'मैं द्रविड़ प्रदेश में पैदा हुई, कर्नाटक में बढ़ी, महाराष्ट्र में सम्मानित हुई, परन्तु गुजरात में मुझे बुढ़ापे ने आ घेरा। वहां घोर कलियुग के प्रभाव के कारण पाखण्डियों ने मेरे अंग तोड़ दिये। पर्याप्त समय तक इस अवस्था में रहने के कारण मैं अपने पुत्रों (ज्ञान और वैराग्य) सहित दुर्बल और तेजहीन हो गयी। अब जबसे मैं वृन्दावन आयी हूं, तब से फिर परम सुन्दरी और रूपवती युवती हो गयी हूं, किन्तु मेरे सामने पड़े हुए मेरे दोनों पुत्र बहुत थके हुए और दुःखी हैं। अब मैं इस स्थान को छोड़कर कहीं और जाना चाहती हूं।'

उत्तर भारत में भक्ति का उन्मेष जार्ज ग्रियर्सन के शब्दों में बिजली की चमक के समान हुआ था। यह कैसे हुआ, इस पर विद्वानों ने विभिन्न प्रकार के मत प्रकट किये हैं। ग्रियर्सन तथा कुछ अन्य पाश्चात्य विद्वानों ने यह मत व्यक्त किया था कि यह आन्दोलन परोक्ष रूप से ईसाई प्रभाव का परिणाम है। डॉ. ताराचन्द ने यह मत व्यक्त किया कि भक्ति-आन्दोलन इस्लाम के प्रारम्भिक काल में ही पश्चिमी समुद्र-तट पर आ बसे अरबों की देन है।

इन मतों को कभी व्यापक स्वीकृति नहीं मिली, किन्तु इतना निश्चित है कि मुसलमान आक्रमणकारियों के निरन्तर आगमन और उनके सतत विजय अभियान ने इस देश की हिन्दू जनता में व्यापक अवसाद भर दिया था। पहले ऐसे आक्रान्ता आते थे और लूटपाट कर वापस चले जाते थे, किन्तु शहाबुद्दीन गोरी के आक्रमण और पृथ्वीराज चौहान के पराभव के पश्चात् उन्होंने यहां रहकर शासन करना प्रारम्भ कर दिया। गान्धार जैसे प्रदेश तो ग्यारहवीं शताब्दी के प्रारम्भिक वर्षों में ही ग़ज़नी की पठान सत्ता के भाग बन गये थे, धीरे-धीरे पंजाब का मैदानी क्षेत्र भी उस अधिकार में चला गया। बख़्यार खिलजी जैसे अफगान आक्रमणकारी बहुत थोड़ी सेना लेकर काबुल की ओर से आये और बिना किसी विशेष प्रतिरोध के बंगाल तक पहुंच गये। हिन्दू राजा निरन्तर पराजित होते रहे। या तो उनके राज्य समाप्त होते चले गये अथवा उन्होंने मुसलमान शासकों की अधीनता स्वीकार कर ली। राजस्थान के स्वाभिमानी राजपूत नरेश भी धीरे-धीरे इस अधीनता के घेरे में आते गये। उन स्थितियों में बल्लभाचार्य ने अपने 'कृष्णाश्रय' में कहा था—'देश म्लेच्छाक्रान्त है, गंगादि तीर्थ दुष्टों द्वारा भ्रष्ट हो रहे हैं, अशिक्षा और अज्ञान के कारण वैदिक धर्म नष्ट हो रहा है, सत्पुरुष पीड़ित तथा ज्ञान विस्मृत हो रहा है, ऐसी स्थिति में एकमात्र कृष्णाश्रय में ही जीवन का कल्याण है।'

इसलिए इस तर्क में बहुत बल है कि भक्ति के इतने व्यापक प्रसार की पृष्ठभूमि में तत्कालीन राजनीतिक स्थितियों की बहुत बड़ी भूमिका थी। एक पराजित और पग-पग पर अपमानित जाति का अन्तर्मुखी होकर प्रभु की शरण में जाने और उसकी भक्ति में जीवन की सार्थकता की खोज करना बहुत सन्तोषकारी विकल्प था।

डॉ. रामकुमार वर्मा ने हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास (पृष्ठ 189) में लिखा है–'उन्होंने (हिन्दुओं ने) तलवार के बदले माला का आश्रय लिया और वे अपने लौकिक जीवन में आध्यात्मिक तत्त्व खोजने लगे। अब वे सांसारिक कष्टों से मुक्ति पाने के लिए ईश्वर की शरण में जाने लगे और दुष्टों को दण्ड देने के लिए अपनी शक्ति पर अवलम्बित रहने की अपेक्षा ईश्वरीय शक्ति पर निर्भर रहने की भावना करने लगे। इस प्रकार ओज और गौरव के तत्त्वों से निर्मित वीर रस, करुण और दयनीय भावों से ओत-प्रोत हांकर शान्त और शृंगार रस में परिणत होने लगा।'

यह सम्भव है कि यदि मुस्लिम आक्रमणकारी न भी आते तो भी भक्ति का उन्मेष होता। दक्षिण के अलवार सन्तों और वैष्णव आचार्यों के प्रादुर्भाव ने भक्ति को जिस प्रकार रूपमान किया था, उसका प्रभाव सम्पूर्ण देश में दृष्टिगत होना स्वाभाविक था, किन्तु भक्ति को एक आन्दोलन के रूप में जो सर्वदेशीय व्यापकता प्राप्त हुई उसमें देश की तत्कालीन राजनीतिक स्थितियों का बहुत बड़ा योगदान था, इसमें कोई सन्देह नहीं।

पंजाब की स्थितियाँ देश के अन्य भागों से कुछ पृथक् थीं। ग्यारहवीं सदी के प्रारम्भिक वर्षों में महमूद गज़नवी के आक्रमणों, पंजाब और उत्तर-पश्चिम के अन्तिम हिन्दू नरेश जयपाल एवं आनन्दपाल के पतन से लेकर गुरु नानक के जन्म (सन् 1469) और बाबर के अनेक आक्रमणों (सन् 1518 और सन् 1526) के मध्य तक लगभग 500 वर्ष के इस प्रदेश के इतिहास को अराजकता का अन्धकाल कहा जा सकता है। ये पांच सदियां मंगोलों, तुर्कों, अफगानों और मुग़लों के निरन्तर आक्रमणों, व्यापक नरसंहारों, बलात् धर्म-परिवर्तन और राजनीतिक अराजकता की सदियां हैं। इन सदियों में इस प्रदेश के सभी छोटे-बड़े हिन्दू राज्य नष्ट को चुके थे। पहाड़ी प्रदेशों में बच रहे छोटे-छोटे राजपूत राजाओं ने इन आक्रमणकारियों के सम्मुख पूरी तरह घुटने के टेक दिये थे। इनकी प्रतिरोधक शक्ति पूरी तरह नष्ट हो गयी थीं। जनता का मनोबल पूरी तरह टूट चुका था। उनका जबरन धर्म परिवर्तन हो रहा था और प्रत्येक बाहरी आक्रमण के समय उनका व्यापक नर-संहार होता था। केवल तैमूर के आक्रमण (सन् 1398) के समय पंजाब में एक लाख से अधिक हिन्दुओं का संहार कुछ दिनों के अन्दर ही हुआ था।

दक्षिण भारत से होती हुई भक्ति की जो लहर उत्तर भारत में आयी थी, उसमें कुछ सन्तों-भक्तों की व्यथा व्यक्त हुई थी, किन्तु इस व्यथा में आक्रोश कम, दीनता और हताशा ही अधिक व्यक्त होती थी। बल्लभाचार्य का उदाहरण पहले दिया जा चुका है।

सन्त नामदेव के एक पद में बादशाह मुहम्मद बिन तुग़लक (1325 से 1351) से संवाद का उल्लेख है। नामदेव ने लिखा है कि उन्हें बादशाह ने बन्दी बना लिया और कहा, ''मैं तुम्हारे राम का काम देखना चाहता हूं। मैं तेरा हरि...तेरा बीठल देखना चाहता हूं तुम मेरी मरी हुई गाय को जीवित कर दो, नहीं तो तुम्हें प्राण दण्ड दिया जाएगा।'' नामदेव ने उत्तर दिया, ''यह कैसे हो सकता है! संसार में सब कुछ परमात्मा की इच्छा से होता है।'' बादशाह ने क्रोध में आकर एक हाथी उनकी ओर छोड़ दिया। नामदेव की मां भयभीत होकर कहने लगी, ''बेटा, तुम राम-राम न कहकर खुदा-खुदा कहना शुरू कर दो।'' नामदेव के पैरों में बेड़ियां पड़ी थीं, किन्तु हरि नाम के जाप से वह विरत नहीं हुए। अन्त में भगवान ने उनकी रक्षा की।

इसी प्रकार सन्त कबीर को भी तत्कालीन लोदी शासक सिकन्दर लोदी का कोपभाजन होना पड़ा था।

देश के किसी भी भाग की राजनीतिक स्थिति इतने लम्बे समय तक आक्रमणों, संघर्षों और अत्याचारों से पीड़ित नहीं रही जितनी पंजाब तथा उसके निकट के प्रदेशों की। पांच शताब्दियों के घोर अन्धकार के पश्चात् पहली आवाज गुरु नानक की सुनाई दी।

दक्षिण भारत से भक्ति की जो धारा महाराष्ट्र, गुजरात, राजस्थान और बंगाल-असम तक प्रवहमान हुई वह ब्रज और अवध प्रदेश में केन्द्रित हो गयी। इसका विशेष प्रवाह पंजाब की ओर नहीं पहुंचा। पंजाब में न स्वामी रामानन्द की परम्परा विकसित हुई, न स्वामी बल्लभाचार्य की। सन्तों-भक्तों की भ्रमणशीलता भी विशेष रूप से राम और कृष्ण की क्रीड़ाभूमि तक सीमित रही। सन्त नामदेव सम्भवतः एक अपवाद थे जो उस युग में पंजाब गये थे और जिन्होंने वहीं कुछ वर्ष व्यतीत किये थे।

आदिग्रन्थ में जिन सन्तों की वाणियां संगृहीत हुई हैं वे गुरु नानक के पूर्ववर्ती अथवा समकालीन थे। पांच शताब्दियों के लम्बे अन्तराल के पश्चात् गुरु नानक पहले ऐसे सन्त थे। जिनकी वाणी में भारतीय जीवन और आकांक्षाओं का स्वर सुनाई दिया था।

देश के अनेक भागों में भक्ति की जो धारा प्रवाहित हो रही थी, गुरु नानक ने उसका परिचय प्राप्त किया और सभी प्रमुख सन्तों-भक्तों, उनकी परम्परा, उनकी गद्दियों, रचनाओं तथा विभिन्न मतों के धर्माचार्यों से सम्बन्ध स्थापित किया।

गुरु नानक ने अनेक बार सम्पूर्ण देश का भ्रमण किया। इस भ्रमण में वे अनेक तीर्थ-स्थानों में गये। अपने समय के सन्तों, भक्तों, पण्डितों, सूफियों आदि से उनका संवाद होता रहा। जयदेव, रामानन्द, नामदेव, त्रिलोचन, परमानन्द, कबीर, रविदास, सैण, पीपा, धन्ना आदि अनेक [illegible], जिन्हें बाद में पांचवें गुरु, गुरु अर्जुन [illegible]

इन यात्राओं के कारण उनकी दृष्टि बहुत व्यापक हुई। देश की धार्मिक, सामाजिक और राजनीतिक स्थितियों का उन्हें प्रत्यक्ष अनुभव हुआ। यही कारण है कि भक्ति की अनन्यता के साथ ही उनमें सांसारिक स्थितियों के प्रति जो जागरूकता है, जो उनकी वाणी के माध्यम से व्यक्त होती है, वह अन्य सन्तों-भक्तों में अधिक नहीं दिखाई देती।

ईश्वर भक्ति के माध्यम से गुरु नानक ने उस समाज में सांस्कृतिक चेतना के पुनर्जागरण का कार्य किया जो अपने मूल्यों को विस्मृत करता जा रहा था। अपने सजातीय खत्रियों पर व्यंग्य करते हुए उन्होंने कहा—'रे खत्री, तूने अपना धर्म छोड़कर म्लेच्छों की भाषा ग्रहण कर ली है'—

खत्रीआ तू धरमु छोडिया मलेछ भाखिआ गही।।

(राग धनासरी)

तुर्कों-पठानों में नीले वस्त्र पहनने का चलन था। उनकी देखा-देखी अथवा उन्हें प्रसन्न करने के लिए आम लोग भी वैसे ही वस्त्र पहनने लगे थे। ऐसे लोगों को देखकर गुरु नानक ने कहा था—'अपने आपको भूलकर ये लोग नीले वस्त्र पहनने लग गये हैं। इन्होंने अपना सारा कार्य-व्यवहार तुर्कों-पठानों जैसा कर लिया हैं—

नील वस्त्र ले कपड़े पहिरे तुरक पठाणी अमलु भइआ।।

(वार आसा)

पाखण्डों और विसंगतियों के भरे हुए एक हिन्दू कर्मचारी को फटकारते हुए उन्होंने कहा था—'तुम गऊ और ब्राह्मण पर कर लगाते हो और समझते हो कि गोबर का सहारा लेकर तुम्हारा कल्याण हो जाएगा। ऊपर से तुम धोती, तिलक और जयमाला धारण करते हो, किन्तु धान म्लेच्छों का दिया हुआ खाते हो। घर के अन्दर पूजा करते हो किन्तु तुर्कों को पसन्द करने के लिए उनके सामने कुरान पढ़ते हो। तुम यह पाखण्ड छोड़कर सच्चे हृदय से भगवान का नाम क्यों नहीं लेते, जिससे तुम्हारा उद्धार हो सकता हैं—

गऊ बिराहमण कउ करु लावहु गोबरि तरणु न आई।
धोती टिका ते जपमाली धानु मलेछा खाई।।
अन्तरि पूजा पड़हि कतेबा संजमु तुकरा भाई।।
छोडीले पाखंडा।।
नाम लइऐ जाहि तरंदा।।

(वार आसा)

सम्पूर्ण देश में भक्ति का जो विकास हो रहा था, वह अध्यात्म और परलोक-मुखी अधिक था। उसमें इहलोक के सरोकार और उसकी चिन्ताएं कहीं-कहीं झलकती हैं, किन्तु गुरु नानक के माध्यम से जो भक्ति-मार्ग प्रचारित हुआ उसका लौकिक सरोकार और उसके प्रति आत्माभिव्यक्ति बहुत मुखर होकर उभरी। यह भक्ति जाति-प्रथा का पूरी तरह खण्डन करती है, वर्ण-व्यवस्था को अपनी सहमति नहीं देती, समाज में से असमानता की भावना को पूरी तरह दूर करना चाहती है, मानव-मात्र की समता में अपनी आस्था व्यक्त करती है, छूत-छात का पूरी तरह निषेध करती है और नीच समझे जानेवाले लोगों के साथ अपनी प्रतिबद्धता व्यक्त करती है। गुरु नानक ने स्पष्ट शब्दों में कहा कि समाज में जो नीच समझे जाते हैं, उनमें भी जो नीचे हैं, उनमें भी जो अतिनीच हैं, मैं उनके संग-साथ हूं। मेरा उन लोगों से कोई वास्ता नहीं है जो अपने बड़प्पन के अभिमान में डूबे रहते हैं। मेरा विश्वास है कि ईश्वर की कृपा दृष्टि भी वहीं पड़ती है जहां नीचों को संभाला जाता है–

नीचां अन्दरि नीच जाति नीची हुँ अति नीच।
नानक तिनके संग साथ वडियां सूं किआ रीस।।
जित्थे नीच संभालियन तिथै नदरि तेरी बख़्सीस।।

यह नानकमार्गी भक्ति का सामाजिक पक्ष था। उसका सांस्कृतिक, धार्मिक और राजनीतिक पक्ष भी था। इसके पूर्व इस बात की चर्चा की जा चुकी है कि अपनी भाषा छोड़कर दूसरों की भाषा ग्रहण करने वालों को गुरु नानक ने किस प्रकार की ताड़ना दी थी। विदेशियों-विधर्मियों की नकल करके उनकी कृपा पाने के लिए उनके जैसे वस्त्र पहननेवालों की भी उन्होंने आलोचना की थी।

धार्मिक पाखण्ड पर जितने कड़े प्रहार सन्त कबीर ने किये थे उतने सम्भवतः अन्य किसी ने नहीं किये। जिन परिस्थितियों और जिस परिवेश में कबीर का जन्म हुआ था, उसमें यह स्वाभाविक भी था। मुसलमान माता-पिता, जुलाहा जैसी छोटी जाति, काशी जैसा रूढ़िग्रस्त और धार्मिक पाखण्डों से भरा हुआ नगर, सिकन्दर लोदी जैसे कट्टर शासक का राज्य, इस्लामी पुरोहितवाद का पग-पग पर विरोध–ऐसा लगता है जब सन्त कबीर अपनी बात को पूरी दृढ़ता के साथ कह रहे होंगे, सारा काशी और काशी का कट्टर हिन्दू और मुसलमान पुरोहितवाद उनके विरुद्ध एकजुट होकर खड़ा हो गया होगा। उस समय कबीर ने पण्डितों को भी खूब खरी-खोटी सुनायी और मुल्ला-मौलवियों को भी। पण्डितों के पाखण्ड को उघाड़ते हुए उन्होंने कहा–

पंडित होय के आसन मारै लंबी माला जपता है।
अंतर तेरे कपट कतरनी, सो भी साहब लखता है।।

लम्बी अजान देने वाले मुल्ला से उन्होंने कहा–

कंकड़ पत्थर जोड़कर मस्जिद लई बनाए।
ता ऊपर मुल्ला बांग दे क्या बहरा भया खुदाए।।

गुरु नानक की आलोचना शैली भिन्न थी। उन्होंने समय के तीन धार्मिक पुरुषों– काजी, ब्राह्मण और योगी–की जीवन पद्धति की आलोचना करते हुए कहा–काजी झूठ बोलकर मल भक्षण करता है। ब्राह्मण पहले जीवों की हत्या करता है, फिर स्नान करने जाता है। योगी अन्धा है इसलिए युक्ति को जानता नहीं है। ये तीनों धार्मिक अगुआ उजाड़ के साथी हैं–

काजी कूड़ बोलि मल खाइ।
ब्राह्मण नावै जीआ घाइ।।
जोगी जुगत न जाणे अंधु।
तीनों ओजाड़े के बंधु।।

(राग धनासरी)

इस आलोचना के साथ गुरु नानक ने उनके लिए सही दिशा की ओर भी संकेत किया–योगी वह है जो युक्ति की सही पहचान करता है और अपने गुरु की कृपा से सभी को एक समान समझता है। काजी वह है जो प्रचलित नीतियों से अलग चलकर जीवन-मुक्त हो जाता है। ब्राह्मण वह है जो ब्रह्म का चिंतन करता है। अपने सत् कर्मों से वह अपना उद्धार तो करता ही है, अपने सम्पूर्ण कुल का उद्धार कर देता है–

सो जोगी जो जुगति पछाणै।
गुर परसादी एको जाणै।
काजी सो जो उल्टी करै।।
गुरु परसादी जीवतु मरै।।
सो ब्राह्मण जो ब्रह्म बीचारै।।
आपि तरै सगले कुल तारै।।

(राग धनासरी)

अपने समय की राजनीतिक स्थितियों पर गुरु नानक ने बड़ी कठोर टिप्पणियां की थीं। वे अपनी यात्राओं में सुमेर पर्वत पर भी गये थे। वहां उन्हें बहुत से सिद्ध मिले जो तप-साधना में लीन थे। वहां गुरु नानक और उनके साथी भाई मरदाना को देखकर उन्हें आश्चर्य हुआ। वहां सिद्धों से उनका जो संवाद हुआ, उसका वर्णन उन्होंने अपनी एक रचना 'सिथ गोसटि' (सिद्ध गोष्ठी) में किया है। सिद्धों ने उनसे पूछा, इस समय संसार की क्या स्थिति है? गुरु नानक ने उत्तर दिया, इस कलियुग में राजे कसाई हो गये

हैं, धर्म पंख लगाकर उड़ गया है। झूठ की अमावस छायी हुई है। इसमें सत्य का चन्द्रमा कहीं दिखाई नहीं देता। मेरी आत्मा तो सच की खोज करती हुई व्याकुल हो गयी है। चारों ओर फैले हुए इस अंधेरे में कोई मार्ग दिखाई नहीं देता–

कलि काती राजे कासाई।
धरमु पंख करि उडरिआ।
कूड़ अमावस सचु चन्द्रमा।
दीसै नाही कह चड़िया।।
हउ भाल विकुन्नी होई।।
आधेरे राहु न कोई।।

अपने समय के शासकों और उनके कारिन्दों के कारनामों पर अपनी तीखी टिप्पणी करते हुए उन्होंने कहा था–'आज के राजा व्याघ्र के समान हिसंक हैं, उनके कारिन्दे कुत्तों के समान लालची हैं। वे शान्त जनता को बिना किसी कारण पीड़ित करते रहते हैं। उनके नौकर अपने पैरों के नाखूनों से निरीह लोगों को जख्मी करते रहते हैं और उनका लहू कुत्तों की तरह चाट जाते हैं। जहां इनके कर्मों की परख की जाएगी, वहां इनकी नाक काट ली जाएगीं–

राजे सींह मुकदम कुत्ते। जाइ जगाइन बैठे सुत्ते।
चाकर नहंदा पाइन्हि घाउ। रतु पितु कुतिहो चटि जाउ।।
जिथै जीआ होसी सार। नकी वड्डी लाइतबार।।

(राग मलार)

देश पर बाबर का आक्रमण हुआ तो चारों ओर त्राहि-त्राहि मच गयी। गुरु नानक ने इस आक्रमण से हुई भयावह स्थिति का हृदयग्राही वर्णन अपने कुछ पदों में किया है–जिन स्त्रियों के सिर में सुन्दर पट्टियां शोभित होती थीं, जिनकी मांग में सिन्दूर भरा होता था, अत्याचारियों ने उनके केश काट डाले और उनको धूल में इस तरह घसीटा कि उनके गले तक धूल भर गयी। जो महलों में निवास करती थीं अब उन्हें कहीं बैठने का स्थान भी नहीं मिलता। विवाहित स्त्रियां, जो पालकियों में बैठकर आयी थीं, लोग उनपर जल न्यौछावर करते थे, जड़ाऊ पंखे जिनके ऊपर झूलते थे, जिन पर लाखों रुपयों की वर्षा होती थी, जो मेवे खाती थीं, सेजों पर रमण करती थीं, अब उनके गले में पड़ी हुई मोतियों की मालाएं टूट गयी हैं। अत्याचारियों ने उनके गलों में रस्सियां डाल दी हैं। जिस धन और यौवन ने उन्हें रंग रखा था आज वही उनके वैरी हो गये हैं–

जिनि सिरि सोहनि पटीआं मांगी पाइ सन्धूर।।

से सिर काती मुनीअन्हि गल विचि आवै धूड़ि।।
महलां अन्दरि होंदीआं हुणि बहणि न मिलन्ह हदूरि।।
जदहु सीआं वीआहीयां लाड़े सोहनि पासि।।
हीडोली चढ़ि आइयां दन्द खण्ड कीतै रासि।।
उपरहु पाणी वारीऐ झले झमकनि पासि।।2 ।।
इकु लखु लहन्हि बहिठीआ लखु लहन्हि खड़ीआं।।
गरी छुआरे खन्दीआ माणन्हि सेजड़ीआ।।
धनु जोबनु दुइ बैरी होए जिन्ही रखे रंग लाइ।।
दूता नो फुरमाइआ लै चलै पति गवाइ।।5 ।।

(राग आसा)

जब चारों ओर ऐसी करुणाजनक स्थिति उत्पन्न हो गयी तब गुरु नानक ने ईश्वर को ही सम्बोधित करते हुए कहा, हे प्रभु, बाबर ने खुरासान पर आक्रमण किया तो तुमने उसकी रक्षा की और हिन्दुस्तान को उसके आक्रमण से आतंकित कर दिया। तुम स्वयं इस स्थिति को उत्पन्न करते हो, परन्तु अपने को दोष न देने के लिए तुमने मुग़लों को यमदूत बनाकर इस देश पर आक्रमण करा दिया। चारों ओर इतनी मार-काट हुई कि लोग त्राहि-त्राहि कर रहे हैं। इन्हें देखकर तुम्हारे मन में इनके प्रति जरा भी दर्द उत्पन्न नहीं हो रहा है। हे कर्ता, तुम तो सभी प्राणियों के समान रूप से रक्षक होने का दावा करते हो। एक शक्तिशाली व्यक्ति दूसरे शक्तिशाली को मारे तो मन में रोष उत्पन्न नहीं होता, परन्तु यदि शक्तिशली सिंह कमजोर पशु पर आक्रमण कर दे तो उसके स्वामी को कुछ तो पुरुषार्थ दिखाना ही चाहिए–

खुरासान खसमाना कीआ हिन्दुस्तान डराइआ।।
आपै दोसु न देई करता जमु करि मुग़ल चढ़ाइया।।
एती मार पई करलाणै तै की दरदु न आइआ।।
तू करता सभणा का सोई।।
जे सकता सकते कउ मारे ता मनि रोस न होई।।
सकता सीहु मारै पै वगै खसमैं सा पुरसाई।।

(राग आसा)

विदेशियों के द्वारा किये गये अत्याचारों से विक्षुब्ध होकर ईश्वर के प्रति ऐसी ताड़ना भरी शिकायत सारे भक्ति साहित्य में दुर्लभ है। गुरु नानक उन लोगों को भी क्षमा नहीं करते, जिनकी चरित्रहीनता, अकर्मण्यता और ऐशपरस्ती के कारण इस देश की ऐसी दुर्दशा हुई–

रतन विगाड़ि विगोए कुत्ती मोया सार न कोई।।

(इन कुत्तों ने रत्न के समान इस सुन्दर देश को बिगाड़कर नष्ट-भ्रष्ट कर दिया है। मरने के बाद इनकी कोई खोज-खबर नहीं लेगा)

सूफी परम्परा

पंजाब मे उभरी सूफी साधना में शेख फरीद का स्थान अन्यतम है। इनके पूर्वज काबुल से निकलकर पंजाब में आ बसे थे। इनके पिता शेख जमालुद्दीन सुलेमान कसूर के पास एक गांव खोतवाल के काज़ी थे। इनके तीन पुत्र थे, जिनमें शेख फरीद मंझले थे। इनकी बोलचाल की मिठास के कारण इन्हें शेख फरीद शकरगंज भी कहा जाता है। अठारह वर्ष की आयु में वे शेख कुतुबुद्दीन बख़्तियार काकी के मुरीद (शिष्य) बने और दिल्ली आ गये। यहीं उन्हें ख्वाजा मुउद्दीन चिश्ती (अजमेर वाले) के दर्शन हुए। दिल्ली से चलकर वे हांसी आ गये। इस स्थान पर 18 वर्ष रहकर साधना की। अन्त में पाकपटन के पास आयोधन को अपना स्थायी निवास बना लिया।

देश के अन्य भागों में सूफी दरवेशों के प्रभाव में हिन्दू भी बड़ी गिनती में आये, किन्तु उनकी विशेष मान्यता मुस्लिम समाज में ही रही। हिन्दी प्रदेशों में सूफी कवियों द्वारा अवधी भाषा में लिखी प्रेम-कथाएं साहित्यिक क्षेत्रों में स्वीकार की गयीं और पाठ्यक्रमों का भाग भी बनीं, किन्तु जन-मानस में उन्हें वैसी लोकप्रियता नहीं प्राप्त हुई जैसी राम-काव्य को और कृष्ण-काव्य को।

पंजाब में स्थिति कुछ भिन्न थी। गुरु अर्जुन देव द्वारा आदिग्रन्थ में शेख फरीद के 4 पद और 112 सलोक सम्मिलित किये गये। इसका परिणाम यह हुआ कि शेख फरीद का नाम और उनकी प्रतिष्ठा गैर-मुसलमानों में भी बहुत लोकप्रिय हो गयी। मुस्लिम समुदाय में शेख फरीद की प्रतिष्ठा चिश्ती सिलसिले के बहुत ऊंचे फकीर के रूप में है। वे अरबी-फारसी के साथ ही पंजाबी भाषा के भी विद्वान थे। सूफी परिवेश में उनकी पंजाबी रचनाओं की आज भी अधिक चर्चा नहीं है, किन्तु सिख परिवेश में अपनी रचनाओं की गहरी संवेदनात्मक दृष्टि के कारण शेख फरीद को वही मान्यता और आदर-सत्कार प्राप्त है जो गुरु नानक, अन्य गुरुओं तथा कबीर और नामदेव तथा रविदास जैसे सन्तों को प्राप्त है।

शेख फरीद की रचनाओं में सूफी परम्परा के इस्लामी साधनापरक नामों की प्रधानता होना बहुत स्वाभाविक है, किन्तु उनकी रचनाओं में 'नाम', 'गुरु' आदि भारतीय परम्परा के नाम भी प्रयुक्त हुए हैं–

1. फरीदा तिना मुख डरावणे जिना विसारिउन गुरु।
2. विसरिआ जिन नामु ते मुझ भारु धीए।

3. जे गुरु वार मुरीदा जोलिए।

इसी प्रकार प्रभु, भक्त और धर्म जैसे शब्द भी शेख फरीद की रचनाओं में प्रयुक्त हुए हैं–

1. बोलिए सचु धरमु झूठ न बोलीए।
2. अणहोन्दे आपु वण्डाए। कोई ऐसा भगतु सदाऐ।।
3. पिरहि विहून कतहि सुखु पाए।
4. जा होइ कृपालु ता प्रभू मिलाए।।

गुरु नानक ने जिस निर्गुणवादी भक्ति को जनसाधारण में प्रचलित किया था। उसे 'गुरुमत' (गुरुमति) शब्द प्राप्त हो गया है। वैष्णव, सूफी और गुरुमत का अद्भुत समन्वय आदि ग्रन्थ में है। सम्भवतः यही बात इस ग्रन्थ को मध्यकालीन भारत में अनन्य स्थान का अधिकारी बना देता है।

गुरु नानक देव ने अपने जीवन काल में लगभग 22 वर्ष देश तथा विदेश की यात्राएं करते हुए व्यतीत किये। उनकी चार प्रमुख यात्राएं मानी जाती हैं जिन्हें उनकी 'उदासियां' कहा जाता है। लगता है कि वह शब्द यूनानी मूल के ODYSSEY शब्द का पंजाबी रूपान्तर है। इसका अर्थ लम्बी यात्रा है। यूनानी उत्तर भारत, विशेष रूप से पंजाब में कई शताब्दियों तक प्रभावशाली रहे थे। उनकी भाषा के कई शब्द पंजाबी में घुलमिल गये थे।

गुरु नानक की पहली उदासी (यात्रा) अक्टूबर 1507 पूर्व दिशा की ओर है। इस यात्रा में उनका बचपन का साथी और रबाबी भाई मरदाना उनके साथ था। इस यात्रा में वे ऐमनाबाद, हरिद्वार, गोरखमता, काशी, पटना, गया, ढाका, असम, जगन्नाथ पुरी (उड़ीसा) और फिर समुद्र के किनारे-किनारे श्रीलंका तक पहुंचे।

पंजाब की ओर वापस लौटते समय वे सन्त नामदेव की क्रीड़ा भूमि पण्ढरपुर गये, फिर राजस्थान, मथुरा, वृन्दावन और कुरुक्षेत्र होते हुए अपने जन्म-स्थान तलवण्डी पहुंचे। गुरु नानक की यह यात्रा लगभग आठ वर्ष में पूरी हुई।

अनेक इतिहासकार यह स्वीकार करते हैं कि इस यात्रा में वे सन्त रविदास (काशी में), सन्त कबीर (मगहर) और सन्त धन्ना (राजस्थान) से मिले। ये तीनों सन्त उस समय बहुत वृद्ध हो चुके थे। इसी यात्रा में उन्होंने सन्त जयदेव (बंगाल) और सन्त नामदेव (महाराष्ट्र) के साधन-स्थलों का भी दर्शन किया।

आदिग्रन्थ में संगृहीत इन सन्तों की रचनाओं का चयन भी गुरु नानक ने अपनी इस यात्रा में किया था।

गुरु नानक की दूसरी उदासी सन् 1517 में प्रारम्भ होती है। यह उत्तर की यात्रा थी, जिसमें उन्होंने कश्मीर और सुमेर पर्वत की यात्रा की। यह उदासी एक वर्ष की थी। गुरु नानक की तीसरी उदासी सन् (1518 से 1521 तक) देश के पश्चिमी भाग की है।

इस यात्रा में वे पाक पट्टन (मुलतान) में शेख फरीद की गद्दी पर आसीन शेख ब्रह्म (इब्राहीम) से मिले। शेख फरीद की रचना भी इसी समय उन्होंने प्राप्त की, जिसे बाद में आदिग्रन्थ में सम्मिलित किया गया।

तीसरी उदासी में भी गुरु नानक ने मक्का, मदीना और बगदाद की यात्रा की। फिर ईरान और अफगानिस्तान होते हुए वे पंजाब लौटे। इन्हीं दिनों बाबर का भयानक आक्रमण हुआ। इस आक्रमण में असंख्य लोग मौत के घाट उतारे गये और असंख्य लोग वन्दी बनाये गये। गुरु नानक और भाई मरदाना भी कुछ समय तक बाबर की कैद में रहे।

बाबर के आक्रमण और उसके सिपाहियों द्वारा किये गये महाविनाश को गुरु नानक ने अपनी आंखों से देखा था। गुरु नानक ने अपने कुछ पदों में इस त्रासदी का वड़ा मार्मिक चित्रण किया है।

इस समय गुरु नानक ने अपने स्थायी निवास के रूप में रावी नदी के किनारे करतारपुर बसाया था। यहीं पर उनके वृद्ध माता-पिता, पत्नी और दोनों पुत्र—श्रीचन्द और लक्ष्मीचन्द—आकर बस गये थे।

तीसरी उदासी तीन वर्ष की थी। उसे समाप्त करके वे भाई मरदाना सहित करतारपुर आ गये।

गुरु नानक की अन्तिम और चौथी उदासी 1530 में हुई। इस समय उनकी आयु 61 वर्ष की थी। पंजाब में अचल बटाया योगियों का प्रमुख केन्द्र था। उन्होंने शिवरात्रि के मेले के अवसर पर इस स्थान की यात्रा की। फिर मुलतान और स्यालकोट की यात्रा करते हुए करतारपुर वापस आ गये।

आदिग्रन्थ में संगृहीत सन्त कवि एवं उनकी रचनाओं का विश्लेषण

शेख फरीद
(सन् 1172-1266 ई.)

शेख फरीद (फरीदुद्दीन शकरगंज) को पंजाबी भाषा का आदि कवि कहा जाता है। उनका पूरा नाम फरीदुद्दीन मसूद था। उनका जन्म पश्चिमी पंजाब के मुलतान जिले के गांव खोतवाल में हुआ था। उनके पितामह सन् 1125 ई. में काबुल से पंजाब आ गये थे। शेख फरीद ने इस्लामी विद्या चार वर्ष की आयु से प्रारम्भ की। शीघ्र ही उन्हें सम्पूर्ण कुरआन शरीफ कण्ठस्थ हो गया। सोलह वर्ष की आयु में वे अपने माता-पिता के साथ मक्का शरीफ जाकर हज भी कर आये।

उन्होंने दिल्ली के ख़्वाजा कुतुबुद्दीन बख्तियार काजी, जो सूफियों के चिश्ती परम्परा के विद्वान थे, का शिष्यत्व ग्रहण कर लिया। कुछ समय तक वे हांसी में रहे। अपने मुरशिद (गुरु) की मृत्यु के पश्चात् वे पाकपट्टन (अयोधन) में आ गये।

शेख फरीद अरबी-फारसी भाषाओं के विद्वान थे। इस्लामी देशों की उन्होंने व्यापक यात्राएं की थीं, किन्तु अपनी काव्य-रचना के लिए उन्होंने (लहिन्दी) पंजाबी की प्रयोग किया। वे जानते थे कि अपने मत के प्रचार के लिए उन्हें जनभाषा का प्रयोग करना चाहिए।

शेख फरीद के 4 शबद (पद) और 118 सलोक (दोहे) गुरु ग्रन्थ साहिब में संगृहीत हैं। उनकी रचनाओं को पढ़कर लगता है कि उन्हें भारतीय धार्मिक मान्यताओं का अच्छा परिचय था। उन्हें ईसाई विचारधारा का भी ज्ञान था और वे उससे प्रभावित भी थे। इस तथ्य को प्रमाणित करने के लिए, ईसा मसीह के सुप्रसिद्ध कथन कि यदि कोई आपके एक गाल पर थप्पड़ मारे तो उसके सामने अपना दूसरा गाल कर दो, शेख फरीद के इस कथन को उद्धृत किया जाता है–

फरीदा जे तै मारनि मुकीआं तिना न मारने घुम्मि।
आपनड़े घरि जाईऐ, पैर तिना के चुम्मि।।

(हे फरीद, यदि कोई तुम्हें मुक्के मारे तो उलटकर उसे मत मारो। इसके उत्तर में तुम उसके घर जाकर उसके चरणों को चूमो।)

शेख फरीद का समय गुरु नानक से दो सौ वर्ष पूर्व का है। उनकी भाषा जैसी परिमार्जित है, उसे देखकर कुछ विद्वान यह मत व्यक्त करते हैं कि गुरु ग्रन्थ साहब में संगृहीत उनकी रचनाएं उनकी गद्दी के बारहवें उत्तराधिकारी शेख इब्राहीम की हैं जो गुरु नानक के समकालीन थे और जिनसे गुरु नानक की अनेक बार भेंट हुई थी, किन्तु अधिसंख्य विद्वान इसे शेख फरीद की ही रचना मानते हैं।

गुरु ग्रन्थ साहब में संगृहीत उनकी रचना का ब्यौरा इस प्रकार है–

आसा राग में दो पद, सूही राग में दो पद और 118 सलोक।

राग आसा में रचित निम्नलिखित पद शेख फरीद की विचारधारा पर प्रकाश डालता है–

बोलै शेख फरीद पिआरे अलह लगे।।
इहु तनु होसी खाकु निमाणी गोर घरे।।1।।
आजु मिलावा शेख फरीद टाकिम कुंजड़ीआ, पनहु
मचिन्दड़ीआ।। रहाउ।।
जे जाणा मरि जाईऐ, घुमि न आइऐ।।
झूठी दुनीआ लगि न आप पवाईऐ।।2।।
बोलीऐ सच धरमु, झूठ न बोलीऐ।।
जो गुरु दसै वाट, मुरीदा जोलीऐ।।3।।
छैल लंघदे, पारि गोरी, मनु धीरीआ।।
कंचन वन्न पासे, कलवत्ति चीरिआ।।4।।
शेख हैयाती जगि न कोई थिरु रहिआ।।
जिसु आसणि हम बैठे केते वैस गइआ।।5।।
कतिक कूंजां चेति भउ सावणि बिजुलीआं।।6।।
चले चलणहार विचारा लेइ मनो।।
गंढेदिआं छिअ माह, तुड़न्दिआं हिक खिनो।।7।।
जिमी पूछै आसमान, फरीदा खेवट किंनि गये।।
जालण गोरां नालि उलामे जीअ सहे।।8।।2।।

बड़ी मधुर लहिन्दी पंजाबी में लिखे इस पद का अर्थ है–'शेख फरीद कहता है,

हे प्यारे, अल्लाह के साथ जुड़ो। एक दिन तुम्हारी यह देह नीची कब्र में जाकर मिट्टी हो जाएगी। इस मनुष्य जन्म में ही रब से मिलना हो सकता है। इसलिए मन को चंचल करनेवाली इन्द्रियों को काबू में रखो। जब तुम्हें मालूम है कि अन्त में मर जाना है तथा फिर इस संसार में नहीं आना है तो फिर इस झूठे संसार से जुड़कर अपने आपको क्यों गंवाते हो। सदा सच और धर्म ही बोलो, झूठ नहीं बोलना चाहिए। जो मार्ग गुरु बताये उस पर एक शिष्य की भांति चलना चाहिए। जैसे किसी नौजवान को नदी पार करते देखकर कमजोर स्त्री का मन भी साहस से भर जाता है। (उसी तरह सन्त जनों को भवसागर पार करते देखकर दुर्वल प्राणी में भी साहस आ जाता है) जो लोग सांसारिक सुखों की कामना में ही लगे रहते हैं वे बहुत दुःख उठाते हैं (आरे से चीरे जाते हैं)। इस संसार में कोई भी सदा जीवित नहीं रहता। जिस धरती पर हम इस समय बैठे हैं, वहां कितने और बैठकर जा चुके हैं। कार्तिक के महीने में कुंजें (सारस) आती हैं, चैत्र में जंगलों में आग लग जाती है। सावण में बिजलियां चमकती हैं। सर्दी में स्त्रियां अपने पति के गले में बांहें डालकर सोती हैं। चलायमान जीव चलते जा रहे हैं। हे मन! विचार करके देखो, जिस शरीर को बनने में छह महीने लगते हैं उसे नष्ट होने में एक क्षण लगता है। हे फरीद! जमीन और आसमान इस बात के साक्षी हैं कि बड़े-बड़े अगुवा समझे जानेवाले लोग कब्रों में चले गये, किन्तु उनके कार्यों का फल जीव को भुगतना पड़ता है।'

इस पद की मान्यताएं हिन्दू विश्वास और इस्लामी धारणाओं का मिला-जुला रूप हमारे सामने रखती हैं। यह संसार और यह मानव देह नश्वर है, मानव-जीवन में किये गये कर्मों से ईश्वर की प्राप्ति होती है, उसके लिए इन्द्रिय निग्रह आवश्यक है, सदैव सत्य और धर्म का सहारा लेना चाहिए और मिथ्या को त्यागना चाहिए। गुरु द्वारा बताये मार्ग पर एक निष्ठावान शिष्य की तरह चलना चाहिए, सन्तजनों के मार्ग का अनुगमन करना चाहिए। माया का मोह मनुष्य जीवन में अनेक संकट लाता है। कार्तिक, चैत्र, सावन और शीतकाल की अपनी विशेषताएं होती हैं, संसार चक्र अनवरत चलता रहता है, इस संसार से वे बड़े-बड़े लोग भी चले गये जिन्हें अपने अगुवा होने का अभिमान था, उनके कर्मों का फल जीव को भुगतना पड़ता है।

ये ऐसी बातें हैं जिन्हें प्राचीन काल से भारतीय ऋषि-मुनि, अवतार, आचार्य और सन्त-भक्त कहते आये हैं। किसी भी सन्त की वाणी में ऐसे उद्‌गार प्राप्त हो जाएंगे। शेख फरीद मुसलमान थे, सूफी औलिया थे, इस्लामी मान्यताओं के अध्येता और प्रचारक थे। इसलिए इस पद में इस बात की केवल झलक ही नहीं पृष्टि भी है। मृत्यु के बाद कब्र में दफनाया जाना, मनुष्य-जीवन केवल एक बार ही प्राप्त होना (इस्लाम का पुनर्जन्म में विश्वास नहीं है) और कयामत के दिन अल्लाह के सम्मुख जीव का कर्मों के अनुसार फैसला होना इस्लाम की आस्थाएं हैं।

शेख फरीद के 118 सलोकों में उसी विचारधारा का विस्तार है जो उनके 4 पदों

में व्यक्त हुई हैं। प्रत्येक सलोक अपने आप में एक पूर्ण इकाई है और एक विशिष्ट विचार को व्यक्त करती है। उदाहरण के लिए नीचे उद्धृत सलोक में वे कहते हैं–मैं समझता था कि दुःख केवल मुझे है, किन्तु सारा संसार ही दुःखी है। मैंने ऊंचे चढ़कर देखा, हर घर में यही (दुःख की) आग लगी हुई है–

फरीदा मैं जानिआ दुख मुझ कू दुख सबाइऐ जगि।
ऊंचे चढ़ि के देखिया ता घरि-घरि एहो अगि।।

इसी प्रकार एक सलोक में उन्होंने प्रिय से विरह की महत्ता का चित्रण किया है–विरह को विरहमत कहो, विरह तो सुल्तान (अति श्रेष्ठ) है। जिस तन में अपने प्रिय का विरह नहीं उत्पन्न होता, उसे मसान की तरह समझना चाहिए–

विरहा-बिरहा आखीऐ, बिरहा तू सुलतान।।
फरीदा जितु तनि बिरहु न उपजै, सो तनु जाणु मसान ।।

बिरह की महत्ता पर ऐसी अभिव्यक्तियां अनेक सन्तों की रचनाओं में मिल जाएंगी। लगभग इसी शव्दावली में सन्त कबीर की एक साखी है–

बिरहा बुरहा जिनि कहौ, बिरहा है सुलतान।।
जिस घरि बिरह न संचरै, सो घट सदा मसान।।

स्त्री रूपी जीव की कामना है कि उसे पतिरूपी प्रभु की प्राप्ति हो। जीवात्मा प्रश्न करती है कि मैं कौन-से शब्द बोलूं, कौन-से गुण धारण करूं, कौन-सा मणि समान मन्त्र पढ़ूं, कौन-सा वेश धारण करूं, जिससे प्रभुरूपी पति मेरे वश में हो सकें–

कवणु सु अक्खरु कवणु गुणु, कवणु सु मणीआ मन्तु।।
कवणु सु वेसी हउ करी, जितु वसि आवै कन्तु।।

इस जिज्ञासा का उत्तर भी वे स्वयं देते हैं–हे जीवात्मा रूपी वहन, नम्रता, वह शब्द है, सहनशीलता वह गुण है, (मीठी) जिह्वा वह मणि समान मन्त्र है। यदि इन तीन गुणों को अपना वेष बना लो तो प्रभुरूपी पति तुम्हारे वश में आ जाएगा–

निवण सु अखरु गुणं जिह्वा मणीआं मन्तु।
ए त्रै भैणे वेस करि ता वस आवी कन्तु।।

शेख फरीद की रचनाओं में इस्लामी मान्यताओं और शरीयत के प्रति पूरी निष्ठा व्यक्त की गयी है। नित्य नमाज़ न पढ़नेवाले मुसलमान को ताड़ना देते हुए वे कहते हैं—जो व्यक्ति नमाज़ नहीं पढ़ते, पांच वक्त मस्जिद में नहीं आते, वे ठीक काम नहीं करते। वे तो कुत्तों के समान हैं—

फरीदा बेनिमाजा कुतिआ, एह ना भली रीति।।
कब ही चलि न आइआ, पंजे वख़त मसीत।।

ऐसे बेनमाज़ी को प्रेरित करते हुए वे कहते हैं—उठो, मुंह-हाथ धोवो और सुबह की नमाज़ पढ़ो। जो सिर साईं के आगे नहीं झुकता उसका तो कट जाना ही अच्छा है—

उठु फरीदा, ऊजू साजि सुबह निवाज गुजारि।।
जो सिर साईं न निवै सो सिर कपि उतारि।।

शेख फरीद को उनकी मधुर उपासना शैली के कारण शेख फरीद 'शकरगंज' कहा जाता है। आदर और श्रद्धा के कारण लोग उनका स्मरण बाबा फरीद कहकर कहते हैं।

सन्त जयदेव
(सन् 1170 ई.)

आदिग्रन्थ में जयदेव के दो पद संगृहीत हैं। एक पद गूजरी तथा दूसरा मारु राग के अन्तर्गत है। भाषा संस्कृत प्रभाव से युक्त अपभ्रंश है।

जयदेव के सम्बन्ध में भी विद्वानों में कुछ विवाद है। सामान्यतः यही स्वीकार किया जाता है कि सुप्रसिद्ध संस्कृत काव्य 'गीत गोविन्द' के रचयिता जयदेव ही वे सन्त थे, जिनके पद आदिग्रन्थ में सम्मिलित हैं। आचार्य परशुराम चतुर्वेदी ने अपने ग्रन्थ 'उत्तर भारत की सन्त परम्परा' में इस तथ्य को स्वीकार किया है। उनके अनुसार इनकी जन्म-भूमि किन्दुवित्व नाम का ग्राम था। इनके समय का अनुमान बंगाल के सेनवंशी राजा लक्ष्मण सेन के राज्यकाल के विचार से किया जाता है, जिसका समय सन् 1179 से सन् 1205 माना जाता है। जयदेव के जन्म और मृत्यु का सही समय अभी तक अविदित है।

इनका 'गीत गोविन्द' काव्य ग्रन्थ अपने शब्द सौन्दर्य, पद लालित्य एवं संगीत माधुर्य के लिए संस्कृत साहित्य में अद्वितीय समझा जाता है। जयदेव के ऊपर उस समय

की अनेक अपभ्रंश भाषाओं का भी कुछ प्रभाव होगा और उसमें भी उन्होंने कुछ पदों की रचना की होगी। आदिग्रन्थ में संगृहीत पद ऐसे ही हैं।

इन पदों के सम्बन्ध में आचार्य परशुराम चतुर्वेदी लिखते हैं—एक उपदेश के रूप में है और दूसरे का विषय योग साधना से सम्बन्ध रखता हुआ समझ पड़ता है। पहले पद के अन्तर्गत राम नाम व सदाचरण के साथ-साथ मनसा, वाचा व कर्मणा की जानेवाली 'हरि भगत निज निहकेवला' अर्थात् अनन्य भक्ति का महत्त्व दर्शाते हुए उसे योग, जप एवं दानादि से श्रेष्ठ बतलाया गया है। इसकी भाषा संस्कृत से बहुत प्रभावित है। (पृष्ठ 98)

आदिग्रन्थ में आया राग गूजरी वाला पद इस प्रकार है-

परमादि पुरख, मनोपिभं सति आदि भावहतं।।
परम दुभतं, परक्रिति परं, जदि चिन्ति सरब गन्त।।2।।
केवल राम नाम मनोरम।। वदि अमृत ततमइअं।।
न दनोति जस मरणे न जनम जराधि मरण भइअं।।1।।
इधसि जमादि परा भयं, जसु स्वसति सुक्रित क्रितं।। रहाउ।।
भवभूत भावं समब्रिअं परमं प्रसन्नमिदं।।2।।
लोभादि द्रिसटि पर ग्रिहं, जदिविधिं आचरणं।।
तजि सकल दुहक्रित दुरमती भजु चक्रधर मरणं।।3।।
हरि भगत निज निहकेवला, रिद, करमणा, बचसा।।
जोगेन किं जगेन किं दानेन किं तपसा।।4।।
गोबिन्द गोबिन्देति जपि नर सकल सिधि पदं।।
जैदेव आइउ तस सफुट, भव भूत सरब गतं।।5।।

मारु राग में दूसरा पद यह है—

चन्द सत भेदिआ, नाद सत पूरिआ,
सूर सत खोड़सा दतु कीआ।
अवल बलु तोड़िआ, अचल चलु थपिआ
अघडु घड़िया, तहा अपिउ पीआ।।1।।
मनु, आदि गुण आदि ब्रखाणिआ।।
तेरी दुबिधा द्रिसटि समानिआ।। 1।। रहाउ।।
अरधि कउ अरधिआ सरधि कउ सरधिआ,
सलल कउ सललि संभानि आइआ।
बदति जैदेउ जैदेव कउ रंमिआ,
ब्रह्मु निरबाणु लिवलीणु पाइआ।। 2।।

गीत गोविन्द में जयदेव की भक्ति वैष्णव प्रकृति की है किन्तु शनैः-शनैः उसका विकास होता गया और सम्पूर्ण सृष्टि में व्यापक, रूप-रंगहीन, परमसत्ता की भक्ति की ओर वे प्रवृत्त होते चले गये। वे उस युग में जन्मे थे जब उत्तर भारत में भक्ति का प्रादुर्भाव हो रहा था। आदिग्रन्थ में संकलित उनके दोनों पद बाद में प्रवर्तित भक्ति आन्दोलन की भूमिका का काम करते हैं। इस प्रकार उन्हें भक्ति आन्दोलन का आदि स्रोत कहा जा सकता है।

जयदेव के इन पदों की भाषा पर अपभ्रशं का प्रभाव स्पष्ट है। गुरु नानक ने इन पदों को अपनी बंगाल यात्रा के समय प्राप्त किया था। लिप्यन्तर और लम्बे अन्तराल में की गयी प्रतिलिपियों के कारण भाषा में कुछ परिर्वतन भी हो गया होगा। किन्तु सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि बारहवीं शती के बंगाल में जनमे एक सन्त के पदों, जिसकी भाषा भी अति क़्लिष्ट हो, अपने पास सहेजने और फिर उसे आदिग्रन्थ में स्थान देने का विचार अपने आप में अद्वितीय है।

जयदेव की ख्याति देशव्यापी हो गयी थी। इसके प्रमाण इस बात से मिलते हैं कि उनके पश्चात् के सन्तों-भक्तों ने उनका उल्लेख बड़े सम्मान के साथ किया है। चन्द बरदाई की पंक्ति–

जयदेव अहं कवी कवि रायं,
जिनै केल कित्ती गोविन्द गायं।।

से उनकी प्रसिद्धि का पता लगता है। सन्त कबीर ने अपने एक पद में लिखा है कि गुरु की कृपा से जयदेव और नामदेव ने भक्ति के प्रेम को जाना है–

गुर परसादी जैदेउ नामा।।
भगति कै प्रेमि इन ही है जाना।।5।।

(आदिग्रन्थ, राग गउड़ी, पृ. 330)

सिखों के वेद व्यास कहे जानेवाले भाई गुरदास (सन् 1551-1636) ने अपनी एक बार में जयदेव और गीत गोविन्द का उल्लेख किया है–

प्रेम भगति जैदेउ करि गीत गोविन्द सहज धुनि गावै।।
लीला चलितु वखाणदा अतरिजामी ठाकुर भावै।।

(वार 10)

त्रिलोचन
(1267 ई.)

सन्त त्रिलोचन के सम्बन्ध में अधिक जानकारी उपलब्ध नहीं है। अनुमानतः इनका जन्म 1267 ई. स्वीकार किया जाता है। इनका जन्म ब्राह्मण परिवार में हुआ माना जाता है। कुछ लोग इनका जन्म वैश्य परिवार में हुआ मानते हैं। इतना निश्चित है कि वे सन्त नामदेव के समकालीन थे। इनका जन्म ग्राम बारसी सोलापुर (महाराष्ट्र) लगभग सर्वस्वीकृत है।

आदिग्रन्थ में त्रिलोचन के चार पद संगृहीत हैं जो सिरी, गूजरी और धनासरी रागों में हैं। सिरी राग में उनका यह पद है-

माइआ मोहमनि आगलड़ा, प्राणी जरा मरणु भउ विसरि गइआ।।
कुटुम्बु देखि बिगसहि कमला जिउ, पर घरि जोहहि कपट नरा।। 1।।
दूजा आइउहि जमहि तणा।। तिन आगलड़ै मैं रहणु न जाइ।।
कोई कोई साजणु आइ कहै।। मिलु मेरे वीठुला लै बाहड़ी वलाइ।।
मिल मेरे रमईआ मैं लेहि छडाइ ।। रहाउ।।
अनिक अनिक भोग राज बिखरे प्राणी संसार सागर पै अमरु भइआ।।
माइआ मूठा चेतसि नाही जनमु गवाइउ आलसीआ।।2।।
बिखम घोर पंथि चालणा प्राणी, रवि ससि तह न प्रवेसं।।
माइआी मोह तव बिसरि गइआ जा तजोअले धरमराउ।।3।।
तह कर दल करनि महाबली, तिन आगलड़ै मैं रहणु न जाइ।।4।।
जे को मूं उपदेसु करतु है, ता वणि त्रिणि रतड़ा नाराइणा।।
ऐ जी तू आपे सभ किछु जाणदा, बदति त्रिलोचनु रामईआ।।5।।

इस पद तथा अन्य पदों से त्रिलोचन की भाषा पर कुछ प्रकाश पड़ता है। इस पर मराठी की छाया तो है ही उस समय की प्रचलित सधुक्कड़ी भाषा का पूरा प्रभाव है। साथ ही गुरुमुखी लिपि में लिखने और आदिग्रन्थ में संकलित होने के कारण इस पर पंजाबी का रंग भी चढ़ गया है।

सन्त त्रिलोचन की ख्याति देशव्यापी हो गयी थी, इसके अनेक प्रंमाण प्राप्त होते हैं। चौथे गुरु, गुरु रामदास ने मारु राग में रचित कुछ रचनाओं में अनेक सन्तों का उल्लेख किया है जो अपनी अनन्य भक्ति के कारण परम पद की प्राप्ति कर सके—

नामा, जै देउ, कबीर, त्रिलोचन अउ जाति
रविदास चमिआर चमईआ।

पांचवें गुरु, गुरु अर्जुन देव ने अपने एक पद में लिखा है–

नामदेउ, त्रिलोचन, कबीरु दासरो मुकति भइओ चमिआरो

भक्त नामदेव और त्रिलोचन, दोनों बहुत निकट थे, इसका प्रमाण नामदेव की अपनी रचनाओं से प्राप्त होता है। नामदेव अपनी जीविका के लिए छीपा होने के कारण कपड़े छापने का काम कहते रहते थे। त्रिलोचन ने जिज्ञासा व्यक्त की होगी कि यह सब कार्य करते हुए वे प्रभु-भक्ति किस प्रकार करते हैं। नामदेव ने उत्तर दिया–जिस प्रकार एक लड़का कागज लाकर उसे काटकर पतंग बनाता है, उसे आकाश में उड़ाता है। वह आस-पास खड़े अपने साथियों से बातचीत भी करता है, किन्तु उसका ध्यान सदा पतंग की डोर में लगा रहता है, जिस प्रकार किसी सुनार का मन, इधर-उधर बातचीत करते हुए भी कुठाली में पड़े सोने में लगा रहता है; जिस प्रकार लड़कियां कुएं से पानी भरकर लाते वक्त आपस में बातचीत करती हैं, किन्तु ध्यान सदा सिर पर रखे घड़े की ओर लगा रहता है; जिस प्रकार दूर-दूर चरती हुई गायों का मन घर मे बंधे बछड़े पर रहता है; जैसे एक मां बच्चे को पालने में डालकर घर के सभी काम करती है, किन्तु उसका ध्यान सदा पालने की ओर लगा रहता है, उसी प्रकार हे त्रिलोचन ! मेरा मन, संसार के सभी काम करते हुए प्रभु की ओर लगा रहता है।

नामदेव का मूल पद इस प्रकार है–

आनीले कागदु काटीले गूड़ी, आकास मधे भरमीअले।।
पंच जना सिउ बातबतऊआ, चीतु सु डोरी राखीअले।। 1।।
मनु राम नाम बेधीअले, जैसे कनिक कला चितु मांडीअले।।रहाउ।।
आनीले कुम्भु भराईले ऊदक, राज कुआरि पुरन्दरीए।।
हसत बिनोद बीचार करती है, चीतु सु गागरि राखीअले।।2।।
मन्दरु एक दुआर दस जा के, गऊ चरावन छाडीअले।।
पांच कोस पर गऊ चराबत, चीतु सु बछरा राखीअले।।3।।
कहत नाम देउ सुनहु तिलोचन, बालक पालन पउढीअले।।
अन्तरि बाहरि काज बिरुधी, चीतु सु बारिक राखीअले।।4।।

त्रिलोचन और नामदेव के आपसी संवाद की चर्चा स्वयं नामदेव ने की है। लगता है कि यह संवाद लोक-जीवन में इतना प्रचलित हो गया था कि लगभग दो सौ वर्ष पश्चात् सन्त कबीर ने अपने एक सलोक में इसका उल्लेख किया है। त्रिलोचन का मानना

था कि नामदेव तो माया में फंसे हुए हैं। दिन भर कपड़े छापने का काम करते रहते हैं, राम का तो स्मरण ही नहीं करते। उत्तर में नामदेव कहते हैं, हे त्रिलोचन! भक्त को अपने इष्ट का स्मरण रहता है। उसके मुंह से राम नाम निरन्तर निकलता रहता है। आदर्श यह है कि भक्त को अपने हाथ-पांव से सांसारिक दायित्व को निभाना चाहिए और अपने चित्त को निरंजन से जोड़े रखना चाहिए–

नामा माइआ मोहिआ कहै तिलोचन मीत।।
काहे छीपहु छाइलै राम ने लावहु चीतु।।
नामा कहे तिलोचना मुख ते राम संभालि।।
हाथ पाउ करि कामु सभ चीतु निरंजन नालि।।

(सलोक कबीर)

भाई गुरदास ने भी वार दस में त्रिलोचन और नामदेव के आपसी सम्बन्ध और संवाद की चर्चा की है–

त्रिलोचन प्रातः होते ही नामदेव के दर्शन करने आया करते थे। दोनों मिलकर भक्ति करते थे। नामदेव उन्हें हरि की लीला सुनाते थे। एक बार त्रिलोचन ने नामदेव से कहा, मेरी ओर से आप भगवान से विनती करें कि मुझे भी उनका दर्शन प्राप्त हो। नामदेव ने भगवान से पूछा कि त्रिलोचन को आपके दर्शन कैसे हो सकते हैं। भगवान ने हंसकर नामदेव को समझाया–मैं किसी प्रकार की भेंट से प्रसन्न होकर किसी को दर्शन नहीं देता। मैं तो प्रसन्न होकर ही त्रिलोचन को दर्शन दे सकता हूं। मैं अपने भक्तों के अधीन हूं। यदि तुम्हारे जैसे सन्त बीच में पड़ें तो वे किसी को भी मुझसे मिला सकते हैं। पूरा पद इस प्रकार है–

दरशन वेखण नाम देव भलके उठि त्रिलोचन आवै।।
भगति करनि मिल दुइ जणे नामदेउ हरि चलित सुणावै।।
मेरी भी करि बेनती दरशन देखां जे तिस भावै।।
ठाकुर जी नो पुछि उसु दरशन किवैं त्रिलोचन पावै।।
हसके ठाकुर बोलिआ नामदेउ नो कहि समुझावै।।
हत्थ न आवै भेट सो तुसि त्रिलोचन मैं मुहि लावै।।
हउ अधीन हां भैगत दे पहुंच न हंघा भगती दावै।।
हाइ विचोला आणि मिलावै।।

सन्त सधना
(13 वीं सदी)

सन्त सधना भक्त नामदेव के समकालीन सन्त कहे जाते हैं। यह भी माना जाता है कि वे सिन्ध प्रान्त के रहने वाले थे और कसाई का काम करते थे। उनके सम्बन्ध में अनेक कथाएं प्रसिद्ध हैं। किसी साधु जन की संगति में आकर वे ईश्वरभक्त हो गये। सधना जी को उनकी अनन्य भक्ति के कारण अपने समय में व्यापक प्रसिद्धि प्राप्त हो गयी थीं, इसका प्रमाण यह है कि उस युग में सन्तों ने अपनी रचनाओं में, अन्य सन्तों के साथ ही उनके नाम का भी उल्लेख किया है, उदाहरण के लिए सन्त रविदास ने, आदिग्रन्थ में संगृहीत एक पद में उनकी चर्चा इस प्रकार की है–

नामदेव कबीर त्रिलोचन सधना सै तरै।।
कहे रविदास सुणह रे सन्तहु हरि जिउसे सभै सरे।।

आदिग्रन्थ में सन्त सधना का एक पद मिलता है जिसमें इनके आर्तभाव तथा आत्मनिवेदन का बड़े सुन्दर ढंग से चित्रण हुआ है। इस पद के आरम्भ में एक कथा-प्रसंग आया है–किसी लड़के को जब यह पता चला कि एक राजा की लड़की विष्णु भगवान से विवाह करने को उत्सुक है तो उसने विष्णु का रूप धारण किया। उसने अपने शरीर पर चार भुजाएं लगा लीं जो क्रमशः शंख, चक्र, गदा और पद्म धारण किये हुए थीं। वह गरुड़ पर सवार भी हो गया। उस लड़की के पिता पर शत्रु ने आक्रमण किया और लड़की ने अपने पिता की रक्षा के लिए उस बनावटी विष्णु से सहायता चाही। वह भयभीत हो गया। उसने भगवान विष्णु की शरण ग्रहण की। विष्णु भगवान ने उसकी प्रार्थना सुन ली और राजा के शत्रु को पराजित कर दिया।

आदिग्रन्थ में संगृहीत पद यह है–

नृप कन्या के कारने, इकु भइआ भेखधारी।
कामारथी सुआरथी वा की पैज सवारी।।1।।
तव गुन कहा जगति गुरा, जउ करमु न नासै।।
सिंघ सरन कत जाइए, जउ जम्बुकु ग्रासै।।1।। रहाउ।।
एक बूंद जल कारने चात्रिकु दुःख पावै।।
प्रान गये सागरु मिलै, फुनि कामि न आवै।।2।।
प्रान जु थाके थिरु नहीं, कैसे बिरमावउ।।
बूढ़ि मूवै नउका मिले, कहु काहि चढावहु।।3।।

मैं नाही कछु हउ नहीं, किछु आहि न मोरा।।
अउसर लजा राखि लेहू, सधना जनु तोरा।।4।।

नामदेव
(सन् 1270-1350 ई.)

सन्त नामदेव को लेकर मराठी तथा हिन्दी में बहुत से विवाद हैं। कुछ लोगों की मान्यता है कि नामदेव नाम के एक से अधिक भक्तगण महाराष्ट्र में हुए थे। कुछ की मान्यता है कि जिन नामदेव के पद गुरु ग्रन्थ साहब में संगृहीत हैं वे तेरहवीं शती के न होकर पन्द्रहवीं शती के कोई सन्त होंगे।

किन्तु सर्वस्वीकृत मान्यता यही है कि जिन नामदेव की वाणी आदिग्रन्थ में है वे अपने समय के लोकप्रिय सन्त 13वीं शती के थे। वे भक्त त्रिलोचन के समकालीन थे, जाति के छीपा थे। ऐसे संकेत उनकी मराठी रचनाओं में मिलते हैं–

आम्ही दीन शिपीये जाति हीन।

आदिग्रन्थ के एक पद में उन्होंने कहा है–

हीनड़ी जात मेरी जादम राया।।
छीपे के जनमु काहे कउ आया।।

नामदेव का जन्म अनुमानतः 1270 ई. में महाराष्ट्र के सतारा जिले के नरसी बमनी गांव में हुआ था। उनके पिता दामा शेट कपड़े छापने (छीपा) तथा कपड़े सीने (दर्जी) का काम करते थे। माता का नाम गोनाबाई था। इनके पिता प्रतिवर्ष पण्ढरपुर के 'विट्ठल' के दर्शनार्थ मन्दिर में जाया करते थे। बाद में अपने इष्टदेव विट्ठल के प्रति अपने पूर्ण समर्पण भाव के कारण वे वहीं बस गये।

नामदेव के सम्बन्ध में अनेक कथाएं उसी प्रकार प्रचलित हैं जैसी अन्य अनेक सन्तों के सम्बन्ध में हैं। नामदेव अपने इष्टदेव के दर्शनार्थ मन्दिर में गये। मन्दिर के पुजारियों ने उन्हें छोटी जाति का जानकर मन्दिर से निकालकर उसके पिछवाड़े फिंकवा दिया। नामदेव वहीं बैठकर अपने प्रभु का कीर्तन करने लगे। उनकी अनन्य भक्ति के प्रभाव से मन्दिर का द्वार घूम गया। नामदेव ने आदिग्रन्थ में संगृहीत अपनी एक रचना में इसका उल्लेख किया है–

हसत खेल तेरे देहुरे आइआ।
भगति करत नामा पकरि उठाइआ।।
हीनड़ी जाति मेरी जादम राइआ।
छीपे के जनमि काहे कउ आइआ।।

इसी पद में उन्होंने देहुरा के फिरने की बात भी कही है—

जिउ-जिउ नामा हरि गुण उचरै।।
भगत जना कउ देहुरा फिरै।।

आदिग्रन्थ में नामदेव के 60 पद संगृहीत हैं। ये पद गउड़ी, आसा, गूजरी, सोरठ, धनासरी, टोडी, तिलंग, बिलावल, गोंड, रामकली, माली, गौड़ा, मारु, भैरउ, बसन्त, सारंग, मल्हार, कानड़ा और प्रभाती—अठारह रागों में हैं।

नामदेव के सम्पूर्ण रचना काल को तीन पड़ावों में विभाजित किया जा सकता है। उनके पिता शिव के उपासक थे। नामदेव ने बीठल (विष्णु) की उपासना का मार्ग अपनाया। दूसरे चरण में वे मूर्तिपूजा और अवतारवाद की ओर प्रवृत्त दिखाई देते हैं और तीसरे चरण में वे पूरी तरह निर्गुण उपासना को स्वीकार कर लेते हैं। आदिग्रन्थ में संगृहीत उनकी अधिकांश रचना उनके तीसरे चरण की रचना है।

राग गौड़ी का उनका यह पद, पौराणिक प्रसंगों के माध्यम से किसी भक्त की भगवान में गहरी आस्था को व्यक्त करता है—

तारीले गनका, बिनु रूप कुबिजा बिआपि अजामलु तारीआले।
चरन बधिक जन तेऊ मुकति भए। हउ बलि बलि जिन राम कहे।
दासीसुत जन बिदुरु सुदामा उग्रसैन कउराज दीए।।

आसा राग के एक पद में नामदेव ने अपने पारिवारिक व्यवसाय छीपा और दर्जी के द्वारा प्रयुक्त उपादानों के रूपक द्वारा अपनी भक्ति भावना को व्यक्त किया है—

मनु मेरो गजु जिहबा मेरी काती।।
मपि मपि काटउ जम की फासी।।
कहा करउ जाती कहा करउ पाती।।
राम को नामु जपउ दिनु राती।।
रांगनि रांगउ सीवनि सीवउ।।
राम नाम बिनु घरीअ न जीवउ।।

भगति करउ हरि के गुन गावउ।।
आठ पहर अपना खसम धिआनउ।।
सुइने की सुई रूपे का धागा।।
नामे का चितु हरि सिउ लागा।।

इस पद में गज, कैंची, रंगना, सीना, सुई, धागा आदि वे उपमान आ गये हैं जो किसी छीपे और दर्जी के नित्य उपयोग में आते हैं।

धीरे-धीरे मूर्ति-पूजा से उनका मोहभंग होता जाता है और उनके मन में अनेक प्रश्न उभरने लगते हैं–

हम घड़ा लाते हैं, उसमें जल भरते हैं, उस जल से अपने (पत्थर के) ठाकुर को स्नान करवाते हैं, किन्तु जल में तो बयालीस लाख जीव होते हैं। इस स्नान से भला ठाकुर किस प्रकार पवित्रता प्राप्त करेगा? मैं तो जहां भी जाता हूं वहां मुझे बीठल के दर्शन होते हैं जिससे मुझे आनन्द की प्राप्ति होती है–

आनीले कुंभ भराइले ऊदक ठाकुर कउ इसनानु करउ।।
बइआलीस लख जी जल महि होते, बीठल भैला काई करउ।।
जत्र जाउ तत बीठल भैला। महा अनंद करे सद केला।।

राग गूजरी के एक पद में भी वे मूर्ति-पूजा का उपहास करते हैं–

एकै पाथर कीजै भाउ।। दूजै पाथर धरीऐ पाउ।।
जे उह देउ तह उह भी देवा।। कहि नामदेव हम हरि की सेवा।।

सन्त नामदेव की उपासना में स्थूलता से सूक्ष्मता की ओर अग्रसित होने के संकेत निरन्तर प्राप्त होते रहते हैं। वे तीर्थ, व्रत, कर्मकाण्ड, मन्दिर आदि सभी प्रकार के स्थूल उपादानों से आगे बढ़ते हुए ईश्वर के सर्वव्यापी रूप के अनुगामी बनते चले जाते हैं। इस स्थिति में वे कर्मकाण्ड में फंसे हुए हिन्दु और तुर्क दोनों की आलोचना करते हैं और मन्दिर-मस्जिद दोनों का ही महत्त्व अस्वीकार कर देते हैं। गोंड राग में रचित उनके एक पद की कुछ पंक्तियां इस भाव की पुष्टि करती हैं–

हिन्दु अन्ना तुरकू काणा,
दोहां ते गिआनी सिआणा।
हिन्दू पूजै देहुरा मुसलमाणु मसीत।।
नामे सोई सेविआ जह देहुरा न मसीत।।

नामदेव ने अपने मित्र, महाराष्ट्र के बहुप्रसिद्ध सन्त ज्ञानदेव के साथ उत्तर भारत का व्यापक भ्रमण किया था, इसका उल्लेख अनेक प्राचीन ग्रन्थों से प्राप्त होता है। नामदेव की भाषा भी इस तथ्य का प्रमाण है। मराठी में लिखे उनके अभंग बहुत लोकप्रिय हैं। हिन्दी में लिखी उनकी रचनाओं की पदावली अलग से प्रकाशित हुई है। आदिग्रन्थ में संगृहीत होने के कारण इन रचनाओं में पंजाबी का रंग भी आ गया है।

मराठी के विद्वानों का मत है कि नामदेव का देहावसान सन् 1350 में हुआ था और उनकी समाधि पंढरपुर में बनी, किन्तु एक परम्परा के अनुसार अपने जीवन के अन्तिम वर्षों में वे पंजाब में आ गये थे। उन्होंने अपने दो शिष्यों–लद्धा और जल्ला–सहित पंजाब का भ्रमण किया था। इस मान्यता के अनुसार उनका देहावसान गुरुदासपुर जिले के घुमण गांव में हुआ था। वहीं उनका देहुरा बना हुआ है।

भक्ति संसार में नामदेव की प्रसिद्धि दूर-दूर तक फैल गयी थी। इसका प्रमाण यह है कि परवर्ती अनेक सन्तों ने अपनी रचनाओं में उनका उल्लेख किया है।

चौथे गुरु, गुरु रामदास ने उनकी उपलब्धि की चर्चा करते हुए कहा–नामदेव की तो हरि में प्रीति लग गयी, लोग उन्हें (नीच जाति) छीपा कहकर बुलाते थे, किन्तु हरि ने तो खत्रियों, ब्राह्मणों जैसी ऊंची जातिवालों को अपनी पीठ देकर छोड़ दिया और नामदेव को अपने मुख से लगा लिया–

नामदेव प्रीति लगी हरि सेती,
लोकु छीपा कहै बुलाइ।।
खत्री ब्राह्मण पिठि दे छोड़े,
हरि नामदेउ लीआ मुखि लाइ।।

(सूही महला-5)

सन्त बेणी

सन्त बेणी के सम्बन्ध में बहुत कम जानकारी उपलब्ध हैं पं. परशुराम चतुर्वेदी (उत्तर भारत की सन्त-परम्परा) के अनुसार 'इनकी जन्मभूमि व कर्म-क्षेत्र का कोई संकेत नहीं मिलता, फिर भी इनके पदों के पंजाब की ओर प्रचलित होने से इन्हें हम किसी पश्चिमी प्रान्त का निवासी कह सकते हैं। इन्हें नामदेव के समकालीन सन्तों में हम गिन सकते हैं।'

गुरु अर्जुन देव ने अपने एक पद में अपने पूर्व के अनेक सन्तों का उल्लेख किया है। इस उल्लेख में सन्त बेणी का नाम भी है। इससे यह बात तो स्पष्ट होती है कि धन्ना

कबीर, सैण, जयदेव, त्रिलोचन, नामदेव, रविदास के समान ही बेणी का नाम भी लोक जीवन में चर्चित और स्वीकृत नाम था।
गुरु अर्जुन देव का पद इस प्रकार है–

धन्नै सेविआ बाल बुधि।। त्रिलोचन गुर मिलि भई सिधि।।
बेणी कउ गुरि कीउ प्रगासु।। रे मन तू भी होहि दासु।।
जैदेव तिआगिउ अहंभेव।। नाई उधरिउ सैन सेव।।
मनु डिगि ने डोलै कहुं जाइ।। मन तू भी तरसहि सरणि पाइ।।
जिह अनुग्रहु ठाकुरि कीउ आपि।। से तैं लीन्हें भगत राखि।।
तिनका गुणि अवगुणु न बीचारिउ कोई।। इह बिधि देखि मनु लगा सेव।।
कबीरि धिआइउ एक रंग।। नामदेव हरि जीउ बसहि संगि।।
रविदास धिआए प्रभु अनूप।। गुरु नानक देव गोबिंद रूप।।

वेणी के तीन पद आदिग्रन्थ में संगृहीत हैं। ये सिरी, रामकली प्रभाती रागों में हैं।

तत्कालीन सन्त एक स्वर से कर्मकाण्ड का खण्डन करते हैं और शुद्ध हृदय से ईश्वर-भक्ति की ओर उन्मुख होने की प्रेरणा देते हैं। अपनी इस क्रिया में वे नाथ पन्थी योगियों की शव्दावली को नये अर्थ देने का कार्य करते हैं, वही वैष्णवों के तिलक, माला, तीर्थाटन, आदि की निरर्थकता को भी रेखाकिंत करते हैं। प्रभाती राग में सन्त बेणी का यह पद द्रष्टव्य है–

तनि चन्दनु मसतकि पाती।। रिद अन्तरि करतल काती।।
ठग दिसटि बगा लिव लागा।। देखि बैसनो प्रान मुख भागा।।
कलि भगवत बन्द चिरामं।। क्रूर दिसटि रता निस बादं।। रहाउ।।1।।
नित प्रति इसनानु सरीरं।। देइ धोती करम मुखि खीरं।।
रिदै छुरी संधिआनी।। पर दरबु हिरन की बानी।। 2।।
सिल पूजसि चक्रं गणेसं।। निसि जागसि भगति प्रवेसं।।
पग नाचसि चितु अकरमं।। ऐ लम्पट नाच अधरमं।।3।।
म्रिग आसणु तुलसी माला।। कर ऊजल तिलकु कपाला।।
रिदै कूड़ कठि रुद्राखं।। रे लम्पट क्रिसनु अभाखं।।4।।
जिनि आतमु ततु न चीनिआ।। सभ फोकट धरम अबीनिआ।।
कहु बेणी गुरमुखि धिआवै।। बिनु सतिगुर बाट न पावै।।5।।

'तुम अपने तन पर चन्दन लगाते हो, मस्तक पर तुलसी दल रखते हो, किन्तु हृदय रूपी हथेली में तो तुम (कपट की) कैंची रखते हो। तुम्हारी दृष्टि ठगों जैसी है। तुम

बुगले की तरह ध्यान लगाते हो। तुम्हारे जैसे वैष्णव को देखकर तो मुख के रास्ते प्राण ही भागने लगते हैं। तुम देवता के सम्मुख लम्बे समय तक वन्दना करते हो। अपनी क्रूर दृष्टि लेकर रात-दिन वाद-विवाद करते रहते हो। नित्य प्रति शरीर को स्नान कराते हो। दो धोतियां रखते हो, खीर का भोग लगाते हो। तुम्हारा हृदय छुरी से निशाना साधता रहता है। दूसरे का धन हड़पना तुम्हारा स्वभाव बन गया है। तुम शिला-पूजन करते हो, गणेश की मूर्ति का चक्कर लगाते हो। भक्तों की भांति रतजगा करते हो, मूर्ति के सामने नाचते हो किन्तु चित्त में सदा बुरे कामों का ही विचार करते हो। अरे लम्पट ऐसा नाच ही अधर्म है। मृगछाला का आसन लगाते हो, तुलसी-माला धारण करते हो। उजले हाथों से मस्तक पर तिलक लगाते हो। तुम्हारे हृदय में तो झूठ व्याप्त है, पर गले में तुमने रुद्राक्ष माला पहनी हुई है। ऐसे अशुद्ध मुख से कृष्ण का नाम लेते हो। जिस साधक ने आत्म-तत्त्व की पहचान नहीं की है, वह अन्धे के समान है। उसके सभी कर्म निष्फल हैं। बेणी कहता है जो गुरुमुख है वह जानता है कि सदगुरु के बिना सही मार्ग नहीं मिलता।'

इस पद के माध्यम से सन्त बेणी ने उस युग के सभी वैष्णवचारी बाह्याडम्बरों की कटु आलोचना की है।

गुरु नानक देव जी ने भी इसी भाव का एक पद लिखा है–

पढ़ि पुसतक सन्धिआ बादं।। सिल पूजसि बगुल समाधं।।
मुखि झूठ बिभूखन सारं।। त्रैपाल तिहाल बिचारं।।
गलि माला तिलकु लिलाटं।। दोइ धौती बसत कपाटं।।
जे जाणस ब्रहिमं।। सभ फोकट निहचउ करमं।।
कहु नानक निशचहु धिआवे।। विणु सतिगुर वाट न पावै।।

स्वामी रामानन्द

रामभक्ति के प्रथम आचार्य स्वामी रामानन्द की जन्म-तिथि के सम्बन्ध में पर्याप्त मतभेद हैं। डॉ. फरर्कुहर उनका जीवनकाल सन् 1400 ई. से सन्1470 के बीच मानते हैं पं रामचन्द्र शुक्ल ईसा की पन्द्रहवीं शती के पूर्वार्द्ध तथा 16 वीं शती के प्रारम्भ के मध्यकाल में उनकी उपस्थिति मानते हैं।

स्वामी रामानन्द भारत में रामानुजाचार्य की राम भक्ति के प्रथम प्रचारक माने जाते हैं। भक्ति काल की इस प्रचलित उक्ति में इस बात की पुष्टि की गयी है–

भगती द्राविड़ ऊपजी जाए रामानंद।।
परगट किया कबीर ने सप्त दीप नवखण्ड ।।

स्वामी रामानन्द राम के उपासक थे। उन्होंने राम के निर्गुण-सगुण दोनों रूपों की उपासना को उचित और संगत बताया। यही कारण था कि कबीर ने राम के निर्गुण रूप को और तुलसीदास ने सगुण रूप को अपनी भक्ति का आधार बनाया। कबीर के राम घट-घट वासी, अजन्मा, सर्वव्यापी ब्रह्म थे तो तुलसीदास के राम दशरथ-पुत्र रामचन्द्र थे। वे विष्णु के अवतार थे और पूर्ण परमेश्वर थे।

स्वामी रामानन्द के पूर्ववर्ती आचार्य संस्कृत भाषा को देव भाषा मानकर, उसी के माध्यम से अपनी भक्ति और विचार शैली को व्यक्त करते थे। स्वामी रामानन्द ने जन-भाषा को अपना आधार बनाया, जिसका परिणाम यह हुआ कि भक्ति-आन्दोलन जन-जन में लोकप्रिय हो गया।

कहा जाता है कि रामानन्द गौड़ ब्राह्मण थे। उनका सबसे प्रगतिशील कार्य यह था कि उन्होंने निम्न समझी जानेवाली जातियों के भक्तों को भी अपना शिष्य बनाया था। उनके शिष्यों में अनन्तानन्द, सुखानन्द, नरहरियानन्द और योगानन्द ब्राह्मण थे, कबीर जुलाहा, सैण नाई, धन्ना जाट और रविदास चमार थे। उन्होंने पद्मावती और सुरसरी नामक दो स्त्रियों को भी अपना शिष्य बनाया। रामानन्द की मृत्यु-तिथि भी उनकी जन्म-तिथि की भांति ही अनिश्चित है।

आदिग्रन्थ में उनका एक पद वसन्त राग में मिलता है। इस पद में राम-भक्ति की अवतारपरक और कर्मकाण्डी भक्ति की अपेक्षा, प्रभु की सर्वव्यापकता तथा निर्गुण भक्ति की विचार शैली के अनुरूप भक्ति-मार्ग की पुष्टि करती हुई दिखाई देती है। आदिग्रन्थ में संगृहीत पूरा पद इस प्रकार है—

कत जाईऐ रे घरि लागो रंगु।।
मेरा चितु न चले मन भइउ पंगु।। 1।। रहाउ।।
एक दिवस मनि भई उमगं।।
घसि चन्दन चोआ बहु सुगन्ध।।
पूजन चाली ब्रह्म ठाई।।
सो ब्रह्म बताइउ गुर मन ही माहि।।1।।
जहा जाइऐ तह जल परवान।।
तू पूरि रहिउ है सभ समान।।
बेद पुरान सभ देखे जोइ।।
ऊहां तउ जाईऐ जउ ईहां न होइ।। 2।।
सतिगुर मैं बलिहारी तोर।।
जिनि सकल बिकल भ्रम काटे मोर।।
रामानन्द सुआमी रमत ब्रह्म।।
गुर का सबदु काटे कोटि करम।।3।।1।।

इस रचना की भावाभिव्यक्ति उस युग के सन्तों की भांति कुछ बातों पर आग्रह करती है—चन्दन, चोआ, सुगन्ध लेकर मन्दिर में जाना, किन्तु गुरु ने बताया कि प्रभु तो हमारे मन में ही हैं। सभी स्थानों पर या तो जल है अथवा पत्थर हैं, किन्तु ईश्वर तो सर्वव्यापी है। वेद-पुराण आदि भी मैंने परख लिये। प्रभु की खोज में दूर-दूर तक तभी भटका जाए, यदि वह यहां न हो। सतगुरु की बलिहारी है जिसनें मेरे सभी कठिन भ्रम काट दिये। रामानन्द का स्वामी ब्रह्म तो सभी स्थानों पर रमता है। गुरु का शब्द करोड़ों दुष्कर्मों के बन्धन काट देता है।

सन्त कबीर
(सन् 1398-1494 ई.)

आदिग्रन्थ में सिख गुरुओं के अतिरिक्त जिनकी वाणी नित्य के पठन-पाठन का व्यापक अंग है, उसमें सन्त कबीर सबसे प्रमुख हैं। गणना की दृष्टि से इस ग्रन्थ में सन्त कबीर के 292 पद और 249 सलोक संगृहीत हैं, जिनका योग 541 है। गुरु नानक के कुल पदों की संख्या 974 है और गुरु अमरदास के पदों की संख्या 679 है। सर्वाधिक पद गुरु अर्जुन के हैं, जिनकी संख्या 2218 है।

सन्त कवियों में शेख फरीद के 4 पद और 130 सलोक हैं, नामदेव के 60 पद और रविदास के 41 पद हैं। यही कारण है कि गुरुओं की वाणी के अतिरिक्त जिन सन्तों की वाणी अधिक सुनाई देती हैं उनमें कबीर, फरीद, नामदेव और रविदास जैसे सन्त आते हैं।

भारतीय साहित्य में कबीर का अनन्य स्थान है द्रविड़ प्रदेश में उपजी भक्ति को स्वामी रामानन्द उत्तर में लाये, फिर उसे 'सात दीप नौ खण्ड' में प्रचारित करने का श्रेय कबीर को मिला। इसमें सन्देह नहीं है कि काशी जैसे नगर में रहकर कट्टर ब्राह्मणों और उनकी परम्परागत सर्वोच्चता की चुनौती देने का जो साहसिक कार्य काशी के एक जुलाहे ने किया था, वह अपने समय में अप्रतिम था।

भाव और विचार साम्य की दृष्टि से सन्त कबीर और गुरु नानक देव में अद्‌भुत समानता है, केवल एक बात को छोड़कर कि सन्त कबीर में जो अक्खड़ता है, अपनी बात को प्रमाणित करने के लिए जो अति की स्पष्टवादिता है, वह गुरु नानक में संयम, मृदुलता और स्नेहसिक्त तर्क में परिवर्तित हो जाता है।

सन्त कबीर जीवन भर काशी में रहकर कट्टर ब्राह्मणों और मुल्लाओं से जूझते रहे और उन्हें खरी-खोटी सुनाते रहे। परम्परागत मान्यता यह है कि काशी मोक्ष का द्वार

है और पास का नगर मगहर इस बात के लिए अभिशप्त है कि वहां जिसकी मृत्यु होती है वह नरक का भागी होता है। सन्त कबीर ने इस चुनौती को स्वीकार किया था। जीवन भर काशी में व्यतीत कर वे अन्त समय में मगहर चले गये थे। आदिग्रन्थ में शामिल उनकी रचनाओं में ऐसे संकेत हैं–

अब कहु राम कवन गति मोरी।।
तजीले बनारस मति भई थोरी।।1।।
सगल जनमु शिवपुरी गवाइआ।।
मरती बार मगहरि उठि आइआ।। 2 ।।

सन्त कबीर से सम्बन्ध में यह बहुप्रचलित चर्चा है कि वे एक विधवा ब्राह्मणी के पुत्र थे। लोक-लाज के भय से मां ने उन्हें त्याग दिया था। उनका पालन पोषण नीरू नाम के एक मुसलमान जुलाहे ने किया था। इस बात का संकेत सन्त रविदास ने भी किया है जो स्वयं काशी-निवासी थे और सन्त कबीर के समकालीन थे। वे कहते हैं कि जिनके बाप-दादा ईद-बकरीद के अवसर पर गो-वध करते हैं, शेख, शहीद और पीर मानते हैं, उन्हीं के पूत ने इसके बिल्कुल विपरीत किया। इसी कारण कबीर तीनों लोकों में प्रसिद्ध हो गये–

जा कै ईदि बकरीदि कुल गऊ रे बधु करहि
मानीअहि सेख, सहीद पीरा।।
जा कै बाप वैसी करो, पूत ऐसी सरी,
तिहू रे लोक परसिध कबीरा।।

(मलार-रविदास)

जैसे कि इससे पहले भी लिखा जा चुका है कि ये सन्त किसी प्रकार के बाह्माडम्बर, कर्मकाण्ड, मन्दिर-मस्जिद, पूजा-नमाज़, तीर्थ-काबा, हिन्दू आस्था अथवा मुसलमान अकीदत किसी भी बात को अन्तिम सत्य समझकर स्वीकार नहीं करते। वे गुरु के प्रसाद से मिले निर्गुण, निराकार, सर्वव्यापी ब्रह्म को ही स्वीकार करते हैं–

वरत न रहहु न मह रमदाना।।
तिसु सेवी जो रखै निदाना।।
एकु गुसाई अलहु मेरा।।
हिन्दू तुरक दुहों नेबेरा।।
हम काबै जाउ न तीरथ पूजा।।

एको सेवी अवरु न दूआ।।
पूजा करउन निवाज गुजारउ।।
एक निरंकार ले रिदै नमसकारउ।।
ना हम हिन्दू न मुसलमान।।
अलहु रामु के पिण्डु परान।।
कहु कबीर इहु कीआ वरवाना।।
गुर पीर मिलि खुदि खसम पछाना।।

सन्त रविदास
(14वी-15वीं शती)

सन्त रविदास के जन्म-मरण की तिथियों के सम्बन्ध में कुछ निश्चित नहीं कहा जा सकता। कुछ तथ्यों के आधार पर उनका समय निर्धारित किया जा सकता है। उन्हें रामानन्द का शिष्य माना जाता है, वे काशी के निवासी थे, सन्त कबीर के समकालीन थे, जाति के चमार थे—इन तथ्यों पर बहुत विचार किया जा चुका है। इनके आधार पर इनका समय पन्द्रहवीं सदी निर्धारित किया जा सकता है।

सन्त रविदास के विषय में धन्ना भगत ने कहा है कि इन्होंने नित्य प्रति ढोरों का व्यवसाय करते हुए भी माया का परित्याग कर दिया। ये साधुओं के साथ प्रत्यक्ष रूप से रहने लगे और इस प्रकार भगवान के दर्शन प्राप्त करने में सफल हो गये—

रविदास ढुवन्ता ढोर नीति, तिन तिआगी माइआ।।
परगटु होआ साथ संगि, हरि दरसनु पाइआ।।

(आदिग्रन्थ, पृष्ठ 407)

स्वयं रविदास के पदों से भी इस बात का समर्थन प्राप्त होता है कि इनके कुटुम्बवाले 'ढेढ' लोग बनारस के आसपास मृत पशुओं को ढो-ढोकर ले जाया करते थे। इस प्रकार उन 'ढेढों' के वंशज होते हुए भी इन्हें भक्त मानकर उच्च वर्ण के ब्राह्मण भी उन्हें प्रणाम किया करते थे—

मेरी जाति कुटुम्बा ढोर ढोवन्ता नितहि बनारसी आसपासा।।
अब ब्रिप परधान तिहि करहिं डंडुउति तेरे नाम सरणाई रविदासु दासा।।

(आदिग्रन्थ, पृष्ठ 1293)

सामान्यतः यह स्वीकार किया जाता है कि स्वामी रामानन्द, **सन्त रविदास के** गुरु थे। आदिग्रन्थ में इनके 40 पद संगृहीत हैं जो 16 रागों (सिरी, गउड़ी आसा, गूजरी, सोरठ, धनासरी, जैतश्री, सूही, बिलावल गोंड, रामकली, मारु, केदारा, भैरउ, बसन्त, मलार) में हैं।

राग सोरठ के एक पद में सन्त रविदास अपने सम्बन्ध में कहते हैं–

चमरटा गांठि न जनई।। लोगु गठावै पनही।।
आर नहीं जिह तोपउ।। नहीं रांबी ठाउ रोपउ।। 1।।
लोगु गांठि-गांठि खरा बिगूचा।। हउ बिनुगाठे जाई पहूचा ।।2।।
रविदासु जपै राम नामा।। मोहि जम सिउ नाही कामा।।3।।

सन्त रविदास ने एक नगर 'बेगमपुरा' की कल्पना की। इस आदर्श नगर में दुःख, चिन्ता का कोई स्थान नहीं है, यहां किसी प्रकार का कर नहीं है, भय, अपराध, गिरावट नहीं है–

बेगमपुरा सहर को नाउ।।
दुख अंदोहु नहीं तिहि ठाउ।।
ना तसवीस खिराजु न मालु।।
खउफ खता न तरसु जवालु।।1।।
अब मोहि खूब वतन गह पाई।।
ऊहां खैरि सदा मेरे भाई।।1।। रहाउ।।
काइमु दाइमु सदा पातिसाई।।
दोम न सेम, एक सो आही।।
आबादानु सदा मसहूर।।
उहां गनी बसहि मामूर ।। 2।।
तिउ तिउ सैल करहि जिउ भावै।।
महरम महल न को अटकावै।।
कहि रविदासु खलास चमारा।।
जो हम सहरी सो मीतु हमारा।। 3।।

प्रभु से अभेदता की बात को सन्त रविदास ने अनेक पदों में दोहराया है–

तोही मोही तोही अन्तरु कैसा।।
कनन कटिक जल तरंग जैसा ।। 1।।

एक अन्य पद में वे कहते हैं–

जउ तउ गिरिवर तउ हम मोरा।।
जउ तुम चन्द तउ हम भये हैं चकोरा।। 1।।
माधवे तुम न तोरहु तउ हम नहीं तोरहि।।
तुम सिउ तोरि कवन सिउ जोरहि।। 1।। रहाउ।।
जउ तुम दीवरा तउ हम बाती।।
जउ तउ तीरथ तउ हम जाती ।। 2।।

सन्त रविदास के पदों में सहज नम्रता और दीन भाव व्यक्त होता है जो श्रद्धालु के मन को तुरन्त प्रभावित करता है। आदिग्रन्थ के पाठकों और अध्येताओं में रविदास के पदों की असीम लोकप्रियता यह सिद्ध करती है कि पाठक के साथ तुरन्त तादात्म्य स्थापित करने की इनमें अद्भुत क्षमता है।

सन्त पीपा (सन् 1425 ई.)

सन्त पीपा की गणना स्वामी रामानन्द के प्रसिद्ध बारह शिष्यों में की जाती है। नाभादास ने अपनी भक्तमाल में भी इनका उल्लेख किया है। डॉ. फर्कुहर के अनुसार इनका जन्म सन् 1425 में हुआ था।

पीपा जी गागरौन गढ़ के खीची चौहान राजा थे। आदिग्रन्थ में इनका एक पद राग धनासरी में अंकित है। यह पद भी बहिर्मुखी पूजा-पाठ से अन्तर्मुखी साधना की ओर प्रवृत्त होने की प्रेरणा देता है और सूक्त रूप से इस तथ्य की ओर संकेत करता है कि सम्पूर्ण सृष्टि का रचयिता परमेश्वर सारे ब्रह्माण्ड में व्याप्त है, वही मानव-शरीर में भी है। इसलिए यह काया ही मेरा देवता है, यह काया ही मेरा मन्दिर है, काया ही मेरी तीर्थयात्रा है। यही मेरे धूप, दीप और यही नैवेद्य हैं इसी काया द्वारा मैंने नौ निद्धियां प्राप्त की हैं। मेरा-जन्म-मरण तो राम के साथ जुड़ गया है। मैं उस परम तत्त्व को प्रणाम करता हूं जो सद्गुरु की कृपा से मुझे प्राप्त हुआ है–

काइअउ देवा काइअउ देवल, काइअउ जंगम जाती।।
काइअउ धूप दीप नईबेदा, काइअउ पूजहु पाती।। 1।।
काइआ बहु खण्ड खोजते, नव निधि पाई।।
ना कछु आइबो, ना कछु जाइबो राम की दुहाई।। रहाउ।।
जो ब्रमण्डे सोई पिण्डे, जो खोजै सो पावै।।
पीपा प्रणवै परम ततु है, सतिगुरु होइ लखावै।। 2।।

सन्त सैण
(सन् 1448 ई.)

मध्यकाल के लगभग सभी सन्तों के जीवन के सम्बन्ध में बहुत प्रामाणिक सामग्री प्राप्त नहीं होती है। सैण जी के सम्बन्ध में भी ऐसी ही स्थिति है। इनके सम्बन्ध में दो भिन्न-भिन्न मत प्रचलित हैं। एक के अनुसार ये बीदर के राजा की सेवा में नियुक्त थे, सन्त ज्ञानेश्वर के समकालीन थे। इनके बनाये हुए अनेक मराठी अभंग आज भी प्रचलित हैं, जिनमें इन्होंने पंढरपुर के भगवान विट्ठलनाथ की स्तुति की है। इन पदों में व्यक्त भावों के अनुसार वे 'वारकरी भक्त' प्रतीत होते हैं।

दूसरा मत बान्धवगढ़ नरेश का नाई होना बतलाता है और इन्हें स्वामी रामानन्द का शिष्य कहता है। भक्त सैण के सम्बन्ध में दूसरा मत ही अधिसंख्य विद्वानों द्वारा स्वीकार किया गया है। यह सम्भव है कि सैण ने जीवन के कुछ वर्ष मराठी भाषी क्षेत्र में व्यतीत किये हों और वहीं रहकर मराठी में अभंगों की रचना की हो।

आदिग्रन्थ में इनकी एक रचना संगृहीत है। पंजाब में इनकी प्रसिद्धि सैण नाम से है। सभी सन्दर्भ-ग्रन्थों में उन्हें सैण लिखा गया है।

मध्ययुग के सन्तों के साथ अनेक चमत्कारपूर्ण, घटनाएं उनके जीवन-काल में ही प्रचलित हो गयी थीं, जिन्हें उस समय की रचनाओं में अनेक बार स्मरण भी किया गया है। सैण जी के सम्बन्ध में भी ऐसी ही एक कथा प्रचलित है। एक रात्रि वे निरन्तर सन्तों की सेवा करते रहे और समय से राजा के पास उसकी सेवा के लिए नहीं पहुंच सके। जब वे राजा के पास पहुंचे तो समय से उपस्थित न हो सकने के कारण क्षमायाचना करने लगे, किन्तु राजा ने कहा कि आप तो प्रातः आकर मेरी सेवा कर चुके हैं। रहस्य यह खुला कि स्वयं भगवान सैण का रूप धारण कर राजा की सेवा कर गये थे।

इस कथा से सैण की बड़ी प्रसिद्धि हो गयी। राजा भी उनका शिष्य हो गया। गुरु अर्जुनदेव के समकालीन भाई गुरुदास ने, जिन्होंने आदिग्रन्थ को लिपिबद्ध किया था, अपने एक पद में इस घटना का उल्लेख किया है–

सुण परताप कबीर का दूजा सिख होआ सैण नाई।।
प्रेम भगति रातीं करै भलके राज दुआरे जाई।।
आये सन्त पराहुणे कीरतन होआ रैण सबाई।।

छड न सके संत जन राज दुआर न सेव कमाई।।
सैण रूप हरि होइ कै आइआ राणे नो रीझाई।।
साध जना को विदा कर राज दुआर गइआ शरमाई।।
राणे दूर हूं सद के गलहूं कढाइ खोल्ह पैनाई।।
वस कीता हउ तुध अज बौले राजा सुणै लुकाई।।
परगट करै भगत वड़िआई।।

(भाई गुरदास, वार 10)

सन्त सैण का एक पद आदिग्रन्थ में है। यह पद आरती का पद है। इसमें उन्होंने यह स्वीकार किया है कि स्वामी रामानन्द से उन्होंने रामभक्ति का मार्ग प्राप्त किया, क्योंकि इसका रहस्य वे ही जानते हैं—

धूप दीप घृत साजि आरती।।
वारने जाउ कमलापती।। 1।।
मंगला हरि मंगला।।
नित मंगलु राजा राम राइको।। 1।। रहाउ।।
उत्तम दीअरा निरमल बाती।।
तुहीं निरंजनु कमला पाती।। 2।।
रामा भगति रामानन्द जानै।।
पूरन परमानन्द बखानै।। 3।।
मदन मूरति मै तारि गोबिन्दे।।
सैणु भणै भजु परमानन्दे।। 4।।

सन्त धन्ना
(सन् 1415 ई.)

सन्त धन्ना ने अपनी एक रचना में जाट जाति का होना स्वीकार किया है और यह भी कहा है कि गोविन्द में सदा लीन रहने वाले छीपी नामदेव की महत्ता, तानाबाना छोड़कर भगवान के चरणों में प्रीत करनेवाले जुलाहे कबीर ने गुण, मृत पशुओं को ढोकर सदा व्यवसाय करनेवाले चमार रविदास के माया-त्याग एवं घर-घर जाकर बाल काटनेवाले नाई सैण की भक्ति का हाल सुनकर मैं भी भक्ति मार्ग की ओर आकृष्ट हुआ। मेरे भाग्य जगे और मुझे भी मालिक के दर्शन हो गये—

गोबिन्द गोबिन्द गोबिन्द संग, नामदेउ मनु लीणा।
आठ दाम को छीपरी, होइउ लाखीणा।। 1।। रहाउ।।
बुनना-तनना तिआगि के प्रीति चरन कबीरा।।
नीच कुल जोलाहरा, भइउ गुनीअ गहीरा।। 1।।
रविदास ढूवन्ता ढोर नीति तिन त्यागी भाइआ।।
परगटु होआ साध संगि हरि दरसनु पाइआ।। 2।।
सैनु नाई बुतकारीआ, उह घरि घरि सुनिआ।।
हिरदै वसिआ पारब्रह्म, भगता महि गनिआ।। 3।।
इह बिधि सुनि कै जाटरो, उठि भगती लागा।।
मिले प्रतखि गुसाईआ, धन्ना वडभागा।। 4।।

सन्त धन्ना के चार पद (तीन राग आसा में और एक राग धनासरी में) आदिग्रन्थ में संगृहीत हैं। यह प्रसिद्ध है कि ये भी स्वामी रामानन्द की शिष्य परम्परा में थे। इस बात का उल्लेख नाभादास ने भी अपनी भक्तमाल में किया है।

सन्त धन्ना राजस्थान के टांक क्षेत्र के अन्तर्गत किसी धुअन अथवा धुवान में कृषि कार्य किया करते थे। इनका सरल हृदय गृहस्थ और किसान होना उनके रचित एक पद से सिद्ध होता है। ईश्वर से प्रार्थना करते हुए वे कहते हैं—मैं तेरी आरती करता हूं। तू अपने भक्तों के मनोरथ पूर्ण किया करता है। मैं भी तुझसे कुछ मांग रहा हूं। तू मुझे आटा, दाल और घी दे, जिसे खाकर मेरा चित्त सदा प्रसन्न रहे। मेरी यह भी इच्छा हैं कि तेरी कृपा से मुझे पहनने के लिए जूता और कपड़ा भी मिल जाए। मेरे खेत में अच्छा अन्न पैदा हुआ करे और मेरे घर में अच्छी दूध देने वाली गाय और भैंस तथा एक तेज चलनेवाली घोड़ी भी हो। मैं इनके साथ घर मैं रहने वाली एक सुन्दर स्त्री भी चाहता हूं—

गोपाल तेरा आरता।।
जो जन तुमरी भगति करंते तिनके काज सवारता।। 1 ।। रहाउ।।
दालि सीधा मागउ घीउ।। हमरा खुसी करै नित जीउ।।
पनीआ आदनु नीका।। अनाजु मागउ सत सीका।। 1।।
गऊ भैस मागउ लावेरी।। इक ताजनि तुरी चंगेरी।।
घर की गीहनि चंगी।। जनु धन्ना लेवे मंगी।। 2।।

सामान्य धारणा यह है कि प्रभु-भक्ति में डूबे किसी सन्त का प्रथम गुण यह है कि वह सांसारिक आवश्यकताओं के प्रति पूरी तहर निरपेक्ष हो जाए। किन्तु जब भक्ति की लहर जीवन-कार्यो से जुड़े सामान्य लोगों के बीच पहुंची तो उन्होंने जुलाहा कर्म करते,

जूते गांठते, नाई का काम करते और हल चलाते हुए भी अपने आपको अपने आराध्य के साथ बिना किसी दुविधा के जोड़ा। आदिग्रन्थ में ऐसे क्रियाशील सन्तों को विशेष महत्त्व दिया गया।

सन्त भीखन
(1480-1573)

सन्त भीखन के सम्बन्ध में बहुत कम ज्ञात हो सका है। इनके सम्बन्ध में यह स्वीकार किया जाता है कि ये काकोरी के शेख भीखन थे, जिनकी मृत्यु अकबर के शासनकाल के प्रारम्भिक काल में हुई। फारसी के इतिहास लेखक बदायूंनी ने उनके सम्बन्ध में लिखा है कि–"शेख भीखन लखनऊ के निकट काकोरी नगर के निवासी थे, वे अपने समय के बहुत बड़े विद्वान थे और कुरान मजीद के महान पण्डित तथा पवित्र आचरणवाले व्यक्ति थे।"

किन्तु इनके जो पद आदिग्रन्थ में संगृहीत हैं उनकी अभिव्यक्ति, भाषा-शैली और सम्पूर्ण परिवेश पर इस्लामी परम्परा का कोई प्रभाव नहीं दिखाई देता, जैसा आदिग्रन्थ में आये शेख फरीद की रचनाओं में दिखाई देता है।

सन्त भीखन के दो पद आदिग्रन्थ में हैं जो सोरठ राग में हैं। इन पदों में परमेश्वर नाम की महत्ता व्यक्त की गयी है–नेत्रों से नीर बहता है, शरीर क्षीण हो गया है, केश श्वेत हो गये हैं, कण्ठ रुद्ध हो गया है, शब्द नहीं निकलते। ऐसी स्थिति में प्राणी क्या करे? राम राय ही उत्तम वैद्य हैं, वही अपने सन्तों की रक्षा करते हैं। शरीर की सभी व्याधियों की औषध हरि का अमृत जल रूपी नाम है। यह गुरु की कृपा से प्राप्त होता है। इसी से मोक्ष का द्वार प्राप्त होता है–

नैनहु नीरु बहै तनु खीना, भए केस दुधवानी।।
रुधा कण्ठु सबदु नहीं उचरै, अब किआ करहि परानी।। 1।।
राम राइ होहि बैद बनवारी।। अपने संतहु लेहु उबारी ।।1।। रहाउ।।
माथै पीर सरीरि जलनि है, करक करेजे माही।।
ऐसी बेदन उपजि खरी भई, वा का अउखधु नाही।। 2।।
हरि का नामु अंम्रित जलु निरमलु, इहु अउखधुं जगि सारा।।
गुर परसादि कहै जग भीखनु पावउ मोख दुआरा।। 3।।

इस पद में आयी सम्पूर्ण शब्दावली और निवेदन भाव उस समय के वैष्णव सन्तों के अनुरूप है। मध्य युग में ऐसे अनेक मुसलमान सन्त थे जिन्होंने इस प्रकार की भावाभिव्यक्ति की थी। सन्त कबीर का उदाहरण सर्वोपरि है। रहीम, रसखान और

रसलीन जैसे कवियों ने इस परम्परा का अनुगमन किया था।

आदिग्रन्थ में संगृहीत सन्त भीखन का दूसरा पद भी इसी शैली का पद है–

ऐसा नामु रतनु निरमोलकु पुनि पदारथु पाइआ।।
अनिक जतन करि हिरदै राखिआ, रतनु न छिपै छिपाइआ।।1।।
हरि गुन कहतै कहनु न जाई।। जैसे मूंगे की मठिआई।। 1 ।। रहाउ।।
रसना रमत, सुनत सुखु स्रवना, चित चेते सुखु होई।।
कहु भीखनु, दुई नैन संतोखे जह देखां तह सोई।। 2।।

सन्त परमानन्द
(सन् 1389 ई.)

सन्त परम्परा के अन्तर्गत भक्तिकाल में एक से अधिक परमानन्द की चर्चा है। अष्टछाप के कवियों में सूरदास के बाद सबसे अधिक प्रतिभासम्पन्न भक्त कवि परमानन्द दास ही माने जाते हैं, किन्तु आदिग्रन्थ में जिन सन्त परमानन्द का एक पद संगृहीत है वे अष्टछापवाले नहीं थे। इनके सम्बन्ध में सर्वाधिक स्वीकृत मत यह है कि ये महाराष्ट्र के सोलापुर जिले के पण्ढरपुर स्थान के उत्तर में बसे बार्सी गांव के रहनेवाले थे।

आदिग्रन्थ में संगृहीत अपने पद में पाठ-पूजा, शास्त्र-पठन आदि बाह्याडम्बरों को महत्त्वहीन मानते हुए वे किसी साधक से ये प्रश्न करते हैं–तुमने धर्मशास्त्रों को तो पढ़ा परन्तु उनसे कुछ ग्रहण नहीं किया। न ही तुममें प्रभु की अटूट भक्ति उत्पन्न हुई, न ही तुमने किसी की सेवा की। तुम्हारे अन्दर से काम-भाव नहीं गया, क्रोध नहीं गया, लोभ नहीं छूटा। तुमने परनिन्दा भी नहीं छोड़ी। अभी तक की तुम्हारी सारी सेवा निष्फल हुई। तुमने लोगों को लूटकर, उन्हें ठगकर अपराधियों की भांति अपना पेट भरा। तुम्हारी अपकीर्ति तुम्हारे साथ परलोक गई। ऐसी अविद्या तुमने पढ़ी। तुमने हिंसा का परित्याग नहीं किया, अपने अंदर दया नहीं पाली। तुमने साधु जनों की संगति नहीं की जिनसे तुम्हें प्रभु की पवित्र कथा का ज्ञान हो सकता। मूल पद इस प्रकार है–

तै नर किआ पुरान सुनि कीना।।
अन पावनि भगति नहीं की उपजी भूखै दानु न दीना।।1।। रहाउ।।
कामु न बिसरिउ, क्रोध न बिसरिउ लोभन छूटियो देवा।।
पर-निन्दा मुंह से नहि छूटी निफल भई सब सेवा।। 1।।
बाट पारि घरु मूसि बिराने, पेट भरे अपराधी।।
जिह परलोक जाइ अपकीरति, सोइ अबिदिआ साधी।। 2।।

हिंसा तउ मन ते नहीं छूटी, जीअ दइआ नहिं पाली।।
परमानन्द साध संगति मिलि, कथा पुनीत न चाली।। 3।।

परमानन्द का यह पद भी उस काल के सन्तों की अनुभूत भावना के अनुसार है।

सूरदास
(सन् 1483 ई.)

भक्त सूरदास की जो रचना आदिग्रन्थ में है, उसके सम्बन्ध में सिख विद्वानों और आदिग्रन्थ के अध्येताओं में बहुत मतभेद हैं।

सूरदास के एक पद की केवल एक पंक्ति आदिग्रन्थ में है–

छाडि मन हरि बिमुखन को संगु।।

सूरसागर में यह पूरा पद इस प्रकार है–

तजौ मन, हरि-बिमुखन कौ संग।
जिनकै संगि कुमति उपजति है, परत भजन मैं भंग।।
कहा होत पय पान कराये, बिष नहि तजत भुजंग।।
कागहि कहा कपूर चुगाये, स्वान न्हवाये गंग।।
खर कौ कहा अरगजा-लेपन, मरकट भूषन अंग।।
गज कौ कहा सरित अन्हवाये बहुरि धरै वह ढंग।।
पाहन पतित बान नहि बेधत, रीतौ करत निषंग।।
सूरदास कारी कामरि पै, चढ़त न दूजौ रंग।।

इस पद में से केवल पहली पंक्ति कुछ भाषान्तर के साथ आदिग्रन्थ में है। शेष पद आदिग्रन्थ के संकलक और सम्पादक गुरु अर्जुनदेव ने क्यों छोड़ दिया, इसके लिए सिख विद्वान प्रायः एक तर्क देते हैं। इस पद का केन्द्रीय भाव यह है कि भक्त को हरि से विमुख लोगों का संग नहीं करना चाहिए, क्योंकि व्यक्ति जब एक बार कुमार्गी हो जाता है, वह कभी सुधरता नहीं। जैसे सांप को दूध पिलाने से वह विष नहीं छोड़ता, कौए को कपूर चुगाने और कुत्ते को गंगा-स्नान कराने, गधे पर चन्दन का लेप करने, बन्दर को आभूषण पहनाने, हाथी को नदी में नहलाने से कोई लाभ नहीं होता। पत्थर पर बाण चलाकर व्यक्ति अपना तरकश तो खाली कर देता है किन्तु पत्थर को नहीं भेद पाता। जैसे काली कमली पर दूसरा रंग नहीं चढ़ता, वैसे ही हरि से विमुख व्यक्ति नहीं सुधरता। विद्वानों के अनुसार भक्त सूरदास की यह धारणा गुरुओं के उपदेश के अनुसार नहीं है।

गुरुओं का विचार था कि अधम से अधम व्यक्ति भी सत्संग पाकर, गुरु की कृपा से फिर से ईश्वर की ओर उन्मुख हो सकता है और अपनी सभी बुराइयों से मुक्त हो सकता है। सूरदास के नाम से जो दूसरा पद आदिग्रन्थ में संगृहीत है उसके शीर्ष पर लिखा है— (सारंग महला 5 सूरदास)

सामान्यतः हर पद के ऊपर राग का तथा भक्त का नाम लिखा प्राप्त होता है—

सारंग बाणी नामदेउ जी की

जब किसी गुरु विशेष की वाणी आती है तो महला लिखकर आगे एक, दो, तीन आदि लिखकर यह संकेत दिया जाता है कि यह किस गुरु की वाणी है—

मलार महला-3

दूसरा पद यह है—

हरि के संग बसे हरि लोक।।
तनु मनु अरपि सरबस सभु अरपिउ अनद सहज धुनि लोक।।1।।रहाउ।।
दरसन पेखि भए निरबिखई, पाये है सगले थोक।।
आन बसतु सज काजु न कछूऐ, सुंदर बचन अलोक।।1।।
सिआम सुंदर तजि आनु जु चाहत जिउ कुसटी तनि जोक।।
सूरदास मनु प्रभि हथि लीनो दीनो इहु परलोक।।2।।

आदिग्रन्थ के अधिसंख्य व्याख्याकारों की मान्यता यह है कि सूरदास के पद की पंक्ति—'छाडि मन हरि बिमुखन को संग' में व्यक्त धारणाओं के समानान्तर दूसरा विचार रखने के लिए पांचवें गुरु ने यह पद लिखा। क्योंकि पद के सन्दर्भ में सूरदास की उपयुक्त पंक्ति थी इसलिए उन्हें सम्बोधित अथवा समर्पित कर यह पद लिखा गया।

आदिग्रन्थ में संगृहीत अन्य रचनाकर

इन पन्द्रह सन्त कवियों के अतिरिक्त आदिग्रन्थ में छह गुरुओं की रचनाएं हैं—गुरु नानक देख, गुरु अंगद देव, गुरु अमरदास, गुरु अर्जुनदेव तथा गुरु तेग़ बहादुर।

गुरु अर्जुनदेव ने जब आदिग्रन्थ का सम्पादन किया था, उसमें पहले पांच गुरुओं की वाणियां थीं। यह सम्पादन कार्य 1604 ई. में पूर्ण हुआ था। एक सौ वर्ष बाद, गुरु

गोबिन्द सिंह ने अपने पिता गुरु तेग़बहादुर की वाणी इसमें शामिल की और इस ग्रन्थ को अन्तिम रूप दिया। सन् 1708 में नान्देड़ (महाराष्ट्र) में उनकी जीवनलीला समाप्त हुई। इस समय तक इस ग्रन्थ को पोथी साहब और ग्रन्थ साहब कहा जाता था। देहावसान से पूर्व गुरु गोबिन्द सिंह ने देहधारी गुरु की परम्परा समाप्त कर दी और सभी सिखों के आध्यात्मिक मार्गदर्शन के लिए ग्रन्थसाहब और उनके सांसारिक मार्गदर्शन के लिए पूरे खालसा पन्थ को 'गुरु-पद' पर आसीन कर दिया। उस समय से आदिग्रन्थ 'गुरु साहब' के रूप में स्वीकार किया जाने लगा।

भट्ट तथा अन्य कवि

आदिग्रन्थ में 13 अन्य कवियों की रचनाएं भी संगृहीत हैं। इनके नाम हैं—भाई मरदाना, सुन्दर दास, राइ बलवण्ड तथा सत्ता डूम, कलसहार, जालप, कीरत, भिक्खा, सल्ह, भल्ल, नल्ह, गयन्द, मथुरा बल्ह और हरिबंस।

पहले दो कवियों भाई मरदाना और सुन्दर दास भट्ट (भाट) कवियों में नहीं गिने जाते हैं। भाई मरदाना तो गुरु नानक देव के जीवनभर के हमजोली थे। लगभग 2 वर्ष की गुरु नानक की देश-विदेश की यात्राओं में वे उनके साथ थे। उनके तीन पद आदिग्रन्थ में है। ये भाई मरदाना की रचनाएं हैं अथवा गुरु नानक देव की हैं, इस सम्बन्ध में मतभेद हैं। इसका कारण यह है कि पद के ऊपर शीर्षक में तो लिखा है सलोक मरदाना 1, पद के अन्त में कवि नाम नानक का है। एक मत यह है कि ये रचनाएं भाई मरदाना द्वारा रचित हैं। दूसरा मत यह है कि ये सलोक स्वयं गुरु नानक ने भाई मरदाना की ओर से लिखे थे।

सुन्दर दास तीसरे गुरु, गुरु अमरदास के पड़पोते थे। उनकी रचना 'सद' नाम से आदिग्रन्थ में संगृहीत है। 'सद' का अर्थ है बुलावा। यह रचना गुरु अमरदास के देहावसान के समय की रचना है।

भट्ट कवियों की गिनती 11 है। अनुमान है कि 1581 ई. में ये एकत्र होकर, कलसहार के नेतृत्व में गुरु अर्जुनदेव के पास आये थे।

भट्ट या भाट कवियों की इस देश में एक लम्बी परम्परा है। ऐसे कवि अपने आश्रयदाता की प्रशंसा में रचनाएं लिखा करते थे हिन्दी में इन्हें चारण कवि कहा जाता है। ये भट्ट कवि भी अपनी जिज्ञासा शान्त करने के लिए, इधर-उधर घूमते हुए गुरु के द्वार पर पहुंचे। यहां आकर उनकी तृप्ति हुई। भिक्खा भट्ट कहता है—

रहिउ संत हउ टोलि साथ बहुतेरे डिट्ठे।।
संनिआसी तपसीअह मुखहु ए पंडित मिठे।।

बरस एकु हउ फिरउ किनै नहु परचउ लायउ।।
कहतिअह कहती सुणी रहत को खुसी न आयहु।।
हरिनामु छोडि दूजै लगे तिन्ह के गुण हउ किआ कहहु।।
गुरु दयि मिलायउ भिखिआ जिव तू रखहि तिव रहहु।।

इन भट्ट कवियों ने उस समय तक हो चुके पांच गुरुओं के ऐतिहासिक स्वरूप में पुराण पुरुषों और अवतारों की कल्पना की। उनकी दृष्टि में ये सभी विष्णु के अवतार हैं, साथ-ही-साथ प्रथम गुरु, गुरु नानक की ज्योति के ही बाद के गुरुओं की संचरित होती रही है। भट्ठ मथुरा के अनुसार–

जोति रूपि हरि आपि गुरु नानक कहायहु।।
ता ते अंगदु भयउ तत सिउ ततु मिलायउ।।
अंगदि किरपा धारि अमरु सतिगुर थिर कीअउ।।
अमरदासि अमरतु छत्र गुर रामहि दीअउ।।
गुर रामदास दरसनु परसि कहि मथुरा अंम्रित बयण।।
मूरति पंच प्रमाण पुरखु गुरु अरजनु पिखहु नयण।।

इन कवियों के 123 सवैये आदिग्रन्थ में संगृहीत हैं।

सन्त कवियों की समान अवधारणाएं

मध्ययुगीन धर्म-साधना के दो स्वरूप हमारे सम्मुख स्पष्ट रूप से उभरते हैं। एक शास्त्रमार्गी है, दूसरा लोकमार्गी है। आधुनिक विद्वान आठवीं शताब्दी को भारतीय साहित्य के पूर्व की अन्तिम सीमा मानते हैं। आठवीं शती से अठारहवीं शती तक को सामान्यतः मध्ययुग माना जाता है। इस काल के भी दो भाग हैं। आठवीं से तेरहवीं शती का काल पूर्व मध्ययुग है और तेरहवीं से अठारहवीं शती तक का काल उत्तर मध्ययुग है।

पूर्व मध्यकाल (गुप्त काल) में हिन्दू धर्म का जो स्वरूप विकसित हुआ था उसमें पूर्ववर्ती आर्ष ग्रन्थों को अकाट्य रूप से प्रमाण मानने की प्रवत्ति उत्तरोत्तर बढ़ती गयी थी। वेदों को स्वतः प्रमाण मानने के आग्रह से यह बद्धमूल हो गयी और वेद विरोधी सम्प्रदायों को नास्तिक और हेय मानने की प्रवृत्ति निरन्तर बढ़ोतरी पर रही। प्रायः सभी सम्प्रदायों में उपास्य देवताओं की मूर्ति कल्पित की गयी और प्रत्येक देवता की शक्ति की भी कल्पना की गयी। इन देवियों और देवताओं की स्तुति में मनोहर काव्य रचे गये।

बौद्ध धर्म इस काल में वैदिक-पौराणिक हिन्दू धर्म की सबसे अधिक प्रतिरोधी शक्ति थी। महाभारत और भागवत आदि ग्रन्थों में कलियुग का बड़ा ही चिन्ताजनक और उद्वेलित करनेवाला रूप चित्रित किया गया है। प्रायः हर पुराण में कलियुग की ह्रासशील प्रवृत्तियों का चित्रण किया गया है। इस बात पर विशेष आग्रह किया गया है कि लोगों का नैतिक चरित्र पतित हो जाएगा। श्रुति-स्मृति में दिये गये निर्देश मिटने लगेंगे। वर्णाश्रम व्यवस्था टूटने लगेगी। शूद्र लोग संन्यास लेकर उच्च वर्णों को उपदेश देने का ढोंग रचेंगे। स्त्रियां चरित्रहीन हो जाएंगी।

महामहोपाध्याय डॉ. पाण्डुरंग वामन काणे का अनुमान है कि (धर्मशास्त्र का इतिहास पृष्ठ 895) सन् ईस्वी की चौथी शताब्दी तक इस प्रकार के विश्वास ने जड़ें जमा ली होंगी। उन्होंने अनेक पुराणों में ज्यों-का-त्यों पाया जानेवाला श्लोक दिया है, जिसके

अनुसार कलियुग में वे लोग धर्मोपदेश करेंगे जो शठतायुक्त बुद्धि से रहनेवाले या गलत मान्यता के विश्वासी होंगे, उनके दांत सफेद होंगे (भ-दन्त), वे जितेन्द्रिय होने का दावा करेंगे तथा मुण्डित और काषायवस्त्र करनेवाले होंगे–

शुक्लदन्ता जिताक्षाशय मुण्डाः काषायवाससः।
शुद्धाधर्मं वदिष्यन्ति शाठ्य बुद्धयोपजीविनः।।

पुराणों के अनुसार कलिकाल में आनेवाली पतनशीलता की मुख्य चिन्ताएं हैं–(1) श्रुति और स्मृतियों में वर्णित आचार की अवज्ञा, (2) वर्णाश्रम व्यवस्था का टूटना, (3) शूद्रों का संन्यासी होकर उच्च वर्णों को उपदेश देना, (4) ऐसे उपदेश देनेवालों के दांत सफेद (भ-दन्त) होना, (5) उनका अपने आपको जितेन्द्रिय होने का दावा करना, (6) मुण्डित होना, (7) काषाय वस्त्रों को धारण करना, (8) उनका शठ बुद्धि होना।

क्या ये सभी बातें इस देश में बौद्ध धर्म के अभ्युत्थान की ओर संकेत नहीं करती हैं? बुद्ध ने शूद्रों को भी संन्यासी बनाकर उपदेश देने की अनुमति दी थी। बौद्ध विहारों में स्त्रियों के प्रवेश को स्वीकार किया था। बौद्ध भिक्षु मुण्डित होते थे, काषाय वस्त्र धारण करते थे। भदन्त बौद्धों में अति सम्मानित व्यक्ति को कहा जाता था। उन्होंने वेदों को अपौरुषेय और अकाट्य नहीं स्वीकार किया था। जिस श्लोक में शठतायुक्त बुद्धिवाले, कलियुगी व्यक्ति को सफेद दांतोंवाला (भ-दन्त) कहा गया है, वह बौद्ध भिक्षु के लिए एक सम्मानित शब्द है।

ब्राह्मण-व्यवस्थावादियों की मान्यताओं को बौद्ध धर्म की मान्यताएं चुनौती देती थीं इसलिए दोनों विचारों में निरन्तर टकराव होता रहता था। इस तथ्य का स्पष्ट संकेत आधुनिक हिन्दी साहित्य के अत्यन्त सम्मानित साहित्यकार जयशंकर प्रसाद के नाटक चन्द्रगुप्त में मिलता है। चाणक्य पूरी तरह ब्राह्मणवादी मान्यताओं का पोषक है। इस नाटक में वह स्थान-स्थान मगध के शासक महापद्म नन्द पर अपना आक्रोश इस आधार पर व्यक्त करता है कि वह शूद्र है और बौद्ध है।

मध्ययुग में इस टकराव को नया रूप प्राप्त हुआ है। तमिल के अलवार सन्तों में शूद्र भी थे और स्त्रियां भी। यह एक प्रकार से श्रुति-स्मृतिपरक ब्राह्मणवादी व्यवस्था का निषेध था। दक्षिण भारत में ही आचार्यों का प्रादुर्भाव हुआ। इन्होंने विविध तर्कों से भागवत धर्म की श्रेष्ठता का प्रतिपादन किया। आचार्य रंगनाथ, मुनिश्री यामुनाचार्य, रामानुजाचार्य, निम्बार्काचार्य, मध्वाचार्य, वल्लभाचार्य आदि आचार्यों ने वैष्णव साधना के लगभग उसी स्वरूप की स्थापना की, जो पुराण प्रतिपादित थी। इतना अवश्य हुआ कि उपासना का जो अधिकार असवर्णों ने स्वयं ले लिया था, उसका विरोध नहीं हुआ। स्वामी रामानन्द ने ऐसे लोगों को बाद में अपना शिष्य भी बनाया।

किन्तु इस स्थिति में एक बात अवश्य उभरी। अधिसंख्य सवर्ण जातियों के भक्तों का रुझान सगुण भक्तिधारा की ओर रहा। अवतारवाद, श्रुति-स्मृतिनिष्ठा, मूर्तिपूजा, कर्मकाण्ड, ब्राह्मण की प्रतिष्ठा और भूदेवता के रूप में उनकी मान्यता इनके आधार रहे।

अद्विज जातियों के सन्तों का रुझान निर्गुण भक्ति की ओर गया। प्रारम्भ में इनके आकर्षण के केन्द्र में सगुण भक्ति के अनेक तत्त्व रहे, फिर धीरे-धीरे ये निर्गुण धारा के निकट आते गये। सन्त नामदेव का उदाहरण इस दृष्टि से उल्लेखनीय है। दक्षिण भारत से उत्तर भारत की ओर आती हुई भक्ति का बहुत महत्त्वपूर्ण पड़ाव महाराष्ट्र है। यहां ब्राह्मण और अब्राह्मण—दोनों प्रकार के भक्तों का प्रादुर्भाव हुआ। नामदेव का इनमें बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान है। वे बीठल (विष्णु) के उपासक थे। मन्दिर के पुजारियों ने उन्हें मन्दिर से बाहर निकाल दिया था। इस बात का उल्लेख नामदेव ने स्वयं अपनी रचना में गहन पीड़ा के साथ दिया है—

हसत खेलत तेरे देहुरे आया।।
भगति करत नामा पकरि उठाया।।
होनड़ी जाति मेरी जादम राया।।
छीपे के जनम काहे को आया।।

उन्होंने विष्णु के अवतार 'जादमराया' (यादवराव कृष्ण) से यह गिला किया कि मैं तुम्हारे मन्दिर में हंसता-खेलता आया था, किन्तु मझे वहां से तुम्हारे पुरोहितों ने पकड़कर उठा दिया। मेरा दोष इतना ही था कि मैं हीन जाति का था। हे बीठलदेव, तुमने मुझे छीपे का जन्म क्यों दिया?

शूद्र जाति के भक्तों के प्रति सवर्ण जाति-व्यवस्था का यह भाव सर्वत्र था। नामदेव तेरहवीं-चौदहवीं शती के भक्त थे। कुछ समय पश्चात् भक्ति की लहर उत्तर की ओर आयी तो इन जातियों ने अपने आपको इस लहर से दूर नहीं रखा, किन्तु उन्होंने अवतार, मूर्तिपूजा और श्रुति-स्मृति सम्मत सगुण धारा से पूरी तरह नहीं बांधा। इस धारा में उनका स्थान नहीं हो सकता था, जिसका चित्रण नामदेव ने किया था।

कबीर के समय निर्गुण और सगुण भक्तिधारा का टकराव बहुत मुखर हो उठता है। कबीर ब्राह्मण की प्रभुता को पूरी तरह नकार देते हैं। नामदेव उनसे पूर्व ही ईश्वर की इस अवधारणा को आत्मसात कर चुके थे जो निर्गुण भक्ति की ओर उन्मुख थी। इस अवधारणा में ईश्वर किसी एक स्थान (मन्दिर), तीर्थस्थल और अवतारी पुरुष तक सीमित नहीं है। वह एक है और अनेक होकर सर्वत्र विराजता है। वह घट-घटवासी है—

एक अनेक बिआपक पूरक जत देखउ तत सोई।।
घट-घट अंतरि सरब निरंतरि केवल एक मुरारी।।

अब नामदेव का बीठल किसी मन्दिर तक सीमित नहीं है, जहां से उन्हें निष्कासित किया जा सके। वे कहते हैं–

ईभै बीठलु, ऊभै बीठलु, बीठल विनु संसार नहीं।।
थान थनंतरि नामा प्रणवै, पूरि रहउ तू सरव मही।।

वे अपने पिता बीठल से कहते हैं–इन पण्डितों को यह भ्रम है कि ये ऊंची जातिवाले हैं। इसलिए ये लोग कुछ से क्रोधित हो गये और शूद्र-शूद्र कहकर मुझे मार-मारकर मन्दिर से उठा दिया। ये पाण्डे मुझे नीच कहते हैं। इससे तो तुम्हारी प्रतिष्ठा ही घटती है क्योंकि तुम्हारा भक्त नीच कैसे हो सकता है–

आलावंती इहु भ्रम जो है मुझ ऊपरि सभि कोपिला।।
सूदु सूदु करि मारि उठाइउ, कहा करउ बाप बीठुला।।

... ...

ए पंडीआ भोकउ ढेढ कहतु तेरी पैज पिछंउडी होइला।।

आदिग्रन्थ में संगृहीत सन्तों की रचनाओं का अध्ययन करने के पश्चात् इनकी समान और सांझी अवधारणाओं और प्रवृत्तियों को रेखांकित किया जा सकता है। इनमें से सर्वप्रमुख परब्रह्म की अवधारणा है।

ये सन्त ईश्वरबोधक उन सभी शब्दों का प्रयोग करते हैं जो उस समय प्रचलित थे। इसमें वैदिक, वैष्णव, शैव, शाक्त, बौद्ध और इस्लामी परिवेश में प्रचलित सभी नाम आ जाते हैं। अपने-अपने सन्दर्भों में ये नाम अवतार, मूर्ति, देवता-देवी, सगुण, निर्गुण और किसी सम्प्रदाय अथवा मज़हब से सम्बन्धित हो सकते हैं किन्तु सन्तों की वाणी में आते ही वे अपना अर्थ-विस्तार कर लेते हैं और अपनी सीमित परिभाषा को छोड़कर बहुत आगे निकल जाते हैं।

ये सन्त कवि परमतत्त्व की असीम स्थिति, उसकी सर्वव्यापकता और उसके अनन्त रूपों की चर्चा करते हैं। उनकी दृष्टि में राम-कृष्ण आदि सभी अवतार शिव, ब्रह्मा आदि सभी देवता तथा सभी देवियां उस परब्रह्म द्वारा उत्पन्न की गयी हैं, जिनकी गणना अपरिमित है।

आदिग्रन्थ में संगृहीत एक पद में सन्त कबीर इस विशालता और अनन्तता की चर्चा करते हुए कहते हैं–

कोटि सूरजा कै परगास।। कोटि महादेव अरु कबिलास।।
दुरगा कोटि जाकै मरदनु करै।। ब्रह्मा कोटि बेद उचरै।।

जहु जाचहु तउ केवल राम।। आन देव सिउ नाही काम।। रहाउ।।
कोटिचन्द्र में करहि चराक।। सुर तेतीसउ जेवहि पाक।।
नवग्रह कोटि ठाढे दरबार।। धरम कोटि जाकै प्रतिहार।। 2।।

(आदिग्रन्थ, पृष्ठ 162-63)

ऐसे ही भाव को व्यक्त करती हुई पंचम गुरु, गुरु अर्जुनदेव की अष्टपदी है–

कोटि बिसन कीने अवतार।। कोटि ब्रह्मंड जाके धरम साल।।
कोटि महेस उपाइ समाए।। कोटि ब्रह्मे जगु साजण जाए।। 1।।
ऐसो धणी गुबिंदु हमारा।। बरनि ना साकउ गुण बिसथारा।।
कोटि माइआ जाकै सेवकाई।। कोटि जीझ जाकी सिहजाई।।
कोटि अपार जना तेरै अंगि।। कोटि भगत बसत हरि संगि।। 2।।

अविगत नाथु अगोचर स्वामी।। पूर रहिआ घर अंतरजामी।।
जतकत देखउ तेरा बासा।। नानक कउ गुरि कीओ प्रगासा।।

(आदिग्रन्थ, पृष्ठ 1156-57)

इन सन्तों में वैष्णव-परम्परा के नाम सबसे अधिक प्रिय हैं। राम, रामइआ, हरि, गोपाल, केशव, मुरारी, माधव, बनवारी, बीठल जैसे नाम बार-बार प्रयोग में लाये जाते हैं, किन्तु ये अपने प्रचलित अर्थों का अतिक्रमण कर जाते हैं। उदाहरणस्वरूप राम शब्द का प्रयोग सभी सगुण कवि दशरथ पुत्र राम के सन्दर्भ मे करते हैं। वाल्मीकि से लेकर तुलसीदास और केशवदास तक दशरथ-पुत्र राम की कथा का वर्णन अगणित कवियों ने बड़े भक्ति भाव से किया है। तुलसीदास तो उन्हें साक्षात् परब्रह्म मानते हैं

कबीरदास के राम दशरथ-पुत्र नहीं हैं–

दसरथ सुत तिहुं ओर बखाना।।
राम नाम का मरम है आना।।

एक राम दशरथ का प्यारा।।
एक राम ने सकल पसारा।।

उनके राम (और कृष्ण) राजा दशरथ के घर में अवतरित नहीं हुए हैं, उन्होंने लंका के राजा को नहीं मारा। वह देवकी की कोख से पैदा नहीं हुए और न यशोदा के वात्सल्य की छाया में पले हैं, न वे ग्वालों के संग घूमे हैं और न गोवर्धन पर्वत को अपनी उंगली पर उठाया है, न उन्होंने वामन होकर बलि को छला है और न वेद के उद्धार हेतु वाराह बनकर धरती को अपने दांतों पर उठाया है। वे गण्डक के शालिग्राम भी नहीं हैं

और न मत्स्य, कच्छप आदि रूपों में जल में डोले हैं। वे न नरनारायण रूप में बद्रीनाथ में ध्यान लगाकर बैठे हैं और न परशुराम बनकर क्षत्रियों का नाश करने गये हैं। उन्होंने द्वारका में शरीर नहीं छोड़ा और न वे जगन्नाथधाम में आसन जमाकर बैठे हैं। सन्त कबीर की दृष्टि में ये सब बाहरी व्यवहार हैं। समूचे संसार में व्याप्त होनेवाले राम इनसे अधिक अगम हैं–

ता साहब के नामों साथा। दुख सुख कोटि जो रह्यो अनाथा।।
ना दसरथि घरि औतरि आवा। ना लंका का राव सतावा।।
देवै कूख न औतरि आवा। ना जसवै ले गोद खेलावा।।
ना वो ग्वालन के संग फिरिया। गोवरधन ले ना करि धरिया।।
वामन होय नहीं वलि छलिया। धरनी वेद न लेने उधरिया।।
गंडक सालिग राम न कोला। कच्छ, मच्छ हवै जलहिं न डोला।।
बद्री बैठा ध्यान नहि लावा। परसुराम हवै खत्री न सतावा।।
द्वारमती सरीर न छोड़ा। जगन्नाथ ये प्यंज न गाड़ा।।
कहै कबीर विचारि करि ये ऊले व्यवहार।।
याहीं थे जो अगम है, सो बरति रह्या संसार।।

सन्त कबीर न इस पद में विष्णु के सभी अवतारों–राम, कृष्ण, वामन, वाराह, मत्स्य, कच्छप, नरनारायण, परशुराम आदि सभी को पूरा तरह नकार दिया।

सन्त रविदास ने भी इसे पूरी तरह अस्वीकार किया कि उनके राम दशरथ के पुत्र थे–

रविदास हमारो राम जी, दसरथ करि सुत नाहिं।।
राम हमउ महि रमि रह्यो बिसब कुटम्बह माँहि।।
घट-घट बिआपक राम है रामंहि बूझे कोय।।
रविदास बूझे सोइ राम कूं जउ राम सनेही होय।।

अपने इष्टदेव के प्रति ऐसी अवधारणा लगभग सभी सन्तों की रही है। जयदेव गीत गोविन्द के रचयिता थे, जो कृष्ण को समर्पित है। किन्तु आदिग्रन्थ में सम्मिलित उनका पद राम और कृष्ण के अवतारी रूप पर बल नहीं देता, वरन उनके सर्वव्यापी सर्वोच्च, सर्वशक्तिमान पर आग्रह करता है–

परमादि पुरुष मनोपिमं सति आदि भावहतं।।
परमदुभतं परकृति परं, जदिचिन्ति सरबगतं।।
केवल राम नाम मनोरम।।
बदि अमृत तक मइअं।।

रामभक्ति के प्रथम आचार्य के रूप में स्वामी रामानन्द की स्वीकृति सर्वमान्य है। यह भी कम आश्चर्य की बात नहीं है कि कबीर और तुलसीदास—दोनों ने ही राम भक्ति को अपना आधार बनाया। एक ने उन्हें निर्गुण रूप में स्वीकार किया तो दूसरे ने सगुण रूप में, किन्तु इन दोनों सन्तों के प्रेरणा-स्रोत स्वामी रामानन्द हैं। राघवानन्द स्वामी को उनका गुरु माना जाता है किन्तु वे उस परम्परा को स्वीकार करते थे जिसमें न शूद्रों का स्थान था, न स्त्रियों का। यह भी कहा जाता है कि रामानन्द का अपने शिष्य वर्ग में शूद्रों और स्त्रियों को भी स्थान दिये जाने के कारण अपने गुरु से मतभेद हो गया था, इसलिए उन्होंने नया सम्प्रदाय स्थापित कर लिया था।

उदारचेता स्वामी रामानन्द को निर्गुण सन्तों ने भी आदर दिया और सगुण भक्तों ने भी। आदिग्रन्थ में उनका जो पद सम्मिलित है, वह निर्गुण मार्गी सन्तों की विचारसरणि के अनुकूल है। इसमें मन्दिर की कर्मकाण्डी पूजा की अपेक्षा अपने हृदय में भी ब्रह्म को ढूंढ़ने पर बल है, वेद-पुराण के प्रति भी निर्गुणियोंवाला दृष्टिकोण है और गुरु की कृपा से सभी भ्रमों से निवारण की युक्ति पर बल है।

निर्गुण विचारधारा वाले सन्त आर्ष ग्रन्थों को अकाट्य नहीं मानते। वे वेदों को स्वतः प्रमाण भी नहीं मानते, न ही शास्त्र वचन को अन्तिम सत्य मानते हैं। उनका आग्रह ईश्वर से अनन्य प्रेम, उसकी भक्ति और आत्मानुभूति पर अधिक है। तुलसीदास जैसे सगुण भक्त अपनी बात की सच्चाई इस तर्क पर प्रमाणित करते हैं कि वह श्रुतिसम्मत है—

श्रुति सम्मत हरि भगति पथ, संजुत विरति विवेक।
तेहि न चलहि नर मोहि बस कल्पहिं पन्थ अनेक।

किन्तु ऐसा आग्रह इन सन्तों का नहीं है। रामानन्द अपने पद में कहते हैं—

वेद-पुरान सभ देखे जोइ
उहां तउ जाईऐ जउ ईहां न होई

आदिग्रन्थ का मूल आग्रह ईश्वर नाम को समझने, उसे बूझने, उसे आत्मसात करने और जीवन में धारण करने में है, वेद अथवा कतेब (कुरान) के पढ़ने पात्र से नहीं है। गुरु अमरदास कहते हैं—

सिम्रित सासत्र बहुतु बिसथारा।।
माइआ मोहु पसरिया पासारा।।
मूरख पड़हि सबदु न बूझहि,
गुरमुखि बिरलै जाता हो।।

आदिग्रन्थ में संगृहीत पद में परमानन्द भी इस बात का आग्रह करते हैं कि यदि मनुष्य में भक्ति की पवित्र भावना नहीं उत्पन्न हुई, दान वृत्ति नहीं उपजी, काम, क्रोध, लोभ, परनिन्दा जैसी वृत्तियां दूर नहीं हुईं, तो मात्र पुराण सुन लेने से क्या होगा—

तै नर किआ परान सुनि कीना
अनपावनी भगति नहीं उपजी,
भूखै दानु न दीना।। 1।। रहाउ।।
कामु न बिसरिउ, क्रोध न बिसरिउ,
लोभ न छूटिउ देवा।।
परनिंदा मुख ते नहीं छूटी,
निफल भई सभ सेवा।। 1।।

कबीर ने स्पष्ट शब्दों में कहा कि पण्डित वेद-पुराण पढ़ते हैं, मौलाना कुरान पढ़ते हैं, किन्तु जिन्हें राम की पहचान नहीं है वे नरक में जाते हैं—

पंडित वेद-पुराण पढ़ै ओ मौलाना पढ़ै कुरान।।
कह कबीर वे नरक गये जिन हरदम राम न जाना।।

इन सन्तों की आस्था बाहरी कर्मकाण्डी नहीं है। आदिग्रन्थ में एक पद ऐसा है, जिसके प्रारम्भ में लिखा है 'भैरउ महला-5' अर्थात् यह पद पांचवें गुरु, गुरु अर्जुन देव ने भैरव राग में रचा है, किन्तु पद के अन्त में लिखा है—कहु कबीर, इहु कीआ बखाना।। आदिग्रन्थ के टीकाकारों का मत है कि इस पद की रचना पंचम गुरु ने की थी, किन्तु इसे उन्होंने सन्त कबीर को अर्पित किया था। इस पद में कहा गया है—मैं तो उस परम सत्ता की सेवा करता हूं जिसके पास सभी समस्याओं का समाधान है। पूरा पद इस प्रकार है—

वरत न रहउ, मह रम दाना।।
तिसु सेवी, जो रखै निदाना।।
ऐकु गोसाई अलहु मेरा।।
हिंदू तुरक दूहां नेबेरा।। 1।। रहाउ।
हज काबै जाउ न तीरथ पूजा।।
एको सेवी अवरु न दूजा।।2।।
पूजा करउ न निवाज गुजारउ।।
एक निरंकार ले रिदे नमसकारउ।। 3।।
ना हम हिंदू, न मुसलमान।।
अहल राम के पिंड परान।। 4।।

कहु कबीर इहु कीआ बखाना।।
गर पीर मिलि, खुदि खसमु पछाना।। 5।।

सन्त कबीर ने तो स्मृतियों की स्पष्ट निन्दा की है। स्मृतियों द्वारा ही वर्ण व्यवस्था, ऊंच-नीच, धर्म और समाज में नारी की स्थिति की व्याख्या है जिसे ये सन्त पूरी तरह से नकारते हैं कबीर कहते हैं—

स्मृतियों को वेद की पुत्री कहते हैं। ये (वर्ण-व्यवस्था और कर्मकाण्ड की) जंजीर और रस्सी ले आयी हैं। इन्होंने अपने (श्रद्धालुओं के) नगर को बांध लिया है और इन्हें इनके मोहजाल में जकड़कर इनके सिर पर काल का तीर तान दिया है। यह जंजीर काटे कटती नहीं, तोड़ने से टूटती भी नहीं। यह सर्पिणी बनकर सारे संसार को खा रही है। हम देखते हैं कि इन स्मृतियों ने (इनके द्वारा दी हुई व्यवस्था ने) सम्पूर्ण संसार को लूट लिया है। कबीर तो राम का नाम लेकर इनसे मुक्त हो गया है—

वेद की पुत्री सिंम्रित है भाई।।
सांकल जेवरी लै आई।। 1।।
आपन नगर आप ते बाधिया ।।
मोह कै फाधि काल सरु सांधिया।। 1।। रहाउ।।
कटी न कटै तूटि नह जाई।।
सा सापनि होइ जग कउ खाई।।2।।
हम देखतु, जिनि सभु जगु लूटिआ।।
कहु कबीर, मैं राम कहि छूटिआ।।3।।

स्पष्ट है कि पूर्व मध्यकाल (आठवीं से तेरहवीं शती) में जिस श्रुति-स्मृति सम्मत भक्ति पर अत्यधिक आग्रह था, जिस काल पर स्मृतियों और पुराणों का पूरा प्रभाव था, जिस काल में ब्राह्मणों और बौद्धों का आपसी टकराव चरम पर था और कर्मकाण्ड पूरी तरह छाया हुआ था, उस काल और उसके पश्चात् उत्तर मध्यकाल में इसके विरुद्ध स्वर मुखरित हुआ। भक्ति के क्षेत्र में शूद्र भी आये और स्त्रियां भीं। इन्होंने श्रुति-स्मृति की अकाट्य मान्यता को नकार दिया, कर्मकाण्ड की खिल्ली उड़ायी, अवतारवाद को अस्वीकार कर दिया, मूर्तिपूजा के प्रति अपनी अनास्था व्यक्त की, परमसत्ता को धर्म स्थानों और तीर्थयात्रा से मुक्त कर दिया, जाति-पांति के बन्धन तोड़ दिये और इस बात का उद्घोष कर दिया कि—

जाति पाति पूछै नहि कोई,
हरि को भजै सो हरि का होई।।

मूर्तिपूजा की निस्सारता की चर्चा करते हुए नामदेव ने अपनी प्रौढ़ावस्था में अनेक प्रश्न उठाये। जैसेकि—घड़ा लाकर उसमें पानी भरकर मैं अपने ठाकुर को स्नान कैसे कराऊं क्योंकि जल में तो बयालीस लाख जीव रहते हैं जिनमें मेरा बीठल रहता है। फूलों की माला अपने ठाकुर को कैसे पहनाऊं क्योंकि भंवरे ने तो उसकी गन्ध पहले ही ले ली है। दूध लाकर उससे बनायी खीर का भोग अपने ठाकुर को कैसे लगाऊं क्योंकि बछड़े ने पहले ही उसे जूठा कर दिया है। मेरा बीठल तो सर्वत्र बसता है, वह तो सम्पूर्ण सृष्टि में व्यापक है—

आनील कुंभ, भराइले ऊदक,
ठाकुर को इसनानु करउ।।
वइआलीस लाख जी जल महि होते,
बीठल मैला काइ करउ।।
जत्र जाउ तत बीठल भैला।।
महाअनंद करे सदकेला।।

सन्त कबीर ने तो बड़े स्पष्ट शब्दों में कह दिया—

पाहन पूजे हरि मिलै तो मैं पूजूं पहार।।
ताते यह चाकी भली, पीस खाय संसार।।

गुरु अर्जुन देव ने मूर्तिपूजा की निस्सारता व्यक्त करते अपने एक पद में कहा है—

घर महि ठाकुरु नदरिन आवै,
गल महि पाहणु लै लटकावै।।1।।
भरमे भूला साकतु फिरता।।
नीरु बिरोलै खपि खपि मरता।।1।।
जिसु पाहणु किउ ठाकुर कहता।।
उह पाहणु लै उस कउ डुबता।।2।।
गुनहगार लूण हरामी।।
पाहणु नाव न पारगरामी।।3।।
गुर मिलि नामक ठाकुर जाता।।
जलि थलि महीअल पूरन विधाता।।4।।

(आदिग्रन्थ, पृष्ठ 738)

ये सन्त बहुदेववाद को भी स्वीकार नहीं करते और एक ईश्वर की अवधारणा को स्वीकार करते हैं। गुरु नानक ने ओंकार के साथ 'एक' लगाकर इस तथ्य की पुष्टि कर दी थी। उन्होंने आग्रहपूर्वक कहा था—

जेता सबदु सूरति धुनि तेती,
जेता रूप काइआ तेरी।
साहिब मेरा एको है, एको है भाई एको
है।

सन्त कबीर ने भी यही घोषित किया था—

'साई मेरा एक तू और न दूजा कोय।'

सन्त कवियों का आराध्य मनुष्य-मनुष्य में कोई भेदभाव नहीं करता। वह किसी विशिष्ट धर्म, मत मजहब, सम्प्रदाय के साथ जुड़ा हुआ नहीं है। वह सर्वव्यापी है, सर्वपालक है, सर्वहन्ता है। वह सभी का पिता है, सभी उसके पुत्र हैं। उसका कोई वर्ण नहीं है, कोई जाति नहीं है, रूप-अरूप नहीं है, उसका कोई विशेष स्थान अथवा गांव नहीं है। सन्त कबीर कहते हैं—

करता के कुछु रूप न रेखा। करता के कुछ वरन न बेखा।
ताके जात गोत कुछ नाही। महिमा बरन न जाय मो पाही।।
रूप-अरूप नहीं तोहि ताऊं। वर्न-अवर्न नहीं तंहि ठाऊं।
कहै कबीर विचारि कै, जाके बर्न न गांव।।
निराकार औ निर्गुना, है पूरत सब ठांव।।

गुरु अर्जुन देव कहते हैं कि परमात्मा उसी प्रकार व्यापक है जैसे सभी वनस्पतियों में आग समायी हुई है, दूध में घी समाया हुआ है। इसी प्रकार परमात्मा की ज्योति ऊंच-नीच सभी में व्याप्त है। वह तो घट-घट में बसता है—

सगल बनसपति महि बैसन्तरु सगल दूध महि घीआ।।
ऊंच-नीच महि जोति समाणी, घटि-घटि माधउ जीआ।।
(आदिग्रन्थ, पृष्ठ 617)

सन्त नामदेव इस भाव को व्यक्त करते हुए कहते हैं—

कहत नामदेव हरि की रचना, देखहु रिदै बीचारी।।
घट-घट अंतर सरब निरंतर केवल एक मुरारी।।
(आदिग्रन्थ, पृष्ठ 485)

शेख फ़रीद ने कहा कि खुदा जनता में बसता है और जनता रब में बसती है। यदि उसके बिना और किसी का अस्तित्व नहीं है तो बुरा किसे कहा जाए—

फ़रीदा खालकु खलक महि खलक वसै रब माहि।।
मंदा किस नो आखीऐ जां तिस बिन कोइ नाहि।।

(आदिग्रन्थ, पृष्ठ 1381)

ब्राह्मण, पण्डा, पण्डिया, पाण्डे आदि शब्दों द्वारा इन सन्तों ने उसे पुरोहित वर्ग को अनेक बार सम्बोधित किया है, जिसकी मान्यताओं और कर्मकाण्डों के कारण तत्कालीन समाज में कठोर वर्ण-व्यवस्था को प्रश्रय मिलता था, अद्विज जातियों के साथ अन्यायपूर्ण व्यवहार किया जाता था, उन्हें ईश्वर-भक्ति से वंचित रखा जाता था, उन्हें मन्दिर-प्रवेश नहीं करने दिया जाता था और उन्हें शूद्र कहकर अपमानित किया जाता था।

नामदेव जैसे निस्पृह सन्त को इन्हीं पण्डे-पुरोहितों ने मन्दिर से इसलिए निष्कासित कर दिया था, क्योंकि वे जाति के छीपा थे। ऐसे ही एक पण्डे को सम्बोधित करते हुए उन्होंने कहा था—

ऐ पाण्डे, मुझे तो सर्वव्यापी बीठल के दर्शन हो गये, जिसे तुम मन्दिर में ही सीमित मानते रहे (और जहां से मुझे तुमने निष्कासित कर दिया था) हे मूर्ख! यह बात मैं तुम्हें समझाता हूं। तुमने अपने सभी पूज्य केन्द्रों को स्वयं ही लांछित कर रखा है। तुम्हारी गायत्री लोध किसान का खेत खा रही थी। किसान ने लाठी से उसकी टांग तोड़ दी, जिससे वह लंगड़ी-लंगड़ी चलती है। (एक पौराणिक कथा के अनुसार किसी शाप के कारण गायत्री को गाय की योनि प्राप्त हुई। उस गाय ने किसी किसान का खेत चर लिया। किसान ने क्रोधित होकर उसकी एक टांग तोड़ दी, परिणामस्वरूप वह लंगड़ी हो गयी)

हे पाण्डे, मैंने तुम्हारा महादेव सफेद बैल पर चढ़कर आते हुए देखा था। उन्होंने अपने एक मोदी भक्त के घर भोजन तैयार कराया। उन्होंने भोजन तो किया नहीं, उलटे उसके बेटे की हत्या का दी। (एक प्रचलित कथा के अनुसार महादेव ने किसी भक्त के घर भोजन तैयार करवाया। भोजन रुचिकर न लगने के कारण उन्होंने भक्त को शाप दिया और उसके पुत्र की मृत्यु हो गयी।)

हे पाण्डे, मैंने तुम्हारे रामचन्द्र को भी आते देखा था। उनकी रावण से लड़ाई हो गयी और वे अपनी पत्नी गंवा बैठे।

नामदेव ने ये बातें पाण्डे को क्यों स्मरण करायीं? लगता है वे उस वर्ग से बहुत असन्तुष्ट थे, जो उनकी भक्ति के मार्ग में न केवल बाधाएं उत्पन्न करता था, वरन् उन्हें लांछित भी करता था। इसे एक क्रुद्ध तथा अपमानित मन की प्रतिक्रिया मानना चाहिए। पद के अन्त में वे यह भी कहते हैं कि हिन्दू तो पूरी तरह रूढ़िग्रस्त होकर अन्धा हो गया है, तुर्क (मुसलमान) भी बड़ी सीमा तक इस रूढ़िग्रस्तता का शिकार हो गया है। इसलिए

वह काना है। इन दोनों से ज्ञानी सयाना है! हिन्दू मन्दिर में पूजा करता है मुसलमान मस्जिद में जाता हैं नामदेव तो उसकी सेवा करता है जो न मन्दिर में है, न मस्जिद में–

नामदवे का पद इस प्रकार है-

आजु नामे बीठल देखिया, मूरख को समझाऊ रे।।
पांडे तुमरी गाइत्री, लोधे का खेत खाती थी।।
लैकरि ठेगा टगरी तोरी, लांगत लांगत जाती थी।। 1।।
पांडे तुम्हारा महादेव,
धउले बलद चडिआ आवत देखिआ था।
मोदी के घर खाणा पाका, वा का लड़का मारिआ था।।2।।
पांडे तुम्हारा रामचंदु, सो भी आउत देखिआ था।
रावन सेती सरबर होई, घर की जोइ गवाई थी।।3।।
हिन्दू अन्ना तुरकू काणा।।
दोहू ते गिआनी सिआणा।।
हिन्दू पूजे देहुरा, मुसलमान मसीत।।
नामे सोई सेविआ, जह देहरा न मसीत।। 4।।

एक अन्य पद में नामदेव ने अपने बीठल को सम्बोधित करते हुए कहा–इन पण्डितों को यह भ्रम है कि ये ऊंची जाति के हैं। इसलिए इन्होंने मुझे शूद्र कहकर मन्दिर से मारकर उठा दिया। यदि तुमने मुझे मृत्यु के बाद मुक्ति दे दी तो उसे कौन जानेगा। ये पाण्डे तो मुझे नीच कहते हैं। यह तो तुम्हारा अपमान है। तुमने तो नामदेव के लिए मन्दिर का द्वार घुमा दिया था और पण्डों को पीठ दिखा दी थी–

मो कउ तूं न बिसारि, तू न बिसारि।।
तू न बिसारे रामईआ।। 1।। रहाउ।।
आलावंती एहु भ्रमु जो है
मुझ ऊपरि सभ कोपिलां।।
कहा करउ बाप बीठला।। 1।।
मूए हुए जउ मुकती देहुगे।।
मुकति न जाने कोइला।।
ऐ पंडिआ मोकउ ढेढ कहत,
तेरी पैज पिंछुउडी होइला।। 2।।
जो तू दइआलु कृपालु कही अतु हैं,
अतिभुज भइओ अपारला।।

फेरि दीआ देहुरा नामे कउ,
पंडीअन कउ पिछवारला ।।3।।

सन्त कबीर ने अपने एक पद में पाण्डे को सम्बोधित करते हुए कहा—तुमने कैसी कुमति धारण कर ली है। इससे तो तुम परिवार सहित (भवसागर में) डूब जाओगे। वेद-पुराण पढ़ने से तुम्हें क्या लाभ होगा। यह (ज्ञान का भार) तो वैसा ही है जैसे गधे पर चन्दन का बोझ लाद दिया जाए। तुम्हारा उद्धार कैसे होगा, क्योंकि तुम्हें तो राम-नाम का मर्म ही नहीं मालूम। तुम (यज्ञ में) जीवों का वध करते हो और इसे धर्म कहते हो। तुम अपने आपको मुनिवर कहते हो, फिर कसाई किसे कहेंगे? मन से तुम अन्धे हो, स्वयं कुछ बूझते नहीं। तुम और लोगों को कैसे ज्ञान दोगे? धन के लोभ में तुम विद्या बेचते हो, तुम्हारा जन्म तो व्यर्थ जा रहा है। नारद, व्यास और शुकदेव भी यही कहते हैं—

पंडिया, कवन कुमति तुम लोग।।
बूडहुगे परवार सकल सिउ राम न जपहु अभागे।।रहाउ।।
वेद पुरान पढ़े का किआ गुन, खर चंदन जस भारा।।
राम नाम की गति नहीं जानी, कैसे उतरसि पारा।।1।।
जीअ वधहु सु धरमु करि थापहु अधरम कहतु कत भाई।।
आपस कउ मुनिवर करि थापहु, का कउ कहहु कसाई।।2।।
मन के अंधे, आपि न बूझहु काहि बुझावहु भाई।।
माइआ कारन बिदिआ बेचहु जनमु अबिरथा जाई।। 3।।
नारद बचन, बिआसु कहत है, सुक कउ पूछहु जाई।।
कहि कबीर रामहि रमि छूटहु नाहित बूढे भाई।। 4।।

इसी भाव को व्यक्त करते हुए उन्होंने एक अन्य पद में कहा था—वेद के भरोसे रहकर पाण्डे तो डूबकर मर गया, किन्तु कबीर राम के साथ लगकर तर गया—

तूं ब्राहमन मैं कासी का जुलहा।।
मोहिं तोहिं बराबरी कैसे कै बनहि।।
कहें कबीर हम राम लगि उबरे।।
बेदु भरोसे पांडे डूबि मरहिं।।

ब्राह्मण की उच्चता, श्रेष्ठता और भूदेवता जैसी प्रतिष्ठा पर पुराणों और संहिताओं में बहुत कुछ लिखा गया है। सम्भवतः यही कारण था कि वह अहंकार की सभी सीमाओं को पार कर गया था और शेष वर्णों, विशेषरूप से शूद्रों के प्रति उसका दृष्टिकोण हेय भाव से भरा हुआ था। सन्त कबीर ने उसकी कथित श्रेष्ठता पर जितने

प्रश्न-चिह्न लगाये उतने किसी अन्य सन्त ने नहीं। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में पूछा—तुम ब्राह्मण किस प्रकार हो, हम शूद्र किस प्रकार हैं। क्या हमारी शिराओं में लहू बहता और तुम्हारी शिराओं में दूध प्रवाहित होता है—

तुम कत ब्राहमण, हम कत सूद।
हम कत लोहू, तुम कत दूध।।

सन्त कबीर ने ही बाह्मण से यह पूछा था कि तुम्हारा जन्म भी उसी प्रक्रिया से हुआ है जिस प्रक्रिया से सभी प्राणी जन्म लेते हैं—

जौ तू ब्राहमण ब्रहमणी जाया।।
तउ आन बाट काहे नहि आया।।

सन्त कबीर ने पण्डित और मुल्ला को सभी झगड़ों की जड़ बताया। उन्होंने कहा—जब से मैंने इन दोनों का त्याग कर दिया है मेरा किसी से कोई झगड़ा ही नहीं रहा—

हमारा झगरा रहा न कोऊ।।
पंडित मुलां छाडे दोऊ।।
बुनि बुनि आप, आप पहिरावउ।।
जह नहीं आपु, तहा होई गावहु।।2।।
पंडित मुलां जो लिखि दीआ।।
छाडि चले हम कछू न लीआ।।3।।

(आदिग्रन्थ, पृष्ठ 1158)

गुरु नानक ने अपने शब्द में कहा—पण्डित पोथी (शास्त्र) पढ़ते है, किन्तु विचार को नहीं बूझते। दूसरों को उपदेश देते हैं—इससे उनका माया का व्यापार चलता है। उनकी कथनी झूठी है। वे संसार में भटकते रहते हैं। इन्हें शबद के सार का कोई ज्ञान नहीं है। यह पण्डित तो वाद-विवाद में ही पड़े रहते हैं—

पंडित वाचहि पोथीआ ना बूझहि वीचारु।।
आन को मती दे चलहि माइआ का वापारू।।
कथनी झूठी जगु भवै रहणी सबदु सबदु सु सारु।।6।।

(आदिग्रन्थ, पृष्ठ 55)

गुरु अर्जुन देव ने अपनी रचना 'सुखमनी' में अच्छे आचारवान पण्डित के लक्षण बताये हैं—

सो पंडित जो मन परवोधै।। राम नामु आतम महि सोधै।।
रामनाम सारु रस पीवै।। उस पंडित कै उपदेसि जगु जीवै।।
हरि की कथा हिरदै वसावै।। सो पंडितु फिरि जोनि न आवै।।
वेद पुरान सिम्रित बूझे मूलु।। सूखम महि जानै असथूलु।।
चहु वरना कउ दे उपदेसु।। नानक उसु पंडितु कउ सदा अदेसु।।

(आदिग्रन्थ, पृष्ठ 274)

इस पद में गुरु अर्जुनदेव की दो बातें द्रष्टव्य हैं—एक सही अर्थों में पण्डित वह है जो केवल शास्त्रों को पढ़ता ही नहीं है, उसके मूल सन्देश को भी समझता है। दूसरी महत्त्वपूर्ण बात यह है कि अपना उपदेश द्विज जातियों तक ही सीमित नहीं रखता, वह चारों वर्णों (शूद्रों सहित) सभी को अपना ज्ञान-भण्डार वितरित करता है।

इन सन्तों की दृष्टि में परमेश्वर की एक विशेषता यह है कि वह नीचे समझे जानेवाले लोगों को ऊंचा बना देता है। ऐसे लोग उसकी कृपा के विशेष पात्र हैं। गुरु नानक ने अपनी पूरी प्रतिबद्धता उनके प्रति व्यक्त की थी, जिन्हें नीच समझा जाता था। यह भी कहा था कि परमेश्वर की कृपा दृष्टि वहां पड़ती है जहां नीचों को संभाला जाता है—

नीचां अन्दरि नीच जाति नीची हूं अति नीच।
नानक तिनके संगि साथ वडिआं सूं क्या रीस।।
जित्थे नीच संभालिऊन तिथै नदरि तेरी बखसीस।।

सन्त रविदास कहते हैं—ईश्वर की भक्ति करने से ब्राह्मण, वैश्य, शूद्र, खत्री, डोम, चण्डाल, म्लेच्छ आदि सभी पवित्र हो जाते हैं—

ब्रहमन बैस, सूद अरु खत्री,
डोम चण्डार मलेछ मन सोइ।।
होइ पुनीत भगवंत भजन ते,
आपु तारि तारे कुल दोइ।।

(राग विलावल)

भगवद्भक्ति से नीच समझे जानेवाले लोग ऊंचे उठ जाते हैं, यह विश्वास इन सन्त कवियों का मूलाधार है। इनका यह विश्वास ही इन्हें उस युग के सगुण भक्तिधारा के द्विज भक्तों की समकक्षता में ले आया था, जिसे स्वीकार करने में उन्हें बहुत असुविधा हो रही थी। सन्त रविदास तो यह भी कहते हैं कि बड़े-बड़े पण्डित, सूरमा, छत्रपति, राजा ये भक्त की बराबरी नहीं कर सकते—

पंडित सूर छत्रपति राजा भगत बराबरि अउर न कोइ।।

वे यह भी कहते हैं कि मेरा गोविन्द तो नीचों को ऊंचा बना देता है। वह किसी से डरता नहीं है। इसी कारण नामदेव (छीपा), कबीर (जुलाहा), त्रिलोचन (वैश्य), सधना (कसाई), सैण (नाई), इन सभी का उद्धार हो गया–

नीचह ऊंच करें मेरा गोबिन्दु, काहू ते न डरै।।
नामदेव, कबीर, त्रिलोचन, सधना सैन तरै।।

(राग मारू)

ये सन्त डंके की चोट पर अपनी नीची समझी जानेवाली जाति की घोषणा करते हैं। नामदेव अपने पदों में बार-बार यह कहते हैं कि मैं छीपा हूं, कबीर कहते हैं कि मैं जुलाहा हूं, रविदास बार-बार कहते हैं मैं चमार हूं, धन्ना अपने आपको जाट और सैण अपने आपको नाई कहने में कोई संकोच नहीं करते। इस प्रकार वे द्विज भक्तों को जैसे बार-बार चुनौती देते हैं और यह दावा करते हैं कि इन जातियों में जन्म लेकर हमने अपनी भक्ति द्वारा उसी प्रकार की ईश्वर की अनुकम्पा प्राप्त कर ली जैसे द्विज जातियों के भक्तों ने अपने शास्त्र-बल और पाण्डित्य के होते हुए भी प्राप्त नहीं की। इसी कारण चौथे गुरु, गुरु रामदास यह कहते हैं कि रविदास चमार ने प्रभु की स्तुति द्वारा अपनी जाति का पतितत्व समाप्त करके ऐसी उत्तम स्थिति प्राप्त की कि चारों वर्णों के लोग उनके चरणों में आ गिरे–

रविदासु चमार उसतति करे,
हरि कीरति निमख इक गाइ।।
पतित जाति उतमु भइआ।।
चारि वरन पए पगि आये।।

(राग सूही)

गुरु नानक ने अपनी रचना 'जपु' में परमेश्वर के अनेक गुणों के साथ ही उसके दो नकारात्मक गुणों की भी चर्चा की थी। उन्होंने कहा था कि वह निरभउ (निर्भय) है और निरवैरु (निर्वैर) है। तत्कालीन समाज में कुछ लोग परमेश्वर को इस प्रकार चित्रित कर रहे थे जैसे वह कुछ लोगों का मित्र है और कुछ का शत्रु है। गुरु नानक ने कहा कि वह किसी से वैर नहीं रखता, वह निर्वैर है। इसी के साथ कुछ लोग यह भी चित्रित कर रहे थे जैसे परमात्मा भी भयग्रस्त है। वह भी अपने बिचौलियों की सिफारिश के बिना किसी प्राणी को अपने निकट नहीं आने देता।

ये सन्त समाज में पुरोहित वर्गों द्वारा उत्पन्न किये गये भय-भाव को दूर करना चाहते थे। सन्त रविदास ने कहा–'नीचहुं ऊंच करे मेरा गोबिन्द काहू ते न डरै।'

उस समय लोग पुरोहित वर्ग से भयग्रस्त रहते थे, जो उन्हें पाप, पुण्य, नरक-स्वर्ग, ईश्वरीय कोप, प्रकृति के आक्रोश से डराता रहता था। दूसरा शासक वर्ग था। जो सामान्य-जन को अपनी राजभक्ति से भयभीत किये रखता था। सन्तों ने कहा—प्रभु की शरण में आओ, क्योंकि वह निर्भय है, वह किसी से नहीं डरता। गुरु नानक ने कहा—जब सच से साक्षात्कार होता है तो भय चला जाता है—

मन रे साचु मिलै भउ जाई।।

गुरु तेग़बहादुर ने कहा था—वही व्यक्ति सच्चा ज्ञानी है जो किसी को भयभीत नहीं करता, न ही किसी का भय स्वीकार करता है—

भै काहू केउ देत नहि, नहि भै मानत आन।।
कहु नानक सुनि रे मना गिआनी ताहि बखान।।

उन्हीं के शब्दों में परमेश्वर के प्रमुख गुण हैं—वह भय का नाश करता है, दुर्मति नष्ट करता है और वह अनाथों का नाथ है—

भै नासन दुरमति हरन कल महि हरि को नामु।।
निसिदिन जो नानक भजै सफल होहि तिह काम।।

ये सन्त अपने समय के सामाजिक अन्याय के प्रति अपनी आवाज बुलन्द करते हैं, उसका तीव्र विरोध करते हैं और भेदभाव रहित समतामूलक समाज की स्थापना का संकल्प करते हैं। इसके साथ ही उन्होंने अपने समय की राजनीतिक स्थितियों को भी झेला और अपनी प्रतिक्रियाएं व्यक्त कीं।

अपने समय के शासक मोहम्मद बिन तुग़लक से सन्त नामदेव का टकराव हो गया था। वे तीर्थाटन करते हुए दिल्ली पहुंचे तो सुलतान ने उन्हें बन्दी बना लिया और कहा तुम बड़े भक्त हो। मैं तुम्हारे राम के काम देखना चाहता हूं। तुम मेरी मरी हुई गाय को जीवित कर दो नहीं तो तुम्हारी गर्दन उड़ा दी जाएगी। इस प्रसंग का वर्णन नामदेव ने स्वयं किया है—

सुलतान पूछै, सुनु बे नामा।।
देखहु राम तुम्हारे कामा।। 1।।
नामा सुलतान बाधिला।।
देखहु तेरा हरि बीठुला।।1। रहाउ।।
बिसमिलि गऊ देहु जीवाइ।।
नातरु गरदनि मारउ ठाइ।। 2।।

बादिसाहु चढिउ अहंकारि।।
गज हसती दोनों चमकारि।। 5।।

इस पद में नामदेव के अनुसार उनके सम्मुख राज्य-शक्ति का संकट खड़ा हो गया था, जिसे बीठल ने अपनी कृपा से दूर कर दिया था।

सन्त कबीर सिकन्दर लोदी के कोपभाजन बन गये थे। इसका वर्णन उनकी रचनाओं में भी मिलता है। आदिग्रन्थ में संगृहीत एक पद में वे कहते हैं—हे प्रभु! (बादशाह सिकन्दर लोदी के आदेश से) काजी ने हुक्म दिया है कि इस कबीर पर हाथी चढ़ा दो। किन्तु हे मेरे ठाकुर, मेरा तो तुम्हीं पर जोर है। मेरी बाहें बांधकर इन्होंने मुझे मिट्टी के ढेले की तरह हाथी के सामने फेंक दिया। महावत ने उसे अंकुश से मारकर मेरी ओर बढ़ाया भी, किन्तु हाथी के हृदय में तो भगवान का वास था, इसलिए सभी संकटों से मेरी रक्षा हुई—

भुजा बांधि, मिला करि डारिउ।।
हसती कोपि, मूंड महि मारिउ।।
हसति भागि कै चीसा मारै।।
इआ मूरति कै हउ बलिहारै।।1।।
आहि मेरे ठाकुर तुमरा जोरू।।
काजी बकिबो, हसती तोरू।। 1।। रहाउ।।
रे महावत, तुझु डारउ काटि।।
इसहि तुरावहु घालहु साटि।।
हसति न तोरै, धरै धिआनु।।2।।
किआ अपराधु संत है कीना।।
बांधि पोट कुंजर कउ दीना।।
कुंजर पोट लै लै नमसकारे।।
बूझी नहीं काजी अंधिआरै।। 3।।
तीनि बार पतीआ भरि लीना।।
मन कठोर अजहू न पतीना।।
कहि कबीर हमरा गोबिन्दु।।
चउथे पद महिजन की जिंदु।। 4।।

सन्त कबीर ब्राह्मणों के कर्मकाण्ड और मुल्लाओं की शरियत की निरन्तर आलोचना करते रहे और इस कारण उन्होंने दोनों वर्गों के धर्म के अगुवाओं को अपने विरुद्ध कर लिया था। कहा जाता है कि इन्होंने मिलकर सिकन्दर लोदी से उनकी

शिकायत की, जिसका परिणाम यह हुआ कि उन्हें राज्य-शक्ति द्वारा अनेक प्रकार के कष्ट दिये गये। अपने एक पद में उन्होंने इसका उल्लेख करते हुए कहा कि उन्हें जंजीरों से जकड़ा गया, गंगा में बहा दिया गया, किन्तु जिनका मन प्रभु के चरणों में लगा होता है, उनका मन विचलित नहीं होता इसलिए उनका तन भी नहीं डरता। स्वयं गंगा ने उनकी जंजीरों तोड़ दीं और कबीर इस प्रकार गंगा की लहरों पर उतराने लगे जैसे मृगछाला पर बैठे हों–

गंगा सुसाइनि गहिर गंभीर।।
जंजीर बाध करि खरे कबीर।। 1।।
मनु न डिगै, तनु काहे कउ डराइ।।
चरन कमल चितु रहिउ समाइ।। रहाउ।।
गंगा की लहरि मेरी टूटी जंजीर।।
मृगछाला पर बैठे कबीर।। 2।।
कहि कबीर कोउ संग न साथ।।
जल थल राखन है रघुनाथ।। 3।।

(आदिग्रन्थ, पृष्ठ 1162)

उस समय की राज्य-व्यवस्था, विदेशी आक्रमण, सरकारी कर्मचारियों की मानसिकता पर गुरु नानक ने बड़ी तीक्ष्ण टिप्पणियां कीं। सुमेर पर्वत पर जब उनकी भेंट सिद्धों के साथ हुई तो सिद्धों ने पूछा कि देश की क्या स्थिति है तो उन्हांने उत्तर दिया–इस कलियुग में राजा कसाई हो गये हैं, धर्म पंख लगाकर उड़ गया है, झूठ की अमावस छायी हुई है, सच का चन्द्रमा कहीं दिखाई नहीं देता–

कलि राती राजे कासाई धरमु पंख करि उडरिया।।
कूड़ु अमावस सचु चन्द्रमा दीसै नाही कह चडिया।।

(आदिग्रन्थ, पृष्ठ 145)

तत्कालीन राज शासकों और उनके कारिन्दों के चरित्र और आचरण पर अपना तीव्र रोष व्यक्त करते हुए उन्होंने कहा था–आज के शासक व्याघ्र के समान हिंसक हैं और उनके कारिन्दे कुत्तों के समान लालची हैं और शान्त जनता को बिना किसी कारण पीड़ित करते रहते हैं। उनके नौकर, कुत्तों के समान, अपने पैर के नाखूनों से लोगों को लहूलुहान करते हैं और उनका खून चाट जाते हैं। जहां इनके कुकर्मों की परख की जाएगी, वहां इनकी नाक कट जाएगी–

राजे सींह मुकद्दम कुत्ते।।

जाइ जगाइन बैठे सुत्ते।।
चाकर नहन्दा पाइन्हि घाउ।।
रतु पितु कुति हो चटि जाउ।।
जिथे जीआ होसी सार।।
नकी बडी लाइन बार।।

(आदिग्रन्थ, 1288)

बाबर के आक्रमण को गुरु नानक ने अपनी आंखों से देखा था। आक्रमणकारियों ने उन्हें बन्दी भी बना लिया था। भारतवासियों की उस समय जो दुर्दशा हुई थी, गुरु नानक ने उसका बड़ा मार्मिक चित्रण अपने कुछ पदों में किया है। जिन स्त्रियों के सिर में सुन्दर पट्टियां शोभित होती थीं, जिनकी मांग सिन्दूर से भरी होती थी, जालिमों ने उनके बाल काट दिये और उन्हें इतनी बुरी तरह घसीटा कि उनके गले तक धूल भर गयी। जो महलों में निवास करती थीं, अब उन्हें बाहर बैठने का स्थान भी नहीं मिलता। विवाहित स्त्रियां, जो अपने पतियों के पास सुशोभित थीं, जो पालकियों में बैठकर आयी थीं, जिन पर लोग जल न्योछावर करते थे, उन पर लाखों रुपयों की वर्षा होती थीं, वे मेवे खाती थीं, सेजों पर रमण करती थीं, अब उनके गलों की मोतियों की माला टूट गयी है और उनके स्थान पर अत्याचारियों ने रस्सियां डाल दी हैं। धन और यौवन ने उन्हें अपने रंग में रंग रखा था, अब ये दोनों की उनके बैरी हो गये हैं। सिपाही उनकी इज्जत लूटकर चले गये हैं—

जिन सिर सोहनि पट्टियां मांगी पाइ संधूर।।
से सिर काती मुनीअन्हि गल विचि आवै धूड़ि।।
महला अंदरि होंदीआं हुणि बहणि न मिलन्ह हदूरि।।
जदहु सीआ वीआहिआं, लाड़े सोहनि पासि।।
होडोली चढ़ि आइआं दंद खंड कीते रासि।।
उपरहु पाणी वरिाऐ झले झमकनि पासि।।
इक लख लहन्हि बहिठीआं लख लहन्हि खड़ीआ।।
गरी छुआरे खान्दीआं, माणिनि सेजड़ीआं।।
तिन्ह गति सिलका पाईआ तूटनि मोत सरिआ।।
धन जोबनु दुइ वैरी होए जिन्ही रखे रंगि लाइ।।
दूता नो फुरमाइआ लै चलै पति गवाइ।।

इन सन्त कवियों ने जिस प्रकार की भावनाओं का प्रदर्शन किया, वर्णव्यवस्था, ऊंच-नीच और असमानता का विरोध किया, ब्राह्मण की श्रेष्ठता पर प्रश्न-चिह्न लगाये, अवतारवाद और मूर्तिपूजा को अस्वीकार किया और सर्वव्यापी, घट-घट वासी निर्गुण ब्रह्म के प्रति अपनी आस्था व्यक्त की, वह सब वर्ण-व्यवस्था के पोषण और श्रुति-स्मृति के

अनुगामी द्विज भक्तों को बहुत विचलित करनेवाला था। अपने समय के कृष्ण-भक्ति और राम-भक्ति के समर्थ भक्तों ने इन सन्तों द्वारा प्रचारित भक्ति मार्ग और विचारधारा का कहीं परोक्ष और कहीं अत्यन्त मुखर होकर खण्डन किया। सूरदास और नन्ददास ने भंवरे के माध्यम से उद्धव और गोपियों के मध्य जो संवाद कराया है, वह पूरी तरह निर्गुण भक्ति का खण्डन करने का आयोजन था।

इस दृष्टि के गोस्वामी तुलसीदास का मत बहुत स्पष्ट और कठोर भाषा में व्यक्त होता है। उनका सबसे बड़ा कष्ट यह था कि निर्गुण सन्तों के प्रभाव से श्रुति-स्मृति सम्मत धर्म नष्ट हो रहा था। ब्राह्मण की मान्यता को स्वीकार नहीं किया जा रहा था। ये सन्त वेद-शास्त्र मार्ग को त्यागकर अपने पन्थों की रचना कर रहे थे। वर्णाश्रम व्यवस्था को चुनौती दी जा रही थी। शूद्र जातियों में पैदा हुए सन्त ब्राह्मणों से अपनी बराबरी का दावा करने लग गये थे। तुलसीदास ने इन सभी प्रवृत्तियों के प्रति अपनी तीखी प्रतिक्रिया व्यक्त की। दोहावली में वे कहते हैं–

साखी सबरी दोहरा, कहि किहनी उपखान।।
भगति निरूपहिं भगत कलि निन्दहिं वेद पुरान।।
स्रुति सम्मति हरि भक्ति पथ संजुति विरत बिवेक।।
तेहि परिहरहिं बिमोह बस, कल्पहिं पन्थ अनेक।।

पुराणकाल में भविष्य की जिन पतनशील स्थितियों का चित्रण किया गया था उनका तात्कालिक सम्बन्ध बौद्ध धर्म से था। आठवीं शती में आद्यशंकराचार्य के समय से ब्राह्मण धर्म का पुनरुद्धार होने लगा और श्रुति-स्मृति पोषित धर्म के प्रति आग्रह बढ़ने लगा, किन्तु निर्गुणिए सन्तों के कारण इस प्रवृत्ति का व्यापक विरोध भी शुरू हुआ। तुलसीदास जैसे सगुण भक्तों को लग रहा था कि चारों ओर इन्हीं सन्तों की वाणी सुनी और सराही जा रही है। उन्होंने लिखा–जैसे वर्षा ऋतु आने पर कोयल चुप हो जाती है और चारों ओर मेंढकों का स्वर सुनाई देने लगता है, उसी तरह की स्थिति पैदा हो गयी है–

तुलसी पावस के समय, धरो कोकिलन मौन।।
अब तो दादुर बोलिहै, हमैं पूछिहै कौन।।

(दोहावली)

ब्राह्मणवादी सगुण कवियों का सारा संकट यह था कि अब शूद्र भी ब्राह्मणों से बहस करने लग गये थे और कहते थे कि जो ब्रह्म को जानता है वह ब्राह्मण है। यह कहकर डांटते हुए अपनी आंखें दिखाते थे–

बादहिं सूद्र द्विजन सन हम तुम तें कुछ घाटि।।

जानहिं ब्रह्म सो विप्रवर, आंखि देखावहि डांटि।।

एक अन्य़ स्थान पर तुलसीदास ने कहा–

सूद्र करहिं जप तप ब्रत नाना।।।
बैठि बरासन कहहिं पुराना।।
सूद्र द्विजन उपदेसहि ज्ञाना।।
मेलि जनेऊ लेई कुदाना।।

तुलसीदास की मान्यता थी कि संसार में सभी लोगों के लिए श्रुति ने उनके-उनके धर्म निर्धारित कर दिये हैं। इसमें सभी वर्णों के अपने-अपने धर्म हैं। उन्हें उनका अतिक्रमण नहीं करना चाहिए। शूद्रों को सन्त बनने और उपदेश देने का अधिकार नहीं है। सभी लोग परस्पर प्रीति तभी बनाये रख सकते हैं, जब वे श्रुति नीति के अनुसार अपने-अपने धर्म का निर्वाह करें–

सब नर करहिं परस्पर प्रीती।।
चलहिं स्वधरम निरत श्रुति नीती।।

श्रुति नीति में पहली बात यह है कि सभी वर्ण (विशेष रूप से शूद्र) के लोगों को ब्राह्मणों के चरणों में अपनी प्रीति जोड़नी चाहिए और अपने-अपने निर्धारित कार्यों में लगना चाहिए–

प्रथमहि विप्रचरन अति प्रीती।।
निज निज करम निरत श्रुति नीती।।

इसलिए यदि कोई ब्राह्मण शील और गुण से हीन है तो भी वह पूजने योग्य है, उसके सामने यदि कोई शूद्र-ज्ञान में प्रवीण हो तो भी उसे त्याग देना चाहिए।

पूजहि विप्र सील गुण हीना।।
तजिय सूद्र गुण ज्ञान प्रवीना।।

तुलसीदास ने लगभग एक शताब्दी पहले रविदास ने कहा था–

रैदास ब्राह्मण मत पूजिये जो होवे गुनहीन।।
पांव पूज चण्डाल के जो हो ज्ञान प्रवीन।।

लगता है कि तुलसीदास ने रविदास के इस कथन के प्रत्युत्तर में ही अपनी बात कही थी।

ऐसा लगता है कि भक्तिकाल की लम्बी परिधि में निर्गुण और सगुण भक्तों के विचारों की टकराहट निरन्तर बनी रही। सम्भवतः इनके धरातल, कार्य-क्षेत्र और उपदेश बिन्दु भी बहुत अलग-अलग थे और इनमें आपस में विशेष संवाद भी नहीं था। इसका एक प्रमाण यह है कि श्रुति-स्मृति मार्ग का अनुशासन स्वीकार न करने वाले सन्त आपस में एक-दूसरे का आदर करते थे और उनकी उपलब्धियों का बड़े सम्मान से उल्लेख करते थे। इस परिधि में वे श्रुति-स्मृति मार्गी सगुण भक्तों को शामिल नहीं करते थे। रामानुज सम्प्रदाय से दीक्षा केवल द्विजातियों को दी जाती थी, पर स्वामी रामानन्द ने रामभक्ति के द्वार सब जातियों के लिए खोल दिये। भक्तिमार्ग में इनकी उदारता का अभिप्राय यह कदापि नहीं है—जैसा कि लोग समझते और कहा करते हैं कि—रामानन्द जी वर्णाश्रम व्यवस्था के विरोधी थे। समाज के लिए वर्ण और आश्रम की व्यवस्था मानते हुए वे भिन्न-भिन्न कर्तव्यों की योजना स्वीकार करते थे। केवल उपासना के क्षेत्र में उन्होंने सबका समान अधिकार स्वीकार किया। भगवद्भक्ति में वे किसी भेदभाव को आश्रय नहीं देते थे। कर्म के क्षेत्र में शास्त्र मर्यादा उन्हें मान्य थी। (हिन्दी साहित्य का इतिहास—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ 116—पन्द्रहवां संस्करण)

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के मतानुसार (हिन्दी साहित्य का इतिहास) निर्गुणधारा के सन्तों की वानी में लोकधर्म की अवहेलना छिपी हुई थी। सगुणधारा के भारतीय पद्धति के भक्तों में कबीर, दादू आदि के लोकधर्म विरोधी स्वरूप को यदि किसी ने पहचाना तो गोस्वामीजी (तुलसीदास) ने। उन्होंने देखा कि उनके वचनों से जनता की चित्तवृत्ति में एक घोर विकार की आशंका है जिससे समाज विशृंखल हो जाएगा, उसकी मर्यादा नष्ट हो जाएगी। जिस समाज से ज्ञानसम्पन्न शास्त्रज्ञ, विद्वानों, अन्याय और अत्याचार के दमन में तत्पर वीरों, पारिवारिक कर्तव्यों का पालन करनेवाले उच्चाशयी व्यक्तियों, पतिप्रेमपरायण सतियों, पितृभक्ति के कारण अपना सुख-सर्वस्व त्यागनेवाले सत्पुरुषों, स्वामी की सेवा में मर मिटनेवाले सच्चे सेवकों, प्रजा का पुत्रवत् पालन करनेवाले शासकों आदि के प्रति श्रद्धा और प्रेम का भाव उठ जाएगा उसका कल्याण कदापि नहीं हो सकता।

गोस्वामी जी को निर्गुणपन्थियों की वानी में लोकधर्म की उपेक्षा का भाव स्पष्ट दिखायी पड़ा। साथ में उन्होंने यह भी देखा कि बहुत से अनधिकारी और अशिक्षित वेदान्त के कुछ चलते शब्दों को लेकर, बिना उनका तात्पर्य समझे, यों ही ज्ञानी बने हुए, मूर्ख जनता को लौकिक कर्तव्यों से विचलित करना चाहते हैं और मूर्खता मिश्रित अहंकार की वृद्धि कर रहे हैं । (पृष्ठ 135)

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के इस विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि जिस निर्गुण मार्ग ने इस रूढ़िग्रस्त देश में नवजीवन का संचार किया था, जिसने शताब्दियों से लोक जीवन से बहिष्कृत व्यापक अद्विज समाज में, न केवल उपासना के क्षेत्र में अपने

अधिकार का दावा किया था, वरन् जीवन के सभी कर्म-क्षेत्रों में कट्टर वर्णाश्रम व्यवस्था को पूरी तरह अस्वीकार करते हुए समतामूलक समाज की स्थापना का निश्चय प्रकट किया था, उसे तुलसीदास लोकधर्म विरोधी मानते थे और अत्यन्त हेय दृष्टि से देखते थे।

सन्त कबीर ने अपने एक पद में जयदेव और नामदेव का स्मरण करते हुए कहा है कि गुरु की कृपा से इन सन्तों ने भक्ति के प्रेम की पहचान की थी–

गुरु परसादी जैदेउ नामा।।
भगति कै प्रेमि इन ही है जाना।।

(गुरुग्रन्थ साहिब-रागु गौड़ी, पृष्ठ 330)

नामदेव और त्रिलोचन समकालीन थे और एक ही क्षेत्र (महाराष्ट्र) के रहने वाले थे। उनके आपस में अच्छे सम्बन्ध थे। इन दोनों सन्तों के आपसी संवाद का भी सन्त कबीर ने अपने सलोक में उल्लेख किया है और उसके माध्यम से सांसारिक कार्य करते हुए प्रभु-भक्ति में निमग्न होने के विचार की पुष्टि की है। नामदेव के मित्र त्रिलोचन कहते हैं कि नामदेव तो माया में लिप्त हो गये। वे तो कपड़े छीपते रहते थे। राम नाम में उनका चित्त नहीं लगता–

नामा माइआ मोहिआ, कहै त्रिलोचन मीतु।।
काहै छीपहु छाइलै, राम न लावहु चीत।।

त्रिलोचन की शंका का उत्तर देते हुए नामदेव कहते हैं–हे त्रिलोचन, भक्त को मुख से राम का स्मरण करना चाहिए। उसे हाथ-पांव से काम करना चाहिए और अपने मन को सदैव प्रभु में लगाये रखना चाहिए–

नामा कहै तिलोचना, मुख ते रामु संभालि।।
हाथ पाउ करि कामु सभु चीतु निरंजन नालि।।

(श्लोक, कबीर, आदिग्रन्थ, 1375)

सन्त रविदास ने अपने एक पद में कबीर और नामदेव का स्मरण किया है–

हरि हरि हरि हरि हरि हरि हरे।।
हरि सिमरत, जन गये निसतरि तरे।।1।। रहाउ।।
हरि के नाम कबीर उजागर।।
जनम जनम के काटे गागर।। 1।।
निमत नामदेउ दूधु पीआइआ।।
तउ जग जनम संकट नहीं आइआ।।2।।

(राग आसा, आदिग्रन्थ, 487)

एक अन्य पद में सन्त रविदास ने नामदेव, कबीर, त्रिलोचन, सधना और सैण को स्मरण किया है-

नामदेव कबीरु, तिलोचनु, सधना सैनु तरे।।
कहि रविदासु सुनहु रे संतहु,
हरि जिउ ते सभै सरे।।2।।

(राग मारु, आदिग्रन्थ, पृष्ठ 1166)

धन्ना भगत का एक पद आदिग्रन्थ में है। इस पद में नामदेव, कबीर, रविदास, सैण तथा जाट जैसी पिछड़ी जाति का भक्त होने की चर्चा है। ये सभी ईश्वरीय कृपा प्राप्त करने में सफल हुए–

गोविन्द गोविन्द गोबिन्द संगि, नामदेउ मनु लीणा।
आढ दाम को छीपरो, होइओ लाखीणा।। 1।। रहाउ।।
बुनना तनना तिआगि के प्रीति चरन कबीरा।।
नीच कुला जोलाहरा भइउ गुनीय गहीरा।।1।।
रविदास ढुवन्ता ढौर नीति तिन तिआगो माइआ।।
परगटु होआ साथ संगि हरि दरसनु पाइआ।। 2।।
सैनु नाई बुतकारिआ उह घरि-घरि सुनिआ।।
हिदे वसिया पारब्रह्म, भगता महि गनिआ।। 3।।
इह बिधि सुनि कै जाटरो उठि भगति लागा।।
मिलै प्रतखि गुसाईआ, धंना वडभागा।।

(आदिग्रन्थ, पृष्ठ 780-81)

ये सभी सन्त एक-दूसरे का स्मरण करते हैं और उन्हें इस तथ्य के आर्दश रूप में प्रस्तुत करते हैं कि इन्होंने नीच समझे जानेवाले कुलों में जन्म लेकर भी, अपनी अनन्य भक्ति के द्वारा प्रभु की कृपा प्राप्त की और सभी ओर इनकी भक्ति की प्रशंसा हुई, इनकी प्रसिद्धि हुई, इन्हें मान्यता प्राप्त हुई। गुरु रामदास जी तो यह भी लिखते हैं कि नामदेव की हरि से ऐसी प्रीति लगी कि जिसे लोग छीपा कहते थे, उन्हें हरि ने खत्री और ब्राह्मण जैसी सवर्ण जातियों को छोड़कर स्वीकार कर लिया–

नामदेव प्रीति लगी हरि सेती लोकु छीपा कहै बुलाइ।।
खत्री ब्राह्मण पिठि दे छोड़े हरि नामदेउ लीआ मुखि लाइ।। 3।।

(आदिग्रन्थ, पृष्ठ 733)

गुरु रामदास कहते हैं कि कलियुग में नाम-पदार्थ जिसे प्राप्त हो गया, जिसे साधुजनों की संगति मिल गयी उसका उद्धार हो गया—

नामा जैदेउ कबीर त्रिलोचन
अउ जात रविदास चमिआर चमईआ।।
जो जो मिलै साधुजन संगति
धन धन्ना जट सैण मिलआ हरिदईआ।।
कलयुग नाम पदारथ भगत जन उधरे।।
नामा जैदेउ कबीर त्रिलोचन सभि दोख गये चमरे।।

(आदिग्रन्थ, पृष्ठ 995)

तृतीय गुरु, गुरु अमरदास कहते हैं कि नामदेव छीपा थे, कबीर जुलाहा थे परन्तु पूरे गुरु की कृपा से उन्हें सद्‌गति प्राप्त हुई। उन्हें ब्रह्म का ज्ञान हो गया, उन्होंने शब्द की सही पहचान कर ली। उनमें से अहंकार की जाति को नष्ट कर दिया। अब तो सुर और नर उनकी रची वाणी का गायन करते हैं उनके महत्त्व को मिटाया नहीं जा सकता—

नामा छीवा कबीर जुलाहा पूरे गुरु ते गति पाई।।
ब्रह्म के बेते सबदु पछाणहि हउमै जाति गवाई।।
सुरि नर तिन की वाणी गावहि कोइ न मेटै भाई।।

(आदिग्रन्थ, पृष्ठ 67)

आदिग्रन्थ के संग्रहकर्ता, पंचमगुरु गुरु अर्जुनदेव ने भी इन सन्तों को अनेक बार अपनी भावांजलि अर्पित की है। वे कहते हैं—साधुजनों का संग पाकर सद्‌बुद्धि की प्राप्ति होती है। तब हरि कीर्तन जीवन का आधार बन जाता है। नामदेव, त्रिलोचन, कबीर और रविदास इसी कारण मुक्त हो गये—

साध संगि नानक बुधि पाई हरि कीरतन आधारो।।
नामदेउ त्रिलोचन कबीर दासरो, मुकति भइउ चमिआरो।।

(आदिग्रन्थ, पृष्ठ 498)

उस समय इन सन्तों की ख्याति देशव्यापी थी। नामदेव की प्रसिद्धि देश के बड़े भाग में थी। कबीर और रविदास जैसे सन्त महाराष्ट्र में उद्‌धृत होते थे। सन्त एकनाथ कहते हैं—

रोहिदास चमार सब कुछ जाने
कठोरे गंगा देख

तुकाराम ने अपने एक पद में कहा है–

निवृति ज्ञान देव सोपान चांगाजी,
मेरे जी के है जी नामदेव।
नागाजन मित्र नरहरि सुनार।
रविदास कबीर सगे मेरे।।

सूफी काव्य-परम्परा के प्रख्यात कवि मलिक मुहम्मद जायसी (सन् 1475-1542) ने भी अपने अखरावट काव्य में जुलाहा कहकर कबीर का स्मरण किया है जिसमें वे कहते हैं कि नारद भी रोकर यह कहते हैं कि प्रेमाभक्ति में इस जुलाहे ने मुझे हरा दिया है–

जा नारद तब रोइ पुकारा। एक जुलाहे सों मैं हारा।।
प्रेम संत नित ताना तनई। जप तप साधि सैकरा भरई।।

पन्द्रहवीं, सोलहवीं शती में हुए सन्त कवियों ने जयदेव, नामदेव, त्रिलोचन, सधना, सैण, धन्ना आदि का बड़ी श्रद्धापूर्वक स्मरण किया है। सत्रहवीं शताब्दी में इसमें कुछ नाम और जुड़ जाते हैं। सतनामी सम्प्रदाय के जगजीवनदास के एक पद में नानक, कबीर नामदेव, पीपा का उल्लेख है–

'नानक कबीर नामदेव पीपा सब हरि के हित प्यारे।।'

इसी परम्परा में बुल्ला साहब ने अपने एक पद में कहा है–

मन बसन्त खेलौ अगम फाग। चरन कमल अनुराग जाग।।
खेले नामा औ कबीर। खेले नानक बड़े धीर।।
ऐसे मन रहु हरि के पास। सदा होय तोहि मुक्ति बास।।
जस धन्ना सेन कबीर दास। नामदेव रै दास दासं।।

सन्त राघवदास (17वीं शती) ने अपनी भक्तमाल में कबीर-नानक की परम्परा के अन्य निरंजन सन्तों का उल्लेख करते हुए गुरु नानक को सूर्य और सन्त कबीर को मघवा (इन्द्र) कहकर उस काल में उनकी वाणी-प्रभाव की ओर संकेत किया है–

नानक सूरज रूप भूप सारै परकासै।।
मघवा दास कबीर ऊसर सूसर बरखा से।।

(छप्पय, 342)

अपने पदों में अपने पूर्ववर्ती सन्तों को बड़े सम्मान से स्मरण करने का कार्य निर्गुणमार्गी सन्त करते हैं, किन्तु विद्यापति, ज्ञानदेव, सूरदास, तुलसीदास, नन्ददास तथा

अष्टछाप के अन्य कृष्णभक्त कवियों को कोई उल्लेख नहीं करते हैं।

निर्गुणमार्गी कवि कर्मठ जीवन में आस्था रखनेवाले सन्त थे। ये परजीवी भक्त नहीं थे। सन्त मलूकदास की इस उक्ति को प्रायः उद्धृत किया जाता है जो निष्क्रियता की ओर संकेत करती है-

अजगर करै न चाकरी पंछी करै न काम।।
दास मलूका कह गये, सबके दाता राम।।

परन्तु अधिसंख्य सन्तों का दृष्टिकोण ऐसा नहीं था। नामदेव और त्रिलोचन के संवाद की चर्चा पहले हो चुकी है। 'हाथ-पांव के काम कर चित्त निरंजन नालि' इनके जीवन का आधार है।

सन्त रविदास इसी भाव की पुष्टि करते हुए कहते हैं—

जिह्वा सो ओंकार जप हत्थन सों कर कार।।
राम मिलहिं घर आइकर, कहि रविदास विचार।।

श्रम करके जीविकोपार्जन करने को वे पूरा महत्त्व देते हैं—

रविदास स्रम कर खाइहि जो लौ पार बसाइ।।
नेक कमाई जउ करइ कबहुं न निस्फल जाइ।।

गुरु नानक ने कहा था— जो व्यक्ति मेहनत करके कमाता है और उसमें से कुछ दान-पुण्य करता है, वही सही मार्ग को पहचानता है—

घाल खाइ किछु हत्थहु देह।।
नानक राहु पछाणहि सेइ।।

(आदिग्रन्थ, पृष्ठ 1245)

गुरु अर्जुनदेव ने बड़े स्पष्ट शब्दों में कहा था कि व्यक्ति को उद्यम करते हुए जीना चाहिए, कमाते हुए सुख प्राप्त करना चाहिए, ध्यान करते हुए प्रभु की प्राप्ति करनी चाहिए। ऐसा व्यक्ति सभी चिन्ताओं से मुक्त हो जाता है—

उद्दम करेंदिआ जीउ तू कमावदिआ सुखु भुंचु।।
धिआदिआ तू प्रभ मिलि नानक उतरी चिन्तु।।

(आदिग्रन्थ, पृष्ठ 522)

यही कारण है कि नामदेव छीपे का काम करते रहते है, कबीर जुलाहे का काम करते हैं, रविदास जूते गांठते रहते हैं, सधना कसाई-कर्म करते हैं, धन्ना किसानी करते

हैं और गुरु नानक अपने जीवन के अन्तिम दिन अपने बसाये नगर करतारपुर में खेती-बाड़ी करते हुए व्यतीत करते हैं।

अपने इष्टदेव के सम्मुख धूप-दीप जलाकर आरती उतारना इस देश की प्राचीन परम्परा है। अपनी यात्राओं के मध्य गुरु नानक देव जब जगन्नाथपुरी के मन्दिर पहुंचे थे तो वहां भगवान जगन्नाथ की आरती उतारने का समय हो गया। गुरु नानक ने वहां एक आरती गायी और उसे सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का रूप दे दिया, जिसमें पूरा आकाश आरती का थाल है, उसमें सूर्य और चन्द्रमा दीपक हैं, सम्पूर्ण तारामण्डल थाल में पड़ा हुआ मोती है। मलय पर्वत की ओर से आती हुई वायु सुगन्ध धूप का काम करती है। पवन चंवर डुलाता है, वनस्पतियां आरती के पुष्प हैं। यह पूरी आरती इस प्रकार है—

गगन मै थालु रवि चन्दु दीपक बने।।
तारिका मण्डल जनकु मोती।।
धूपु मलआनलो पवणु चवरो करे।।
सगल बनराइ फूलन्त जोती।। 1।।
कैसी होइ भवखंडना तेरी आरती।।
अनहता सबद बाजंत भेरी।। रहाउ।।
सहस तव नैन नन नैन है तोहि कउ।।
सहस मूरति नना एक तोही।।
सहस पद बिमल नन एक पद गंध बिनु।।
सहस तव गंध इव चलत मोही ।। 2।।
सभ महि जोति जोति है सोई।।
तिस दै चानणि सभ महि चानणु होइ।।
गुर साखी जोति परगटु होइ।।
जो तिसु भावै सु आरती होइ।। 3।।
हरि चरण कमल मकरंद लोभित मनो।।
अनदिनो मोहि आही पिआसा।।
कृपा जलु देहि नानक सारिंग कउ।।
होई जा ते तेरै नामि वासा।।

(आदिग्रन्थ, पृष्ठ 663)

यह आरती एक समर्पित भक्त की आरती है जो उसे किसी एक पूजास्थान अथवा देवता तक सीमित न करके विश्वजनीन बना देती है।

किन्तु आदिग्रन्थ में सन्त कबीर, रविदास, सैण और धन्ना की रची आरतियां भी सम्मिलित हैं। जिनका कथ्य अन्य सन्तों-भक्तों की आरती से सर्वथा अलग है। ये सन्त सामान्य निर्धन परिवारों से आये थे। ईश्वर की भक्ति करते हुए भी ये अपनी

सांसारिक आवश्यकताओं की उपेक्षा नहीं करते थे। वे सगुण द्विज-भक्तों की भांति भिक्षा को अपना आधार नहीं बनाते थे। ये अपने आराध्य देव से उसकी समग्र कृपा चाहते हैं। इस कृपा में आराध्य की भक्ति भी चाहिए, उसका सान्निध्य भी चाहिए, साथ ही जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति भी।

कबीरदास अपने एक पद में कहते हैं कि हे प्रभु, भूखे रहकर मुझसे तुम्हारी भक्ति नहीं होती, इसलिए अपनी माला वापस ले लो। मुझे नित्य दो सेर आटा चाहिए, पाव भर घी चाहिए, नमक चाहिए, आधा सेर दाल चाहिए जिससे मैं दोनों वक्त भोजन कर सकूं। इसी के साथ मुझे सोने के लिए चारपाई, सिरहाना, बिछाने के लिए तलाई, ओढ़ने के लिए रजाई चाहिए। तभी तैं प्रेमपूर्वक तुम्हारी भक्ति कर सकता हूं। यह मेरा लोभ नहीं है। जब मेरा मन स्थिर होगा, तभी मैं हरि को जान सकूंगा—

भूखे भगति न कीजै। यह माला अपनी लीजै।।
हउ मांगउ संतन रेना।। मैं ना ही किसी का देना।।1।।
माधो कैसी बने तुम संगे।। आपिन देहु त लेवहु मंगे।।
दुह सेर मांगहु चूना।। पाउ घीउ संगि लूना।।
अध सेर मांगहु दाले।। मोकउ दोनउ वखत जिवाले।।2।।
खाट मांगउ चउपाई।। सिरहाना अवर तुलाई।।
ऊपर कउ मांगउ खींधा।। तेरी भगति करै जनु थींआ।। 3।।
मैं नाही कीता लबो।। इकु नाउ तेरा मैं फबो।।
कहि कबीर मनु मानिआ।। मनु मानिआ तउ हरि जानिआ।। 4।।

धन्ना तो कबीर से दो कदम आगे जाते हैं। उन्हें दाल, सीधा, घी तो चाहिए ही, पहनने के लिए अच्छे कपड़े भी चाहिए और जूते भी। दूध पीने के लिए एक गाय और चढ़ने के लिए एक घोड़ी भी। वे एक अच्छी गृहिणी भी मांगते हैं—

गोपाल तेरा आरता।।
जो जन तुमरी भगति करन्ते,
तिनके काज सवारता।।1।।
दाल सीधा मागहु घीउ।।
हमरा खुसी करै नित जीउ।।
पन्हीआ छादनु नीका।।
अनाजु मागहु सत सी का।। 2।।
गऊ भैस मागउ लावेरी।।
इक ताजनि तुरी चंगेरी।।
घर की गीहनि चंगी।।
जनु धन्ना लेवे मंगी।।3।।

सन्त रविदास की आरती किसी देवता, मन्दिर और भौतिक पदार्थों पर आश्रित नहीं है। प्रभु का नाम ही उनके लिए आरती का आसन है, वही चन्दन है, वही केसर है, वही दीपक है, वही बाती है, वही तेल है, वही ज्योति है, वही फूल-माला है, वही चंवर है—

नाम तेरी आरती भजनु मुरारे।।
हरि के नामु बिनु झूठे सगल पसारे।।1।। रहाउ।।
नामु तेरो आसनो नामु तरो उरसा।।
नाम तेरा केसरो ले छिटकारे।।
नामु तेरा अम्मुला नामु तेरो चन्दनो,
घसि जपे नामु तो तुझहि कउ चारे।। 1।।
नामु तेरा दीवा नामु तेरो बाती।।
नामु तेरा तुलु ले माहि पसारे।।
नाम तेरे की जोति लगाई।।
भइउ उजियारो भवन सगलारे।।2।।

मूर्त आरती का इस प्रकार निर्देवीकरण करना भी इन सन्त कवियों की विशेषता भी थी और बाध्यता भी, क्योंकि इन्हें मन्दिर में की जा रही आरती में भाग लेने का अधिकार नहीं था।

इस बात की चर्चा पहले की जा चुकी है कि इन सन्त कवियों में अनेक को अपने समय के शासकों के हाथों पीड़ित होना पड़ा था। नामदेव, कबीर और गुरु नानक का नाम इस सन्दर्भ में स्मरण किया जा सकता है।

यह टकराव आगे चलकर कैसा रूप धारण कर सकता है, इसके संकेत सन्त कबीर और गुरु नानक की वाणी में ढूंढ़े जा सकते हैं। उस समय की राजनीतिक स्थिति कैसी थी, इसकी चर्चा भी प्रारम्भ में की जा चुकी है। सोलहवीं शती में कृष्ण-भक्ति के सर्वाधिक उन्नायक स्वामी वल्लभाचार्य ने देश की स्थिति पर अपनी करुण प्रतिक्रिया व्यक्त की थी—देश म्लेच्छाक्रान्त हैं, गंगादि तीर्थ दुष्टों द्वारा भ्रष्ट हो रहे हैं, अशिक्षा और अज्ञान के कारण वैदिक धर्म नष्ट हो रहा है, सत्पुरुष पीड़ित तथा ज्ञान विस्मृत हो रहे हैं, ऐसी परिस्थिति में कृष्णाश्रय में ही जीवन का कल्याण है।

यह निराशा और अवसादभरी प्रतिक्रिया थी। एक पराजित जाति के सम्मुख जैसे इसके अतिरिक्त कोई विकल्प ही नहीं था कि वह सम्मुख उपस्थित भयंकर संकट की ओर से आंखें मूंद ले अथवा उसके लिए करुण रोदन करते हुए भगवान का सहारा ले। देश की आत्मा को जाग्रत किया जा सकता है, लोगों को अन्यायी विदेशी शासन के विरुद्ध खड़ा किया जा सकता है, अपने उद्देश्य की प्राप्ति के लिए अपने-प्राण-न्योछावर करने की

प्रेरणा उनमें उत्पन्न की जा सकती है, यह विचार भक्तिकाल में कहीं अपनी जगह बनाते हुए नजर नहीं आता।

इस दृष्टि से सन्त कबीर की एक अभिव्यक्ति अपने सम्पूर्ण परिवेश में सर्वथा अनूठी है। उसका आध्यात्मिक अर्थ तो है ही, लौकिक अर्थों में भी वह अपना जो सन्देशा देती है उसकी अर्थ-ध्वनि बहुत दूर तक सुनी जा सकती है। मारू राग में उनका पद है–

गगन दमामा बाजिउ, परिउ नीसानै घाउ।।
खेत जु मांडिउ सूरमा, अब जूझन को दाउ।।1।।

सूरा तो पहिचानीऐ जू लरै दीन के हेत।।
पुरजा पुरजा कटि मरै, कबहू न छाड़ै खेत।। 2।।

(आदिग्रन्थ, पृष्ठ 1105)

इस पद की शब्दावली भक्ति-काव्य की सामान्य और प्रचलित शब्दावली से सर्वथा विपरीत है। आकाश में युद्ध के नगाड़े बजना, निशाने पर घाव लगाना, सूरमाओं द्वारा युद्ध क्षेत्र को मांडना और उसमें जूझने का अवसर ढूंढ़ना, स्थितियों के सम्मुख योद्धा बनकर खड़ा होना है, उनके सम्मुख दीन-हीन होकर समर्पण करना नहीं है। सन्त कबीर ऐसे योद्धा की सही पहचान भी बताते हैं। सूरमा वह है जो गरीब (अथवा धर्म) के लिए लड़ता है। इस लड़ाई में पुरजा-पुरजा कटकर मरना तो पसन्द करता है, किन्तु युद्धक्षेत्र से भागता नहीं।

सम्पूर्ण कबीर-साहित्य में यह पद अपना पृथक् रंग लिये हुए है और सम्भवतः एकमात्र है।

गुरु नानक की रचनाओं में ऐसी अभिव्यक्तियां एक से अधिक हैं। उनकी एक रचना इस दृष्टि से बहुचर्चित है–

जउ तउ प्रेम खेलन का चाउ।।
सिर धरि तली गली मेरी आउ।।
इतु मारगि पैर धरीजै।।
सिर दीजै काणि न कीजै।।

(आदिग्रन्थ, पृश्ठ 1412)

गुरु नानक भी इस पद में जिस शब्दावली का प्रयोग करते हैं, वह भी भक्ति काव्य की सामान्य शब्दावली नहीं है। वे कहते हैं, यदि तुम्हें जीवन को समर्पित करनेवाले प्रेम का खेल खेलना है तो अपने सिर को हथेली पर रखकर मेरे पास आना होगा। यदि इस मार्ग पर अपना पग रखोगे, तो शर्त यह है कि अपना सिर देना होगा। उसमें किसी

प्रकार का संकोच प्रकट नहीं करना होगा।
सन्त कबीर का पद गुरु नानक के पद से लगभग पचास वर्ष पहले लिखा गया होगा। लगता है कि इन दोनों सन्तों में कहीं गहरा भाव-साम्य था और अलक्ष्य संवाद भी था। स्थितियों के प्रति अपनी असामान्य प्रतिक्रिया सन्त कबीर ने व्यक्त की थी, किन्तु उनके पश्चात् उनके उत्तराधिकारियों ने उसे इतनी गम्भीरता से नहीं लिया और कबीर की विचारधारा को एक़ पन्थ की सीमाओं में रख दिया।

किन्तु गुरु नानक की परम्परा ने इस विचार को शिथिल नहीं होने दिया। परिणाम यह हुआ कि हर शासक से उनका टकराव होता रहा। पांचवें और नौवें गुरु को अपना बलिदान देना पड़ा। गुरु गोबिन्द सिंह ने उस अपनी पूरी संगति दे दी।

निष्कर्ष

सन्त कवियों ने अपने समय के धर्म और समाज-व्यवस्था को सर्वथा नयी दिशा दी। भक्ति, ज्ञान, उपासना, शास्त्र-अध्ययन, आध्यात्मिक चिन्तन, दार्शनिक वाद-विवाद को एक सीमित परिधि से निकालकर समाज के उस वर्ग के बीच पहुंचा दिया जो इससे पूरी तरह वंचित था।

प्राचीन काल से ही इस देश में जो व्यवस्था विकसित हुई थी उसमें आध्यात्मिक ज्ञान पर ब्राह्मण वर्ग का एकाधिकार था। इस चिन्तन के लिए जिस भाषा का उपयोग होता था, वह भी जन सामान्य की भाषा नहीं थी। ब्राह्मण वर्ग संस्कृत को छोड़कर किसी भी प्राकृत में संवाद करना अपना अपमान समझता था। किसी निम्न समझी जानेवाली जाति के लिए शास्त्र-अध्ययन वर्जित ही नहीं था, वरन वह एक दण्डनीय अपराध भी था। शम्बूक का उदाहरण इस दृष्टि से उल्लिखित उदाहरण है।

सम्भवतः सबसे पहले बुद्धदेव ने इन वर्जनाओं का त्याग किया। इस वर्जित क्षेत्र में शूद्र और महिलाओं की भी स्वीकृति होनी प्रारम्भ हो गयी और ज्ञान-चर्चा के लिए संस्कृत का स्थान जनभाषाएं लेने लग गयीं।

शास्त्रमार्गी और लोकमार्गी धाराओं का यह टकराव इस देश में अनेक शताब्दियों तक चलता रहा। अनेक सदियों तक इस देश में बौद्ध धर्म का व्यापक प्रभाव दिखाई दिया किन्तु श्रुति-स्मृति धारा का अपना वर्चस्व कभी शिथिल नहीं पड़ा।

देश में भागवत धर्म के पुनरुत्थान के साथ इतना अन्तर अवश्य आया कि वर्ण-व्यवस्था और श्रुति-सम्मत पथ का आग्रहशील वर्ग भी शूद्रों और महिलाओं को भक्ति के क्षेत्र में प्रवेश करने की अनुमति देने को तैयार हो गया, किन्तु यह अधिकार न ब्राह्मण की श्रेष्ठता को अस्वीकार करने के लिए था, न धर्म के क्षेत्र में उसके एकाधिकार को खण्डित करने की अनुमति देता था, न ही वर्णाश्रम व्यवस्था में कोई ढील

देता था। वह शूद्र को भक्त मानने को तैयार था किन्तु उसे ज्ञानी मानने को तैयार नहीं था।

अद्विज जातियों में भक्ति के प्रवेश ने उनमें आत्मबोध भी जगाया और वे उन सभी बातों पर प्रश्नचिह्न लगाने लगे जो उन्हें भेदभावपूर्ण लगते थे। श्रुति-स्मृति मार्गी भक्तिधारा के समानान्तर उन्होंने अपनी भक्तिधारा का विकास किया और उन सभी वर्गों और जातियों को अपने साथ जोड़ लिया जो इस संसार से पूरी तरह टूटे हुए थे।

द्रविड़ प्रदेश में यह स्वर नौवीं-दसवीं शती में ही उभरने लगा था। फिर यह स्वर महाराष्ट्र और गुजरात से होता हुआ उत्तर भारत में आ गया और 'जाति-पाति पूछै नहिं कोई, हरि को भजै सो हरि को होई' का उद्घोष सभी ओर गूंजने लगा।

किन्तु इस स्वर को एक सवल मंच देने का कार्य पंजाब में हुआ। गुरु नानक देव तथा परवर्ती सिख गुरु अद्विज जातियों में से नहीं आये थे, किन्तु श्रुति-स्मृति मार्गी असमानतामूलक जीवन-पद्धति को उन्होंने स्वीकार नहीं किया। उन्होंने अपने आपको नामदेव, कवीर, धन्ना, सैण वाली परम्परा से जोड़ा। यह परम्परा परम शक्ति को निर्गुण-निराकार मानती है, मूर्ति-पूजा और अवतारवाद को अस्वीकार करती है, देव-स्थान, तीर्थ-यात्रा तथा वे सभी कर्मकाण्ड जो श्रुति-स्मृतिमार्गी भक्ति के आवश्यक अंग थे, को नकार देती है, स्वानुभूत अनुभव को वह किसी भी शास्त्र से अधिक मान्यता देती है, केवल भक्ति ही नहीं, वरन् अध्यात्म और दर्शन क्षेत्र के सभी चिन्तन और ज्ञान में छोटी-से छोटी समझी जानेवाली जाति का पूरा हस्तक्षेप स्वीकार करती है। यहां तक कि वह विधर्मी मुसलमान का भी इस संवाद में दोनों बाहें फैलाकर स्वागत करती है। यह कार्य श्रुति-स्मृतिमार्गी भक्ति में स्वीकृत नहीं था।

आदिग्रन्थ में इन सन्तों की वाणियों को स्थान मिला। इसमें अवतारवादी सन्त भी हैं, किन्तु अपनी उदार दृष्टि के कारण वे नीचीं समझी गयी श्रेणियों में भी स्वीकृत हैं। जयदेव और रामानन्द इसके उदाहरण हैं किन्तु एक बात ध्यान देने की है। आदिग्रन्थ में संगृहीत सभी 15 सन्तों के कुल 778 पद है। इन सन्तों का यदि वर्णों की दृष्टि से विभाजन किया जाए तो देखने में आता है—जयदेव, रामानन्द, परमानन्द और सूरदास ब्राह्मण थे, पीपा क्षत्रिय थे। त्रिलोचन वैश्य थे, शेख फ़रीद, कबीर और भीखन मुसलमान थे; बाकी नामदेव, रविदास, सधना, सैण, धन्ना, वेणी शूद्र जातियों में से थे। इनमें सबसे अधिक पद (541) कबीरदास के हैं, फिर शेख फ़रीद (122), नामदेव (60) और रविदास के (40) पद हैं।

अन्य सन्तों के एक से चार पदों को आदिग्रन्थ में स्थान दिया गया है। पदों की संख्या की दृष्टि से देखा जाय तो आदिग्रन्थ में चार-सन्तों—कबीर, फ़रीद, नामदेव और रविदास को विशेष महत्त्व प्राप्त है। श्रुति-स्मृति की मान्यताओं के अनुसार ये सभी सन्त त्याज्य स्थिति के सन्त हैं। शेख़ फ़रीद मुसलमान हैं। कबीर और उनके निर्गुण पन्थ को

सगुण, अवतारवादी भक्तों का कई शताब्दियों तक निरन्तर विरोध, उपेक्षा और निन्दा का सामना करना पड़ा। यह आक्रोश इतना अधिक था कि कबीर की छवि को अश्लीलता और फूहड़ता के सभी विशेषणों से युक्त भी किया गया। होली के अवसर पर उत्तर प्रदेश में जो अत्यन्त अश्लील और भद्दे गीत गाये जाते हैं, उनके साथ 'कबीरा' जुड़ा हुआ होता है।

उन्हीं कबीर को आदिग्रन्थ में सबसे प्रमुख स्थान प्राप्त हुआ।

आदिग्रन्थ में संगृहीत रचनाएं गत 400 वर्षों से बिना किसी परिवर्तन के पूरी तरह सुरक्षित हैं। बीसवीं शती में जब सन्त कबीर की रचनाओं की खोज की जाने लगी तो आदिग्रन्थ में संगृहीत उनके पद और सलोक ही सबसे अधिक प्रामाणिक माने गये। शेख़ फ़रीद की रचनाएं पंजाबी में होने के कारण सूफी-परम्परा से ओझल-सी थीं इन्हें भी मान्यता प्राप्त होने का सबसे प्रमुख कारण इनका आदिग्रन्थ में प्राप्त होना है। यह बात नामदेव और रविदास के सम्बन्ध में भी कही जा सकती है।

आदिग्रन्थ में शामिल अनेक सन्त ऐसे हैं जिन्हें आज केवल उन्हीं पदों से याद किया जाता है जो इस ग्रन्थ में हैं। सधना, बेणी, पीपा, सैण, धन्ना, भीखन, परमानन्द आदिग्रन्थ के माध्यम से ही स्मरण किये जाते हैं। नामदेव की पंजाब में बहुत प्रसिद्धि है और स्थान-स्थान पर उनके केन्द्र बने हुए हैं। इसका स्रोत भी आदिग्रन्थ में संगृहीत उनके 60 पद हैं। वे पंजाब और महाराष्ट्र के बीच निरन्तर संवाद की सबसे मजबूत कड़ी हैं। आदिग्रन्थ में संगृहीत होने के कारण ही पंजाब तथा संसार के अनेक भागों में रविदासी गुरुद्वारे बने हुए हैं, जिनमें रविदास के पदों का उसी प्रकार कीर्तन होता है जिस प्रकार इस ग्रन्थ में संगृहीत अन्य गुरुओं, भक्तों और सूफियों की रचनाओं का। चार सौ वर्ष पूर्व ऐसे किसी ग्रन्थ के निर्माण की परिकल्पना अपने-आपमें एक अद्भुत बात थी।

सिख विचारधारा

गुरु नानक से गुरु ग्रंथ साहब तक

पृष्ठभूमि

भाई गुरदास (1551-1636) को सिखों का वेद व्यास कहा जाता है। वे तीसरे गुरु, गुरु अमरदास के भतीजे थे और उन्हें चौथे गुरु (गुरु रामदास), पांचवें गुरु (गुरु अर्जुन देव) और छठे गुरु (गुरु हरिगोबिंद) का सानिध्य प्राप्त हुआ था। उनकी रचना *वारां भाई गुरदास* को संपूर्ण सिख-संसार में अत्यंत सम्मान का स्थान प्राप्त है। उन्होंने अपनी एक वार (काव्य रूप) में गुरु नानकदेव के जन्म-समय की स्थिति और महत्व का चित्रण किया है। इस वार को गुरु नानक देव के संदर्भ में पहला ऐतिहासिक दस्तावेज माना जा सकता है। पूरी वार इस प्रकार है :

सतिगुरु नानक प्रगटिआ मिटी धुंध जग चानण होआ।
जिउ कर सूरज निकलिया तारे छपे अंधेर पलोआ।
सिंघ बुके मृगावली भन्नी जाइ न धीर धरोआ।
जिथे बाबा पैर धरे पूजा आसण थापण सोआ।।
सिध आसण सभ जगत दे नानक आदि मते जो कोआ।।
घर-घर अंदर धरमसाल होवै कीरतन सदा विसोआ।।
बाबे तारे चार चक नौ खंड प्रिथमी सचा ढोआ।।

(वार-1)

इसका अर्थ है, सद्गुरु नानक के प्रकट होते ही संसार में फैली हुई धुंध मिट गई और चारों ओर प्रकाश छा गया है, उसी प्रकार जैसे सूर्य के निकलते ही तारे छिप जाते हैं, अंधेरा समाप्त हो जाता है, जैसे सिंह की गर्जना सुनकर हिरणों का झुंड अपना धैर्य छोड़कर भाग उठता है। बाबा नानक ने जिन स्थानों पर अपने चरण रखे वे सभी पूज्य स्थल हो गए। सभी सिद्ध आसनों पर उनके विचारों का प्रचार होने लगा। घर-घर में पवित्र

स्थल बन गए जिनमें प्रभु का कीर्तन होने लगा। बाबा नानक ने पृथ्वी की चारों दिशाओं और नौ खंडों का उद्धार कर दिया। इस प्रकार संसार में वे प्रकट हुए।

चार सौ वर्ष पूर्व भाई गुरदास ने तत्कालीन धर्म, समाज और राजनीति की उन पतनशील स्थितियों का चित्रण अपनी वारों में किया है, जिनमें गुरु नानक का जन्म हुआ था। उनके अनुसार इन स्थितियों से त्रस्त होकर पृथ्वी ने प्रभु के सम्मुख प्रार्थना की। इस प्रार्थना को सुनकर प्रभु ने गुरु नानक को संसार में भेजा—

सुणी पुकार दातार प्रभु गुरु नानक जग माहि पठाया।। (वार-1)

एक अन्य 'वार' में भाई गुरदास ने लिखा है कि अपनी यात्राओं में एक बार गुरु नानक सुमेर पर्वत पर चले गए जहां अनेक सिद्ध-साधक तपस्या में लीन थे। उन सिद्धों ने उनसे पूछा—'मातृ लोक (संसार) का क्या हाल चाल है?' उन्होंने उत्तर दिया—'हे सिद्धो, सच का चंद्रमा कहीं छिप गया है। चारों ओर झूठ का अंधेरा छाया हुआ है। पाप से धरती ग्रसित है। जिस बैल पर धरती खड़ी है, वह नीचे से पुकार रहा है।' गुरु नानक ने सिद्धों से प्रश्न किया कि आप लोग तो सांसारिक दायित्वों से मुंह फेरकर पर्वतों में आकर छिप गए हैं, संसार का उद्धार कौन करेगा? संसार में विचरण करने वाले योगी तो ज्ञान से पूरी तरह वंचित हैं। वे तो रात-दिन अपने शरीर पर भभूति लगाने में ही लगे रहते हैं। अच्छे मार्ग दर्शक (गुरु) के अभाव में सारा संसार डूब रहा है—

फिर पुछण सिध नानका मात लोक विच किया वरतारा।
सभ सिधी इह बूझिआ कलि तारण नानक अवतारा।।
बाबे कहिआ नाथ जी सच्च चंद्रमा कूड़ अंधारा।
कूड़ अमावस वरतिआ हउ भालण चढ़िआ संसारा।।
कूड़ गिरासी प्रिथमी धौल खड़ा धर हेठ पुकारा।।
सिध छप बैठे परबती कोण जगत कउ पार उतारा।।
जोगी गिआन विहूणियां निस दिन अंग लगाइन छारा।।
बाझ गुरु डुब्बा जग सारा।।

(वार-29)

अपने समय की स्थितियों का बड़ी समग्रता से वर्णन करते हुए भाई गुरदास ने लिखा था कि इस युग में लोग इधर-उधर मुंह मारने वाले (अवसरवादी) कुत्तों के समान हो गए हैं। राजा पापी हो गए हैं, वे अपनी प्रजा का उसी प्रकार शोषण कर रहे हैं जैसे खेतों की रक्षा करने वाली बाड़ स्वयं खेतों को ही खाने लगे। प्रजा अंधी और ज्ञानहीन है और-सदा झूठ का सहारा लेती रहती है। (धर्म के क्षेत्र में) चेले साज बजाते हैं और उनके गुरु नाच-नाचकर लोगों को ठगते हैं। स्थिति यह है कि सेवक तो घरों में बैठे रहते हैं, गुरु उनके घरों के चक्कर काटते हैं। न्यायाधीश (काजी) रिश्वतखोर हो गए हैं। वे

घूस लेकर सच से मुंह फेर लेते हैं। स्त्री-पुरुष का संबंध भी धन पर आश्रित हो गया है, इसलिए वे कहीं भी आने-जाने में स्वतंत्र हो गए हैं। सारा संसार पाप से व्याप्त हो गया है :

कलि आई कुत्ते मुही खाज होआ मुरदार गुसाई।
राजे पाप कमांवदे उलटी वाड़ खेत कउ खाई।।
परजा अंधी गिआन बिन कूड़ कुसत मुखहु आलाई।।
चेले साज बजाई दे नच्चण गुरु बहुत बिध भाई।।
सेवक बैठण घरां विच गुर उठ घरी तिनाड़े जाई।।
काज़ी होए रिशवती वड्ढी लै के हक गवाई।
इसत्री पुरखै दाम हित भावें आइ कियाऊं जाई।।
वरतिया पाप सभसु जग माहीं

(वार-1)

भाई गुरदास उन स्थितियों के स्वयं भोक्ता थे। उन्होंने तत्कालीन शासकों द्वारा मंदिरों को तोड़कर उन स्थानों पर मस्जिद बनाने का भी उल्लेख किया है :

ठाकुर दुआरे ढाहि के तिह ठउड़ी मसीत उसारा।।
मारन गऊ गरीब नू धरती उपर पाप बिथारा।।

(वार-1)

आचार्य वल्लभाचार्य गुरु नानक के समकालीन थे। उन्होंने *कृष्णाश्रय* में लिखा है कि देश म्लेच्छाक्रान्त है, गंगादि तीर्थ दुष्टों द्वारा भ्रष्ट हो रहे है, अशिक्षा और अज्ञान के कारण वैदिक धर्म नष्ट हो रहा है, सत्पुरुष पीड़ित तथा ज्ञान विस्मृत हो रहा है। ऐसी स्थिति में एक मात्र कृष्णाश्रय में ही जीवन का कल्याण है।

गुरु नानक का जीवन-काल (1469-1539) युगांतकारी था। धार्मिक और राजनीतिक दृष्टि से संसार के अनेक भागों में परिवर्तन हो रहे थे। भारत में भक्ति आंदोलन अपने उत्कर्ष पर था। दक्षिण से आने वाली भक्ति की लहर महाराष्ट्र और गुजरात होती हुई उत्तरप्रदेश में और बंगाल-असम जैसे पूर्वी प्रदेशों में पहुंच गई थी। पंजाब की ओर उसका अधिक प्रभाव नहीं था। महाराष्ट्र के संत नामदेव (तेरहवीं शती) का पंजाब में आना और वहां कुछ समय तक रहना इतिहास सम्मत है। वैचारिक दृष्टि से संत कबीर और गुरु नानक में बहुत भाव साम्य है। गुरु नानक ने अपने जीवन के लगभग 22 वर्ष देश-विदेश की यात्रा में व्यतीत किए थे। देश की स्थिति और भक्तिकाल की अन्तश्चेतना को उन्होंने अपनी यात्राओं तथा तत्कालीन संतों, भक्तों, सूफियों से सीधा संवाद करके आत्मसात किया था।

जिस समय गुरु नानक का जन्म हुआ उत्तर भारत का शासक बहलोल लोधी

(1451-1489) था। उसके बाद सिकंदर लोधी (1489-1517) और उसके पश्चात इब्राहीम लोधी (1517-1526) दिल्ली का शासक बना। गुरु नानक के समय में बाबर ने हिंदुस्तान पर आक्रमण किया और दिल्ली से लोधी पठानों का राज्य समाप्त करके मुगल साम्राज्य की स्थापना की। गुरु नानक ने अपनी रचना में इस ऐतिहासिक तथ्य की पुष्टि की है। मुगलों और पठानों में युद्ध हुआ। उन्होंने (मुगलों ने) युद्ध में तोपों का प्रयोग किया। पठानों ने अपने हाथियों को आगे बढ़ाया :

मुगल पठाणा भई लड़ाई रण महि तेग बगाई।।
उन्हीं तुपक ताणि चलाई, उन्हीं हसति चिड़ाई।।

गुरु नानक ने अपने युग को केवल एक निरुपाय मूक दर्शक की भांति नहीं देखा था। उन्होंने समय के सम्पूर्ण त्रास और जन-जीवन की पीड़ा को अनुभव किया था, उसके प्रति अपनी करुणा, क्षुब्धता एवं आक्रोशयुक्त प्रतिक्रियाएं भी व्यक्त की थीं और अन्याय अत्याचार के प्रति विरोध का संकेत भी किया था। गुरु नानक की यह दृष्टि उनके द्वारा प्रवर्तित मार्ग की अंतःप्रेरणा बनती है और सिख धर्म का संपूर्ण इतिहास उसी का जीवंत परिणाम है।

गुरु नानक देव (1469-1539)

गुरु नानक देव जी का जन्म 15 अप्रैल, 1469 (वैशाख सुदी 3 सम्वत् 1526) को एक खत्री (वेदी) परिवार में लाहौर से 65 किलोमीटर दूर राय भोये की तलवंडी नामक स्थान पर हुआ था। इस स्थान को अब *ननकाना साहब* नाम से पुकारा जाता है। आज यह पाकिस्तान के *शेखपुरा* जिले में है। यद्यपि गुरु नानक का जन्म बैसाख मास में हुआ था किंतु कार्तिक पूर्णिमा के दिन उसे मनाए जाने की परंपरा विकसित हो गई है।

गुरु नानक के जीवन वृत्तांत की स्रोत-सामग्री अनेक जन्म साखियों से प्राप्त होती है। ये जन्म साखियां मौखिक रूप से पीढ़ी-दर-पीढ़ी सुनी-सुनाई जाती रहीं। बाद में श्रद्धालु सिखों द्वारा इनका संकलन किया गया। इनकी रचना पद्धति पौराणिक हैं, किंतु इन्हीं में से गुरु नानक के जीवन का ऐतिहासिक वृत्त प्राप्त किया जा सकता है।

गुरु नानक के पिता का नाम मेहता कल्याण चंद्र वेदी (प्रचलित नाम कालू मेहता) और माता का नाम तृप्ता था। उनकी एक बड़ी बहन थी—नानकी, जो सुलतान पुर लोधी के सरकारी कर्मचारी जयराम से ब्याही हुई थी। बचपन से ही नानक में विलक्षण गुण दिखाई देने लगे थे। सात वर्ष की आयु में उन्हें पढ़ने के लिए पांधा (उपाध्याय) के पास भेजा गया। जब वे नौ वर्ष के हुए तो उन्हें फारसी पढ़ने के लिए भेजा गया। उनके यज्ञोपवीत संस्कार का समय आ गया। कुल पुरोहित पंडित हरदयाल ने संस्कार विधि पूरी करने के लिए जब उन्हें जनेऊ पहनाना चाहा तो प्रचलित कथा के अनुसार, बालक नानक मे पंडित जी से कहा—"पंडित जी, जो जनेऊ आप मुझे पहनाना चाहते हैं वह तो मैला हो जाता है, टूट जाता है, नष्ट हो जाता है।" पंडित जी ने पूछा—"तुम कैसा जनेऊ पहनना चाहते हो।" उनका उत्तर था, "ऐसा जनेऊ जो दया की कपास से, संतोष के सूत से, यति की गांठ और सत्य की पूरन से बना हुआ हो। ऐसा जनेऊ न टूटता है, न मैला होता है, न जलता है, न नष्ट होता है। जो ऐसा जनेऊ धारण करते हैं, वे धन्य

हो जाते हैं। हे, पंडित जी यदि आपके पास ऐसा जनेऊ है तो ले आइए।'' नानक वाणी में आसा राग में इस भाव का एक शब्द अंकित है :

दइआ कपाह संतोखु सूतु जतु गंढी सतु वटु।।
एहु जनेऊ जीअ का हई त पांडे घतु।।
ना इह तुटै ना मलु लगै न एहु जलै न जाई।।
धंनु सु माणस नानका जो गलि चले पाइ।।

गुरु नानक के जीवन से संबंधित अनेक घटनाएं प्रचलित हैं। सांसारिक कार्यों में उनकी विरक्ति देखकर 16 वर्ष की आयु में उनका विवाह कर दिया गया। उनके दो पुत्र भी हुए। उनके नाम थे—श्रीचंद और लखमी चंद। उनके पिता इस कारण सदा खिन्न रहते थे कि उनका पुत्र सांसारिक कार्यों में उतनी रुचि नहीं लेता, जितनी वे चाहते थे। इस कारण उनके बहनोई जयराम ने उन्हें अपने पास सुलतानपुर लोधी बुलवा लिया और उन्हें नवाब दौलत खान के पास मोदी खाने में नौकरी दिला दी।

सुलतान पुर लोधी का यह प्रवास उनके जीवन की दिशा का सबसे महत्वपूर्ण मोड़ सिद्ध हुआ। यहां उन्हें वह आत्मानुभूति प्राप्त हुई जिसने उन्हें नानक से गुरु नानक बना दिया।

एक दिन वे पास की वेईं नदी में स्नान करने गए। वे नदी में से तीन दिन तक वापस नहीं आए। स्नान के पश्चात् वे पास के जंगल में चले गए और साधनारत हो गए। यहीं उन्हें ज्ञान-ज्योति प्राप्त हुई। जब वे वापस आए तो पूरी तरह बदले हुए थे। उनके मुंह से निकल रहा था—''ना कोई हिंदू ना मुसलमान...मैं हिंदू और मुसलमान के बीच कोई भेद या द्वैत स्वीकार नहीं करता, मैं केवल मनुष्य को पहचानता हूं।''

इसके पश्चात् गुरु नानक ने घर बार सब कुछ त्याग दिया। सुलतान पुर लोधी में ही उनका बाल मित्र मरदाना उनसे आ मिला। भाई मरदाना मिरासी जाति का मुसलमान था। वह रबाब बहुत अच्छी बजाता था। गुरु नानक और भाई मरदाना लंबी यात्राओं पर निकल पड़े जिन्हें गुरु नानक की *उदासियां* कहा जाता है। यह शब्द ग्रीक भाषा के शब्द odyssey से लिया गया है। जिसका अर्थ है लंबी यात्रा। यूनानी लोग सिकंदर के समय भारत में आए थे और लंबे समय तक पंजाब क्षेत्र में शासन करते रहे थे। उनके कुछ शब्दों ने स्थानीय रूप ग्रहण कर लिया था। ओडसी से उदासी बना शब्द गुरु की यात्राओं के साथ अभिन्न रूप से जुड़ गया।

सुलतान पुर लोधी से तलवंडी आकर गुरु नानक अपने माता-पिता और परिवार से मिले। फिर वे लंबी यात्रा पर निकल पड़े जिसे नानक की पहली उदासी कहा जाता है।

अपनी पहली उदासी में वे तलवंडी से चलकर सैदपुर (ऐमनाबाद) आए। वहां उन्होंने एक गरीब बढ़ई भाई लालो का आतिथ्य स्वीकार किया और खत्री जाति के एक अमीर जागीरदार मलिक भागो के ब्रह्मभोज में सम्मिलित होना अस्वीकार कर दिया क्योंकि

गरीब लालो की सूखी रोटी में मेहनत के दूध का स्वाद था और मलिक भागो के पकवानों में लोगों के शोषण का रक्त थ। जब उन्होंने दोनों को निचोड़ा तो भाई लालो की रोटी से दूध निकला और मलिक भागो के पकवान में से लहू टपका।

इस प्रसंग से संबंधित गुरु नानक की ये पंक्तियां बहुत प्रसिद्ध हैं कि नीचों में भी जो नीची जाति के हैं, उनमें भी जो अति नीच समझे जाते हैं, नानक सदा उन्हीं के साथ है, उसे अपने आपको बड़ा समझने वालों से कुछ भी लेना-देना नहीं है :

नीचां अंदरि नीच जाति नीची हूं अति नीच।
नानक तिनके संग-साथ बेडियां सूं क्या रीस।।

उन्होंने यह विश्वास भी व्यक्त किया कि जहां नीच समझे जाने वाले लोगों की सेवा की जाती है, उन्हें संभाला जाता है वहीं, परमेश्वर की कृपा दृष्टि पड़ती है

जित्थे नीच संभालियन तित्थे नदरि तेरी बखसीस।।

जात-पांत, ऊंच-नीच की सामाजिक बुराई के विरुद्ध गुरु नानक ने जीवन भर अभियान चलाया। अपनी पहली यात्रा में ही उन्होंने स्वयं अपना आदर्श रखकर इसकी व्यावहारिक परिणति लोगों के सम्मुख रख दी थी।

उनकी पहली उदासी पश्चिमी पंजाब की थी। स्यालकोट में उन्होंने सूफी फकीर शाह हमज़ा से भेंट की। वहां से वे अचल बटाला आए। शिवरात्रि का अवसर था। वहां बहुत से योगी आए हुए थे। गुरु नानक ने उनसे संवाद किया। फिर तलवंडी में अपने माता-पिता और परिवार के साथ कुछ समय व्यतीत कर वे 13वीं शती के सुप्रसिद्ध सूफी संत शेख फरीद की गद्दी पाक पत्तन पर जाकर उनके उत्तराधिकारी शेख इब्राहीम से मिले। शेख फरीद के 4 पद और 118 श्लोक (सलोक) गुरु ग्रंथ साहब में संग्रहीत हैं। इन रचनाओं को इसी अवसर पर गुरु नानक ने शेख फरीद के उत्तराधिकारियों से प्राप्त किया होगा।

मुलतान की यात्रा पर जाते समय वे एक रात्रि के लिए तुलम्बा नामक स्थान पर ठहरे। यहां एक बहुरुपिया ठग संतों के वेश में रहता था। लोग उसे शेख सज्जन कहते थे। वह हिंदू तथा मुसलमान यात्रियों को अपनी वेशभूषा और बातचीत से प्रभावित कर लेता था। उन्हें रात्रि को अपनी बनाई धर्मशाला में ठहरता था, फिर उनकी हत्या कर उनका सामान लूट लेता था।

गुरु नानक को उस सज्जन ठग की वास्तविकता का पता लग गया। उन्होंने उसके सम्मुख एक 'शब्द' (भजन) का गायन किया, जिसका भावार्थ था कि कांसे के बड़े चमकदार बर्तन की स्याही को अनेक बार घिसने से भी उसकी स्याही नहीं उतरती। अनेक सुंदर महल भी अंदर से खोखले होते हैं। जब वे गिर जाते हैं तो किसी के काम नहीं आते। बगुले के पंख बहुत सफेद होते हैं। वह जल-जंतुओं को खा जाता है। उसे सफेद (पापहीन) कौन कहेगा? सेमल के वृक्ष पर लगे फीके फलों को देखकर तोता उन्हें मीठा फल समझकर खाने का प्रयास करता है, किंतु उसे कुछ नहीं मिलता। एक अंधा व्यक्ति पहाड़ी रास्ते

पर किस प्रकार चलेगा? परमेश्वर का नाम ही व्यक्ति को सांसारिक बंधनों से मुक्ति दिलाता है। मूल पद इस प्रकार है :

उजलु कैहा चिलकणा घोटिम कालड़ी मसु।
धोतिआ जूठि न उतरै जे सहु धोवा तिसु।। 1।।

सजण सेवी नाल मैं चलदिआ नालि चलन्हि।
जिथे लेखा मंगीऐ तिथै खड़े दिसन्नि।। रहाउ।।

कोठे मंडपि माणीआ पासहु चितवीआहा।
ढठीओ कमि न आवनी विचहु सखणीआहा।। 2।।

बगा बगे कपड़े तीरथ मंझि वसन्नि।
घुटि घुटि जीआ खावणे बगे ना कहीअनि।। 3।।

सिंमल रुखु सरीरु मै मै जन देखि भुलनि।
से फल कंमि न आवनी ते गुण मैं तनि हंनि।। 4।।

अंधुले भारु उठाइआ डूगर वाट बहुतु।
अखी लोड़ी नालहा हउ चढ़ि लंघा कितु।। 5।।

चाकरीआ चंगिआईआ अवर सिआणप कितु।
नानक नामु सभालि तूं बधा छुटहि जितु।। 6।।

गुरु नानक का गायन सुनकर शेख सज्जन बहुत प्रभावित हुआ। उसने पाप का मार्ग त्याग दिया और सचमुच सज्जन बन गया।

मुलतान पीरों-फकीरों का एक बड़ा केन्द्र था। गुरु नानक और भाई मरदाना एक वृक्ष के नीचे बैठ गए। पीरों को उनके आगमन का पता लगा। उन्होंने दूध से पूरा भरा हुआ एक कटोरा उनके पास भेजा। इसका प्रतीकात्मक अर्थ था कि वह नगर पीरों-फकीरों से उसी प्रकार पूरी तरह भरा हुआ है जैसे वह कटोरा दूध से भरा हुआ है। गुरु नानक ने उस कटोरे में दूध पर चमेली का एक फूल रखकर वापस कर दिया, जिसका अर्थ यह था कि मैं इस नगर में इसी प्रकार रहूंगा जैसे चमेली का फूल इस कटोरे के दूध पर रखा हुआ है।

गुरु नानक की पहली यात्रा लगभग एक वर्ष की थी। दूसरी यात्रा लगभग 12 वर्ष की थी। यह यात्रा पूर्वी भारत की थी। इस यात्रा में वे असम तक गए। मार्ग में उन्होंने हरिद्वार, गोरखमता, प्रयाग, काशी, पटना, गया आदि हिंदू तीर्थों की यात्रा की। काशी में उन्होंने संत रविदास से भेंट की और मगहर जाकर वे संत कबीर से मिले। बंगाल में बारहवीं शती के प्रख्यात *संत और गीत गोविंद* के रचयिता जयदेव के निवास स्थान पर भी गए। गुरु ग्रंथ साहब में रविदास, कबीर और जयदेव के जिन पदों को संगृहीत किया

गया है, गुरु नानक ने अपनी इस यात्रा में ही इन पदों का संग्रह किया था।

असम (कामरूप) के संबंध में यह लोक मान्यता थी कि वहां स्त्रियों का राज्य है और वे जादू टोने में बहुत प्रवीण हैं। गुरु नानक की जन्म साखियों में ऐसी कथाओं का उल्लेख है कि किस प्रकार वहां की रानी नूर शाह ने भाई मरदाना पर अपना प्रभाव दिखाया था, किंतु गुरु नानक का उपदेश सुनकर वह उनकी श्रद्धालु बन गई थी।

अपनी इस यात्रा में गुरु नानक देव और मरदाना जगन्नाथ पुरी आए। इसी स्थान पर उन्होंने प्रभु की उस आरती का गायन किया, जिसमें संपूर्ण सृष्टि की सहभागिता हो जाती है।

फिर पूर्वी समुद्र तट के किनारे-किनारे होते हुए वे रामेश्वरम् पहुंच गए। वहां से वे सिंहल द्वीप (श्रीलंका) पहुंचे। इस यात्रा का उनका मुख्य उद्‌देश्य बौद्ध तथा जैन तीर्थों की यात्रा करना था। उत्तर की ओर लौटते समय वे तेरहवीं शती के प्रसिद्ध संत नाम देव के जन्म स्थान, महाराष्ट्र में, पंढरपुर आए। राजस्थान में उनकी भेंट भक्त धन्ना से हुई जो उस समय 93 वर्ष के थे। गुरु नानक ने भक्त नामदेव और धन्ना की कुछ वाणी इसी यात्रा में एकत्र की, जिसे बाद में गुरु ग्रंथ साहब में सम्मिलित किया गया।

गुरु नानक की यह सबसे लंबी यात्रा थी।

उनकी तीसरी उदासी दो वर्ष की थी। इस यात्रा में गुरु नानक और भाई मरदाना ने उत्तर के पर्वतीय प्रदेशों की यात्रा की। इस यात्रा में वे योगियों, सिद्धों और बौद्ध साधुओं के संपर्क में आए। इस यात्रा में वे ज्वालामुखी, कांगड़ा, रवालसर, कुल्लू, लाहौल स्फीती और तिब्बत तक गए। यह यात्रा उन्हें हिमालय की ऊंची चोटियों में सुमेर पर्वत पर भी ले गई। वहां अनेक सिद्ध तपस्या करने में लीन थे। गुरु नानक और भाई मरदाना को देखकर वे आश्चर्य में पड़ गए। संसार की स्थिति क्या है, हिंदुस्तान पर किसका शासन है, जनता का क्या हाल है, इस संबंध में उन्हें कुछ ज्ञात नहीं था। उन्होंने पूछा—"इस युग में शासक कसाई हो गए है, धर्म पंख लगाकर उड़ गया है, झूठ की अमावस छाई हुई है, सच का चंद्रमा कहीं दिखाई नहीं देता। मैं उसे ढूंढ रहा हूं। अभी तो सभी ओर अंधेरा दिखाई देता है, उसमें कोई राह नहीं सुझाई देती।"

कलिकाती राजे कासाई धरम पंख करि उड़रिआ।।
कूड़ अमावस सचु चंद्रमा दीसै नाही कह चड़िआ।।
हउ भालि विकुंनी होई।। आधेरै राहु न कोई।।
विचि हउमै करि दुखु रोई।।

सिद्धों, नाथ पंथियों, संन्यासियों से उनका निरंतर संवाद होता रहता था। इन्हीं संवादों को आधार बनाकर उनकी महत्वपूर्ण रचना है—सिध गोसटि (सिद्ध गोष्ठि)

पश्चिमी एशिया की यात्रा को गुरु नानक की यात्राओं में बहुत महत्व दिया जाता है। अपनी पूर्व यात्राओं में वे भारत के सभी भागों में जाकर विभिन्न धर्मों, पंथों, संप्रदायों

के पंडितों, संतों, फकीरों से मिल चुके थे। उन्होंने उनसे आध्यात्मिक चर्चा भी की थी और तत्कालीन धार्मिक, सामाजिक और राजनीतिक की विषम स्थितियों पर भी बातचीत की थी। पश्चिम एशिया की यात्रा इस्लामी देशों की यात्रा थी। वे और भाई मरदाना ने यह यात्रा समुद्र मार्ग से की। इस समय उन्होंने हाजियों जैसी अपनी वेशभूषा बना ली। उन्होंने नीले वस्त्र पहने हुए थे। उनके हाथ में छड़ी थी, बगल में किताब थी, पास में लोटा था और नमाज के समय बिछाया जाने वाला वस्त्र था :

बाबा फिर मक्के गिआ, नील बसत्र धारे बनवारी।
आसा हत्थ किताब कच्छ कूजा बांग मुसल्ला धारी।।

(भाई गुरदास)

यह कथा प्रचलित है कि मक्का पहुंचकर गुरु नानक विश्राम करने के लिए लेट गए। उनके पैर काबा की ओर थे। यह देखकर कुछ लोगों की आस्था को बड़ी ठेस पहुंची। जीवण नाम के व्यक्ति ने उन्हें लात मारकर जगाया और कहा जिस ओर खुदा का घर है उस ओर पैर पसार कर सोने वाला काफिर कौन है। गुरु नानक ने बड़ी सहजता से उत्तर दिया—"भाई, तुम मेरे पैर उस ओर कर दो जिधर खुदा का घर नहीं है। जीवण ने उनके पैर घसीटकर दूसरी ओर कर दिए। उसने आश्चर्य से देखा कि वह उनके पैर जिस ओर करता था, काबा का मुख उसी ओर हो जाता था।

इस कथा का अंतर्भाव यह है कि खुदा का घर किसी एक दिशा या स्थान तक सीमित नहीं है, वह तो सभी ओर है।

गुरु नानक के व्यक्तित्व से वहां के काजी-मुल्ला बहुत प्रभावित हुए। उन्होंने उनसे पूछा—"आप बताइए कि हिंदू बड़ा है या मुसलमान।

गुरु नानक ने उत्तर दिया, "हे हाजियो, शुभ कर्मों के अभाव में दोनों ही एक जैसे हैं, दोनों ही रोते हैं।"

पूछण खोल किताब नूं वड़ा हिंदू कि मुसलमानोई
बाबा आखे हाजीआ, सुभ अमलां बाझों दोवें रोई।।

(भाई गुरदास)

मक्का, मदीना की यात्रा करते हुए गुरु नानक और भाई मरदाना बगदाद पहुंचे। उन्होंने शहर के बाहर अपना डेरा लगा लिया :

बाबा गिआ बगदाद नूं बाहर जाइ कीआ असथाना।।
इक बाबा अकाल रूप दूजा रबाबी मरदाना।।

(भाई गुरदास)

बगदाद के एक कब्रिस्तान के निकट एक प्राचीन शिलालेख प्राप्त हुआ है। उसमें तुर्की-अरबी मिश्रित भाषा में गुरु नानक के आगमन का संकेत है। उस शिला लेख की

भाषा को अनेक अर्थों में पढ़ा गया है। भाई काहन सिंह ने अपने महानकोष में इसका अर्थ इस प्रकार दिया है :

देखो हज़रत परवरगार, बुजुर्ग ने कैसी मुराद पूरी
की, कि बाबा नानक की यादगार फिर बन गई,
सात बड़े फकीरों ने इसमें मदद की। उसकी तारीख यह निकली
कि नेकबख़्त मुरीद ने पानी के लिए धरती में फौज़ का चश्मा
जारी कर दिया।

यह भी कहा जाता है कि जब गुरु नानक बगदाद गए थे, वहां के कुओं का पानी खारा था। गुरु नानक ने वहीं एक कुआं खुदवाया, जिसमें से मीठा पानी निकला था।

बगदाद से गुरु नानक ईरान, खुरासान, काबुल, कंधार, जलालाबाद होते हुए पेशावर आए। उन्होंने अटक के निकट सिंध नदी पार की और हसन अब्दाल आ गए। यहां एक पत्थर पर उनके पंजे के निशान हैं। इसके संबंध में यह कथा प्रचलित है कि जब वे एक पहाड़ी के नीचे बैठे थे, भाई मरदाना को बड़ी प्यास लगी। आसपास कहीं पानी नहीं था। पहाड़ी के ऊपर एक फकीर वली कंधारी रहता था। उन्होंने मरदाना से कहा कि तुम पहाड़ी पर जाकर उस फकीर से पानी लेकर अपनी प्यास बुझा आओ। भाई मरदाना पहाड़ी पर गया पर वली कंधारी ने उसे पानी देने से इनकार कर दिया। वह बहुत निराश होकर वापस आ गया। गुरु नानक ने मरदाना से पहाड़ी के नीचे के एक पत्थर को हटाने के लिए कहा। मरदाना ने वह पत्थर हटाया, तो नीचे से जल का स्रोत फूट पड़ा। इस कृत्य से वली कंधारी बहुत क्रुद्ध हुआ। उसने पहाड़ी के ऊपर से एक बड़ा पत्थर नीचे लुढ़का दिया। लुढ़कते हुए पत्थर को गुरु नानक ने अपने एक हाथ से रोक दिया। उस पत्थर पर उनके पंजे का निशान बन गया। यही स्थान 'पंजा साहब' के नाम से प्रसिद्ध हुआ और एक प्रसिद्ध तीर्थ स्थान बन गया। यहां अब एक बड़ा गुरुद्वारा है।

गुरु नानक ने अपने जीवन के लगभग 22 वर्ष यात्राओं में व्यतीत किए थे। उन्होंने बाबर के आक्रमण और उसकी सेना द्वारा निरीह जनता पर हुए अत्याचारों को अपनी आंखों से देखा था। बाबर के कारिंदों ने उन्हें कुछ समय के लिए बंदी भी बना लिया था। अपने प्रिय शिष्य भाई लालो को संबोधित करते हुए बाहर के आक्रमण का बड़ा मार्मिक चित्र उन्होंने अपनी वाणी में प्रस्तुत किया है।

जीवन के अंतिम 17 वर्ष गुरु नानक ने एक कर्मशील गृहस्थ की भांति व्यतीत किए। कुछ समय वे रावी नदी के बाएं किनारे पर 'पखोके रंधावे' नामक स्थान पर रहे। इस गांव का चौधरी भाई अजिता ने उनसे निवेदन किया कि वे वहीं अपना स्थायी निवास बना लें। यह स्थान अब भारत के गुरदासपुर जिले में है। भाई अजिता ने उन्हें रावी के उस पार की बहुत-सी ज़मीन दे दी। गुरु नानक ने इस स्थान पर एक नई बस्ती बसाई और उसे करतारपुर नाम दिया। आज यह नगर पाकिस्तान में है। उनके माता-पिता और

परिवार भी यहीं आ गया था। उस समय तक उनकी प्रसिद्धि चारों ओर फैल गई थी। हजारों लोग उनके शिष्य बन चुके थे। दूर-दूर से असंख्य लोग उनके दर्शन करने और उनका उपदेश सुनने के लिए वहां आने लगे। इस अवधि में गुरु नानक के जीवन भर के साथी भाई मरदाना ने अपनी जीवन लीला समाप्त की।

करतारपुर में स्थायी आवास बनाकर गुरु नानक गृहस्थ जीवन जीने लगे। अपने परिवारजनों के साथ वे स्वयं खेती करते थे। उनके जीवन का आदर्श था :

घाल खाय किछु हत्थहुं देई।
नानक राह पछानसि सेई।।

(जो व्यक्ति श्रमपूर्वक कार्य करके उपार्जन करता है और उसी में से जन कार्य के लिए कुछ देता है, वही सही राह को पहचानता है।)

करतारपुर में ही भाई लहणा गुरु नानक की शरण में आए और पूरी तरह उन्हें समर्पित हो गए। गुरु नानक ने भाई लहणा में वे सभी गुण देखे जो वे अपने भावी उत्तराधिकारी में देखना चाहते थे। श्रीचंद और लखमी चंद, उनके दो पुत्र थे, किंतु उनमें उन्हें वे गुण नहीं दिखाई दिए। गुरु नानक ने अपने जीवन काल में भाई लहणा को अंगद नाम देकर अपना उत्तराधिकारी बना दिया।

गुरु अंगद सिख धर्म के दूसरे गुरु हुए।

आश्विन बदी 10 सम्वत् 1596 (7 सितंबर 1539) के दिन गुरु नानक की ज्योति परम-ज्योति में विलीन हो गई।

गुरु नानक का रचना पक्ष

गुरु ग्रंथ साहब में गुरु नानक देव के 974 पद संगृहीत है। उनकी रचनाओं में 'जपु' जी साहब की मान्यता सर्वाधिक है। सिख विचारधारा के अध्ययन की दृष्टि से इसे मूलाधार स्वीकार किया जाता है। इस वाणी के आरंभ में मूल मंत्र है जिसमें इस विचारधारा का बीज रूप प्राप्त हो जाता है। यह मंत्र है :

ੴ एक ओंकार
सतिनामु करतापुरखु निरभउ निरवैरु
अकालमूरति अजूनी सैभं गुर प्रसादि।।

यह एक प्रकार का मंगला चरण है। गुरु ग्रंथ साहब में किसी-न-किसी रूप में इसे पांच सौ से अधिक बार दोहराया गया है। मूल मंत्र को अनेक प्रकार से व्याख्यायित किया गया है। सार रूप में इसका अर्थ है—'परमेश्वर एक है, उसी का नाम सत्य है, वह कर्ता पुरुष है, वह निर्भय है, वह निरवैर, वह कालातीत है, वह अयोनि है, स्वयं से प्रकाशित है और गुरु की कृपा से उसकी प्राप्ति होती है।

जपु जी साहब में दो सलोक (श्लोक) और 38 पीड़ियां हैं। सभी पीड़ियां पहले और अंतिम सलोक के बीच में हैं। पहले सलोक में गुरु नानक देव ने परब्रह्म की नित्यता तथा सर्व सातत्य पर अपनी आस्था प्रकट की है :

आदि सचु जुगादि सचु।।
है भी सचु। नानक होती भी सचु।

(वह आदि में भी सत्य था, युगों के प्रारंभ में भी सत्य था, आज भी सत्य है और भविष्य में भी सत्य होगा।)

पहली पौड़ी में एक स्थिति स्पष्ट की गई है :
सोचै सोचि न होवई जे सोची लखवार।
चुपे चुप न होवई जे लाइ रहा लिवतार।।
भुखिआ भुख न उतरी जे बना पुरीआ भार।
सहत सिआणपा लख होई त इक न चलै नालि।।

''यदि लाखों बार शौच-स्नान किया जाए तो भी शुचता प्राप्त नहीं होती। यदि मौन धारण करके लंबी समाधि लगा ली जाए, तो भी फल प्राप्त नहीं होता। इसी प्रकार पूरियों के पदार्थों का भार बांध लेने पर भी एक क्षुधित व्यक्ति की भूख शांत नहीं होती। यदि व्यक्ति में लाखों चतुराइयां हों, अंत समय में एक भी चतुराई साथ नहीं देती।''

इस पौड़ी में उन्होंने साधक की इस जिज्ञासा को सामने रखा :

किव सचिआरा होइए, किव कूडे तुटै पालि।।
हुकम रजाई चलणा, नानक लिखिजा नालि।।

''सत्य का साक्षात्कार किस प्रकार हो? झूठ का आवरण कैसे दूर हो?'' दूसरी पंक्ति में इस जटिल प्रश्न का उत्तर है–प्रभु की आज्ञा और इच्छा को पहचानकर उसके अनुरूप चलना चाहिए।''

संपूर्ण सिख-चिंतन में 'हुक्म' का बड़ा महत्वपूर्ण स्थान है। इस पंक्ति में हुकम के साथ 'रजाई' शब्द है। रजाई अरबी शब्द 'रज़ा' का पंजाबी रूप है, जिसका अर्थ है इच्छा। गुरु नानक के अनुसार प्रत्येक वस्तु उसी हुकम के भीतर है, उसके बाहर कुछ भी नहीं है। उस हुकम को यदि कोई भली भांति समझ सके, तो फिर उसे अपने को भिन्न सिद्ध करने वाले अहंभाव का बांध नहीं होता :

हुकमै अंदरि सभु को, बाहरि हुकम न कोई।
नानक हुकमे जे बुझे, त हउमैं कहे न कोई।।

हुकम चलाने वाले ने हुकम को सदा के लिए प्रवर्तित कर दिया है। उसका पालन

करते हुए, निर्द्वंद्व होकर अग्रसर होते रहना ही हमारा कर्तव्य है :

हुकमी हुकम चलाए राहु।। नानक विगसै बे परवाहु।।

अगली सभी पीड़ियों में मनुष्य की आध्यात्मिक यात्रा का क्रमिक वर्णन है, जो धीरे-धीरे निष्कर्ष की ओर बढ़ता है :

अंतिम अड़तीसवीं पौड़ी में गुरु नानक ने अपने निष्कर्ष को एक उत्कृष्ट रूप्क दिया है :

जतु पहारा धीरजु सुनिआरु।
अहरिण मति वेदु हथिआरु।।
भउ खला अगनि तप ताउ।।
भांडा भाउ अमृतु तित ढालि।।
घड़ीऐ सबद सची टकसाल।।
जिन कउ नदरि करमु तिन कार।।
नानक नदरी नदरि निहाल।।

समय रूपी दुकान और धैर्य रूपी सुनार विवेक की निहाई (अहरण) और ज्ञान रूपी हथौड़ी से, प्रभु-भय की धौंकनी में तप की अग्नि द्वारा तपाकर प्रेम भाव की कुठाली में प्रभु के नाम रूपी अमृत को ढालता है। इस सच्ची टकसाल में ईश्वर नाम का सिक्का बनता है। यह कार्य उन मनुष्यों का है जिन पर प्रभु की कृपा दृष्टि पड़ती है। वह मनुष्य ईश्वर की कृपा दृष्टि पाकर कृतार्थ (निहाल) हो जाता है।

जपुजी का अंत एक सलोक से होता है :
पवण गुरु पाणी पिता माता धरति महतु।।
दिवसु राति दुई दाइया खेलै सगल जगतु।।
चंगिआइआ बुरिआइया वाचै धरमु हदूरि।।
करमी आपो आपणी के नेड़ै के दूरि।।
जिनी नामु धिआइआ गए मसकति धालि।।
नानक से मुख उजलै केती छुटी नालि।।

"प्राण वायु गुरु के समान है, धरती सभी की माता है, रात्रि और दिन सभी की सेवा करने वाले दाई और दाया है, उनकी गोद में संपूर्ण संसार खेलता है। धर्म सभी लोगों की अच्छाइयों और बुराइयों की परख करता है। अपने कर्मों के अनुसार कुछ लोग उसके निकट स्थान पाते हैं और कुछ दूर रहते हैं। जो लोग प्रभु का नाम स्मरण करते हैं उनकी साधना सफल होती है। प्रभु के सम्मुख वे उज्ज्वल भुख लेकर जाते हैं। अपने साथ ही वे अन्य अनेक लोगों की मुक्ति का कारण बन जाते हैं।

गुरु नानक की दूसरी प्रसिद्ध रचना सिध गोसटि (सिद्ध गोष्ठि) है। कहा जाता है कि अपनी एक उदासी में गुरु नानक हिमालय स्थित सुमेर पर्वत पर गए थे। वहां अनेक सिद्ध तपस्या में लीन थे। भाई गुरदास ने वार एक में इस बात का उल्लेख किया है।

बाबा डिठी प्रिथवी नवै खंड जिपै तक आही।।
फिर जा चढ़े सुमेर पर सिद्ध मंडली द्रिश्टी आई।।

गुरु नानक को वहां देखकर सिद्धों को आश्चर्य हुआ उन्होंने उनसे पूछा—संसार की क्या दशा है? गुरु नानक ने कहा—हे नाथ जी, सच का चंद्रमा कहीं दिखाई नहीं देता। चारों ओर झूठ का अंधेरा पसरा हुआ है :

फिर पुछण सिध नानका मात लोक विच किआ वरतारा।।
बाबे काहिआ नाथ जी सच्च चंद्रमा कूड़ अंधारा।।

उन्होंने यह भी कहा कि आप जैसे सिद्ध पुरुष संसार त्याग कर पर्वतों में आ छिपे हैं। संसार का कल्याण कौन करेगा? योगी तो ज्ञान रहित हो गए हैं। वे रात-दिन अपने शरीर पर भभूति लगाते रहते हैं। योग्य गुरु के अभाव में सारा संसार डूब रहा है :

सिध छप बैठे परवती कौण जगत कउ पार उतारा।।
जोगी गिआन विहूणिआं निस दिन अंग लगाइन छारा।।
बाझ गुरु डुब्बा जग सारा।।

गुरु नानक अपनी यात्राओं में सभी प्रकार की विचारधारा के लोगों से संवाद करते रहते थे। सिद्धों, योगियों, नाथ पंथियों से भी ज्ञान-चर्चा करते रहते थे। सुमेर पर्वत पर तथा अन्य अनेक अवसरों पर इस प्रकार के साधकों से उनका जो संवाद हुआ उसे सिध गोसिट नाम से जाना जाता है। यह रचना गुरु नानक के चिंतन और उनकी दार्शनिक मान्यताओं को व्यक्त करने वाली महत्वपूर्ण रचना मानी जाती है।

सिद्धों—नाथों के पूछे हुए प्रश्नों के उत्तर उन्होंने बड़ी कलात्मक पद्धति से दिए। उदाहरण के लिए चर्पट नाथ के यह पूछने पर कि सही गुरु के मिंलन के क्या प्रमाण हैं, गुरु नानक ने कहा चंचलता छोड़ देने और प्रभु नाम के साथ जुड़ जाना ही इसका प्रमाण है :

हाटी बाटी नींद न आवै पर घरि चितनु न डोलई।।
बिनु नावै मनु टेक न टिकई नानक भूख न जाई।।

संसार में रहते हुए भी सांसारिकता से अलिप्त रहने के संबंध में वे कहते हैं—जैसे कमल जल में रहता हुआ भी जल से निर्लिप्त रहता है, जैसे मुरगाई जल में रहते हुए भी जल से अलग रहती है उसी प्रकार प्रभु का नाम-स्मरण करने वाले शब्द के साथ जुड़कर

इस भव सागर को पार कर जाते हैं :

जैसे जल महि कमलु निरालमु मुरगाई नैसाणे।
सुरति सबदि भव-सागरु तरीऐ नानक नाम बखाणे।।

इस प्रकार सिख-चिंतन का सार रूप सिद्ध गोष्ठि में सरलता पूर्वक देखा जा सकता है।

ओंकार

मूल मंत्र में गुरु नानक ने ओंकार के साथ एक लगाकर इस तथ्य को आग्रहपूर्वक दोहराया कि वह परमसत्ता, अपने अनेक रूपों में दिखकर भी मूलतः एक ही है। उस युग में परमात्मा को अनेक देवी-देवताओं के रूप में कल्पित किया जा रहा था। यह विभेद इतना अधिक हो गया था कि हर समुदाय का अपना पृथक इष्ट देव हो गया था और सामाजिक समरसता पूरी तरह खंडित हो रही थी।

ऐसे समय में इस्लाम एकेश्वरवाद (तौहीद) का संदेश लेकर इस देश में आया। असंख्य देवी-देवताओं में विभाजित इस देश को उसने राजनीतिक दृष्टि से ही पराजित नहीं किया, सामाजिक दृष्टि से भी उसे हेय स्थिति में डाल दिया। उस स्थिति में गुरु नानक ने एक ओंकार ੴ की बात कहकर न केवल परमसत्ता के एक ही होने के तथ्य को पुनर्स्थापित किया वरन सामाजिक एकता को भी बल दिया।

54 पदों की यह रचना राग रामकली के अंतर्गत संकलित है। उसे दखणी ओंकार भी कहते हैं। प्रथम पद में गुरु नानक ओंकार की व्याप्ति की चर्चा करते हुए कहते हैं:

उअंकार ब्रह्मा उतपति। उअंकार कीआ जिन चिति।।
उअंकार मैल जुग भए। उअंकार बेद निरमए।।
उअंकार सबदि उधरे। उअंकार गुरमुखि तरे।।
उतम अखर सुणहु बीचार। उनम अखरु त्रिभवण सारु।।

तैंतरीय उपनिषद में भी लिखा है—ओम ही ब्रह्म है, ओम ही सब कुछ है ओमति ब्रह्म 'ओमितिदं सर्वम्'।

गुरु नानक ने परमात्मा को ही सब कुछ माना। वे कहते हैं—एकंकारु अवर नहीं दूजा नानक एकु समाई।

उनके दार्शनिक विचारों को समझने के लिए इस रचना का विशेष महत्व है।

पट्टी

पट्टी या पटिया उस तख्ती को कहते हैं जिस पर बालक वर्ण माला लिखना सीखते हैं। इसी परंपरा के आधार पर उस रचना को भी पट्टी कहा जाने लगा जिसमें

वर्णमाला को यथाक्रम काव्यमयी व्याख्या प्रस्तुत की गई हो।

गुरुमुखी लिपि में 35 वर्ण होते हैं। इस लिपि का विकास तत्कालीन कश्मीर में प्रचलित शारदा लिपि और पहाड़ी प्रदेशों में प्रचलित टक्करी तथा लंडा लिपि के माध्यम से हुआ था। गुरु नानक ने 35 वर्णों के माध्यम से परमात्मा की स्तुति कर उसकी प्राप्ति पर बल दिया है। उनके दार्शनिक और धार्मिक विचारों की अभिव्यक्ति इस काव्य रूप के माध्यम से हुई है।

यह रचना उनकी प्रौढ़ावस्था की रचना प्रतीत होती है। जपुजी का केंद्रीय विषय है :

किव सचिआरा होईऐ।
हुकम रजाई चलणा।
इस रचना का केंद्रीय विचार है :
मन काहे भूले मूढ़ मना?
जव लेखा दवहि वीरा तउ पाइआ।।

(हे मूर्ख मन, तू किसलिए भूलता है। इसलिए कि तू अपने आपको बड़ा ज्ञानी समझता है। वास्तव में तू तभी पढ़ा-लिखा समझा जाएगा। जब अपने कर्मों का लेखा चुका देगा। तत्पश्चात् सभी अधरों एवं मात्राओं के आध्यात्मिक अभिप्राय का चित्रण किया गया है।

बारहमासा

तुखारी राग में संकलित यह रचना गुरु नानक के अंतिम दिनों की कृति मानी जाती है। इस रचना में जीवात्मा की परमात्मा से एकात्म होने की प्रक्रिया का विश्लेषण किया गया है। यह प्रक्रिया वियोग से संयोग की ओर सहज भाव से विकास करती है। नायिका को वियोग से संयोग की ओर ले जाने वाला काव्य रूप है बारह मासा। साधारणतया पहले 11 मासों में वियोग का चित्रण होता है और अंतिम में संयोग सुख की प्राप्ति होती है। यह सुख लौकिक नहीं अलौकिक है।

विरह की ज्वाला से दग्ध नायिका रूपी जीवात्मा कहती है :
पिरु घरि नहीं आवै मरीऐ हावै दामिनि चमकि डराए।।

दुख से निवृति पाने के लिए अंततः उसे गुरु की शरण में आना पड़ता है। गुरु द्वारा निर्दिष्ट साधना-मार्ग पर चलने से ही जीवात्मा रूपी नायिका अपने प्रियतम के घर पहुंचकर संयोग सुख प्राप्त कर लेती है :

नानक मेलि लई गुरि आप
घरि वह पाइआणै नारी

इन रचनाओं के अतिरिक्त पहरे, सो-दर, अलाहणियों, आरती, कुचजी, सुचजी, आदि छोटे आकार की रचनाएं भी गुरु नानक द्वारा रची गईं।

वार-काव्य

गुरु नानक ने माझ, आसा और मलार रागों में तीन वारें भी लिखीं। लोक परम्परा पर आधारित 'वार' पंजाबी भाषा के एक काव्य-रूप का नाम है। वार में सामान्यतः वीर काव्य की रचना होती रही है। गुरु नानक ने सर्व प्रथम वार को वीर रस के क्षेत्र से निकाल कर आध्यात्मिक अभिव्यक्ति के लिए उपयोग किया।

ये तीनों वारें मूल रूप से पउड़ियों में लिखी गई थीं। इनमें अधिकतर एकेश्वरवाद गुरु-महिमा, नाम स्मरण एवं रहस्यानुभूति की अभिव्यक्ति की गई है।

आसा की वार

यह वार गुरु नानक की एक बहुचर्चित रचना है। सिख धर्म की नित्य की सभाओं तथा अन्य मांगलिक अवसरों पर इसका कीर्तन किया जाता है। इस वार का मूल प्रतिपाद्य मनुष्य के आचरण में इतना विकास लाना है कि संसार से ऊंचा उठकर देवत्व प्राप्त कर सके।

इस वार में गुरु नानक रचित 24 पउड़ियों और 45 सलोक हैं। शेष 15 सलोक गुरु अंगद के हैं।

माझ की वार

इस वार में 27 पउड़ियां और 46 सलोक हैं। शेष सलोक अन्य गुरुओं के हैं। इसके गठन, वस्तु-संयोजन, भाव गांभीर्य को देखते हुए इसे गुरु नानक की प्रौढ़ावस्था की कृति स्वीकार किया जाता है।

मलार की वार

इस वार में 28 पउड़ियां और 24 सलोक हैं। इसमें कुरीतियों और कलुषित परंपराओं का त्याग कर वास्तविक धर्म में लीन होने की भावना की प्रधानता है। बहुदेववाद के स्थान पर एकेश्वरवादी दृष्टिकोण का प्रतिपादन है।

फुटकल पद्य

गुरु नानक के अलग-अलग अवसरों पर और विभिन्न परिस्थितियों में उचारे गए ऐसे पद भी हैं जिन्हें चौपदे, अष्टपदियां, छंत, सोहले और सलोक कहा जाता है।

गुरु अंगद देव (1504-1552)

भाई लहणा का गुरु नानक देव के संपर्क में आकर गुरु अंगद बन जाना अपने आप में बहुत अद्‌भुत घटना है। वे देवी-भक्त थे। अपने कुछ साथियों के साथ ज्वाला देवी की यात्रा पर जा रहे थे। मार्ग में करतारपुर था, जहां गुरु नानक देव संसार के अनेक भागों का भ्रमण करने के पश्चात् अपने परिवार-पत्नी सुलक्खिणी और दो पुत्रों श्रीचंद और लखमी चंद के साथ आ गए थे। गुरु नानक की ख्याति चारों ओर फैल चुकी थी। असंख्य लोग दूर-दूर से उनके दर्शन और उपदेश सुनने के लिए वहां आते थे। करतारपुर तीर्थ स्थान बन गया था।

भाई लहणा ने भी करतारपुर में गुरु नानक के दर्शन किए, उनका उपदेश सुना गुरुवाणी का कीर्तन सुना और करतारपुर का वातावरण देखा। प्रातः और सायंकाल वाणी गायन, कथा-कीर्तन में व्यतीत होता था। दिन में सभी लोग खेतों में काम करते थे। सभी के लिए लंगर की व्यवस्था होती थी। सभी लोग, बिना किसी भेदभाव के, ऊंच-नीच का विचार किए बिना पंगत में बैठकर भोजन करते थे। वहां प्रभु-चिंतन, उद्यम, सेवा. समता और संपूर्ण समर्पण का अद्‌भुत संयोग था।

भाई लहणा यह सब देखकर अभिभूत हो गए। उन्हें लगा वे अपने गन्तव्य पर आ गए हैं। अब और कहीं जाने की आवश्यकता नहीं है। उन्होंने अपने साथियों को आगे ज्वालादेवी जाने दिया, स्वयं वहीं रह गए।

भाई लहणा का जन्म आज के जिला फिरोज़पुर के एक गांव 'मते दी सरां' में 30 मार्च, 1504 (बैसाख वदी, संवत 1561) के दिन हुआ था। उनके पिता का नाम फेरुमल और माता का नाम सभराई था।

उन दिनों पंजाब का यह क्षेत्र मध्य एशिया की ओर से आने वाले आक्रमणकारियों से बुरी तरह पीड़ित था। आक्रमणकारी सेनाएं मार्ग में पड़ने वाली बस्तियों को लूटती और

उजाड़ती हुई दिल्ली की ओर जाती थीं। लहणा जी का जन्म स्थान मते दी सरां भी इसी व्याधि का शिकार हुआ। उनके पिता फेरुमल पहले संघर गांव में कुछ समय तक रहे फिर खंडूर नामक स्थान पर आकर अपना व्यवसाय करने लगे।

लहणा जी का विवाह संघर गांव के साहूकार देवी चंद्र मारवाह की पुत्री 'खीवी' के साथ सन् 1521 में हुआ। उनकी चार संतानें थी—दो पुत्र दासू और दातू तथा दो पुत्रियां अमरो और अनोखी।

खंडूर में लहणा जी गुरु नानक के एक सिख, भाई जोधा के संपर्क में आए। उन्हीं से उन्होंने गुरु नानक की वाणी सुनी। भाई जोधा उसका नित्य पाठ करते थे। इस वाणी का उन पर गहरा प्रभाव पड़ा। भाई जोधा से उन्होंने गुरु नानक की बड़ी चर्चा सुनी। इसी कारण उन्होंने यह निश्चय किया कि इस बार जब वे ज्वाला देवी की यात्रा के लिए जाएंगे तो मार्ग में करतारपुर में रुककर गुरु नानक के दर्शन करेंगे।

जब लहणा जी ने करतारपुर में रहने का निश्चय कर लिया तो गुरु नानक ने उन्हें आदेश दिया कि पहले वे खंडूर जाकर अपने परिवार से इस बात की अनुमति ले आएं। लहणा जी अपने गांव गए ओर परिवार के सभी सदस्यों को अपने निर्णय से अवगत करा कर करतारपुर वापस आ गए और अनन्य भाव से सेवा में लीन हो गए।

गुरु नानक देव जी ने उनकी सेवा की अनेक बार परीक्षा ली। एक बार जब गुरु नानक अपने खेतों से पशुओं के खाने के लिए तीन गट्ठर चारा इकट्ठा कर चुके तो लहणा जी वहां पहुंच गए। गुरु नानक के दोनों पुत्र भी वहां उपस्थित थे। गट्ठरों में बंधे चारे से कीचड़ चू रहा था। कपड़े खराब हो जाने के डर से पुत्र उन गट्ठरों को उठाने में संकोच कर रहे थे। भाई लहणा जी ने आगे बढ़कर वे गट्ठर उठाकर अपने सिर पर रख लिए और उन्हें ले आए।

अनेक बार ऐसी घटनाएं हुईं। लहणा जी हर समय गुरु की सेवा में निमग्न रहते थे। वे खेतों में काम करते थे, लंगर की व्यवस्था में लगे रहते थे, आनेवाले यात्रियों की देखभाल का पूरा ध्यान रखते थे।

उनका समर्पण भाव, उनकी निष्ठा, आध्यात्मिक विषयों में उनकी गहरी रुचि और सांसारिक दायित्वों के प्रति उनकी तत्परता देखकर गुरु नानक देव ने यह अनुभव कर लिया कि लहणा जी में उनका उत्तराधिकारी बनने की पूरी योग्यता है।

गुरु नानक देव के दो पुत्र थे। ज्येष्ठ पुत्र श्रीचंद सदैव विरक्त भाव में रहते थे। वे सांसारिकता से पूरी तरह उदास होकर आध्यात्मिक साधना में लीन रहते थे।

गुरु नानक अपने उपदेशों और कार्यों से एक नए समाज का सृजन कर रहे थे। उनकी कल्पना का समाज सभी प्रकार के ऊंच-नीच के भावों से मुक्त था। उसमें हिंदू अथवा मुसलमान का कोई भेद नहीं था। गुरु नानक के जीवन भर के साथी भाई मरदाना के देहावसान के पश्चात् गुरु दरबार में कीर्तन करने का दायित्व भाई मरदाना का पुत्र शहबाज़ निभाता था। गुरुवाणी के मुसलमान कीर्तनियों की परंपरा गुरु-दरबार और

गुरुद्वारों में निरंतर चलती रही है।

श्रीचंद का विरक्ति भाव गुरु नानक देव जी को अपने जीवन-दर्शन के अनुकूल नहीं लगता था। दूसरे पुत्र लखमी चंद की वृत्ति पूरी तरह सांसारिक थी। उनका मन भौतिक पदार्थों में ही अधिक रमता था। यह बात भी गुरु नानक के जीवन दर्शन के अनुरूप नहीं थी।

लहणा जी की सेवा और समर्पण की भावना के कारण गुरु नानक देव ने उन्हें अपना उत्तराधिकारी बनाने का निश्चय कर लिया। यह कार्य उन्होंने अपने जीवन काल में ही कर दिया। अपनी जीवन लीला समाप्त करने (22 सितंबर 1539) से लगभग तीन माह पूर्व (14 जून 1539) को उन्होंने लहणा जी को अपना अंगभूत बना कर 'अंगद' नाम दे दिया। उन्हें गुरु अंगद के रूप में अपनी गद्‌दी पर बैठाकर उनके सामने एक नारियल और पांच पैसे रखकर उन्हें माथा टेका। भाई लहणा के लिए अंगद नाम का चयन करना, उस युग के परिवेश की दृष्टि से कम आश्चर्यजनक नहीं है।

गुरु नानक देव के देहावसान के कुछ समय पश्चात् गुरु अंगद देव करतारपुर से खडूर आ गए और इसी स्थान को उन्होंने अपना केन्द्र बना लिया। यहां आकर उन्होंने अनेक महत्वपूर्ण कार्य किए। उस समय गुरु नानक की कुछ वाणी लिखित रूप में थी, कुछ उनके शिष्यों की स्मृति में थी। गुरु अंगद ने इसे एकत्र करने का कार्य प्रारंभ किया। उस समय पंजाब में अनेक लिपियां प्रचलित थीं। देवनागरी का प्रयोग संस्कृत के लिए होता था, जिसका ज्ञान कुछ पंडितों तक सीमित था। टाकरी या ठाकरी का प्रयोग पहाड़ी प्रदेश में होता था। व्यापारी लोग महाजनी या लंडे लिपि का प्रयोग करते थे, जिसमें मात्राएं नहीं होतीं। सरकारी काम काज में फारसी लिपि का प्रयोग होता था।

कश्मीर में शारदा लिपि का प्रयोग पंडितों द्वारा किया जाता था। पं. जयचंद्र विद्यालंकार का मत है कि गुरुमुखी लिपि इसी शारदा लिपि का कुछ परिवर्तित रूप है।

गुरुमुखी लिपि में कुछ पैंतीस अक्षर हैं। गुरु नानक देव की एक रचना है—पट्टी। बालक जिस तख्ती पर वर्णमाला लिखना प्रारंभ करता है, उसे पट्टी लिखना कहते हैं। गुरु नानक ने अपनी रचना में वर्णमाला के अक्षरों को आध्यात्मिक अर्थ दिए हैं। इससे ज्ञात होता है कि यह वर्णमाला उस समय प्रचलित थी।

गुरु अंगद देव ने इस लिपि में आवश्यकतानुसार कुछ सुधार किए और गुरु नानक देव तथा उनके द्वारा संगृहीत अन्य संतों की रचनाओं को पंजाब में शारदा लिपि के प्रचलित रूप में लिखवाने का कार्य प्रारंभ किया। बच्चों को इस लिपि का ज्ञान कराने के लिए एक पाठशाला भी स्थापित की। धीरे-धीरे लोग इस लिपि में कार्य-व्यवहार करने लगे। लोगों में इस लिपि का प्रचार गुरु द्वारा हुआ था, इसलिए इसे गुरुमुखी कहा जाने लगा।

गुरु अंगद देव, गुरु नानक देव को उनके जीवन के अंतिम वर्षों में मिले थे। उन्होंने उनके सानिध्य में लगभग सात वर्ष रहकर उनकी अनन्य सेवा की थी। उस समय

तक प्रथम गुरु के जीवन-प्रसंगों की अनेक कथाएं जनश्रुति का भाग बन गई थीं। गुरु अंगद देव ने वे सभी वृत्तांत, प्रसंग और कथाएं एकत्र करने और उन्हें लिपिबद्ध करने का कार्य किया। गुरु नानक के बाल सखा बाला संधू ने पहली 'जन्म साखी' लिखी। यह जन्म साखी आज उपलब्ध नहीं है, किंतु इसी नाम की बाले की 'जन्म साखी' बाद में भी लिखी जाती रही। इसी आधार पर परवर्ती वर्षों में अनेक जन्म साखियां लिखी गईं।

गुरु नानक के समय से ही सहभोज (लंगर) की प्रथा प्रारंभ हो गई थी। जाति-पांति और ऊंच-नीच की भावना से बुरी तरह ग्रस्त समाज में, सभी वर्गों के लोगों का, बिना किसी भेदभाव के साथ-साथ बैठकर भोजन करना तो बहुत दूर की बात थी, लोग एक दूसरे का छुआ पानी भी नहीं पीते थे।

गुरु नानक ने अपने शिष्यों को इस प्रकार के भेदभाव से मुक्त कर दिया। अपनी यात्राओं में उन्होंने नीच समझी जानी वाली जातियों के लोगों का आतिथ्य ग्रहण किया था और खान-पान में हिंदू-मुसलमान, ऊंच-नीच का भेदभाव दूर करने का प्रयास किया।

गुरु अंगद देव ने लंगर की प्रथा को अपनी गतिविधियों में प्रमुख स्थान दिया। इस कार्य में उनकी सहायक उनकी पत्नी खीवी थी। माता खीवी की देख-रेख में सारा लंगर बनता था और खंडूर आने वाले श्रद्धालुओं को बड़े प्रेम से खिलाया जाता था।

लोगों के शारीरिक शिक्षा की ओर भी गुरु अंगद ने ध्यान दिया। विदेशी शासन और बाहरी आक्रमणकारियों के अत्याचार के कारण सामान्य जनता का मनोबल टूट गया था।

मानसिक हताशा को दूर करने और आत्मबल की अभिवृद्धि के लिए गुरुवाणी और गुरु उपदेश संजीवनी का काम करते थे। शारीरिक शक्ति के संचयन के लिए उन्होंने युवकों के नियमित व्यायाम की व्यवस्था की। उन्होंने खंडूर में एक मल्ल अखाड़ा स्थापित किया जहां युवक व्यायाम करते थे और कुश्ती लड़ते थे।

सिख आंदोलन मात्र भक्ति आंदोलन नहीं था। जिस सामाजिक सक्रियता और स्वालम्बन की कल्पना गुरु नानक ने की थी, उन्होंने उसे जीवन में चरितार्थ करके दिखाया था। करतारपुर में गुरु नानक स्वयं खेती करते थे। इसी प्रकार गुरु अंगद देव और उनका परिवार अपना भरण-पोषण करने के लिए मूंज वटते थे।

गुरु अंगद देव ने बहुत थोड़ी, किंतु हृदयग्राही वाणी का सृजन किया। उनके लिखे 62 सलोक (श्लोक) गुरु ग्रंथ साहब में संगृहीत हैं।

रचना पक्ष

गुरु अंगद देव एक सिद्धहस्त कवि थे। गुरु ग्रंथ साहब में उनके 62 सलोक (श्लोक) संगृहीत हैं जो इस ग्रंथ में संकलित अनेक वारों के साथ आए हैं। वार पंजाबी भाषा का वह काव्य रूप है जिसमें किसी योद्धा के पराक्रम का चित्रण किया गया हो। हिंदी साहित्य के आदि काल में लिखे गए रासो काव्यों में इसकी अनुरूपता दिखाई देती है।

गुरु ग्रंथ साहब में सत्य और असत्य के मध्य निरंतर होते संघर्ष को चित्रित करने वाली 21 वारें संकलित हैं। केवल लौकिक नायकों की प्रशस्ति में लिखी जाने वाली वारों को गुरुओं ने आध्यात्मिक रंग दे दिया था। गुरु अंगद देव के सभी सलोक *गुरु ग्रंथ साहब* में संकलित 9 वारों के साथ जुड़ कर आए हैं।

इन सलोकों में अपने प्रिय से बिछुड़ने की गहरी वेदना है। उनका एक सलोक है:

जिसु पिआरे सिउ नेहु तिसु आगै करि चलिऐ।
धृग जीवणु संसारि ताके पाछे जीवणा।।

(जिस प्रिय से स्नेह हो उसके सम्मुख अहंकार नष्ट करके ही आना चाहिए। उन पर धिक्कार है जो उससे विमुख होकर संसार में जीवित रहना चाहते हैं।)

जीवन के रहस्यों को उद्‌घाटित करने वाले गुरु अंगद देव के कुछ सलोक बड़े मार्मिक हैं। एक सलोक में वे कहते हैं जो व्यक्ति अपने आपकी परख करता है, उसे सही पारखी समझना चाहिए। कुशल वैद्य वह है जो रोगी के रोग की सही पहचान के साथ ही रोग की सही दवा भी जानता है :

नानक परखै आप कउ, ता परखू जाणु।
रोग दारु दोवै बुझै, ता वैदु सुजाणु।।

इसी प्रकार संसार में कुछ लोग ऐसे कार्य करने की योजना बनाने लगते हैं, जो उनके सीमित सामर्थ्य के लिए संभव नहीं होते। यह उसी प्रकार है जैसे कोई धनुर्धारी आकाश को बेधने की इच्छा रखकर वाण चलाए। उसका वाण आकाश तक कैसे पहुंच सकता है? धनुर्धारी को इस बात का ज्ञान होना चाहिए कि आकाश तो असीम और अगम्य होता है :

सरु संधै आगास कउ किस पहुचै बाणु।।
अगै उहु अगंमु है वाहेदड़ जाणु।।

इस देश में वाद-विवाद की लंबी परंपरा रही है। गुरु अंगद देव कहते हैं कि प्रभु-प्रेम का सही आस्वाद लंबी-चौड़ी बातों से नहीं मिलता। यह आस्वाद तो व्यक्ति के आंतरिक प्रेम तथा सत्याचरण से मिलता है जैसे जो व्यक्ति विष बीजता है अगर वह अमृत की आशा करे—यह न्याय संगत नहीं है।

गल्लां करे घनेरिआं, खसमु न पाए सादु।
बीजै बिख मंगे अमृत वेखहु एहु निआउ।

गुरु अंगद देव जी की संपूर्ण वाणी का अपनी सरलता, सहजता और संक्षिप्तता के कारण गुरु ग्रंथ साहब में विशेष स्थान है।

गुरु अमरदास (1479-1574)

गुरु अंगद देव द्वारा अपने उत्तराधिकारी के रूप में अमरदास जी के चयन की प्रक्रिया भी लगभग वैसी ही है जैसी स्वयं उनकी थी। गुरु अंगद देव ने अपनी अनन्य सेवा से गुरु नानक देव का विश्वास और स्नेह अर्जित किया था, अमरदास जी ने भी वही किया।

उनका जन्म भल्ला (खत्री) घराने में बैसाख सुदी चौदस संवत् 1566 (जून, 1479) को बासर के गांव (अमृतसर) में हुआ था। उनके पिता का नाम तेजभान और माता का नाम लक्खी था।

प्रारंभ से ही अमरदास जी धार्मिक रुचि वाले व्यक्ति थे। प्रति वर्ष वे अपने अनेक साथियों के साथ तीर्थ यात्रा के लिए जाते थे। गुरु अंगद देव की पुत्री अमरो अमरदास जी के छोटे भाई माणिक चंद के पुत्र रामजी मल से ब्याही हुई थी। उसके मुख से उन्होंने गुरु नानक देव रचित एक पद सुना :

करणी कागद मनु मसवाणी, बुरा भला दोइ लेख पए।
जिउ जिउ किरतु चलाए तिउ चलिऐ तउ गुण नाही अंतु हरे।।1।।
चित चेतसि की नही बावरिआ।। 1।।
हरि बिसरत तेरे गुण गलिया।। रहाउ।।
जाली रैनि जालु दिनु हूआ जेती घड़ी फाही तेती।।
रसि रसि चोग चगुहि नित फासहि छूटसि मूड़े कवन गुणी।। 2।।
काइआ आरणु मनु विचि लोहा पंच अगनि तितु लागि रही।।
कोइले पाप पड़े तिसु ऊपरि मनु जलिआ सन्ही चिंत भई।। 3।।
भइआ मनूर कंचनु फिरि होवै जे गुरु मिलै तिनेहा।।
एकु नाम अंतु उहु देवै तउ नानक त्रिसटसि देहा।।

(मनुष्य का आचरण कागज है, मन दवात है। इसी से उसके अच्छे-बुरे लेख लिखे जा रहे हैं। अपने पूर्व कर्मों के अनुसार प्रभु जिस प्रकार चलाता है, मनुष्य चलता है। हे बावरे मनुष्य! तू प्रभु का स्मरण क्यों नहीं करता। उसके विस्मरण से मनुष्य के गुण नष्ट होने लगते हैं।

रात-दिन तेरे चारों ओर माया का जाल बनता जा रहा है। मनुष्य बड़ा स्वाद लेकर विकारों का भक्षण करता है। वह किन गुणों की सहायता से इनसे मुक्ति प्राप्त करेगा? मनुष्य शरीर मानो लोहार की भट्टी है। मन उसमें लोहा है। वहां पांच विकारों की अग्नि जल रही है। उस पर पाप का कोयला डाला जा रहा है। जिसमें मन सदा जलता रहता है। यदि योग्य गुरु मिल जाए तो वह जले हुए मन को भी सोना बना देता है। गुरु प्रभु का बोध कराता है, जिससे मन स्थिर हो जाता है।)

अमरदास जी गुरु-पुत्री को लेकर गुरु अंगद देव के पास खंडूर गए। वहां उनसे मिलकर उनके दर्शन करके, वहां का दैनिंदिन कार्य-व्यवहार देखकर और उनके उपदेश सुनकर वह पूरी तरह अभिभूत हो गए। उनकी स्थिति भी वैसी ही हुई जैसी गुरु नानक देव से मिलकर लहणा जी की हुई थी। अमरदास जी ने निश्चय कर लिया कि वे खंडूर में रहकर गुरु अंगद देव और उनके आदर्शों के लिए अपने आपको समर्पित कर देंगे।

अनेक इतिहासकारों का मत है कि अमरदास जी गुरु अंगद देव के संपर्क में 65 वर्ग की आयु में आए। किंतु कुछ इतिहासकार यह मानते हैं कि उस समय उनकी आयु लगभग 35 वर्ष थी।

अमरदास जी द्वारा गुरु अंगद देव की अनन्य सेवा की अनेक कथाएं प्रचलित सिख इतिहासों में प्राप्त होती हैं। वे गुरु अंगद देव के स्नान के लिए सूर्योदय से पूर्व दो कोस से व्यास नदी से जल की गागर भरकर लाते थे। कैसी भी ऋतु हो, वर्षा, शीत, आंधी-तूफ़ान, अमरदास जी यह सेवा अवश्य निभाते थे। दिन का सारा समय आने वाले श्रद्धालुओं की सेवा करते थे, उनके लिए तैयार हो रहे लंगर की देखभाल करते थे।

संसार की लगभग सभी सभ्यताएं नदियों के किनारे विकसित हुईं। सभी सिख गुरु इस तथ्य से भली प्रकार परिचित थे। गुरुओं की प्रेरणा से पंजाब में अनेक नए नगर बसाए गए। इस कार्य में इस बात का विशेष ध्यान रखा जाता था कि नया नगर किसी नदी के किनारे हो अथवा उसमें बड़े सरोवरों का निर्माण कराया जाए। गुरु नानक देव ने रावी के किनारे करतारपुर बसाया था। गुरु अंगद देव ने अमरदास जी को आज्ञा दी कि वे व्यास नदी के किनारे गोइन्दवाल नगर की स्थापना करें। यह नगर आगे चलकर सिख-आंदोलन का बहुत बड़ा केंद्र बन गया।

गुरु अंगद देव ने अमर दास जी को अपना उत्तराधिकारी बनाने का निश्चय कर लिया। उनके दोनों पुत्रों—दातू और दासू को अपने पिता का निर्णय अच्छा नहीं लगा। उन्होंने अपना विरोध भी दर्शाया किंतु गुरु अंगद देव ने गुरु नानक देव की परंपरा का पालन करते हुए अपने सेवाभावी प्रिय शिष्य को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त कर दिया।

मार्च 1552 में उन्होंने अमरदास जी को गुरु अमरदास बनाकर गुरु गद्दी पर आसीन कर दिया। उनकी प्रदक्षिणा की ओर पांच पैसे तथा नारियल उनके सम्मुख रखकर उनके आगे माथा टेका।

गुरु अंगद देव जी ने करतारपुर की अपेक्षा अपना कार्यक्षेत्र खंडूर को बना लिया था। गुरु अमरदास ने गोइन्दवाल को अपने कार्य का केन्द्र बनाया। भौगोलिक और राजनीतिक दृष्टि से गोइन्दवाल का क्षेत्र बहुत महत्वपूर्ण था। वह लाहौर और दिल्ली के मार्ग में पड़ता था। दोनों ओर आने-जाने वाली सेनाएं यहीं से व्यास नदी पार करती थीं, दूर-दूर तक गुरु नानक देव का संदेश प्रसारित करने की दृष्टि से यह बहुत उपयुक्त स्थान था।

गुरु अमरदास का स्थायी निवास बन जाने के कारण दूर-दूर के सिख श्रद्धालु (संगतें) गोइन्दवाल आने लगे। बहुत से लोग अपनी हवेलियां बनाकर स्थायी रूप से वहीं रहने लगे।

जाति भेद और छूआछूत नष्ट करने के लिए गुरु अमरदास ने लंगर प्रथा पर विशेष ध्यान दिया। रूढ़िग्रस्त मानसिकता में जकड़े हुए कुछ लोग ऐसे थे जो गुरु का दर्शन करने, उनका उपदेश सुनने के लिए वहां आते थे किंतु लंगर में भोजन नहीं करते थे। गुरुजी ने एक नियम बना दिया कि जो भी उनसे मिलने, उनका दर्शन करने के लिए गोइंदवाल आएगा उसे पहले लंगर में आकर सबके साथ बैठकर भोजन करना होगा। इसके पश्चात् ही वह उनके पास आ सकेगा।

इतिहास में यह भी लिखा है कि सन् 1665 में शहंशाह अकबर स्वयं गोइंदवाल आया था। उसने भी गुरु अमरदास से मिलने से पूर्व सबके साथ बैठकर लंगर में भोजन किया था।

गोइंदवाल में आने वाले श्रद्धालुओं के लिए पानी की पर्याप्त व्यवस्था करने के लिए गुरु अमरदास ने एक विशाल बावड़ी का निर्माण करवाया। इस बावड़ी के जल-स्तर तक पहुंचने के लिए सीढ़ियां बनवाई गईं, जिनकी संख्या चौरासी है। यह संख्या प्राचीन मान्यता के अनुसार जीव की चौरासी लाख योनियों की प्रतीक बन गई।

संपूर्ण सिख-आंदोलन को व्यापक रूप से संगठित करने और गुरु नानक देव के सिद्धांतों को दूर-दूर तक पहुंचाने के लिए गुरु अमरदास ने 22 केन्द्रों की स्थापना की, जिन्हें मंजी (चारपाई) कहा गया। प्रत्येक मंजी के मुखिया के रूप में नियुक्ति समर्पण और सेवा भाव वाले व्यक्ति की हुई। इन्हें मसंद कहा जाता था। ये मसंद अपने-अपने क्षेत्रों में गुरुवाणी का प्रचार करते थे, संगत में गुरुवाणी की व्याख्या करते थे और जो श्रद्धालु गुरु के लिए जो भेंट, धन अथवा किसी वस्तु आदि के रूप में लाते थे, उन्हें एकत्र करके वे गुरु के पास पहुंचा दिया करते थे।

प्रति वर्ष बैसाखी का उत्सव मनाने की परंपरा भी गुरु अमरदास के समय से प्रारंभ हुई। बैसाखी जन-जीवन, विशेष रूप कृपक समाज से जुड़ा हुआ दिन है। इसमें धर्म,

संप्रदाय, जात-पांत, ऊंच-नीच, स्त्री-पुरुष का कोई भेद-भाव आड़े नहीं आता। गोइंदवाल में आयोजित बैसाखी के मेले में भाग लेने के लिए असंख्य लोग आने लगे। इनमें हिंदू भी होते थे और मुसलमान भी, गरीब भी और अमीर भी। गोइंदवाल में सभी के लिए लंगर का प्रबंध होता था और गुरुवाणी के कीर्तन का भी।

गुरु अमरदास ने स्त्रियों को लंगर में पुरुषों के साथ बैठकर भोजन करने के लिए प्रोत्साहित किया। उन्होंने पर्दा प्रथा का पूरी तरह निषेध किया। पति के साथ जल मरने की प्रथा उस समय बहुत प्रचलित थी। गुरु अमरदास ने सती प्रथा का स्पष्ट रूप से खंडन किया। अपनी एक रचना में उन्होंने लिखा है कि सती वह नहीं है जो अपने पति की चिता के साथ स्वयं जलकर मरती है। असली सती तो वह है जो अपने प्रिय के विरह में मरती है। शील-संतोष में रहने वाली नारी वास्तविक सती है। वह अपने प्रिय की सेवा में सदा लगी रहती है :

सतीआ एह न आखिअनि जि मड़ीआ लग जलनि।।
नानक सतीआ जाणीअनि जि बिरह चोट मरनि।।
भी सो सतीआ जाणीआनि सील संतोख रहनि।।
सेवनि साई आपणा नित उठि संभालंनि।।

(वार सूही)

रचना पक्ष

गुरु अमरदास जी का सृजन पक्ष बहुत महत्वपूर्ण है। वे लगभग 22 वर्ष गुरु गद्दी पर विराजमान रहे। इस अवधि में उन्होंने अनेक प्रचलित काव्य रूपों-सबदो, छंदों, पउड़िओं में वाणी की रचना की, जिसकी संख्या 873 है। गुरु नानक देव की वाणी 19 रागों में है। गुरु अमरदास की वाणी 17 रागों में प्राप्त है। ये राग हैं—सिरी, माझ, गउड़ी, आसा, गूजरी, वडहंस, सोरठ, धनासरी, सूही, बिलावल, रामकली, मारु, भैरउ, बसंत, सारंग, मलार और प्रभाती।

गुरु अमरदास की वाणी में 'अनंदु' (आनंद) सबसे अधिक लोकप्रिय वाणी है और अनेक अवसरों पर उसका गायन किया जाता है। गुरु नानक देव की सर्वाधिक चर्चित रचना 'जपु' है जिसमें 38 पउड़ियां हैं। अनंदु भी 38 पउड़ियां की रचना है जिसमें दो और पउड़ियों की रचना बाद में चौथे गुरु-गुरु रामदास और पांचवे और गुरु-गुरु अर्जुन देव द्वारा सम्मिलित की गई थी।

यह रचना प्रभु मिलन द्वारा प्राप्त आनंद की रचना है। इसका प्रारंभ इस प्रकार होता है :

अनंदु भइआ मेरी माइ सतिगुरु में पाइआ।।
सतिगुर त पाइआं सहज सेती मन वजीआ वाधाईआं।।

राग रतन परवार परीआ सबद गावण आइईआं।।
सबदो त गावहु हरी केरा मनि जिनी वसाइआ।।
कहै नानक अनंदु होआ सतिगुरु मैं पाइआ।।

(राग-रामकली)

(हे मां! मेरे अंदर आनंद की अनुभूति व्याप्त गई है, क्योंकि मुझे सद्‌गुरु की प्राप्ति हो गई है। सद्‌गुरु की प्राप्ति के साथ ही मुझे सहज स्थिति भी प्राप्त हो गई है। इससे मेरे मन में वधाइयों की झंकार उत्पन्न हो गई है। सभी राग-रागनियां अपने परिवारों सहित प्रभु-शब्द का गायन करने के लिए आ गई हैं। हे भाई! तुम भी हरि के गुण गाओ, जो तुम्हारे मन में बसा हुआ है। सद्‌गुरु की प्राप्ति के कारण मुझे आनंद की अनुभूति हो रही है।)

गुरु नानक देव जी के पास अपनी तथा अन्य अनेक संतों की वाणी का जो संचयन था उसे उन्होंने गुरु अंगद देव को सौंप दिया था। इसी प्रकार गुरु अंगद देव ने वह सारा संकलन गुरु अमर दास को सौंप दिया था। गुरु अमर दास ने इस संचयन की अनेक प्रतियां कराईं। इन्हीं प्रतियों के माध्यम से दूर-दूर तक गुरुवाणी का प्रचार हुआ।

गुरु अमरदास का विवाह सन् 1532 में स्यालकोट जिले के सणखत्रे गांव के निवासी देवी चंद बहल की पुत्री मंसा देवी के साथ हुआ था। उनकी एक पुत्री-भानी तथा दो पुत्र मोहन और मोहरी थे।

गुरु अमर दास की पुत्री भानी का विवाह उनके प्रिय शिष्य जेठा जी से हुआ था। वे अपने जमाता के समर्पण भाव, सेवा, विद्वता तथा बहुमुखी प्रतिभा से बहुत प्रभावित हुए थे। उन्होंने जेठा जी को अपना उत्तराधिकारी चुना और उन्हें गुरु गद्‌दी का गुरुतर भार सौंप दिया। जेठा जी को गुरु रामदास बनाने के बाद पहली सितंबर 1574 में उनका देहावसान हो गया।

गुरु रामदास (1543-1581)

अमृतसर नगर के संस्थापक होने के कारण चौथे गुरु—गुरु रामदास का नाम इतिहास में अपना विशिष्ट स्थान रखता है।

उनका जन्म 24 सितंबर, 1534 (कार्तिक बदी 2, संवत, 1591) में लाहौर के चूना मंडी क्षेत्र में सोढी वंश में हुआ था। उनके पिता का नाम हरिदास और माता का नाम दया कौर था। बचपन में सभी उन्हें जेठा कहकर पुकारते थे। सात वर्ष की आयु में उनके माता और पिता का देहांत हो गया। पालण-पोषण करने के लिए उनकी नानी उन्हें अपने गांव बासरके ले आई, जहां गुरु अमर दास जी का जन्म हुआ था।

बारह वर्ष की आयु में जेठा जी ने खंडूर की यात्रा की और उसके पश्चात् गोइंदवाल की यात्रा की जो उस समय गुरु अमर दास का केंद्र स्थान था। उन्होंने वहीं रहकर गुरु की सेवा करने का निश्चय कर लिया। गोइंदवाल में रहकर वे अपनी आजीविका के लिए उबले हुए चने बेचने का काम करने लगे। उनके सेवा-भाव, भक्ति और विचार शक्ति से लोग प्रभावित होने लगे। उनकी यह कीर्ति गुरु अमरदास जी तक भी पहुंची। वे युवा जेठा को अपने निकट रखने लगे। जेठा जी अब अधिक तन्मयता से गुरु सेवा में लग गए। उनका अधिक समय अब गुरुवाणी का अध्ययन करने और संगत की आवश्यकताओं की पूर्ति में लगने लगा।

गुरु अमरदास की पुत्री भानी विवाह योग्य हो गई थी। उन्हें और उनकी पत्नी को लगा कि जेठा जी उसके लिए योग्य वर हैं। उन्होंने 18 फरवरी 1554 को भानी का विवाह जेठा जी से कर दिया। नव विवाहित पति-पत्नी सदैव गुरु और संगत की सेवा में लगे रहते थे। भानी की सेवा के संबंध में एक साखी प्रचलित है। वह नित्य अपने वृद्ध पिता को स्नान कराती थी। एक बार स्नान करते समय गुरु अमरदास जिस लकड़ी के पीढ़े पर बैठे हुए थे, उसका एक पाया चरमराने लगा। भानी ने यह देख लिया। उसने

झट वहां अपना हाथ रख दिया। उसमें से खून निकलने लगा। बहते हुए पानी में खून का रंग दिखाई देने लगा। जब गुरु अमरदास को यह बात ज्ञात हुई तो अपनी पुत्री का सेवा भाव देखकर वे बहुत प्रसन्न हुए और कहा—तुम्हारे वंश को धर्म की रक्षा के लिए आगे चलकर बहुत खून बहाना पड़ेगा।

जेठा और भानी का समर्पण और सेवा-भाव देखकर गुरु अमरदास ने जेठा को अपना उत्तराधिकारी घोषित कर दिया और अपने देहावसान (1 सितंबर, 1574) के पूर्व उन्होंने जेठा जी को गुरु रामदास नाम देकर गुरु गद्दी पर सुशोभित कर दिया। संपूर्ण सिख आंदोलन की अभिवृद्धि में गुरु रामदास का योगदान बहुत महत्वपूर्ण है।

गुरु अमर दास जी ने अपने जीवन काल में, 1570 में 'गुरु का चक्क' नाम की बस्ती बसानी प्रारम्भ कर दी थी। गुरु अमरदास के सेवाभाव, विशेष रूप से लंगर की व्यवस्था से शहंशाह अकबर बहुत प्रभावित हुआ था। उसने कुछ सहायता करने का भी प्रस्ताव किया था, जिसे गुरु जी ने यह कहकर अस्वीकार कर दिया था कि लंगर का संपूर्ण प्रबंध और सेवा कार्य संगत स्वयं करती है, उसके लिए किसी प्रकार की बाहरी सहायता स्वीकार नहीं की जाती। शहंशाह अकबर ने कहा कि वह गुरु-पुत्री भानी के नाम कुछ जमीन करना चाहता है। गुरु अमरदास इस प्रस्ताव को अस्वीकार नहीं कर सके।

इस स्थान पर रहकर गुरु रामदास ने नया नगर बसाना प्रारंभ कर दिया। व्यापारी और कारीगर वर्ग के लोग दूर-दूर से आकर यहां बसने लगे। इस धरती पर जल का एक पोखर था। उसके संबंध में एक कथा प्रचलित है। किसी राजा ने अपनी पुत्री से रुष्ट होकर उसका विवाह एक अपाहिज पिंगले से कर दिया। पुत्री-रजनी ने इसे ईश्वर की इच्छा मानकर स्वीकार कर लिया। उसने अपने पति को एक टोकरे में बिठाकर विभिन्न तीर्थों की यात्रा प्रारंभ कर दी। यात्रा करते-करते वह उस पोखर के पास पहुंचकर एक बेरी की छांव में अपने पति का टोकरा रखकर पोखर से जल लेने चली गई। पिंगले पति ने देखा कि एक कौवा पोखर के जल में स्नान करके बाहर निकला। उसका काला रंग सफेद हो गया था। पिंगला भी अपने टोकरे से निकलकर पोखर के पास पहुंचा। उस जल के स्पर्श से उसका रोग जाता रहा। रजनी को अपने पति के पूर्ण स्वस्थ हो जाने से अपार प्रसन्नता हुई। गुरु रामदास जी ने इसी पोखर को सरोवर का रूप दिया। इसी सरोवर को अमृत सरोवर अथवा अमृतसर कहते हैं।

इस नगर को प्रारम्भ में 'गुरु का चक' कहते थे। फिर उसे गुरु रामदास नगर कहा जाने लगा। अमृत सरोवर के कारण इसके लिए अमृतसर नाम का प्रयोग होने लगा।

गुरु रामदास के तीन पुत्र थे—प्रिथी चंद, महादेव और अर्जुन देव। प्रिथी चंद बहिर्मुखी रुचियों वाला व्यक्ति था। विभिन्न केन्द्रों से मसंद स्थानीय सिखों से कार भेंट एकत्र करके गुरु के पास भेजते थे। प्रिथी चंद उसी में अधिक रुचि लेता था। महादेव की सांसारिक कार्यों में कोई रुचि नहीं थी। वह सदैव विरक्त भाव में जीते हुए तप-साधना में लीन रहता था। गुरु रामदास को अपने सबसे छोटे पुत्र अर्जुन देव में वे

सभी गुण दिखाई दिए जो इस आंदोलन की आध्यात्मिक और सांसारिक प्रगति के लिए आवश्यक थे। गुरु रामदास ने सात वर्ष तक गुरु पद का गुरुतर भार संभाला और अपनी जीवन लीला समाप्त करने से पूर्व पहली सितंबर, 1581 को तीसरे पुत्र अर्जुन देव को गुरु बनाकर गुरु गद्‌दी सौंप दी।

रचना पक्ष

गुरु रामदास बड़े प्रतिभाशाली कवि थे। गुरु ग्रंथ साहब में उनके 638 पद संगृहीत हैं जो 30 रागों में निबद्ध हैं।

सिखों में विवाह कार्य को 'आनंद कारज़' कहा जाता है। इस पद्धति का सूत्रपात तीसरे गुरु-गुरु अमरदास के समय हो गया था। उनकी सुप्रसिद्ध रचना 'अनंदु' की 40 पौड़ियां इस कार्य के लिए पूर्व पीठिका का निर्माण करती हैं। गुरु रामदास ने चार लावों (भांवरों) की रचना की। ये लावें आत्मा रूपी वधू का परमात्मा रूपी पति से मिलन की क्रमिक अवस्था का वर्णन करती हैं। सिख विवाह पद्धति में वर-वधू गुरु ग्रंथ साहब की चार बार परिक्रमा करते हैं। उस समय रागी इन लावों का क्रमशः गायन करते हैं। इसके पश्चात् विवाह कार्य संपन्न होता है।

गुरु रामदास की रचना में अद्वैतवादी विचारों की सशक्त अभिव्यक्ति हुई है। सृष्टि के सभी रूपों में परामात्मा का अस्तित्व झलकता है। उनका एक पद है :

आपे अंडज जेरज सेतज उतभुज
आपे खेड आपे सभ लोइ
आपे सूतु आप वहु मणीआ,
करि सकती जगतु परोइ।।
आपे ही सूतधारु है पिआरा,
सूत खिंचे ढहि ढेरी होइ।।

(प्रभु स्वयं चारों खाणियों—अंडज, जेरज, सेतज और उतभुज में विद्यमान है। वह स्वयं पृथ्वी के नौ खंडों में हैं, वह स्वयं सभी लोकों में है। प्रभु स्वयं सत्य रूपी धागा है। वह स्वयं जीव रूपी मणकों को संसार रूपी धागे में पिरोता है। वह स्वयं सूत्रधार है। जब वह सूत्र खींच लेता है तो सृष्टि का अंत हो जाता है।)

गुरु अर्जुन देव (1563-1606)

अनेक कारणों से पांचवे गुरु श्री गुरु अर्जुन देव का नाम गुरु परंपरा में अद्वितीय है। उन्हें भारतीय इतिहास का पहला 'शहीद' माना जा सकता है। वे आदि ग्रंथ के संपादक और संकलनकर्ता थे। इस ग्रंथ ने अपने संपादन के लगभग एक सौ वर्ष बाद देहधारी गुरु की परंपरा समाप्त होने के पश्चात् शब्द गुरु होने का स्थान प्राप्त किया। अमृतसर नगर का निर्माण गुरु रामदास के समय प्रारंभ हो गया था। गुरु अर्जुन देव ने अमृत सरोवर के मध्य हरिमंदिर बनवाया और उसमें आदि ग्रंथ को प्रतिष्ठित किया।

गुरु अर्जुन देव का जन्म 15 अप्रैल 1563 (वैशाख 19, संवत 1620) के दिन गोइंदवाल में हुआ था। वे अपनी माता (भानी जी) और पिता जेठा (गुरु रामदास) की तीसरी संतान थे। पहली सितंबर 1581 को गुरु रामदास के देहावसान के पश्चात् वे गुरु गद्दी पर आसीन हुए।

गुरु अर्जुन देव का पहला कार्य अमृत सरोवर के निर्माण को पूरा करने का था। श्रद्धालु दूर-दूर से आकर इस सरोवर के निर्माण में अपनी सेवा द्वारा योगदान देते थे। उन्होंने उस सरोवर के मध्य में हरिमंदिर (जिसे दरबार साहब या स्वर्ण मंदिर कहा जाता है) का निर्माण करवाया। इस निर्माण कार्य की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि गुरु अर्जुन देव ने इस स्थान का शिलान्यास अपने समय के सुप्रसिद्ध सूफी संत मियां मीर (1550-1635) से करवाया था। इतिहासकार गुलाम मुहैयुद्दीन (बूटे शाह) ने *तवारीख-ए-पंजाब* में लिखा है कि गुरु अर्जुन देव के निमंत्रण पर सांई मियां मीर अमृतसर आए और अपने मुबारक हाथों से उन्होंने चार ईंटें चारों किनारों पर और एक ईंट सरोवर के मध्य में रखी। इस मंदिर में चार द्वार रखे गए। यह इस बात को दर्शाता है कि किसी भी दिशा से, किसी भी जाति और धर्म का मानने वाला व्यक्ति इस मंदिर में प्रवेश प्राप्त कर सकेगा। परंपरा के अनुसार यहां, बिना किसी भेदभाव के सभी के लिए लंगर की

व्यवस्था की गई। मंदिर के अंदर गुरुवाणी के गायन की व्यवस्था की गई।

गुरु अर्जुन देव ने दो अन्य सरोवरों-संतोखसर और रामसर का कार्य भी पूरा करवाया। इनके निर्माण का कार्य भी चौथे गुरु रामदास के समय से प्रारंभ हो चुका था। अमृत सरोवर में हरिमंदिर बनने से वहां अनगिनत दर्शनार्थी आने लगे। उनके निवास के लिए धर्मशालाओं (सराय) का निर्माण भी करवाया गया। चारों ओर बाजार बनने लगे, जिन्हें गुरु बाजार कहा जाने लगा।

गुरु अर्जुन देव ने माझा क्षेत्र का दौरा किया और गुरु नानक देव के संदेश को उस क्षेत्र के गांव-गांव तक पहुंचाया। अमृतसर से 24 कि.मी. दक्षिण में तरन तारन नगर है। इस स्थान की प्राकृतिक छटा से प्रभावित होकर उन्होंने वहां की बहुत सी ज़मीन उसके मालिकों से खरीद कर वहां भी एक सरोवर बनवाया। सरोवर के एक ओर वहां भी एक हरिमंदिर बनाया गया।

आज तरनतारन सिखों का एक प्रमुख तीर्थ स्थान है। गुरु अर्जुन देव कोढ़ रोग से पीड़ित लोगों की सेवा करने में बहुत रुचि लेते थे। इसलिए अनेक भागों से इस रोग से ग्रसित लोग यहां आने लगे।

व्यास और सतलुज नदियों के बीच दोआब में, जालंधर के निकट उन्होंने करतारपुर नगर बसाया। इसके साथ ही व्यास नदी के दाहिने किनारे पर रुहेला नाम के उजड़े हुए गांव का उन्होंने पुनरुद्धार किया और वहां अपने पुत्र हरिगोबिंद के नाम से हरिगोबिंदपुर नगर को बसाने का कार्य प्रारंभ किया।

गुरु अर्जुन देव जहां भी जाते थे, लोगों को नए कुएं खोदने और बावड़ियां बनाने के लिए प्रेरित करते थे। उस युग में पानी का संकट सदा बना रहता था। जनहित के ऐसे कार्यों से गुरु नानक देव द्वारा प्रारंभ किए गए आंदोलन की लोकप्रियता बहुत बढ़ गई थी। पंजाब से बाहर आगरा, काशी, मुंगरे, पटना, ढाका, डिब्रूगढ़, बुरहानपुर आदि अनेक स्थानों पर गुरु की संगतें बन गई थीं, जहां स्थानीय प्रमुख सिखों के निर्देशन में लोग इकट्ठे होकर गुरुवाणी का कीर्तन करते थे और गुरु-उपदेश की चर्चा करते थे। गुरु अर्जुन के दर्शन करने और उनका उपदेश सुनने के लिए पेशावर, कंधार और काबुल से भी असंख्य लोग गोइंदवाल आते रहते थे।

गुरु अर्जुन देव का सबसे महत्वपूर्ण और ऐतिहासिक कार्य आदि ग्रंथ का संचयन-संपादन करना था। गुरुवाणी की व्यापक स्वीकृति और सम्मान देखकर बहुत से लोग नानक नाम से पद लिखने लग गए थे। आम श्रद्धालुओं को यह नहीं पता लगता था कि कौन-सी वाणी गुरु नानक देव और उनके परवर्ती गुरुओं की रची हुई है और कौन-सी झूठी वाणी उनके नाम से प्रचारित की जा रही है। उस समय दो शब्द प्रचलित हो गए—सच्ची वाणी और कच्ची वाणी। गुरु अर्जुन देव ने सच्ची वाणी को कच्ची वाणी की मिलावट से सुरक्षित रखने के लिए एक प्रामाणिक ग्रंथ तैयार करने का निश्चय किया।

गुरु नानक देव के समय से ही वाणी लिखने अथवा श्रद्धालु शिष्यों द्वारा एकत्रित

करने का कार्य चलता आ रहा था। अपनी रचना को गुरु नानक स्वयं लिखते थे या उनके साथ रहने वाले शिष्य लिपिबद्ध करते थे। प्राचीन जन्म साखियों में इसका उल्लेख मिलता है। गुरु नानक देव ने यह वाणी गुरु अंगद को सौंपी थी और गुरु अंगद ने इसे गुरु अमरदास को हस्तांतरित किया था।

गुरु अमर दास के दो पुत्र थे—मोहन और मोहरी। उस समय तक की एकत्रित वाणी की 'सैंचियां' (संचयन) बाबा मोहन के पास थीं। उन्होंने उस थाती को गुरु रामदास को न देकर अपने ही पास रखा। जब गुरु अर्जुन देव ग्रंथ तैयार करने लगे तो कुछ कठिनाई से उन्होंने उन सैंचियों को बाबा मोहन से प्राप्त किया। उसमें अपने पिता—गुरु रामदास और अपनी रची वाणी को सम्मिलित किया। भट्ट कवियों की रचनाएं भी शामिल की गईं। संतो-भक्तों की रचनाएं उन्हें बाबा मोहन से मिली सैंचियों से प्राप्त हो गई थीं। सभी रचनाओं को रागों के अनुसार नियोजित करके गुरु अर्जुन देव ने एक पोथी तैयार की। इस कार्य में उन्होंने भाई गुरदास का सहयोग लिया। यह कार्य 1604 में पूर्ण हुआ था। ग्रंथ का संपादन कार्य पूर्ण होने के पश्चात् इसे हरिमंदिर में प्रस्थापित किया गया। भाई बुड्ढा जी को पहला ग्रंथी नियुक्त किया गया।

मुगल बादशाह जहांगीर के आदेश से गुरु अर्जुन देव को लाहौर में शहीद किया जाना सिख इतिहास की एक निर्णायक घटना बन गई। पंजाब में कुछ ऐसे गुरुद्रोही तत्व थे जो गुरु नानक देव द्वारा प्रेरित सिख आंदोलन और परवर्ती गुरुओं द्वारा उस आंदोलन के अत्यंत कुशल संचालन से बहुत द्वेष करने लगे थे। इन लोगों ने बादशाह अकबर के कान भरे थे और उससे यह कहा था कि गुरुओं के उपदेश इस्लाम विरोधी हैं। अपने पंजाब आगमन के समय बादशाह अकबर ने इसकी पड़ताल की थी। गुरु अमरदास से भेंट करने वह स्वयं गोइंदवाल आए थे और उनके व्यक्तित्व तथा वहां की कार्यप्रणाली से बहुत प्रभावित हुए थे। गुरु रामदास और गुरु अर्जुन देव के समय गुरुओं के उपदेश का प्रचार देश के अनेक भागों में हो गया था।

सन् 1605 में अकबर की मृत्यु के बाद जहांगीर बादशाह बना। सिख गुरुओं की लोकप्रियता के संबंध में वह सुन चुका था। गुरुद्रोही उसके भी कान भरते रहते थे। अपने पिता अकबर की भांति वह उदार नहीं था। जिस प्रकार का ऐय्याशी भरा जीवन वह जीता था, उस पर आवरण डालने के लिए और कट्टरपंथी तत्वों को प्रसन्न करने के लिए वह अपने आपको इस्लाम का उन्नायक भी प्रदर्शित करना चाहता था।

गुरु अर्जुन देव के प्रति प्रतिकूल भाव रखने के अनेक कारण जहांगीर के पास थे। वह ऐसे हर व्यक्ति से वैर-भाव पालता था, जिसके संबंध उसके पिता अकबर से सौहार्द-पूर्ण थे। अकबर गुरु-घर का प्रशंसक था। गुरु अर्जुन देव के प्रति जहांगीर के विरोध भाव का यह प्रमुख कारण था।

सूफियों के नक्शबंदी सिलसिले का एक बड़ा केंद्र सरहिंद में था। इस सिलसिले के प्रमुख शेख अहमद फारुकी के अनुयायियों की काफी बड़ी संख्या थी। वह गुरु अर्जुन

देव की लोकप्रियता के कारण उन्हें अपना बड़ा प्रतिद्वंद्वी समझता था। जहांगीर जब अपने विद्रोही वेटे खुसरू का पीछा करते हुए सरहिंद आया तो शेख ने गुरु अर्जुन के विरोध में उससे बहुत कुछ कहा।

इन्हीं दिनों उसका विद्रोही पुत्र खुसरू अपने पिता के भय से आक्रान्त होकर लाहौर जाता हुआ गोइंदवाल में गुरु अर्जुन की शरण में आया। गुरु ने उसे आशीर्वाद दिया और उसके माथे पर तिलक लगाया। गुरु-द्रोहियों को जहांगीर को भड़काने का एक कारण मिल गया। जहांगीर ने अपनी आत्मकथा *तुज़क ए जहांगीरी* में इस बात का उल्लेख किया है। हिंदी में *जहांगीरनामा* नाम से इस पुस्तक का प्रकाशन नागरी प्रचारिणी सभा ने किया है। इस पुस्तक के पृष्ठ 121 पर लिखा है–

''गोइंदवाल में, जो व्यास नदी के तट पर स्थित है, अर्जुन नामक एक हिंदू रहता था, जिसने पवित्रता तथा सिद्धाई का वस्त्र पहन रखा था। यहां तक कि सरल हृदय हिंदुओं तथा मूर्ख अशिक्षित मुसलमानों को भी उसने अपनी चाल तथा व्यवहार से आकर्षित कर लिया था और उन्होंने उसकी सिद्धाई का ढिंढोरा पीट रखा था। वे उसे गुरु कहते थे और सभी ओर से मूर्खगण उसकी पूजा करने और उस पर पूर्ण श्रद्धा दिखलाने के लिए एकत्र होते थे। तीन-चार पीढ़ी से यह दुकान गर्म थी। कई बार हमारा विचार हुआ कि इस व्यर्थ कार्य को रोक दें या उसे मुसलमान बना लें।

अंत में जब खुसरू इस मार्ग से गया तब इस अप्रसिद्ध पुरुष ने उसके पास उपस्थित होने का प्रस्ताव किया। खुसरू संयोग से उसी के रहने के स्थान पर उतरा और वह उसके पास आया तथा सेवा की। उसने खुसरू के साथ विशिष्ट व्यवहार किया तथा उसके माथे पर अंगुलि चिह्न लगाया, जिसे हिंदू लोग टीका कहते हैं और शुभ समझते हैं। जब हमने यह वृत्तांत सुना और उसकी मूर्खता समझी तब हमने उसे सामने उपस्थित होने की आज्ञा दी और उसके गृह, निवास स्थान तथा संतान को मुर्तजा खां को सौंप दिया। उसकी कुल संपति जव्त करके उसको मार डालने का आदेश दे दिया।''

गुरु अर्जुन देव की शहादत के संबंध में जहांगीर की यह आत्म स्वीकृति है। वह स्वयं कहता है कि गुरु अर्जुन के अनुयायियों और श्रद्धालुओं में हिंदुओं के अतिरिक्त बहुत से मुसलमान भी थे। यह भी कि वह तीन-चार पीढ़ियों से चल रहे इस कार्य को रोकना चाहता था और गुरु अर्जुन देव को इस्लाम में लाना चाहता था। खुसरू का गुरु के पास आना तो मात्र एक बहाना था। उसने मुर्तजा खां को उनकी संपत्ति को जब्त करके मार डालने का आदेश दे दिया।

गुरु अर्जुन देव को बंदी बनाकर लाहौर लाया गया। वे जानते थे कि उनके साथ किस प्रकार का व्यवहार किया जाएगा। उस समय उनके एकमात्र पुत्र हरिगोबिंद की आयु मात्र 11 वर्ष की थी। अपनी पत्नी (माता गंगा) अपने प्रमुख सिखों-बाबा बुड्ढा और भाई गुरदास आदि से उन्होंने विचार-विमर्श किया और यह भी संकेत दे दिया कि क्या होने जा रहा है। गुरु गद्दी का भार हरिगोबिंद जी को सौंपकर वे लाहौर चले गए। वहां उन्हें

लाहौर के किले में बंदी बनाकर रखा गया। जहांगीर ने उनसे पूछा कि उन्होंने खुसरू की क्यों सहायता की। उनका उत्तर था कि बादशाह अकबर से मधुर संबंध होने के कारण हमने उसके पौत्र की कुछ सहायता की। वह बहुत बुरी स्थिति में था। उसके पास आगे जाने के लिए भी कोई साधन नहीं था। गुरु नानक के दरबार में ऐसे साधनहीन व्यक्ति की सहायता करना धर्म समझा जाता है।

इस उत्तर में जहांगीर कैसे संतुष्ट हो सकता था। वह तो सिख आंदोलन को मिटाने पर तुला हुआ था। उसने गुरु अर्जुन पर दो लाख रुपए का जुर्माना लगा दिया। गुरु जी का स्पष्ट उत्तर था कि उनके पास जो भी धन है वह उनका नहीं संगत का धन है और संगत के हित में ही खर्च होता है। उन्होंने कोई अपराध नहीं किया है, इसलिए किसी प्रकार का जुर्माना भरने का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता।

लाहौर की सिख संगत ने उनके पास यह संदेश भेजा कि वे सभी मिलकर जुर्माने की रकम एकत्र करके शाही खजाने में जमा करवा देंगे। गुरु अर्जुन देव ने उन्हें ऐसा करने से रोक दिया। गुरु अर्जुन देव की ही एक उक्ति है :

पहला मरण कबूल जीवण की छडि आस
होहु सभना की रेणुका तउ आउ हमारे पास।।

जीवन में कुछ आदर्शों की रक्षा के लिए अन्याय का प्रतिरोध करते हुए हंसते-हंसते प्राण दे देने की प्रेरणा वे देते रहे थे। आज वही घड़ी उनके सम्मुख उपस्थित थी।

गुरु अर्जुन देव को मृत्युदंड देने का आदेश दे दिया गया। मई-जून के महीने में लाहौर में गर्मी का प्रकोप बहुत भयंकर होता है। उन्हें अनेक प्रकार की यातनाएं दी गईं। उन्हें जलती आग पर तपते हुए तवे पर बैठाया गया। ऊपर से गर्म तपती हुई रेत डाली गई। उनका सारा शरीर फफोलों से भर गया, किंतु उनके मुख से गुरुवाणी के ये शब्द ही निकलते रहे :

तेरा भाणा मीठा लागे
नाम पदारथ नानक मांगे

(हे प्रभु, तुम्हारा आदेश मुझे मीठा लगता है। मैं सदा तुम्हारे नाम-पदार्थ की ही याचना करता हूं।)

इसके पूर्व प्रसिद्ध सूफी संत साई मीआं मीर का उल्लेख हो चुका है। गुरु अर्जुन देव ने हरिमंदिर का शिलान्यास उन्हीं से करवाया था। गुरु अर्जुन पर जहांगीर ने जो क्रूरता दिखाई थी, उसे वे सुन चुके थे। वे उनसे मिलने के लिए लाहौर के किले में आए। गुरु अर्जुन देव जी की दशा देखकर वे चीत्कार कर उठे। गुरु जी ने उन्हें भी ढांढस बंधाया और ईश्वरेच्छा को हंसते-हंसते स्वीकार करने की बात कही।

किले के पास ही रावी नदी बहती है। गुरु अर्जुन ने स्नान करने की इच्छा व्यक्त

की। उन्हें कड़े पहरे में ले जाया गया। रावी में स्नान करते हुए आग से झुलसी उनकी अशक्त देह ने नदी के प्रवाह में ही अपने प्राण त्याग दिए।

सिख इतिहास में धर्म, आदर्शों तथा महत्तर मानवीय मूल्यों की रक्षा के लिए बलिदान दे देने की लंबी परंपरा है। इसका प्रारंभ गुरु अर्जुन देव की शहादत से होता है। बाबर और गुरु नानक समकालीन थे। मुगल सैनिकों द्वारा पंजाब के एमनाबाद नगर की बर्बादी गुरु नानक ने अपनी आंखों से देखी थी, जिसका मार्मिक वर्णन उन्होंने अपनी वाणी में किया है। यह भी कहा जाता है कि बाबर के सैनिकों ने गुरु नानक और भाई मरदाना को कुछ समय के लिए कैद भी कर लिया था।

शेरशाह सूरी से पराजित होकर हुमायूं का गुरु अंगद देव के पास आना तथा अकबर का गुरु अमरदास से मिलना भी इतिहास की प्रसिद्ध घटनाएं हैं। गुरु अर्जुन के समय तक सिख लहर एक सौ से अधिक वर्ष पुरानी हो गई थी। इस अवधि में इस लहर का मुग़ल सल्तनत से किसी प्रकार का तनाव या खिंचाव उत्पन्न नहीं हुआ था।

किंतु जहांगीर स्वयं अपनी आत्मकथा में स्वीकार करता है कि वह इस लहर के बढ़ते प्रभाव और व्यापक लोकप्रियता से बहुत शंकित हो गया था। वह इसे समाप्त करना चाहता था और इसके संचालक को इस्लाम में लाना चाहता था। उसने खुसरू का बहाना लेकर इसे कुचलने का प्रयास किया और गुरु अर्जुन देव को अत्यंत क्रूरता भरी यातनाएं देकर शहीद कर दिया।

इस शहादत ने सिख आंदोलन को एक निर्णायक मोड़ पर खड़ा कर दिया। दो ही विकल्प थे। ग्यारह वर्ष के गुरु हरिगोबिंद और उनके निकटवर्ती सिख भयभीत होकर अपने आपको पूरी तरह समेट लेते और धार्मिक उपदेशों और कथा-कीर्तन तक ही सीमित हो जाते अथवा अन्यायी और दमनकारी शक्तियों का विरोध करने के लिए अपने आंदोलन को नया रूप रंग और नई आभा देते। पहला विकल्प बहुत सरल और सुरक्षित था। दूसरा अत्यंत दूभर और संकटों से भरा हुआ था। उस समय मुग़ल हुकूमत अपनी शक्ति और उत्कर्ष की चरम स्थिति पर थी। यह सब जानते हुए भी युवा गुरु हरिगोबिंद ने संघर्ष का मार्ग चुना।

गुरु नानक देव से गुरु अर्जुन देव तक की एक सौ वर्ष पुरानी परंपरा ने गुरु हरिगोबिंद से लेकर गुरु गोविंद सिंह की आगामी एक सौ वर्ष की अवधि के लिए एक अनूठा मोड़ काट लिया।

रचना पक्ष

बलिदान के समय गुरु अर्जुन देव की आयु मात्र 43 वर्ष की थी। इस छोटी-सी आयु में उन्होंने अमृतसर में हरिमंदिर का निर्माण कराया जो आज असंख्य लोगों का श्रद्धा-केंद्र है। उन्होंने आदिग्रंथ का संकलन, संपादन किया जो आज गुरु ग्रंथ साहब के

रूप में विश्व के धर्म साहित्य की बेजोड़ रचना है।

गुरु अर्जुन देव की काव्य सृजनात्मकता और संगीत निपुणता से उनकी प्रतिभा का महत्वपूर्ण पक्ष उभरता है। आदि ग्रंथ में उनके द्वारा रचित दो हजार से अधिक पद संगृहीत है जो तीस रागों में निबद्ध हैं।

गुरु नानक देव की रचना 'जपु' उनकी बहुचर्चित रचना है। गुरु अर्जुन देव की रचना 'सुखमनी' भी अपने गंभीर चिंतन और प्रभु-भक्ति के कारण श्रद्धालुओं में बहुत समाल्दत है।

गुरु हरिगोबिंद (1595-1644)

गुरु हरिगोबिंद के समय में संपूर्ण सिख-आंदोलन में एक नए युग का सूत्रपात हुआ। 19 जून, 1595 (अषाढ़ बदी 1, संवत् 1652) को जन्मे वे अपने माता-पिता (माता गंगा और पिता गुरु अर्जुन देव) की एक मात्र संतान थे। अमृतसर के पास वडाली नामक गांव में उनका जन्म हुआ था। उन्हें बचपन से ही अनेक संकटों के मध्य से होकर गुजरना पड़ा था। गुरु अर्जुन देव के बड़े भाई प्रिथीचंद गुरुपद प्राप्त करने के लिए बहुत लालायित थे। इसलिए उन्हें विष देने, जहरीले सांप से कटवाने के प्रयास भी किए गए। ग्यारह वर्ष की आयु में अपने पिता की शहादत के बाद उन्होंने अत्यंत संकट भरे दिनों में गुरुगद्दी का भार संभाला।

इतिहास में ऐसे अवसर कभी-कभी आते हैं जिन्हें निर्णायक कहा जाता है और जिन में घटी घटनाएं समय की धारा बदल देती हैं। जातियों, राष्ट्रों, धर्मों के इतिहास में ऐसे अवसर भी आए हैं जब न केवल इतिहास की गति बदली है, बल्कि उन्होंने अपनी अस्मिता को नई पहचान दी है। कलिंग का युद्ध न हुआ होता, यदि सम्राट अशोक ने वह नर-संहार न देखा होता, तो गौतम बुद्ध का संदेश क्या इतना विश्व व्यापी हुआ होता? इसी प्रकार यदि ईसा को सूली पर न चढ़ाया गया होता अथवा कर्बला के मैदान में हज़रत हुसैन की शहादत न हुई होती तो क्या ईसाई और इस्लाम धर्मों का वही स्वरूप होता जो आज है?

गुरु हरिगोबिंद ने संपूर्ण सिख आंदोलन में सैनिकीकरण की प्रक्रिया आरंभ की। उन्होंने दो तलवारें धारण कीं एक पीरी (अध्यात्मिकता) की और दूसरी मीरी (सांसारिक अस्मिता) की। अभी तक संपूर्ण आंदोलन का केंद्र बिंदु पीरी थी। लोगों को प्रभुभक्ति की ओर प्रवृत्त करना, उन्हें जीवन मूल्यों की पहचान कराना और उनके प्रति उनमें आस्था उत्पन्न करना, उनमें पाखंड, अंधविश्वास, जातिगत असमानता तथा मानवीय समता के

प्रति जागरूकता उत्पन्न करना तथा उन्हें गुरुमुख बनने और संगत के रूप में समाज बोध ग्रहण करने की प्रेरणा देना ऐसी दिशा थी जिसका बोध गुरु के माध्यम से होता था।

गुरु हरिगोबिंद ने पीरी की परंपरा के साथ मीरी को जोड़ा। अभी तक संतजनों का निर्माण हो रहा था। तत्कालीन शासकों ने गुरु अर्जुन देव के प्रति जो व्यवहार किया था, उसने यह संकेत कर दिया था कि सैन्य शक्ति उत्पन्न किए बिना संतजनों की सुरक्षा नहीं हो सकती। संत-सिपाही की परिकल्पना को दसवें गुरु, गुरु गोबिंदसिंह के साथ जोड़कर देखा जाता है। किंतु इस परिकल्पना को मूर्त करने का कार्य छठे गुरु, गुरु हरिगोबिंद से प्रारंभ हो गया था।

गुरु अर्जुन देव ने अमृतसर में हरिमंदिर का निर्माण करवा दिया था। गुरु हरिगोबिंद ने उसके ठीक सामने, कुछ अंतर पर एक ऊंचा चबूतरा बनवाया और उसे अकाल तख़्त का नाम दिया। दिल्ली के बादशाहों के तख्त सांसारिक सत्ताधारियों के सिहांसन थे, जो काल की सीमाओं में घिरे हुए थे। शाहजहां के बनवाए तख़्तेताउस को कुछ दशाब्दियों बाद ईरान से आया आक्रमणकारी नादिरशाह लूटकर ले गया था। गुरु हरिगोबिंद ने ऐसा तख्त (सिंहासन) निर्मित किया जो काल की सीमाओं से परे या अकाल था।

गुरु हरिगोबिंद ने दूर-दूर तक फैली हुई सिख संगत के पास आदेश भिजवाए कि अब कार भेंट में धन अथवा दूसरे प्रकार की सामग्री भेजने के स्थान पर अस्त्र-शस्त्र और अन्य युद्ध सामग्री भेजी जाए। उन्होंने स्वयं तलवार चलाना, घुड़सवारी करना और आखेट करना प्रारंभ किया और अपने सिखों को भी इसके लिए प्रेरित किया। अकाल तख़्त के चबूतरे पर बैठकर वह सामने के प्रांगण में युवकों को मल्ल युद्ध तथा अनेक प्रकार के शारीरिक व्यायाम का प्रशिक्षण दिलवाते थे।

उन्होंने अपनी वेशभूषा भी बदल ली। पहले के पांच गुरुओं के वस्त्र-संतों जैसे होते थे। वे सेली टोपी धारण करते थे। गुरु हरिगोबिंद ने राजसी वस्त्र धारण किए और सेली टोपी के स्थान पर पगड़ी बांधना प्रारंभ किया।

गुरु हरिगोबिंद द्वारा लाए गए परिवर्तन और उनकी सैनिक गतिविधियों के अतिरंजित समाचार जहांगीर के पास पहुंच रहे थे। इससे वह बहुत शंकित हुआ। जहांगीर समझता था कि गुरु अर्जुन देव की शहादत के पश्चात यह आंदोलन समाप्त हो जाएगा अथवा थोड़ी-सी धार्मिक गतिविधियों तक सीमित हो जाएगा। किंतु गुरु हरिगोबिंद ने उसे जो रूप देना प्रारंभ किया उससे यह बहुत चौकन्ना हुआ।

मुगलों के समय विशिष्ट व्यक्तियों को ग्वालियर के दुर्ग में नजरबंद कर दिया जाता था। अकबर और जहांगीर ने जिन राजाओं और जागीरदारों को अपने अनुकूल नहीं समझा था, उन्हें बंदी बनाकर ग्वालियर के दुर्ग में लाया गया था। तत्कालीन न्याय-व्यवस्था में ऐसे लोगों पर कोई मुकदमा नहीं चलाया जाता था और यह भी निश्चित नहीं होता था कि किस व्यक्ति की नजरबंदी कितनी अवधि की है। सब कुछ बादशाह की इच्छा पर निर्भर करता था।

जहांगीर की आज्ञा से गुरु हरिगोबिन्द को भी ग्वालियर के दुर्ग में नजरबंद कर दिया गया। इस अवधि में पंजाब से अनगिनत सिख गुरु के दर्शन करने के लिए ग्वालियर जाते थे। दुर्ग के अधिकारियों द्वारा उन्हें अपने गुरु से मिलने नहीं दिया जाता था। श्रद्धालु सिख दुर्ग के बाहर की दीवार पर अपना माथा टेककर वापस आते थे। यह क्रम निरंतर चलता रहता था।

लगभग दो वर्ष तक गुरु हरिगोविंद इस नजरबंदी में रहे। एक दिन उनकी रिहाई का फरमान आ गया। अपनी नजरबंदी के दौरान वे उसी दुर्ग में बंदी अनेक राजपूत राजाओं और सामंतों के संपर्क में आए थे जो उन पर अपनी बहुत श्रद्धा रखने लगे थे। गुरु हरिगोबिंद ने दुर्ग से मुक्त होने का आदेश अस्वीकार कर दिया। उन्होंने कहा, जब तक अन्य बंदियों को भी मुक्त नहीं किया जाएगा, वे अपनी मुक्ति स्वीकार नहीं करेंगे। यह बात बादशाह तक पहुंचाई गई। उस समय जहांगीर सूफी संत मियां मीर के बहुत प्रभाव में था। उन्हीं की सलाह पर उसने उनकी बात मान ली और अन्य राजाओं की मुक्ति का आदेश दे दिया।

किंतु इस कार्य के लिए एक प्रक्रिया अपनाई गई। कहा गया कि जो बंदी गुरु हरिगोविंद के अंगरखे का कोई भाग पकड़ लेंगे उन्हें भी मुक्त कर दिया जाएगा। उस दिन गुरु हरिगोविंद ने 52 कलियों वाला अंगरखा पहना। इतने बंदियों ने उस वस्त्र की एक-एक कली पकड़ ली और मुक्त होकर दुर्ग से बाहर आ गए। उस समय से गुरु हरिगोबिंद को 'बंदी छोड़' कहा जाने लगा। ग्वालियर से मुक्त होकर वे दीपावली वाले दिन अमृतसर पहुंचे। वहां के लोगों ने उस दिन दुगुने उत्साह से यह पर्व मनाया और हरिमंदिर क्षेत्र में प्रकाशोत्सव किया गया। आज भी यह परंपरा जीवित है। दीपावली के दिन हरिमंदिर (स्वर्ण मंदिर) में विशेष दीपमाला की जाती है।

कुछ समय बाद जहांगीर ने उनके प्रति मैत्रीपूर्ण रवैये के संकेत देने प्रारंभ किए। कुछ इतिहासकारों ने यह भी लिखा है कि कश्मीर की यात्रा में गुरु हरिगोविंद उसके साथ थे।

गुरु हरिगोबिंद ने गुरु नानक देव के संदेश का प्रचार करने के लिए पंजाब के अनेक भागों की यात्रा की। उन्होंने पीलीभीत, गोरखमता (जिसे गुरु नानक देव के इस स्थान पर आगमन के कारण लोग नानकमता कहने लगे थे) तथा टिहरी गढ़वाला क्षेत्र की यात्रा की। इसी क्षेत्र के श्रीनगर में उनकी भेंट छत्रपति शिवाजी के गुरु समर्थ रामदास से हुई। उनकी भेंट तथा आपसी संवाद का उल्लेख प्राचीन मराठी ग्रंथों में प्राप्त होता है।

सन् 1627 में जहांगीर का स्वास्थ्य बिगड़ गया। वह जलवायु परिवर्तन के लिए कश्मीर गया किंतु कोई लाभ न हुआ। वहां से लौटते समय, उसी वर्ष के अंत में राजौरी में उसकी मृत्यु हो गई। मृत देह को लाहौर लाकर दफना दिया गया।

मुगल सिंहासन प्राप्त करने के लिए जहांगीर के पुत्रों में हुए संघर्ष में खुर्रम सफल हुआ और वह शाहजहां के नाम से गद्दीनशीन हुआ। गैर मुसलमानों के प्रति धार्मिक आधार पर भेदभाव और उनके धर्म स्थानों को नष्ट करने का कार्य शाहजहां के समय

में अधिक तीव्रता से प्रारंभ हो गया।

गुरु हरिगोबिंद की बढ़ती और सुगठित होती सैन्य शक्ति के अतिरंजित समाचार बादशाह को नित्य प्राप्त हो रहे थे। वस्तुतः मुगल सत्ता से सिखों का सशस्त्र संघर्ष गुरु हरिगोबिंद के समय से ही शुरू हुआ।

गुरु हरिगोबिंद अपने सिखों में युद्ध भाव उत्पन्न करने के लिए स्वयं भी शिकार खेलते थे और सिखों को भी प्रेरित करते थे। मुगल बादशाह बाज पालते थे। यह गौरव का प्रतीक समझा जाता था। श्रद्धालु सिखों ने एक बाज गुरु हरिगोबिंद को भेंट किया और आग्रह किया कि वे उसे पालें। इस समय उन्हें 'सच्चा पातशाह' कहकर भी संबोधित किया जाने लगा था।

एक दिन गुरु हरिगोबिंद अमृतसर के पास के जंगल में अपने सिखों को शिकार खेलने का प्रशिक्षण दे रहे थे। संयोग से उसी समय शाहजहां, जो उन दिनों लाहौर आया हुआ था, उसी जंगल में शिकार खेल रहा था। एक मासूम पक्षी को दबोचने का प्रयास करते हुए शाही बाज को गुरु हरिगोबिंद के बाज ने दबोच लिया। शाही बाज सिखों के कब्जे में आ गया। इस बात पर क्रुद्ध होकर बादशाह ने अपने एक सैनिक अधिकारी गुलाम रसूल खान को एक सैनिक टुकड़ी सहित सिखों को दंडित करने के लिए भेज दिया।

जब गुरु हरिगोबिंद को इस बात का पता लगा तो उन्होंने शाही फौज से टक्कर लेने का निश्चय कर लिया। इस छोटी-सी लड़ाई में शाही टुकड़ी के कुछ लोग मारे गए। शेष ने लाहौर जाकर शाहजहां को पूरा विवरण दिया। बादशाह ने वहुत क्रोधित होकर अपने फौजदार मुखलिस खान को 7000 सैनिकों सहित गुरु को बंदी बनाने के लिए भेज दिया। गुरु हरिगोबिंद ने लौहगढ़ नाम से एक छोटा दुर्ग भी बना लिया था। इस बार युद्ध कई दिन तक चला। मुखलिस खान सहित दोनों पक्षों के अनेक योद्धा इस युद्ध में मारे गए। मुगल सेना पराजित होकर वापस मुड़ गई।

शाही सेनाओं के साथ सिखों की तीन और झड़पें हुईं। एक जलंधर के पास करतारपुर में, दूसरी नथाणा नामक स्थान पर तीसरी लहिरा, बठिंडा के पास। इन सभी लड़ाइयों में शाही सेनाओं को सफलता प्राप्त नहीं हुई थी। किंतु गुरु हरिगोबिंद यह बात भली प्रकार जानते थे कि ये झड़पें किसी दिन विकराल युद्ध में बदल जाएंगी। इसलिए उन्होंने कुछ समय के लिए अमृतसर के मैदानी प्रदेश से जो लाहौर से बहुत निकट था, पास के पर्वतीय प्रदेश में जाने का निश्चय किया। उन्होंने शिवालिक की पहाड़ियों में स्थापित एक पर्वतीय राज्य कल्हूर के राजा से जमीन खरीद कर वहां कीरतपुर नगर बसाया और उसे अपना केंद्र बना लिया।

गुरु हरिगोबिंद ने अपने जीवन के अंतिम वर्ष अपनी शक्ति को संगठित करने और धर्म-प्रचार के निमित अर्पित किए। कीरतपुर में ही 3 मार्च, 1644 में 49 वर्ष की आयु में उनका देहांत हो गया।

गुरु हरिगोबिंद जी के समय संपूर्ण सिख आंदोलन को एक नया स्वरूप प्राप्त हुआ, जिसे 55 वर्ष पश्चात् 1699 में दसवें गुरु श्री गुरु गोबिंद सिंह ने परिणति तक पहुंचाया।

गुरु हरिराय (1630-1661)

छठे गुरु, गुरु हरिगोबिंद ने अपने बड़े पुत्र गुरदित्ता के पुत्र हरिराय को अपना उत्तराधिकारी बनाया। गुरदित्ता जी का देहावसान गुरु हरिगोबिंद के जीवनकाल में ही हो गया था। गुरु गद्दी पर प्रतिष्ठित होने के लिए व्यक्ति के चयन की प्रक्रिया भी अनोखी थी। गुरु नानक देव जी ने अपने दोनों पुत्रों—श्रीचंद और लखमी चंद को अपना उत्तराधिकारी न बनाकर अपने शिष्य लहणा को, अंगद नाम देकर गुरु पद का भार सौंपा था। गुरु अंगद देव ने अपने दोनों पुत्रों—दाता और दातू को यह दायित्व न सौंपकर अपने से आयु में ज्येष्ठ शिष्य को गुरु अमरदास बना दिया था। गुरु अमरदास ने भी अपने पुत्रों—मोहन और मोहरी की बजाए अपने जामाता जेठा को गुरु रामदास बनाकर यह गुरुतर भार सौंपा था। गुरु रामदास ने अपने उत्तराधिकारी का चयन अपने तीन पुत्रों में किया था। किंतु दो बड़े पुत्रों—प्रिथीचंद और महदेव को गुरुपद न सौंपकर तीसरे पुत्र अर्जुन को गुरुपद दिया था।

गुरु हरिगोबिंद के पांच पुत्र थे। दो पुत्रों—गुरदित्ता और अटल राय का देहावसान उनके जीवन काल में ही हो गया था। शेष तीन पुत्रों—अणिराय, सूरज मल और तेग बहादुर में से किसी का चयन न करके उन्होंने अपने पौत्र हरिराय का चयन किया। उनके बड़े भाई धीर मल भी उनकी चयन प्रक्रिया में नहीं आए।

गुरु हरिराय बहुत कोमल प्रकृति के थे। एक बार उनके अंगरखे से लगकर फूलों की कुछ कलियां टूट गई तो वे बहुत दुखी हुए थे। वे बहुत शांत प्रकृति के थे, किन्तु जिस सेना का निर्माण गुरु हरिगोबिंद ने किया था, उसमें से 2200 सशस्त्र घुड़सवारों की टुकड़ी को उन्होंने बनाए रखा।

उन्होंने अपना पूरा ध्यान धर्म-प्रचार की ओर केंद्रित किया। पंजाब का मालवा क्षेत्र बहुत उपेक्षित था। गुरु हरिराय जी ने इस क्षेत्र की अनेक यात्राएं कीं और जनहित के

अनेक कार्य किए। इस क्षेत्र के अनेक परिवार, जो आगे चलकर पटियाला, नाभा, जींद आदि राज्यों के शासक बने, इसी समय उनके संपर्क में आए और उनके कृपापात्र बने।

शाहजहां के समय में उसके पुत्रों—दारा शिकोह, शुजा, औरंगजेब और मुराद में राजगद्दी प्राप्त करने के लिए संघर्ष प्राप्त हो गया। समूगढ़ के युद्ध में औरंगजेब के हाथों पराजित होकर दारा शिकोह अपने परिवार और कुछ साथियों सहित पेशावर की ओर भागते समय गोइंदवाल में गुरु हरिराय से मिला। दारा इस दृष्टि से भी गुरु हरिराय के प्रति कृतज्ञ था कि कुछ समय पूर्व जब वह गंभीर रूप से बीमार था, गुरु हरिराय ने उसे एक दवाई भेजी थी, जिससे वह पूरी तरह नीरोग हो गया था। दारा शिकोह बहुत उदार विचारों का व्यक्ति था। वह सुप्रसिद्ध सूफी फकीर मियां मीर का श्रद्धालु था। मियां मीर और सिख गुरुओं में सदैव बहुत मधुर संबध रहे थे।

दारा शिकोह ने गुरु हरिराय से आशीर्वाद प्राप्त किया। कुछ वर्ष पूर्व भी ऐसी ही एक घटना हुई थी जब जहांगीर के विद्रोही पुत्र खुसरू ने गोइंदवाल में ही गुरु अर्जुन देव के दर्शन प्राप्त किए थे, जिसकी बड़ी अतिरंजित सूचनाएं जहांगीर को भेजी गई थीं।

इस बार भी ऐसा ही हुआ। गुरु द्रोहियों ने बहुत बढ़ा-चढ़ाकर गुरु हरिराय और दारा शिकोह की भेंट की बात औरंगजेब के पास पहुंचाई। उसके पास यह बात भी पहुंचाई गई कि गुरु अर्जुन देव द्वारा संपादित आदि ग्रंथ में इस्लाम के विरुद्ध बहुत कुछ कहा गया है।

इस बीच गुरु हरिराय ने गुरु नानक देव के संदेश का प्रचार प्रसार करने के लिए अनेक लंबी यात्राएं की। उन्होंने स्यालकोट में अठारहवीं शती के शहीद वीर हकीकत राय के पितामह नंदलाल पुरी के घर 1660 में वैसाखी का त्योहार मनाया। वहां से वे अपने अनेक शिष्यों सहित कश्मीर गए। मार्तण्ड, श्रीनगर, अखनूर होते हुए जम्मू आए। इन सभी स्थानों पर बड़ी प्रभावशाली सिख संगतें स्थापित हो चुकी थीं।

औरंगजेब यह बात जानता था कि आमेर के राजा जय सिंह और उनका परिवार गुरुओं पर विशेष श्रद्धा रखता है। उसने राजा जय सिंह से कहा कि वह अपना आदमी भेजकर गुरु हरिराय को दिल्ली बुलाएं। राजा जय सिंह ने अपने दूत हरिचंद को गुरुजी के पास कीरतपुर भेजा, जिसने उन्हें शाही आदेश सुनाया। गुरु हरिराय स्वयं दिल्ली नहीं गए। उन्होंने अपने ज्येष्ठ पुत्र राम राय को कुछ साथियों तथा आदि ग्रंथ की प्रति सहित दिल्ली भेज दिया।

आदि ग्रंथ में गुरु नानक देव का एक पद है जिसमें कहा गया कि मुसलमान अपने शवों को अग्नि की भेंट नहीं करते, उसे कब्र में दबा देते हैं। कई बार कुम्हार कब्र की मिट्टी से बर्तन बनाते हैं और उन्हें आग में तपाते हैं। वह जलती हुई मिट्टी विलाप करती है। उसमें से अंगारे झर-झर कर बाहर निकलते हैं। इस रहस्य को वह करतार ही जानता है जिसने सृष्टि की रचना की है। मूल पद इस प्रकार है :

मिट्टी मुसलमान की पेड़े पई कुमिआर।।
घरि भांडे इटा कीआ जल्दी करे पुकार।।
जलि-जलि रोवै बपुड़ी झड़ि-झड़ि पवहि अंगिआर।।
नानक जिनि करते कारणु कीआ सो जाणै करतार।।

संयोग से, जब आदि ग्रंथ की कुछ पंक्तियां बादशाह को सुनाई जा रही थीं, तो यह पद पठन में आ गया। बादशाह ने पूछा—यहां मुसलमान शब्द का प्रयोग क्यों किया गया है? यद्यपि इन पंक्तियों में इस्लाम विरोधी कोई बात नहीं थी, फिर भी शाही वैभव से अभिभूत राम राय ने झट से उत्तर दिया कि यह शब्द मुसलमान नहीं है, बेईमान है। यह उत्तर सुनकर बादशाह संतुष्ट हो गया।

किंतु जब गुरु हरिराय को इस बात का पता लगा तो वे बहुत रुष्ट हुए। उन्होंने कहा कि भय या लोभ से वशीभूत होकर गुरुवाणी के किसी एक भी शब्द को बदलने का किसी को अधिकार नहीं है। उन्होंने राम राय को प्रताड़ित करते हुए संदेश भेजा, ''तुमने भयवश गुरुवाणी में शब्द-परिवर्तन किया है, यह अक्षम्य अपराध है। तुम मुझे अपना मुंह मत दिखाना।''

राम राय वापस कीरतपुर नहीं गया। वह पहाड़ी प्रदेश के दून में चला गया। वहीं उसने अपना डेरा बना लिया। गुरु परंपरा की ख्याति चारों ओर थी ही। इस परंपरा का एक अंश होने के कारण कितने ही श्रद्धालु वहां भी आने लगे। वहीं एक बस्ती भी बन गई। यही बस्ती देहरादून नगर के रूप में विकसित हो गई।

केवल 31 वर्ष की अल्पायु में ही कीरतपुर में 6 अक्टूबर 1661 में गुरु हरिराय का देहावसान हो गया।

गुरु हरिकृष्ण (1656-1664)

आठवें गुरु-श्रीगुरु हरिकृष्ण सबसे छोटी आयु के गुरु थे। सातवें गुरु-गुरु हरिराय ने अपने ज्येष्ठ पुत्र को गुरुवाणी में किए गए परिवर्तन के कारण अपना उत्तराधिकारी नहीं बनाया। उन्होंने जीवन लीला समाप्त करने से पूर्व अपने कनिष्ठ पुत्र हरिकृष्ण को अपना उत्तराधिकारी घोषित कर दिया।

गुरु हरिकृष्ण का जन्म 7 जुलाई 1656 (सावन बदी 9, संवत 1713) को कीरतपुर में हुआ था। जिस समय उन्हें गुरु पद का दायित्व सौंपा गया उनकी आयु मात्र 5 वर्ष की थी। उनका व्यक्तित्व बहुत आकर्षक था। भाई संतोष सिंह ने अपने सुप्रसिद्ध ग्रंथ 'गुरु प्रताप सूरज' में लिखा है कि जिस प्रकार प्रातःकाल का सूर्य दिखने में बहुत छोटा होता है किंतु उसका प्रकाश चारों ओर फैलकर सृष्टि को आलोकित कर देता है, उसकी प्रकार लोग गुरु हरिकृष्ण को देखकर, उनके वचन सुनकर आनंदित हो जाते थे।

उनके बड़े भाई रामराय इस बात को सहन नहीं कर सके। गुरु गद्दी पर वह अपना अधिकार समझते थे। उन्होंने बादशाह से यह शिकायत की और उससे अपने पक्ष में हस्तक्षेप करने को कहा। औरंगजेब ने राजा जय सिंह से कहा कि वे बालगुरु को दिल्ली बुलाएं।

राजा जय सिंह का संदेश पाकर गुरु हरिकृष्ण अपनी दादी, मां और कुछ अन्य सिखों सहित दिल्ली की ओर चल पड़े। मार्ग में रोपड़, बनूर, राजपुरा, अंबाला, कुरुक्षेत्र जैसे अनेक स्थानों पर सिख-संगतों के समूह उनके दर्शन करने के लिए एकत्र होते थे।

दिल्ली में राजा जय सिंह ने उन्हें अपने बंगले में ठहराया। जिस बंगले में वे ठहरे हुए थे, उस स्थान पर आज एक भव्य गुरुद्वारा बना हुआ है जिसे बंगला साहब कहते हैं।

दिल्ली की सिख संगत उनके दर्शन करने के लिए बड़ी संख्या में नित्य इस स्थान

पर आती थी। राजा जय सिंह की रानियां भी उन्हें बहुत स्नेह देती थीं।

औरंगजेब को बाल गुरु की लोकप्रियता के समाचार प्राप्त हो रहे थे। राजा जयसिंह ने भी उसे आश्वस्त कर दिया था कि सिख संतों ने उन्हें अपने गुरु के रूप में स्वीकार कर लिया है। औरंगजेब ने रामराय के दावे को अस्वीकार कर दिया।

इन्हीं दिनों दिल्ली में चेचक की महामारी फैल गई। दुर्भाग्य से गुरु हरिकृष्ण को भी यह बीमारी लग गई। इस व्याधि से ग्रसित होकर 30 मार्च, 1964 में उनकी जीवन ज्योति परम ज्योति में विलीन हो गई। उस समय उनकी आयु मात्र आठ वर्ष की थी।

परंपरा के अनुसार प्रत्येक गुरु अपनी जीवन लीला की समाप्ति के पूर्व अपने उत्तराधिकारी की घोषणा कर देते थे। देहावसान से पूर्व सिखों ने उनसे जानना चाहा कि वे यह गुरुतर भार किसे सौंप रहे हैं?

उस समय उन्होंने संकेत करते हुए कहा–'बाबा बकाले'। इसका अर्थ था कि उनके बाबा (दादा) अमृतसर के निकट बकाला ग्राम में निवास कर रहे हैं। वही उनके उत्तराधिकारी होंगे।

गुरु हरिकृष्ण के दादा गुरुदित्ता जी थे। उनके भाई तेग़ बहादुर जी उस समय बकाला में थे। यह संकेत उनकी ओर था। सिख संगतों ने बकाला जाकर यह बात तेग बहादुर जी को बताई। परिणामस्वरूप नौवें गुरु के रूप में गुरु तेग़ बहादुर प्रतिष्ठित हुए।

गुरु तेग़ बहादुर (1621-1675)

सिख इतिहास और गुरु परंपरा में गुरु तेग बहादुर का स्थान अनेक दृष्टियों से अनोखा और अद्भुत है। अन्य गुरु अपने से ज्येष्ठ गुरु द्वारा इस गद्दी के लिए चुने जाते थे, किंतु गुरु तेग़ बहादुर का चयन उनके पौत्र-गुरु हरिकृष्ण द्वारा किया गया था। गुरु तेग़ बहादुर की संपूर्ण वाणी एक साधनाशील, भक्ति में तन्मय, माया से विरक्त आत्मिक आनंद की सतत खोज की वाणी है, परंतु उनके बचपन के संस्कार भक्ति के साथ ही तलवारों की झनझनाहट और युद्ध के घोषों से निर्मित हुए और जीवन का अंत अन्याय और अत्याचार के विरोध में आत्माहुति के रूप में हुआ है।

गुरु तेग बहादुर जी का जन्म पहली अप्रैल 1621 (बैसाख बदी 5, संवत 1678) को अमृतसर में हुआ था। गुरु हरिगोबिंद और माता नानकी को इतिहास के इस अनोखे बालक के पिता-माता बनने का गौरव मिला। बालक का नाम तेग़ बहादुर रखा गया। गुरु नानक की परंपरा में यह नाम भी अपने आप में अनोखा था। गुरु अर्जुन देव के समय से ही यह स्पष्ट होता जा रहा था कि मुगल शासकों से समाज के सम्मान की रक्षा के लिए शांतिपूर्ण धार्मिक उपाय ही पर्याप्त नहीं होंगे। वह समय भी दूर नहीं जब अन्याय और अत्याचार का प्रतिरोध करने के लिए तलवार उठाना आवश्यक और अपरिहार्य हो जाएगा। गुरु अर्जुन देव के बलिदान ने उस परिवर्तित स्थिति को सामने ला खड़ा किया था। गुरु हरिगोबिंद ने एक साथ दो तलवारें बांधीं, एक पीरी की, दूसरी मीरी की यानी एक आध्यात्मिक मूल्यों की रक्षा के लिए और दूसरी सांसारिक जीवन की रक्षा के लिए। 'तेग़ बहादुर' नाम इस नयी और परिवर्तित मनःस्थिति का परिचायक था। कहते हैं कि स्वयं गुरु हरिगोबिंद ने तेग़ बहादुर जी के संबंध में कहा था कि ये लोगों की रक्षा करेंगे, उनका संकट हरेंगे, यही इनकी पहचान होगी।

गुरु विलास के रचयिता के शब्दों में :

दीन रच्छ संकट हरें सदा यही पहचान

गुरु तेग बहादुर को सभी प्रकार की शिक्षा दी गई थी। भाई गुरदास जैसे विद्वान उन्हें साहित्य और दर्शन की शिक्षा दे रहे थे। भाई बुड्ढा जी उन्हें हस्तशिल्प और शारीरिक श्रम का पाठ पढ़ाते थे और गुरु हरिगोविंद की सशस्त्र सेना के अनेक अधिकारी उन्हें अस्त्र-शस्त्र की शिक्षा द्वारा युद्ध निपुण बना रहे थे। बचपन से ही तेग़ बहादुर जी के व्यक्तित्व में अंतर्मुखी और बहिर्मुखी प्रवृत्तियों का अदभुत संयोग था। एक ओर वे यह देख रहे थे कि उनका परिवार और बड़े विश्वास और श्रद्धा से उस परिवार से जुड़े हुए असंख्य लोग, किस तरह शासकों की आंखों में खटकने लगे थे। गुरु नानक ने जिस आंदोलन के बीज बोए थे, वह पुष्पित और पल्लवित होता हुआ ऐसा स्वरूप ग्रहण करता चला जा रहा था जो लाखों पंडित, पददलित और निराश लोगों के लिए विश्वास और प्रेरणा का केंद्र बन चुका था। उनके जन्म से केवल पंद्रह वर्ष पूर्व उनके पितामह, गुरु अर्जुन देव, मुगल सम्राट जहांगीर की धर्मांधता की बलि चढ़ चुके थे। जहांगीर ने अपनी आत्मकथा–'तुज़के जहांगीरी' में स्पष्ट शब्दों में लिखा था कि गुरु अर्जुन के बहुत से अनुयायियों में केवल हिंदू ही नहीं थे बल्कि मुसलमान भी थे। स्वयं उनके पिता गुरु हरिगोबिंद को कुछ समय तक जहांगीर द्वारा ग्वालियर के किले में बंदी बना दिया गया था। शाहजहां के शासन काल में गुरु हरिगोबिंद को शाही सेनाओं से कई बार युद्ध करना पड़ा था। शाही सेनाओं ने मुखलिस खान के नेतृत्व में सन् 1628 में अमृतसर पर आक्रमण किया था। उस समय तेग़ बहादुर जी की आयु मात्र सात वर्ष की थी। उस आयु में ही उन्होंने अपने पिता तथा अन्य साथियों को युद्ध करते और शाही सेना को पराजित करते देखा था। दूसरी और तीसरी लड़ाइयों के समय भी वे अल्पायु थे। करतारपुर में जब पैंदेखान और कालेखान ने गुरु हरिगोबिंद पर आक्रमण किया तो उस समय तेग़ बहादुर जी की आयु चौदह वर्ष की थी। इस आयु तक उन्हें शस्त्र-विद्या की अच्छी शिक्षा मिल चुकी थी, इसलिए उन्होंने युद्ध में सक्रिय भाग लिया था।

दूसरी ओर बचपन से ही उनमें एकांत साधना की लगन थी। जब भी अवसर मिलता वे समाधि में लीन हो जाते। फरवरी 1644 में गुरु हरिगोबिंद ने अपना शरीर त्याग दिया। उन्होंने अपने पौत्र हरिराय को अपना उत्तराधिकारी बनाया। गुरु हरिराय गुरु हरिगोबिंद के ज्येष्ठ पुत्र बाबा गुरदित्ता के छोटे बेटे थे। बाबा गुरदित्ता का असमय ही देहावसान हो गया था।

गुरु हरिगोबिंद अतुल शक्तिशाली मुगल सत्ता को सशस्त्र चुनौती देकर भावी एवं लंबे संघर्ष का सूत्रपात कर चुके थे, परंतु वे जानते थे कि यह लड़ाई दो-चार युद्धों की या दो चार वर्षों की लड़ाई नहीं है। जिस विदेशी शासन को इस देश में स्थापित हुए छह-सात सौ वर्ष व्यतीत हो चुके थे और जिसकी जड़ें काफी गहराई से जम चुकी थीं,

उसकी अन्याय एवं अत्याचारपूर्ण नीतियों को चुनौती देना आसान काम नहीं था। स्वाभाविक था कि आगामी कुछ वर्ष शांतिपूर्ण ढंग से प्रचार कार्य में लगाए जाएं और अधिक से अधिक व्यक्तियों तक गुरु नानक के संदेश को ले जाया जाए। इस दृष्टि से एक ऐसे उत्तराधिकारी की जरूरत थी जो अत्यंत शांत चितवृत्ति का व्यक्ति हो। गुरु हरिगोबिंद को ये सभी गुण छोटे पौत्र हरिराय में दिखाई दिए, इसीलिए उन्होंने उन्हें अपना उत्तराधिकारी घोषित किया।

अपने पिता गुरु हरिगोबिंद के देहावसान के पश्चात तेग बहादुर जी अपने ननिहाल बकाला में अपनी माता और पत्नी के साथ आकर रहने लगे थे। यहां उनका अधिकांश समय ईश्वर-भक्ति और जन सेवा में व्यतीत होता था। उधर गुरु हरिकृष्ण ने संकेत दिया कि मेरे बाबा जो आजकल बकाला में हैं, मेरे उत्तराधिकारी हैं।

गुरु नानक ने जिस परंपरा की नींव डाली थी उसका आधार था सेवा और नम्रता। यही वह कसौटी थी जिस पर प्रत्येक व्यक्ति की परख होती थी। किसी व्यक्ति को उसकी जाति, वंश, पद या धन-संपत्ति के आधार पर नहीं बल्कि सेवा और नम्रता के आधार पर ही गुरु-घर में स्थान प्राप्त होता था।

जब गुरु हरिकृष्ण ने कहा—बाबा बकाले, और यह कहते-कहते अपनी आंखें मूंद लीं, तो बहुत से लालची लोग गुरु गद्दी के दावेदार बन बैठे। गुरु परिवार से निकट-दूर का संबंध रखने वाले लोग बकाला गांव में पहुंचकर अपने गुरु होने का ढोल पीटने लगे और अपनी दुकानें खोलकर बैठ गए, परंतु तेग बहादुर जी इस प्रपंच से बहुत दूर थे। वे अपनी साधना और अपनी सेवा कर्म में लीन थे। सूर्य का प्रकाश बादलों की ओट में अधिक समय तक नहीं छिपता। बनावटी गुरु भी संगत को अधिक दिन तक धोखे में नहीं रख सके। भाई मक्खन शाह लुबाणा नाम के एक सिख ने आखिर एक दिन यह घोषणा सार्वजनिक रूप से प्रसारित कर दी कि मैंने गुरु ढूंढ लिया...

गुरु लाधो रे
गुरु लाधो रे

सभी सिख गुरु प्रायः देश के विभिन्न भागों की यात्रा किया करते थे। इस प्रकार वे जनता से अपना सीधा संपर्क स्थाापित करते थे और उसके दुःख-दर्द तथा जीवन की विविध समस्याओं को समझने और उन्हें दूर करने का प्रयत्न करते थे। गुरु नानक देव ने अपने जीवन के लगभग बाईस वर्ष इस प्रकार की यात्राओं और जनजागरण के प्रयत्नों में व्यतीत किए थे। उन्होंने तो देश की सीमाओं से बहुत दूर मक्का, मदीना और बगदाद तक की यात्रा की थी। गुरु हरिगोबिंद तक अन्य गुरुओं की यात्राएं पंजाब तक सीमित रहीं, परंतु उनके संदेशवाहक (मसंद) उनका संदेश लेकर देश के सुदूर भागों तक जाते रहे। गुरु हरिगोबिंद ने कश्मीर और वर्तमान उत्तर प्रदेश के अनेक भागों की यात्रा की थी।

गुरुओं का एक महत्वपूर्ण कार्य यह भी था कि उन्होंने कभी एक स्थान को अपना स्थायी स्थान नहीं बनाया। वे अपना स्थल बदलते रहते थे। इस प्रकार वे लंबे समय तक आसपास की जनता के सीधे संपर्क में आते थे। साथ ही साथ वे नए नगरों को बसाने की प्रेरणा देते थे तथा उनके निवास के कारण अनेक पहले से बसे हुए गांव या नगर नया जीवन पा जाते थे।

गुरु तेग़ बहादुर गुरुपद पर आसीन होने से पूर्व भी अनेक यात्राएं कर चुके थे। गुरुपद संभालने के बाद उन्होंने पंजाब के अनेक स्थानों की फिर से यात्रा की।

आनंदपुर का निर्माण

औरंगजेब के बढ़ते हुए अत्याचारों के कारण संपूर्ण देश की स्थिति बहुत विषम होती जा रही थी। शाहजहां के शासनकाल में ही मंदिरों को तोड़ने और बलात धर्म परिवर्तन करने का शासकीय आंदोलन काफी आगे बढ़ चुका था और उसी के शासन काल में सिखों और मुगलों में सशस्त्र संघर्ष की शुरुआत हो गई थी।

गुरु तेग़ बहादुर अच्छी तरह जानते थे कि आने वाला समय महान संकटों से भरा हुआ है। उस संकट का सामना करने के लिए लोगों में नैतिक बल उत्पन्न करना होगा। साथ ही साथ सशस्त्र संघर्ष की स्थिति में उपयुक्त स्थान से सभी प्रकार की मोर्चाबंदी करनी होगी। वे किसी ऐसे स्थान को अपनी गतिविधियों का केंद्र बनाना चाहते थे जो साधना और समर दोनों ही दृष्टियों से अनुकूल हो। इसी दृष्टि से गुरु हरिगोविंद ने पहाड़ी क्षेत्र में कीरतपुर नगर बसाया था। गुरु तेग बहादुर ने उसी के पास विलासपुर की पहाड़ी रियासत के एक गांव 'माखोवाल' को वहां के राजा से खरीद लिया और वहां एक नए नगर के निर्माण का काम शुरू करा दिया। इस नगर को पहले 'चक नानकी' कहा जाता था। बाद में यही स्थान आनंदपुर नाम से प्रसिद्ध हुआ।

'आनंदपुर' नगर भी बस रहा था और गुरु जी की यात्राएं भी चल रही थीं। अनेक स्थानों की संगत के उन्हें संदेश मिल रहे थे, जिसमें यह आग्रह किया जा रहा था कि वे उनके प्रदेश में आएं। विशेष रूप से बनारस और ढाका की संगतें उन्हें बार-बार आने का निवेदन कर रही थीं। गुरु तेग बहादुर ने सभी बातों पर विचार किया और पूर्वी भारत की लंबी यात्रा की तैयारी की। यह यात्रा अगस्त 1655 में प्रारंभ हुई। गुरु जी के साथ उनकी माता और उनकी पत्नी भी थीं। यात्रा संबंधी सभी बातों का प्रबंध करने की जिम्मेदारी भाई मतीदास ने ली।

गुरु तेग़ बहादुर की यह यात्रा अनेक दृष्टियों से बहुत महत्वपूर्ण थी। पूर्वी भारत तक की यह यात्रा उन्होंने बहुत धीरे-धीरे और कई चरणों में की। वे बीच-बीच में जहां भी रुकते थे, सहस्रों व्यक्ति उनके दर्शन करने और उपदेश सुनने के लिए आ जाते थे। लोग उनके लिए अनेक प्रकार भेंट ले आते थे जिसे वे स्थानीय लोगों को उनकी

आवश्यकताओं के लिए दे दिया करते थे। इस यात्रा में उन्होंने एक ऐसे गांव में पड़ाव किया जिसमें कोई कुआं नहीं था और गांव के लोगों को पानी की बड़ी परेशानी थी। गुरु तेग बहादुर ने धन देकर वहां कुआं खुदवाया और इस गांव में लगभग पंद्रह दिन तक रहकर वहां के लोगों की आवश्यकताओं और समस्याओं का समाधान किया। सैफाबाद में वे वहां के नवाब के पास कुछ दिन तक रहे। यह नवाब उनका भक्त था।

इस तरह बीच के अनेक स्थानों पर रुकते हुए वे कुरुक्षेत्र पहुंचे। यहां उन्होंने ब्राह्मणों और योगियों से संवाद किया। गुरु तेग बहादुर जब इन स्थानों की यात्रा कर रहे थे तो अनेक गुरुद्रोही लोग और शाही कारिंदे औरंगजेब को अनेक प्रकार के समाचार भेज रहे थे। यह भी प्रचारित किया जा रहा था कि उनके साथ एक बड़ी सेना है और वे अपने सिखों से बहुत-सा धन प्राप्त कर रहे हैं। ये सब समाचार पाकर औरंगजेब बहुत सशंकित हुआ और उसने गुरुजी को दिल्ली बुलवाया।

इस बात का पहले उल्लेख किया जा चुका है कि जयपुर का राज-घराना सिख गुरुओं में बहुत श्रद्धा रखता था। राजा जय सिंह और उनके पुत्र राजा राम सिंह का मुगल दरबार में महत्वपूर्ण स्थान था और वे इस बात के लिए सदैव प्रयत्नशील रहते थे कि मुगल बादशाहों के कारण गुरुओं को किसी प्रकार का कष्ट न पहुंचने पाए। जब गुरु हरिकृष्ण को औरंगजेब ने दिल्ली बुलाया था, तो वहां पहुंचने पर राजा जय सिंह ने उन्हें दिल्ली में अपने बंगले पर ही ठहराया था।

इस बार भी राजा राम सिंह औरंगजेब को समझाने में सफल हो गए और गुरु तेग बहादुर अपने परिवार तथा साथियों सहित पूर्वी भारत की यात्रा के लिए आगे बढ़ गए।

दिल्ली से निकलकर मथुरा, आगरा, इटावा, कानपुर, फतेहपुर होते हुए प्रयाग में गुरु-परिवार लगभग 6 महीने तक रहा। वहां से मिर्जापुर, बनारस, गया होते हुए सभी लोग पटना पहुंचे।

उन दिनों माता गूजरी गर्भवती थीं। ऐसी स्थिति में यह स्वाभाविक था कि गुरु तेग बहादुर अपने परिवार तथा साथियों में से कुछ को पटना में ही रहने दें और स्वयं कुछ सिखों सहित आगे की यात्रा जारी रखें।

पटना से वे मुंगेर गए और वहां से अनेक स्थानों की यात्रा करते हुए, स्थानीय जनता के दुःख-दर्द समझते, उन्हें उपदेश देते हुए वे अक्टूबर 1666 में ढाका पहुंच गए।

लगभग दो शताब्दी पूर्व गुरु नानक ने भी इस प्रदेश की यात्रा की थी और उस समय जो उनके शिष्य बने थे वे और उनकी संतानें पंजाब में गुरु गद्दी के निरंतर संपर्क में रही थीं। गुरु तेग़ बहादुर के समय तक पूर्वी भारत में लगभग सभी स्थानों पर सिख-संगतें स्थापित हो चुकी थीं। श्री जे. बी. सिंह ने अपने एक लेख 'सिख रेलिक्स इन ईस्टर्न बंगाल' में लिखा है कि 'पूर्वी' बंगाल में सभी ओर समृद्ध सिख-संगतों और मठों का अच्छा जाल फैल गया था। पश्चिम में राजमहल से लेकर पूर्व में सिलहट और उत्तर में दुबरी से लेकर दक्षिण में बंसखाली और फतेकचेहरी तक मुगलों के शासनकाल में

शायद ही कोई ऐसा प्रमुख स्थान होगा जहां कोई सिख संगत न हो या किसी सिख प्रचारक ने अपने आपको बसा न लिया हो और अपने चारों ओर श्रद्धालुओं की अच्छी संख्या न एकत्र कर ली हो। यह आंदोलन शाहजहां के समय में संदीप आदि कुछ द्वीपों में भी फैल गया था। ये संगतें केवल पूजा-स्थल ही नहीं थीं वरन् यात्रियों के लिए धर्मशालाओं का उपयोगी काम भी करती थीं और वहां निर्धन तथा साधनहीन यात्रियों को भोजन और निवास निशुल्क उपलब्ध कराया जाता था।

ये संगतें अलमस्त और नाथे साहब नामक मसंदों द्वारा अच्छी तरह संगठित की गई थीं। ढाका में इस क्षेत्र की हजूरी संगत (प्रधान संगत) थी। अन्य स्थानों की संगतों को यहां से निर्देश दिए जाते थे। इन संगतों में स्थानीय लोगों के अतिरिक्त पंजाब और सिंध के सिख व्यापारियों की अच्छी संख्या सदैव उपस्थित रहती थी। गुरु तेग बहादुर द्वारा लिखे गए अनेक पत्रों (हुक्मनामों) से यह स्पष्ट है कि ये लोग अपने आध्यात्मिक मार्ग-दर्शन के लिए गुरु से पूरा सम्पर्क रखते थे और समय-समय पर गुरुओं को अपनी भेंट भेजा करते थे।

ढाका में गुरु तेग़ बहादुर का अपूर्व स्वागत हुआ। हजारों व्यक्ति उनके दर्शनों के लिए आने लगे। यहीं पर उन्हें पटना से समाचार मिला कि माता गुजरी ने पुत्र रत्न को जन्म दिया है। उन्होंने पटना की संगत को अपने परिवार की भली प्रकार देख-भाल करने के लिए धन्यवाद का एक पत्र लिखा। अपनी आत्मकथा 'विचित्र नाटक' में गुरु गोविंद सिंह ने अपने जन्म का उल्लेख करते हुए लिखा है :

मुर पित पूरब कियसि पयाना।
भांति-भांति के तीरथ नाना।।
जब ही जात त्रिवेणी भये।।
पुन्नदान दिन करत बितये।।
तहीं प्रकाश हमारा भयो।
पटना शहर बिखे भव लयो।।

(दशम ग्रंथ, पृष्ठ 59)

ढाका से उन्होंने पूर्वी बंगाल का विस्तृत दौरा किया। आज भी सिलहट, चटगांव, संदीप, लश्कर आदि स्थानों पर उनके आगमन के प्रमाण प्राप्त होते हैं।

वहां से वे असम की ओर गए। फरवरी 1669 में रंगामती में उनकी भेंट राजा राम सिंह से हुई, जिन्हें औरंगजेब ने अहोमों के राजा चक्रध्वज को पराजित करने के लिए भेजा था। राजा राम सिंह को उन लोगों का भाग्य ज्ञात था जो उससे पहले असम भेजे गए थे। यद्यपि मुगल सेनापति मीर जुमला को युद्ध में बहुत सफलता मिली थी, परंतु वहां की जलवायु के कारण उसकी दशा इतनी खराब हो गई थी कि असम से ढाका वापस आते हुए मार्ग में ही उसकी मृत्यु हो गई थी। दूषित जलवायु और असमियों की जादू-टोने

की बहु-प्रचारित शक्ति के कारण राजा राम सिंह को अपने अभियान की सफलता पर बहुत संदेह था। राजा राम सिंह का विचार था कि औरंगजेब ने उससे रुष्ट होकर उसे समाप्त कर देने के इरादे से ही असम की ओर भेजा है। इसके पूर्व-दक्षिण में शिवाजी के हाथों मार खाकर आए शाहिस्ता खान को भी औरंगजेब ने रुष्ट होकर बंगाल का सूबेदार बनाकर भेज दिया था।

राजा राम सिंह ने गुरु तेग़ बहादुर का आशीर्वाद प्राप्त करने के लिए उन्हें अपने ही साथ रहने का निवेदन किया। ऐसा लगता है कि गुरु तेग बहादुर असम के अहोम राजा चक्रध्वज और राजा राम सिंह के मध्य समझौता कराने में सफल हो गए। मुग़लों और अहोमों के मध्य इस शांतिपूर्ण निदान की स्मृति में ब्रह्मपुत्र के दाहिने किनारे, डुबरी में, एक स्मृति में ब्रह्मपुत्र के दाहिने किनारे, डुबरी में एक स्मृति-चिह्न बनाया गया। आज भी वहां एक गुरुद्वारा स्थापित है।

गुरु तेग़ बहादुर जी बंगाल, असम में दो वर्ष से अधिक का समय व्यतीत कर चुके थे। फिर वे शीघ्रता से पंजाब की ओर मुड़े, परंतु राजा राम सिंह को औरंगजेब से 1676 तक असम से वापस मुड़ने की आज्ञा नहीं मिली।

इन्हीं दिनों औरंगजेब की धार्मिक नीति खुलकर सामने आ गई थी। गुरु तेग बहादुर जी को बराबर समाचार मिल रहे थे कि किस प्रकार सारे देश में दमन और अत्याचार का बोलबाला हो गया था। गुरु जी कलकत्ता और जगन्नाथपुरी होते हुए पटना वापस आए। इस समय बालक गोबिंद लगभग ढाई वर्ष के हो चुके थे। अपने परिवार के साथ लगभग तीन महीने व्यतीत करके वे अक्टूबर 1669 में पंजाब की ओर चल दिए। परिवार को उन्होंने फिलहाल पटना में ही रहने दिया। लगभग एक वर्ष तक स्थान-स्थान की यात्रा करते, मार्ग की संगतों का मार्ग-निर्देशन करते और परिस्थितियों का गहरा अध्ययन करते हुए वे अक्टूबर 1670 में आनंदपुर वापस पहुंचे।

औरंगजेब की धार्मिक नीति

अकबर ने अपने शासनकाल में जिस प्रकार की धार्मिक नीति अपनाई थी, उसने देश के बहुसंख्यक हिंदुओं के मन से, उससे पहले के अनेक शासकों द्वारा किए गए अत्याचारों की कटु यादों को बहुत हल्का कर दिया था। अकबर ने इस देश के गैर मुसलमानों की भावना को समझने की ईमानदारी से कोशिश की थी और उन्हें अपना धर्म पालन करने की पर्याप्त स्वतंत्रता दी थी। अकबर ने इस देश की प्राचीन संस्कृति, दर्शन और भाषा को आत्मीय दृष्टि से देखने का प्रयत्न किया था और उनसे अपने आपको समरस बनाने की भी कोशिश की थी। सिख गुरुओं को भी अकबर अत्यंत आदर की दृष्टि से देखता था।

उस समय मुसलमानों में दो प्रकार के लोग थे। एक वे जिन पर सूफी संतों का प्रभाव था। ऐसे लोग विचारों में उदार थे। धार्मिक कट्टरता उनमें नहीं थी और गैर

मुसलमानों से उनके निकट के संबंध थे। शासक वर्ग में अकबर और दारा शिकोह तथा संतों और कवियों में—शेख फरीद, मियां मीर, मलिक मुहम्मद जायसी, अब्दुल रहीम खानखाना, रसखान, आलम, पीर बुल्लेशाह आदि अनेक लोग इस वर्ग का प्रतिनिधित्व करते थे। धार्मिक सहिष्णुता का निर्माण करने और विभिन्न धर्म-मतों में सहयोग और सद्भाव स्थापित करने की दृष्टि से सिख-गुरुओं ने विशेष प्रयत्न किए थे। गुरु नानक ने जहां सभी हिंदू, बौद्ध और जैन तीर्थों की यात्रा की, वहां मक्का-मदीना की यात्रा कर मुसलमान फकीरों से भी विचारों का आदान-प्रदान किया था। सुप्रसिद्ध सूफी संत शेख फरीद की गद्दी से उनके घनिष्ठ और स्नेहपूर्ण संबंध थे और जब गुरु अर्जुन ने 'ग्रंथ साहब' का संपादन किया तो वे उसमें शेख फरीद की वाणी को संकलित करना नहीं भूले। परंपरा से यह भी प्रचलित है कि अमृतसर के हरिमंदिर की नींव लाहौर के सुप्रसिद्ध सूफी फकीर मियां मीर ने रखी थी और सिढोरा के मुसलमान सूफी संत पीर बुदूशाह से गुरु गोबिंद सिंह की घनिष्ठ मैत्री थी।

परंतु एक दूसरा वर्ग भी था जो धार्मिक कट्टरता और तअस्सुब को ही वास्तविक धर्म समझता था। सूफियों की प्रेमवाणी उन्हें अच्छी नहीं लगती थी, अकबर की उदारता उन्हें बुरी तरह खली थी और दारा शिकोह को वे अपना सबसे बड़ा दुश्मन समझते थे। मुगल दरबार में मौलवियों और काजियों से प्रभावित इस कट्टरपंथी वर्ग का ही अधिक प्रभाव था और अकबर के बाद के मुगल बादशाह यह बात अच्छी तरह जानते थे कि यदि उन्हें अपनी बादशाहत को बचाए रखना है तो उन्हें इन कट्टरपंथियों को प्रसन्न करने के लिए इस्लाम के प्रचार का ढोंग अवश्य रचना पड़ेगा। इसीलिए भोग विलास में डूबे हुए जहांगीर जैसे बादशाह ने भी अपनी आत्मकथा में गुरु अर्जुन के संबंध में यह लिखा कि कितने ही समय से मेरे मन में यह विचार आ रहा था कि उन्हें इस्लाम में लाना चाहिए। इन्हीं मौलवियों और मुल्लाओं के प्रभाव में आकर शाहजहां ने मंदिरों का निर्माण रुकवाने और सरेआम गौ-वध करने की आज्ञा दे दी थी।

औरंगजेब और दारा शिकोह का संघर्ष वास्तव में इस कट्टरपंथी और उदारवादी विचारधारा का संघर्ष था। यह देश का दुर्भाग्य ही था कि उस संघर्ष में कट्टरता विजयी हुई और उदारता पराजित हुई।

औरंगजेब ने गद्दी पर बैठते ही अपने पूर्वज बाबर की उस नसीहत को भुला दिया जो उसने अपने पुत्र हुमायूं को वसीयत के रूप में दी थी। उसने कहा था हिंदुस्तान में अनेक धर्मों के लोग बसते हैं। भगवान को धन्यवाद दो कि उसने तुम्हें इस देश का बादशाह बनाया है। तुम तअस्सुब से काम न लेना, निष्पक्ष होकर न्याय करना और सभी धर्मों के लोगों की भावना का ख्याल रखना। गाय को हिंदू पवित्र मानते हैं, इसीलिए जहां तक हो सके गौवध नहीं करना और किसी भी संप्रदाय के पूजा के स्थानों को नष्ट नहीं करना।

औरंगजेब की कट्टर नीति के शिकार वे मुसलमान भी हुए थे जो उदार विचारों

के थे। प्रसिद्ध सूफी फकीर सरमद को उसके स्वतंत्र विचारों के कारण मौत की सजा दी गई थी। सन् 1672 में तीन बड़े खलीफाओं को गाली देने के अपराध में मुहम्मद ताहिर नामक एक शिया दीवान का सिर काट लिया गया था। एक पुर्तगाली पादरी मुसलमान हो गया था। कुछ समय बाद वह फिर ईसाई हो गया था। उसका आचरण धर्म-विरुद्ध माना गया। सन् 1667 में धर्म-भ्रष्ट होने के अपराध में उसे मृत्युदंड दिया गया। बोहरा समाज के धर्मगुरु सैयद कुतुबुदीन अहमदाबाद में रहते हैं। बादशाह की आज्ञानुसार उन्हें तथा उनके सात सौ अनुयायियों को मरवा डाला गया था। (जदुनाथ सरकार-औरंगजेब-हिंदी संस्करण-पृष्ठ 106)।

समय की पुकार

उत्तरी-पूर्वी भारत के विशाल भाग की यात्रा में गुरु तेग़ बहादुर ने अपनी आंखों से निरीह जनता पर होने वाले इन अत्याचारों को देखा। उन्होंने यह भी देखा कि औरंगजेब की इस दमन नीति के विरुद्ध विद्रोह की चिंगारियां स्थान-स्थान पर उठ रही हैं। दक्षिण में छत्रपति शिवाजी के नेतृत्व में मराठा शक्ति संगठित होकर मुगल सेनाओं से टक्कर ले रही थी। मथुरा के एक जमींदार गोकुल के नेतृत्व में उस प्रदेश के जाटों ने सन् 1669 में मुगलों के फौजदार और उसके सिपाहियों को मार डाला था जिन्होंने मथुरा के मंदिरों को तोड़ा था। 1672 में बुंदेलखंड के बुंदेलों ने छत्रसाल के नेतृत्व में मुगल सल्तनत से टक्कर लेनी शुरू कर दी थी। 1672 में दिल्ली के निकट नारनौल के सतनामी सम्प्रदाय के अनुयायियों ने मुगल शासन के विरुद्ध इतना बड़ा विद्रोह किया कि उनके अद्‌भुत साहस को देखकर मुगल सैनिक उनमें दैवी शक्तियों का संदेह करने लगे और स्वयं औरंगजेब को, जो मुसलमानों का जिंदा पीर समझा जाता था। (आलमगीर जिंदापीर) अपने हाथों से दुआएं और आयतें लिखकर शाही झंडों में टांकनी पड़ी थीं।

परंतु ये सभी चिंगारियां उभर रही थीं और बिखर रही थीं। मुगलों के सत्ता केन्द्र से दूर होने के कारण मराठों को तो अपने अभियान में कुछ सफलता मिल रही थी, परंतु अन्य संघर्ष थोड़े से प्रयत्न के बाद कठोरतापूर्वक दबा दिए गए थे।

गुरु तेग बहादुर के पंजाब आने के बाद लगभग तीन वर्ष बाद, पटना में छूटा हुआ उनका परिवार भी आनंदपुर आ गया था। इन तीन वर्षों में गुरु तेग बहादुर ने आनंदपुर को अनेक दृष्टियों से विकसित किया और पंजाब के अनेक भागों का दौरा करके वहां की जनता में आत्मविश्वास और शक्ति का विस्तार किया था।

तभी एक दिन उनके सामने एक स्थिति आ खड़ी हुई, एक प्रश्न उभर आया जिसके पीछे एक महान निर्णय झांक रहा था। कश्मीर के एक प्रमुख संस्कृत अध्ययन केन्द्र के प्राचार्य, मटन निवासी पंडित कृपाराम के नेतृत्व में कश्मीरी ब्राह्मणों का एक दल गुरु तेग़ बहादुर से भेंट करने के लिए आंनंदपुर पहुंचा और कश्मीर के हिंदुओं, विशेष

रूप से ब्राह्मणों पर होने वाले अत्याचारों की मार्मिक कहानी उन्होंने उन्हें सुनाई।

उन्हीं दिनों (सन् 1671) बादशाह ने इफ्तिखार खान को कश्मीर का सूबेदार बनाकर भेजा। प्राचीन सिख इतिहासों में इसका नाम 'शेर अफगन' लिखा है। संभव है मुगल दरबार की ओर से उसे यह, खिताब दिया गया हो। इफ्तिखार खान बहुत धर्मांध, क्रूर और अत्याचारी शासक था। उसने सूबेदारी संभालते ही ब्राह्मणों को धर्म परिवर्तन के लिए मजबूर करना शुरू कर दिया और अस्वीकार की स्थिति में उन पर अत्याचारों की अग्नि बरसाने लगा।

पंडित कृपाराम और उनके साथ आए ब्राह्मणों से हिंदुओं पर होने वाले अत्याचारों की गाथा सुनकर गुरु तेग़ बहादुर गहरे विचारों में डूब गए। गत् अनेक वर्षों से वे औरंगजेब के बलात धर्म परिवर्तन के अन्यायपूर्ण प्रयत्नों को देख रहे थे। कश्मीरी पंडितों की बात सुनकर उन्हें लगा कि संपूर्ण स्थिति उस बिंदु तक पहुंच चुकी है, जिसमें कोई महान निर्णय लेने के अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं है। यह वह स्थिति थी जो कुछ करने और मरने की मांग करती है, परंतु प्रश्न यह था कि वह महान निर्णय क्या हो? गुरु तेग़ बहादुर ने अनुभव किया कि सदियों से छोटी-छोटी इकाइयों में बिखरा और विश्रृंखलित यह देश कई बार कुछ करने के लिए तडफड़ाता है, परंतु हर तड़फड़ाहट हल्की सी चमक दिखाकर अंधेरे में डूब जाती है और अंधेरा पहले से ज्यादा सघन हो जाता है।

गहरे अंधेरे में एक प्रकाश-स्तंभ खड़ा करना होगा, जो हर सक्रिय प्रयत्न को रोशनी दे सके, जिसमें से हर बुझती हुई चमक नया प्रकाश स्रोत पा सके। यह प्रकाश स्तंभ दस, बीस, पचास वर्षों का प्रकाश स्तंभ नहीं होगा, बल्कि सदियों तक आने वाली पीढ़ियों के मार्ग को भी आलोकित कर सकेगा।

परंतु यह प्रकाश स्तंभ कैसे बनेगा? संभव है तभी उनके सम्मुख गुरु नानक की ये पंक्तियां उभरी हों :

जे तउ प्रेम खेलन का चाउ।
सिर धर तली गली मेरी आउ।।

उसी के साथ महान निर्णय का विचार मूर्त हो गया होगा, गुरु तेग़ बहादुर ने निश्चय कर लिया—'मैं अपना सिर देकर, अपना रक्त देकर यह प्रकाश-स्तंभ बनाऊंगा।'

तभी तेग़ बहादुर ने कश्मीरी पंडितों से कहा—ठीक है। आप सब लोग बादशाह से यह कहिए कि यदि गुरु नानक की गद्दी के नौवें उत्तराधिकारी गुरु तेग़ बहादुर इस्लाम स्वीकार कर लेंगे तो हम सब लोग उनका अनुगमन करेंगे। तब तक किसी भी व्यक्ति पर किसी तरह का अत्याचार न किया जाए।

सभी पंडितों ने लाहौर पहुंचकर वहां के सूबेदार जालिम खान को बादशाह के लिए अपना आवेदन पत्र दिया। बादशाह उस आवेदन-पत्र को पढ़कर बहुत प्रसन्न हुआ और उसने अपने दरबार में काजियों और मौलवियों को बुलाकर बड़े आनंद से उस

आवेदन-पत्र में लिखी हुई बातें पढ़कर सुनाईं। सभी ने वड़े हर्षोल्लास से उसे सुना। उसने पंडितों से कहा कि आवेदन-पत्र की शर्तों को मैं बड़ी प्रसन्नता से स्वीकार करता हूं। बादशाह ने उनके कश्मीर वापस जाने का भी प्रबंध कर दिया। बादशाह ने कश्मीर के सूबेदार इफ्तिखार खान को लिख दिया कि वह बलात धर्म परिवर्तन का काम बंद कर दे क्योंकि उसे (बादशाह को) इस बात की संतुष्टि हो गई है कि इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए अब बल की आवश्यकता नहीं है।

औरंगजेब को लगा, उसका काम अब बहुत आसान हो गया है। यदि गुरु तेग़ बहादुर को समझा-बुझाकर, प्रलोभन देकर या भयभीत करके धर्म परिवर्तन के लिए मना लिया जाए तो अन्य हिंदुओं को इस राह पर लाना बहुत आसान हो जाएगा।

उसने उन्हें शाही दरबार में आने का फरमान भेज दिया।

गुरु तेग बहादुर 11 जुलाई 1675 को दिल्ली की ओर चल पड़े। उनके साथ तीन सिख थे—दीवान भाई मतिदास, भाई दयालदास, भाई सतिदास। गुरु तेग बहादुर ने बादशाह को एक चुनौती दी थी और स्वयं एक चुनौती स्वीकार की थी। लाखों नज़रें अदृश्य रूप से उन पर टिकी हुई थीं क्योंकि उनके परिणाम पर ही उन सभी का परिणाम निर्भर करता था। उनके परिवार के सभी व्यक्ति यह जानते थे कि क्या होने वाला है। वृद्ध माता नानकी, पत्नी गूजरी, पुत्र गोबिंद सभी के सम्मुख यह स्पष्ट था कि उनकी विदाई अन्तिम विदाई है। गुरु तेग़ बहादुर ने गुरु गद्दी का दायित्व पुत्र को सौंप दिया, सभी से भावभीनी विदाई ली और मंजिल की ओर चल पड़े।

लाला दौलतराम ने अपनी पुस्तक *महाबली* में लिखा है—''आज तक यह तो हुआ है कि कातिल (वधिक) मकतूल (वधित) के पास आता है, यह नहीं कि मकतूल कातिल के पास आए। ऐसा करके गुरु तेग बहादुर ने उल्टी गंगा बहा दी।''

प्रसिद्ध इतिहासकार डॉ. जदुनाथ सरकार ने भी इस बात की पुष्टि करते हुए लिखा है कि उन्होंने (गुरु तेग़ बहादुर ने) कश्मीर के हिंदुओं को इस्लाम में जबरदस्ती परिवर्तित करने का खुला विरोध किया था। दिल्ली में बुलाए जाने पर उन्हें कारागार में डालकर इस्लाम धर्म ग्रहण करने के लिए विवश किया जाने लगा और उनके अस्वीकार करने पर उन्हें पांच दिनों तक यातना देने के पश्चात् उन्हें बलिदान कर दिया गया।

इस बीच दिल्ली से दो फरमान और आ चुके थे। जब फरमान ले जाने वाले शाही सिपाहियों को वे आनंदपुर में नहीं मिले तो उन्होंने अनुमान लगाया कि गुरु तेग़ बहादुर कहीं अलोप हो गए हैं। इस आधार पर उन्हें बंदी बनाने के लिए भी शाही फरमान जारी कर दिए गए। लगभग 40 कि.मी. की यात्रा के पश्चात् वे रोपड़ के पास के एक गांव में ठहरे। यहीं उन्हें शाही फौज द्वारा गिरफ्तार किया गया। यहां से उन्हें सरहिंद लाया गया। सरहिंद के फौजदार ने उन्हें बंदी बनाकर दो-तीन महीने वहीं रखा। जब औरंगजेब अफगानिस्तान के अफरीदियों से निपट कर हसन अब्दाल से दिल्ली लौटा, तो गुरु तेग़ बहादुर को दिल्ली भेज दिया गया। तीन सिखों—भाई मतिदास, भाई सतिदास और भाई

दयाल दास सहित बंदी बनाकर के दिल्ली की एक पुरानी हवेली में कैद कर दिए गए। कुछ दिन बाद उन्हें चांदनी चौक की कोतवाली में ले जाया गया।

गुरु जी के सम्मुख तीन प्रस्ताव रखे गए—अपना धर्म बदलकर इस्लाम धर्म स्वीकार कर लें या वे कोई चमत्कार दिखाएं या फिर मृत्यु स्वीकार करें। उन्होंने बलात् धर्म परिवर्तन की बात को मूलतः गलत माना और इस बात पर जोर दिया कि व्यक्ति किसी भी मार्ग से ईश्वर के पास पहुंचने का अधिकारी है। चमत्कार प्रदर्शन को उन्होंने बाजीगरों का काम बताया और ईश्वर के भक्त इस प्रकार के कार्यों में विश्वास नहीं करते। तीसरी स्थिति मृत्यु स्वीकार करने की थी। इसके लिए तो वे तैयार होकर आए थे।

बादशाह और उसके कारिंदों की ओर से उन्हें अनेक प्रकार के प्रलोभन दिए गए, भविष्य के सुंदर सुहावने स्वप्न दिखाए गए और मृत्यु का भय दिखाया गया परंतु कोई भी बात उनके निश्चय में परिवर्तन नहीं कर सकी।

गुरुजी के साथियों, भाई मतिदास, भाई सतिदास और भाई दयालदास पर भी सभी प्रकार का दबाव डाला गया, परंतु वे अपने निश्चय पर चट्टान की तरह दृढ़ रहे। अन्त में मुख्य काजी अब्दुल वहाब बोरा ने उन्हें मौत की सज़ा दी। तीनों ने गुरु का आशीर्वाद प्राप्त किया और गुरुजी ने उन्हें स्नेह से अपने गले लगा लिया।

सबसे पहले भाई मतिदास को हुतात्मा होने का गौरव मिला। उन्हें कोतवाली के सामने दो तख्तों के बीच में बांधकर आरे से चीर दिया गया।

दूसरे साथी, भाई दयालदास के हाथ पैर बांधकर तेल के उबलते कढ़ाव में डाल दिया गया और तीसरे साथी भाई सतिदास को रुई में लपेटकर जला दिया गया। चांदनी चौक में एकत्रित हुई भीड़ ने इस हत्याकांड को अपनी आंखों से देखा और चीत्कार कर उठी। इन तीनों बलिदानों के कटे और जले हुए शरीर जनता को आतंकित करने के लिए खुले आम टांग दिए गए।

और फिर वह घड़ी आ गई जब काजी ने गुरु तेगबहादुर के लिए भी 'फतवा' पढ़ दिया—धर्म बदलो या मृत्यु स्वीकार करो।

जिस समय जल्लालुद्दीन नंगी तलवार लेकर खड़ा हुआ, आकाश में घने बादल छा गए, जैसे सूर्य इस निर्मम दृश्य को देख सकने में असमर्थ हो गया हो। चांदनी चौक में जमा हुई भीड़ चीत्कार करने लगी। गुरु तेगबहादुर ने हाथ उठाकर सबको आशीर्वाद और सांत्वना दी। वे शांत होकर बैठ गए और ध्यानमग्न हो गए। काजी का इशारा हुआ, जल्लाद की तलवार चली और गुरु गोबिंद सिंह के ही शब्दों में :

साधनि हेतु इति जिनि करी,
सीस दिया पर सी न उचरी।

(साधु जनों की रक्षा के लिए उन्होंने अपने प्राण दे दिए, शीश दे दिया, पर उफ

भी न की।)

बलिदान स्थल पर उपस्थित विशाल जन समूह रोता और क्रंदन करता हुआ शाही सिपाहियों की चिंता न करता हुआ अपने गुरु के अंतिम दर्शन करने के लिए आगे बढ़ने लगा। इसी समय एक विचित्र संयोग भी हुआ। आकाश पर छाए बादल और सघन हो गए, चारों तरफ काली आंधी घिर आई और तेज अंधड़ चलने लगा। वातावरण इतना भयानक हो गया कि किसी को कुछ भी सूझ नहीं रहा था। चारों तरफ भयंकर कोलाहल मच गया था।

आनंदपुर से आए तीन सिख—भाई जैता, भाई गुरदित्ता और भाई ऊदा पहले से ही दिल्ली में टिके हुए थे। गुरु तेग़ बहादुर का बलिदान तो होना ही था, वे स्वयं इसके लिए तैयार होकर आए थे। दिल्ली के धनवान श्रद्धालुओं ने एक बार यह भी सोचा था कि उन्हें मुक्त कराने के लिए बादशाह को विशाल धन दे दिया जाए, परंतु गुरुजी ने इस योजना से अपनी पूरी असहमति व्यक्त की। ऐसी स्थिति में भाई जैता तथा उनके अन्य साथियों ने यह निश्चय कर लिया था जैसे भी हो, गुरु तेग़ बहादुर की पवित्र देह को यहां से ले जाएंगे।

योजना यह बनी कि भाई जैता गुरु जी का शीश लेकर तुरंत आनंदपुर की ओर चल पड़ेंगे और भाई लक्खीशाह लुबाणा दिल्ली में किसी भी तरह उनकी देह का अंतिम संस्कार कर देंगे।

प्रकृति ने भी इस योजना में इन वीरों के साथ पूरा सहयोग किया। काली आंधी के अंधड़ में भाई जैता विद्युत-गति से, घबराएं और परेशान शाही सैनिकों के घेरे में से निकल बलिदान स्थल पर पहुंच गए और गुरु के पवित्र शीश को ले उड़े।

गुरु जी की देह ले जाने की योजना भाई लक्खीशाह और उसके आठ पुत्रों ने बना रखी थी। लक्खी शाह शाही ठेकेदार था और लाल किले में रसद आदि पहुंचाने का काम करता था। उसके सामान से लदी हुई गाड़ियों के काफिले प्रायः चांदनी चौक के रास्ते से लाल किले में जाया करते थे।

उस दिन भी यह काफिला कुछ दूर खड़ा इंतजार कर रहा था। जैसे ही गुरुजी के बलिदान का समाचार फैला 'चलो हटो, रास्ता छोड़ो, कहते हुए काफिला आगे बढ़ने लगा। काफिले के आगे-आगे लक्खीशाह का बेटा नगाहिया हांक लगा रहा था—शाही रसद का काफिला जा रहा है—"चलो हटो—चलो हटो।"

आंधी और तूफान के कारण चारों ओर कोलाहल मचा हुआ था। हजारों लोगों की भीड़ रोती, चीत्कार करती, हाहाकार करती इधर-उधर भाग रही थी। शाही सैनिक जनता को नियंत्रित करने की कोशिश में लगे हुए थे। उनकी आंखों में भी आंधी की धूल भर रही थी और उधर भाई लक्खीशाह का काफिला बलिदान स्थल तक पहुंच गया था।

भाई लक्खीशाह की गाड़ियों में रुई लदी हुई थी। उसके पुत्र और भाई ऊदा ने

मिलकर पलक झपकते गुरुजी की देह को उठाकर गाड़ी में रखकर उसे रुई से ढक दिया और आवाज़ें देते हुए आगे बढ़ गए।

भाई जैता गुरुजी का शीश लेकर पड़ाव मारते हुए आनंदपुर पहुंच गए। माता नानकी, माता गूजरी और बेटे युवा गुरु गोबिंद सिंह ने उसे ग्रहण किया। गुलाब जल से धोकर उसका अंतिम संस्कार किया गया।

गुरुजी के शव को लेकर लक्खीशाह का काफिला लाल किले से होता हुआ उनके गांव रायसीना की ओर चल पड़ा। इस बात की आशंका थी कि शाही सिपाही बलिदान स्थल पर गुरुजी की देह को न पाकर उनकी तलाश में इधर-उधर दौड़ेंगे। लक्खीशाह ने अपने घर में ही चिता बनाई और देह का अंतिम संस्कार करने के लिए अपने घर को ही आग लगा दी।

चांदनी चौक में, जिस स्थान पर गुरु तेग़ बहादुर जी को शहीद किया गया था, आज वहां भव्य गुरुद्वारा शीशगंज बना हुआ है। रायसीना के उस स्थान पर जहां लक्खीशाह ने उनकी देह का संस्कार किया था, आज वहां बना गुरुद्वारा रकाबगंज नाम से जाना जाता है।

गुरु गोबिंद सिंह (1666-1708)

गुरु गोबिंद सिंह का संपूर्ण जीवन जितनी विविधता और विशालता से भरा हुआ है उतनी ही विविधता और विशालता उनके जन्मस्थान, कार्यक्षेत्र और देहावसान के स्थान में दिखाई देती है। जन्मस्थान सुदूरपूर्व पटना में, कार्यक्षेत्र उत्तर-पूर्व के पहाड़ी अंचलों में और देहावसान दक्षिण (महाराष्ट्र) में। उनके जीवन-कार्यों की भांति प्रकृति ने मानो उनकी जीवनावधि को भी भारत की एकता एवं अखंडता का प्रतीक बना दिया था।

गुरु गोबिंद सिंह का जन्म 26 दिसंबर, 1666 (पौष सुदी-7 संवत 1723) को पटना में हुआ था। उनके पिता गुरु तेग बहादुर अपनी पत्नी गूजरी तथा कुछ शिष्यों सहित उन दिनों पूर्वी भारत की यात्रा कर रहे थे। अपनी गर्भवती पत्नी और कुछ शिष्यों को पटना में छोड़कर गुरु तेग बहादुर बंगाल और असम की ओर चले गए। ढाका में उन्हें पुत्र-प्राप्ति का शुभ समाचार प्राप्त हुआ था।

अपने पिता के बलिदान के समय गुरु गोबिंद सिंह की आयु केवल नौ वर्ष की थी। इस अल्पायु में ही गुरु पद का उत्तरदायित्व उनके कंधों पर आ गया। उनके संपूर्ण भावी जीवन, काव्य-रचना, पंथ निर्माण आदि कार्यों में इस महत् बलिदान का व्यापक प्रभाव दृष्टिगत होता है। जिस उद्देश्य से गुरु तेग बहादुर ने इस प्रकार के बलिदान को आमंत्रित किया था, वह उद्देश्य भी सफल हुआ। जन साधारण में इसकी तीव्र प्रतिक्रिया हुई। डॉ. गोकुल चंद नारंग के शब्दों में—'समस्त उत्तरी भारत में उन्हें (गुरु तेग बहादुर को) सब जानते थे। राजस्थान के राजपूत राजा उनका अत्यंत आदर करते धे और पंजाब के कृषक सचमुच उनकी पूजा करते थे। इसलिए समस्त हिंदू जाति ने उनकी हत्या को अपने धर्म के नाम पर एक बलिदान समझा। समस्त पंजाब में क्रोध और प्रतिकार की अग्नि भड़क उठी। माझा तथा मालवा के बलवान जाटों को केवल एक नेता की आवश्यकता थी जिसकी पताका के नीचे लड़कर वे इस अपमान का बदला ले सकें। नववयस्क गोबिंद सिंह में उन्हें इस प्रकार का नेता दिखाई दिया।*

* ट्रांसफरमेशन ऑफ सिखिज़्म (पृष्ठ 116)

गुरु-पद की प्राप्ति

गुरु गोबिंद सिंह की आयु के प्रारंभिक छह वर्ष पटना में ही व्यतीत हुए थे। पटना नगर में आज भी उनके उस बाल जीवन की स्मृतियां सुरक्षित हैं। पंजाब आने पर अपने पिता का आश्रय उन्हें केवल दो ढाई वर्ष तक ही प्राप्त हुआ। इस अल्पावधि में गुरु तेग बहादुर ने सभी प्रकार की उनकी शिक्षा-दीक्षा का पूरा प्रबंध कर दिया था। गुरु गोबिंद सिंह ने 'विचित्र नाटक' में इसका उल्लेख किया है।

पिता के बलिदान के पश्चात् गुरु गोबिंद सिंह लगभग आठ वर्ष तक आनंदपुर में रहे। इन आठ वर्षों का उनके भावी जीवन के निर्माण में बड़ा महत्वपूर्ण स्थान है। इन आठ वर्षों में उन्होंने शास्त्र और शस्त्र दोनों प्रकार की शिक्षा से अपने को सुयोग्य बनाया। उस युग में शास्त्र-शिक्षा की अपेक्षा शस्त्र शिक्षा का अधिक महत्व था। गुरु गोबिंद सिंह को जिन परिस्थितियों में कार्य करना था उसमें शस्त्र-शिक्षा की उपयोगिता पूर्णतः स्पष्ट थी। यह आश्चर्यजनक तथ्य है कि उन्होंने दोनों प्रकार की शिक्षा का अपने जीवन में पूर्ण समन्वय स्थापित किया।

शस्त्र और युद्धनीति की शिक्षा में आखेट का भी प्रमुख स्थान है। *विचित्र नाटक* में गुरु गोबिंद सिंह ने इसका उल्लेख किया है :

भांति-भांति बन खेल शिकारा।
मारे रीछ रोझ झंखारा।।

इन आठ वर्षों में अपनी व्यक्तिगत शिक्षा के साथ ही साथ गुरु गोबिंद सिंह ने अपनी शक्तियों को केंद्रित किया। गुरु तेग बहादुर के बलिदान के पश्चात् गुरु गोबिंद सिंह और संपूर्ण सिख-समुदाय बड़ी कठिन अवस्था में आ पड़े थे। डॉ. इंदुभूषण बनर्जी ने इस अवस्था का विश्लेषण करते हुए लिखा है—'गुरु तेग बहादुर ने सिखों को बड़ी विचित्र अवस्था में छोड़ा। निस्संदेह, उन्होंने अपने एकमात्र पुत्र गोबिंद को, दिल्ली प्रस्थान के पूर्व गुरुपद पर आसीन कर दिया था, परंतु नए गुरु, मात्र नौ वर्ष के बालक थे और उन्हें अभूतपूर्व कठिनाइयों में डाल दिया गया था। आंतरिक विभेद और बाह्य संकटों ने समान रूप से सिखों को खतरे में डाल रखा था और ऐसा लग रहा था कि यह शिशु-संप्रदाय उस स्थिति में पहुंच गया है जहां से उसके बचाव का कोई मार्ग नहीं है।'

डॉ. नारंग ने उस अवस्था पर बहुत अच्छे ढंग से प्रकाश डाला है। वे लिखते हैं—'पंजाब का प्रांत सबसे पहले विजय किया जा चुका था और यदि मुगल राज्य किसी स्थान पर दृढ़ता के साथ स्थापित था तो पंजाब में। काबुल और दिल्ली के बीच होने के कारण इस प्रांत पर पूरी तरह नियंत्रण रखा जाता था और अत्यंत दृढ़ता तथा बल के साथ वहां का शासन होता था। वहां पर मुस्लिम प्रजा की संख्या सबसे अधिक थी और बहुधा कृषक होने के कारण पंजाब में ये लोग सबसे अधिक बलवान थे। उनसे यह

आशा रखना कि वे किसी ऐसी चेष्टा के लिए सहमत हों जिसका उद्देश्य मुसलमानी राज्य को उखाड़ फेंकना हो, सर्वथा असंभव था। इन बाधाओं के अतिरिक्त गुरु गोबिंद सिंह को अपने कुटुम्बियों का भी विरोध सहन करना पड़ा था, क्योंकि ये लोग व्यक्तिगत द्वेष के कारण गुरु के शत्रुओं की ओर चले गए थे और गुरु को बाधा, हानि तथा दुख पहुंचाने में कोई कसर उठा न रखते थे।

इस अवस्था में बाल गुरु ने अपनी शक्तियों का केंद्रीयकरण किया। उन्होंने अपनी शिक्षा के साथ-साथ अपने शिष्यों की भी सभी प्रकार की शिक्षा का प्रबंध किया। सुदूर प्रदेशों से आए हुए कवियों को अपने यहां आश्रय दिया। दूर-दूर तक फैले हुए अपने सिख-समुदाय को हुक्मनामे भेजकर उनसे धन और अस्त्र-शस्त्र का संग्रह किया। एक छोटी-सी सेना एकत्र की और उसे युद्ध नीति में कुशल बनाया।

पांवटा की ओर

कुछ समय के पश्चात् गुरु गोबिंद सिंह निकट के ही एक पहाड़ी राज्य सिरमोर में चले गए। यहां उन्होंने यमुना किनारे पांवटा नामक स्थान पर अपना डेरा जमाया। यहां वे लगभग तीन वर्ष रहे।

पांवटा निवास के इन तीन वर्षों का गुरु गोबिंद सिंह के साहित्यिक जीवन में बड़ा महत्वपूर्ण स्थान है। जिन थोड़ी-सी रचनाओं में उन्होंने रचना-काल और स्थान का उल्लेख किया है, उनमें *कृष्णावतार* जैसी बृहत् रचना पांवटा में ही रची गई। *कृष्णावतार* में दो स्थानों पर इसका स्पष्ट उल्लेख है। गोपी विरह खंड में 'गोपी-उद्धव संवाद' अध्याय की समाप्ति पर लिखा है :

सत्रह सै चवताल में सावन सुदि बुधबार।
नगर पांवटा मों सु मैं रचियों ग्रंथ सुधार।। 983।।

फिर संपूर्ण कृष्णावतार, की समाप्ति पर लिखा है :

सत्रह सै पैताल महि सावन सुदि थिति दीप।
नगर पांवटा सुभ करण जमना वहै समीप।। 290।।

दसम कथा भागौत की भाखा करी बनाइ।
अवर वासना नाहि प्रभ धरमजुद्ध को चाइ।। 249।।

भंगाणी का युद्ध

अप्रैल 1689 (वैसाख सम्वत् 1746) में गुरु गोबिंद सिंह को अपने जीवन का प्रथम युद्ध लड़ना पड़ा। गुरु गोबिंद सिंह ने *विचित्र नाटक* और उनके दरबारी कवि

सेनापति ने अपनी रचना *गुरु शोभा* में इस युद्ध का कोई विशेष कारण नहीं दिया है। *विचित्र नाटक;* में माखोवाल (आनंदपुर) से पांवटा आना, वहां रहना और श्रीनगर (गढ़वाल) के राजा फतेहशाह से युद्ध छिड़ने का वर्णन बहुत संक्षेप में दिया हुआ है :

देस चाल हम ते पुनि भई। शहिर पांवटा की सुधि लई।।
कालिन्दी तट करे विलासा। अनिक भांति के पेख तमासा।।
तहिं के सिंह घने चुनि मारे। रीझ रीछ बहु भांति विदारे।।
फतहशाह कोपा तब राजा। लोह परा हमसों बिनु काजा।।

(अध्याय 8)

गुरु शोभा में भी फतेहशाह का अकारण ही गुरु गोबिंद सिंह से युद्ध करने का उल्लेख है :

अनिक भंति लीला तंह करी।।
फतेहशाह सुनि कै मनि धरी।।
बहुत कोप मन माहि बसायो।
फौज बनाई जुद्ध के आयो।। 9।। 50।।

सिख इतिहास के लेखकों ने इस युद्ध के अनेक कारण दिए हैं। गुरु गोबिंद सिंह के पिता गुरु तेग बहादुर ने पंजाब के पहाड़ी प्रदेश के एक राज्य कहिलूर के माखीवाल ग्राम को अपनी गतिविधियों का केंद्र बनाया था। धीरे-धीरे यह स्थान सिखों का प्रमुख केंद्र-स्थान बन गया। गुरु तेग बहादुर के बलिदान के पश्चात् गुरु गोबिंद सिंह ने इसी स्थान को अपनी सामरिक तैयारियों तथा जातीय संगठन का केंद्र बनाया। सिख-शक्ति का मुगल राज्य से प्रकट विरोध गुरु तेग बहादुर के बलिदान से स्पष्ट हो ही चुका था। गुरु गोबिंद सिंह का बढ़ता हुआ संगठन मुगल राज्य से लोहा लेने की तैयारी का द्योतक था। यह बात कहिलूर तथा आसपास के अन्य राजाओं को आशंका में डाल रही थी। वे उनकी शक्ति पर अपना नियंत्रण स्थापित करना चाहते थे।

मेलकम, लतीफ, आरचर, गारडन तथा बनर्जी आदि सभी इतिहासकारों ने यह बात भी स्पष्ट रूप से स्वीकार की है कि गुरु गोबिंद सिंह के, निम्न कही जाने वाली जातियों को ऊपर उठाने के प्रयासों और उन्हें अपने संगठन में, स्वर्ण कहे जाने वाले वर्गों के बराबर स्थान देने के क्रांतिकारी प्रयत्नों से परंपरागत जाति-अभिमानी पहाड़ी प्रदेश के राजपूत नरेश क्रुद्ध हो गए। बनर्जी ने लिखा है–

"वे (गुरु गोबिंद सिंह) एक ऐसे मत का प्रतिनिधित्व करते थे जो उदार विचारों का प्रचारक था और जिसके अधिकांश अनुगामी जाट थे जिन्हें राजपूत छोटी जाति का समझते थे। राजनीतिक सुविधाओं, सामाजिक उच्चता और जाति अभिमान आदि बातों ने मिलकर पहाड़ी राजाओं को गुरु के विरुद्ध संयुक्त मोर्चा बनाने के लिए प्रेरित किया।"

यह वह कारण था जो पहाड़ी राजाओं की मानसिकता में काम कर रहा था। तात्कालिक प्रत्यक्ष कारण कुछ अधिक स्पष्ट रहा होगा।

सिख इतिहास में यह बात सर्वत्र मिलती है कि काहिलूर का राजा भीमचंद (जिसके राज्य में गुरु गोबिंद सिंह अपने शक्ति-केंद्र आनंदपुर को स्थापित कर रहे थे) गुरु गोबिंद सिंह से बहुत द्वेष रखने लगा था। गुरु की बढ़ती हुई सैन्य शक्ति, अछूत समझी जाने वाली जातियों का उत्थान, मुगल शासन के प्रकोप का भय आदि अनेक कारण इसकी पृष्ठभूमि में थे।

उन्हीं दिनों राजा भीमचंद के पुत्र अजमेरचंद का विवाह गढ़वाल के राजा फतेहशाह की लड़की से निश्चित हुआ। गुरु गोबिंद सिंह इस समय सिरमोर राज्य के पांवटा नामक स्थान पर थे। इस विवाह के असर पर आसपास के अनेक पहाड़ी राजा अपनी सेनाओं सहित एकत्र हुए। विवाहोपरांत उन्होंने गुरु गोविंद सिंह पर आक्रमण करने की योजना बनाई। उन्हें राजाओं की इन योजना का आभास हो गया था, इसलिए पांवटा से छह मील की दूरी पर, युद्ध की दृष्टि से एक उपयुक्त स्थान, भंगाणी में उन्होंने प्रतिरोध की तैयारी की थी।

इस युद्ध में गुरु गोविंद सिंह ने स्वयं भाग लिया। उनका वीर सेनापति संगोशाह, जिसे उन्होंने अपनी रचना में शाह संग्राम नाम से संबोधित किया है, नजाबत खान को मारकर स्वयं युद्ध में वीरगति को प्राप्त हुआ। तब उन्होंने स्वयं अपना धनुष-बाण संभाला। उनके बाणों ने युद्ध में अनेक 'खानों' को काले सांपों की तरह डस लिया :

लखे शाह संग्राम जुज्झे जुझारं।।
तवं कीट बाणं कमाण सम्भारं।।
हन्यो एक खानं ख्यालं खतंगं।
डस्यो शत्रु को जान श्यामं भुजंगं।। 24।।

राजा हरिचंद से अपने युद्ध का वर्णन उन्होंने कुछ अधिक विस्तार से किया है। हरिचंद धनुर्विद्या में बड़ा कुशल था। उसकी कुशलता का वर्णन करते हुए उन्होंने लिखा है :

दुयं बान खैचे इकं बार मारे।
बलो बीर बाजी न ताजी विचारे।।
जिसे बान लागे, रहै न संभारं।
तनं बेधि कै ताहि मारं सिधारं।। 27।।

हरिचंद ने गुरु गोविन्द सिंह पर भी बाणों की वर्षा की। एक बाण से उसने उनके घोड़े को घायल किया। दूसरा बाण उनकी ओर चलाया जो उनके कान को स्पर्श करता हुआ निकल गया। तीसरा बाण उसने कमरबंद पर मारा जो उसे छेदता हुआ चर्म को

स्पर्श कर गया। इस बाण के लगने पर उनका क्रोध जागृत हुआ। उन्होंने बाण-वर्षा आरम्भ कर दी। शत्रु-सेना के लोग भागने लगे, स्वयं हरीचंद उसके बाण के प्रहार से युद्धभूमि में मारा गया। अंत में पहाड़ी राजाओं की सेनाएं मैदान छोड़कर भाग खड़ी हुईं। युद्ध जीतकर गुरु गोबिंद सिंह अपने स्थान कहिलूर (आनंदपुर) वापस आ गए। आनंदपुर आकर उन्होंने सामरिक तैयारी की दृष्टि से चार दुर्ग लोहगढ़, आनंदगढ़ केशगढ़ और फतेहगढ़ बनवाए।

नादौन का युद्ध

नादौन के युद्ध का गुरु गोविन्द सिंह से सीधा संबंध नहीं था। यह युद्ध कहिलूर के राजा भीमचंद, उसके सहयोगी राजाओं और जम्मू के सूबेदार मियां खान के सेनानायक अलिफ खान के बीच हुआ था। अलिफ खान की सहायता कांगड़ा के राजा कृपाल और बिझड़याल के राजा दयाल ने की थी।

नादौन युद्ध का कारण

डॉ. नारंग ने इस युद्ध का विश्लेषण करते हुए लिखा है–"(भंगाणी के युद्ध के पश्चात्) राजाओं ने गुरु के बढ़ते हुए बल को देख लिया और इस बात को पहचान लिया कि गुरु किस प्रकृति के बने हुए हैं। तब वे लोग गुरु के महान् कार्य का गम्भीरता के साथ चिंतन करने लगे। इन लोगों ने गुरु के साथ एक संधि कर ली, जिसके अनुसार उन्होंने गुरु के आक्रमणों तथा उनके शत्रु-निवारक युद्धों में गुरु का साथ देने की प्रतिज्ञा की। अभी तक इन लोगों के लिए मुग़ल सरकार के ऊपर स्वयं आक्रमण करने का समय न आया था। किन्तु अब इन्होंने इस स्थिति को ग्रहण करने में क्षण-भर भी संकोच न किया। गुरु के सहारे पर राजाओं ने मुग़ल शासन का प्रतिरोध प्रारम्भ कर दिया और सम्राट की सेवा में अपना वार्षिक कर भेजने से इनकार कर दिया। औरंगजेब उस समय दक्षिण में था और गोलकुंडा की छोटी-सी किन्तु स्वर्णिम रियासत को अपने अधीन करने में लगा हुआ था। इस कारण कई वर्ष तक राजाओं के साथ किसी ने झगड़ा नहीं किया। किन्तु कुछ समय बाद उसने मियां खां, अलिफ खां और जुलफिकार खां के अधीन एक बहुत बड़ी सेना विद्रोही राजाओं से पिछले वर्षों का कर उगाहने के लिए भेजी। नादौन के निकट एक घोर संग्राम हुआ, जिसमें राजाओं ने खालसा की सहायता से सम्राट् की सेनाओं को पूर्णतया परास्त कर दिया।"

अन्य ऐतिहासिक सूत्रों से भी यही पता लगता है कि पहाड़ी राजाओं के विद्रोह का दमन करने के लिए मुग़ल सेना आई और राजाओं की प्रार्थना पर गुरु गोबिन्द सिंह ने ससैन्य उसमें भाग लिया था। डॉ. बैनर्जी ने मैकालिफ का हवाला देते हुए लिखा है कि यह अधिक संभव लगता है कि (औरंगजेब के राजधानी से अनुपस्थित होने के

कारण) मुग़ल राज्य के प्रशासन में उत्पन्न हुई शिथिलता ने पहाड़ी राजाओं को कर देना बन्द कर देने के लिए प्रोत्साहित किया, यद्यपि इसमें कोई सन्देह नहीं कि बाद की घटनाओं में गुरु ने महत्वपूर्ण भाग लिया। दिलावर खान का पहला और दूसरा अभियान सीधा गुरु के ही खिलाफ था।

गुरु गोबिन्द सिंह ने अपने *विचित्र नाटक* और सेनापति ने अपनी *गुरु शोभा* में भी राजा भीमचंद के निमंत्रण पर युद्ध में सम्मिलित होने की बात लिखी है।

इस युद्ध में पहाड़ी राजाओं और गुरु की सम्मिलित शक्ति के सम्मुख मुग़ल-सेना को पराजित होना पड़ा। गुरु गोबिन्द सिंह ने *विचित्र नाटक* में लगभग 22 छन्दों में इस युद्ध का वर्णन किया है।

सम्मिलित शक्ति से इस युद्ध में विजय प्राप्त कर लेने पर भी राजाओं ने इस बात को अनुभव कर लिया कि वे अधिक समय तक मुगल-शक्ति का मुकाबला नहीं कर सकेंगे। इसलिए वे मुग़लों से संधि की तैयारियां करने लगे। *विचित्र नाटक* में गुरु गोविन्द सिंह ने इसका उल्लेख किया है, परन्तु मुगल-शक्ति के विरुद्ध इस युद्ध में सक्रिय सहयोग देने के कारण गुरुजी स्वयं मुगल-राज्य के विद्रोही घोषित हो चुके थे। उन की बढ़ती हुई शक्ति से औरंगजेब बहुत सशंक हो चुका था। वे अपने शिष्यों के सम्मेलन न कर सकें, इस भाव के आदेश वह पहले ही भेज चुका था। अब लाहौर के सूबेदार दिलावर खान ने अपने पुत्र रुस्तम खान को सेना सहित उन पर आक्रमण करने के लिए भेजा। रात्रि को खानजादे की सेना नदी के उस पार आ गई। गुरुजी को उनके एक नगर-रक्षक ने आकर यह समाचार दिया। युद्ध के नगाड़े बजा दिए और सम्पूर्ण आनन्दपुर नगर शीघ्र ही युद्ध के लिए तत्पर हो गया। इसी समय नदी में भयंकर बाढ़ आ गई और खानजादे की सेना नदी के उस पार आ गई। गुरुजी को उनके एक नगर-रक्षक ने आकर यह समाचार दिया। युद्ध के नगाड़े बजा दिए और सम्पूर्ण आनन्दपुर नगर शीघ्र ही युद्ध के लिए तत्पर हो गया। इसी समय नदी में भयंकर बाढ़ आ गई और खानजादे की सेना बुरी तरह उसकी लपेट में आ गई। परिणाम यह हुआ कि मुगल-सेना बिना युद्ध किए ही भाग खड़ी हुई।

हुसैनी युद्ध

रुस्तम खान ने जाकर यह समाचार अपने पिता दिलावर खान को दिया तो वह बहुत क्रोधित हुआ। उसने अपने एक गुलाम सेनापति हुसैन खान को गुरुजी पर आक्रमण करने के लिए भेजा। गुरु गोविन्द सिंह ने इस युद्ध का वर्णन *विचित्र नाटक* में 'हुसैनी युद्ध' नाम से किया है। यह सेना पहाड़ी राजाओं से कर वसूल करने के लिए और गुरु जी की बढ़ती हुई शक्ति का दमन करने के लिए भेजी गई थी। हुसैन खान की सेना ने इन राज्यों की सीमा में घुसते ही लूटमार शुरू कर दी। डडवाल का राजा

मधुकरशाह पराजित हुआ। कहिलूर का राजा भीमचंद और कटोच का राजा कृपालचंद नजराना लेकर हुसैन खान से जा मिले, परन्तु गुलेर के राजा गोपाल ने इस युद्ध में गुरुजी की सहायता चाही। गुरुजी ने संगतिया सिंह के साथ कुछ सेना उसकी सहायता के लिए भेज दी। युद्ध में हुसैन खान पूरी तरह पराजित हुआ और युद्ध में मारा गया। गुरु गोबिन्द सिंह का भेजा हुआ सेनापति संगतिया सिंह अपने कुछ साथियों सहित वीरगति को प्राप्त हुआ। इस प्रकार मुगल-सेना से गुरु का सीधा संघर्ष इस युद्ध में भी नहीं हुआ।

मुअज़्ज़म का आगमन

पहाड़ी राजाओं के विद्रोह और गुरुजी की बढ़ती हुई शक्ति से पंजाब का संपूर्ण मुगल-शासन चौकन्ना हो चुका था। दक्षिण के युद्धों में व्यस्त औरंगजेब को ये समाचार नियमित मिल रहे थे। पंजाब में स्थिति संभलती न देख उसने अपने ज्येष्ठ पुत्र मुअज्जम, जो आगे चलकर बहादुरशाह के नाम से औरंगजेब का उत्तराधिकारी बना, को भेजा। मुअज्जम ने अपना डेरा तो लाहौर में लगाया और अपने एक सेनापति मिर्जाबेग को सेना सहित उपद्रव-ग्रस्त क्षेत्र की ओर भेज दिया। इस विशाल मुगल सेना के आगमन से चारों ओर भय छा गया। गुरु गोबिन्द सिंह के आश्रय में आए लोग भी भय-भीत होकर पहाड़ों में छिपने लगे। मुगल सेना ने विद्रोही पहाड़ी राजाओं को बुरी तरह कुचल दिया। गांव-के-गांव नष्ट कर दिए गये परन्तु इस भयंकर विनाश के बाद भी गुरु जी का केंद्र आनन्दपुर पूरी तरह सुरक्षित रहा।

पंथ निर्माण

गुरु गोबिन्द सिंह के जीवन की पंजाब में शाहजादे के आगमन तक की घटनाओं का मुख्य कथा-स्रोत हमें उन्हीं की रचना *विचित्र नाटक* से प्राप्त होता चलता है, परन्तु आगे की घटनाओं के लिए अन्तः साक्ष्य का यह प्रमुख सूत्र हमारे हाथ से छूट जाता है। *विचित्र नाटक* की कथा यहीं समाप्त हो जाती है। इस रचना के अन्त में कवि केवल कुछ रचनाओं को लिखने की ओर संकेत मात्र करता है। अन्य घटनाओं के लिए हमें अन्य ऐतिहासिक सूत्रों एवं उनके दरबारी कवि सेनापति-रचित *गुरु शोभा* का सहारा लेना पड़ता है।

गुरु गोबिन्द सिंह के जीवन का सबसे महत्वपूर्ण कार्य उनके 'खालसा निर्माण' का है। 30 मार्च सन् 1699 ई. को वैसाखी के दिन उन्होंने आनन्दपुर में अपने शिष्यों का एक विशाल सम्मेलन किया। सिख गुरुओं का शिष्य-वर्ग सम्पूर्ण भारत में ही नहीं अफगानिस्तान और ईरान तक फैला हुआ था। इस सम्मेलन में दूर-दूर से आए हुए लोगों का एकत्रीकरण हुआ।

वैशाखी ने उस ऐतिहासिक अवसर पर सहस्रों शिष्यों के समुदाय के सम्मुख हाथ

में नंगी तलवार लेकर गुरुजी ने प्रश्न किया—"है कोई ऐसा जो धर्म के लिए अपने प्राण दे सके?" यह वाक्य सुनते ही सभा में सन्नाटा छा गया। उन्होंने अपनी बात दुबारा कही, सन्नाटा और गहरा हो गया; और जब बड़ी तीखी आवाज़ में उन्होंने तीसरी बार अपनी बात को कहा तो लाहौर के एक खत्री दयाराम ने अपने स्थान पर खड़े होकर कहा—"मैं हाजिर हूं।' गुरु जी उसे साथ के खेमे में ले गये। खून से टपकती हुई तलवार को लेकर वे बाहर आये और अधिक गंभीरता से बोले—"कोई और शिष्य है जो बलिदान के लिए अपने-आपको प्रस्तुत कर सके।" इस बार दिल्ली के पास हस्तिनापुर के एक जाट धर्मदास ने अपने आपको प्रस्तुत किया। गुरु जी उसे भी साथ के खेमे में ले गये। इसके बाद, एक के बाद एक, तीन अन्य शिष्यों ने अपने-आपको बलिदान के लिए प्रस्तुत किया—एक था द्वारिका का एक धोबी मोहकम चन्द, दूसरा था जगन्नाथपुरी का एक रसोइया हिम्मत राय और तीसरा था बीदर का एक जी नाई साहबचन्द। उन्होंने वास्तव में अपने शिष्यों की परीक्षा ली थी। उन्होंने इन पांचों आत्मोत्सर्गियों को सुंदर वस्त्रों से विभूषित किया और इन्हें 'पंज प्यारे' कहकर संबोधित किया।

इन 'पंज प्यारों' में केवल एक खत्री था और चार ऐसे थे जिन्हें शूद्र ही समझा जाता था। अंतिम तीन की गणना तो नीची जातियों में ही की जाती थी, परन्तु गुरुजी ने सर्वप्रथम इन्हें दीक्षित किया और सबसे अधिक आश्चर्य की बात तो यह कि अपने-आपको उनसे दीक्षित कराया। वे उनके सामने करबद्ध खड़े हुए और उनसे प्रार्थना की कि वे उन्हें इस नये पंथ में उसी प्रकार दीक्षित करें जैसे उन्होंने उन पांच को किया है। उन्होंने 'खालसा' को 'गुरु' का स्थान दिया और 'गुरु' को 'खालसा' का।

इस प्रकार गुरु गोबिन्द सिंह ने अपने पूर्व की नौ पीढ़ियों के सिख-समुदाय को 'खालसा' में परिवर्तित किया; उन्हीं के शब्दों में—'जो सत्य की ज्योति को सदैव प्रज्वलित रखता है, एक ईश्वर के अतिरिक्त और किसी को नहीं मानता, उसी में पूर्ण प्रेम और विश्वास है और भूलकर भी मृत व्यक्तियों की समाधियों-दरगाहों पर नहीं जाता। ईश्वर के निश्छल प्रेम में ही उनका तीर्थ, दान, दया, तप और संयम समाहित है, इस प्रकार जिसके हृदय में पूर्ण ज्योति का प्रकाश है वह पवित्र व्यक्ति ही 'खालसा' है।

जागत जोत जपै निस बासर एक बिना मन नैक न आनै।
पूरन प्रेम प्रतीत सजै व्रत गोर मड़ी मट भूल न मानै।।
तीरथ दान दया तप संजम एक बिना नह एक पछानै।।
पूरन जोत जगै घट में तब खालस ताहि नखालस जानै।। 1।।

(दशम ग्रन्थ, पृष्ठ 712)

पंद्रह दिन के अंदर ही आनन्दपुर में लगभग अस्सी हजार लोग एकत्र हुए जिन्हें उन्होंने इस नये मार्ग पर दीक्षित किया। उन्होंने ऊंच-नीच, जाति-पांति का भेद नष्ट किया और सबके लिए समानता की घोषणा की। उन्होंने सबको आज्ञा दी कि वे अपने

नाम के साथ 'सिंह' शब्द का प्रयोग करें। इस प्रकार गुरुजी ने अपने विनीत शिष्यों को शेर बना दिया और क्षण भर में उनकी पदवी भारत-वर्ष की सर्वोत्कृष्ट तथा सबसे अधिक वीर जाति के समान ऊंची कर दी क्योंकि उस समय तक केवल राजपूत ही अपने नामों के साथ 'सिंह' का प्रयोग करते थे।

सुप्रसिद्ध इतिहासकार कनिंघम ने लिखा है कि गुरु गोविन्द सिंह बड़े तत्ववेत्ता थे और वे इस बात को खूब समझते थे कि लोगों की कल्पना-शक्ति से किस प्रकार लाभ उठाया जा सकता है। वे कतिपय बाह्य क्रियाओं तथा चिह्नों की जादूभरी शक्ति को अच्छी तरह पहचानते थे और जानते थे कि प्रायः मनुष्यों के हृदयों पर उनके बाहरी स्वरूप के बदल जाने का कितना अधिक प्रभाव पड़ता है। प्रतिज्ञाओं तथा प्रणों, तपों तथा यम-नियमों और शक्ति के उपासकों के तिलक का, वैष्णवों की तुलसी की माला आदि साम्प्रदायिक चिह्नों से लोगों के ऊपर प्रभाव पड़ने का यही भेद है। यही हिन्दुओं के उपनयन और ईसाइयों के बपतिस्मा का भेद है। यही गुरु गोविन्द सिंह के चलाए हुए दीक्षा-संस्कार 'पहुल' का वास्तविक तात्पर्य था।

गुरु गोविन्द सिंह ने सिखों में यह विश्वास उत्पन्न किया कि वे लोग एक ईश्वरीय कार्य के सम्पन्न करने के लिए उत्पन्न हुए हैं। उन्होंने एक नया जयघोष दिया :

वाहिगुरु का खालसा,
वाहिगुरु की फतेह।

(खालसा ईश्वर का है और ईश्वर की विजय सुनिश्चित है।) किसी व्यक्ति में इस बात का दृढ़ विश्वास होना कि वह परमात्मा का विशेष उपकरण है तथा इस विश्वास से उत्पन्न हुई श्रद्धा, ये दोनों विजय प्राप्ति की सबसे पक्की गारंटी हैं और गुरु जी ने अपने अनुयायियों को यह गारंटी प्रदान की।

अपने इस अभियान में गुरु गोबिन्द सिंह को सामान्य जनता का पूरा सहयोग मिला परन्तु ऊंची कही जाने वाली जातियों का उन्हें विरोध भी सहन करना पड़ा। छुआछूत से रहित, ऊंच-नीच के भेदभाव से परे उनके सामाजिक संगठन को कथित ऊंची जातियों के लोग सहन नहीं कर सके। पहाड़ी राज्यों के राजपूत राजाओं का गुरुजी से विरोध बहुत-कुछ इस भाव से प्रेरित था, इस बात का संकेत इसके पूर्व भी किया जा चुका है।

'पहुल' संस्कार में सभी व्यक्ति उस जल को चखते हैं जिसे एक विशेष प्रक्रिया के पश्चात् 'अमृत' नाम से पुकारा जाता है। इस प्रणाली का ब्राह्मणों और खत्रियों ने विरोध किया था, इस बात का संकेत गुरु गोबिन्द सिंह के दरबारी कवि 'सेनापति' ने भी दिया है। गुरु गोबिन्द सिंह ने स्वयं अपनी रचनाओं में इस विरोध का उल्लेख किया है। किन्हीं मिश्रजी को संबोधित करते हुए कुछ पद *दशम ग्रन्थ* में संग्रहीत हैं। इन पदों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि मिश्रजी ने गुरु गोबिन्द सिंह से निम्न जातियों को अपने

संगठन में इतना उच्च स्थान देने का विरोध किया, साथ ही उनके कृत्य पर अपना रोष भी प्रकट किया। अपने उन्हीं तथाकथित नीच जातियों में से बने हुए अनुयायियों की प्रशंसा करते हुए गुरु गोबिन्द सिंह कहते हैं–

जुद्ध जिते इनही कि प्रसादि इनही के प्रसादि सु दान करे।
अघ अउघ टरै इनकी के प्रसादि इनहीं की कृपा पुन धाम भरे।।
इनहीं के प्रसादि सु बिदिया लई इनहीं की कृपा सभ सत्रु मरे।
इनहीं की कृपा ते सजे हम हैं नहिं मो सो गरीब करोर परे।। 2।।

संसार के शायद ही किसी महापुरुष ने अपने अनुयायियों की महत्ता प्रदर्शित करते हुए इतनी विनम्रता का परिचय दिया हो।

दूसरे छन्द में वे कहते हैं–

सेव करी इनही की भावत अउर की सेव सुहात न जी को।
दान दयो इनही को भलो अरु आन को दान न लागत नीको।।
आगै फले इनही को दयो जग में जसु अउर दयो सभ फीको।
मो गृह मो तन ते मन ते सिर लउ धन है सब ही इनही को।। 3।।

डॉ. बनर्जी के अनुसार उस युग के एक संवाददाता ने लिखा है कि जाति और वंश को भूल जाने का जो उपदेश गुरु ने दिया उसके परिणामस्वरूप ब्राह्मण और खत्री उस सभा को छोड़कर चले गये। इतना होने पर भी लगभग बीस हजार लोगों ने उसी समय अपने को 'खालसा' पंथ में दीक्षित होनें के लिए प्रस्तुत किया।

कनिंघम ने लिखा है सिखों के अन्तिम गुरु ने पराजित लोगों की सुप्त शक्तियों को जगाया और उन्हें उन्नत करके सामाजिक स्वंतत्रता और राष्ट्रीय प्रभुता से भर दिया जो गुरु नानक द्वारा बताए पवित्र भक्ति-भाव से जुड़ा हुआ था।

एक शान्तिपूर्ण धार्मिक संप्रदाय से एक सुसंगठित योद्धा-शक्ति में सिखों के परिवर्तित होने पर दृष्टिपात करते हुए डॉ. नारंग ने लिखा है–"यद्यपि इस बात की सत्यता में कोई संदेह नहीं हो सकता कि सिखों की राजनीतिक आकांक्षाओं ने दसवें गुरु के नेतृत्व में ही अधिक स्पष्ट रूप धारण किया तथापि यदि सिखों के इतिहास को ध्यानपूर्वक पढ़ा जाए तो उससे इस बात का स्पष्ट पता लगता है कि सिखों के धार्मिक संप्रदाय से राजनीतिक संप्रदाय में परिवर्तित होना गुरु गोबिन्द सिंह के समय से बहुत पहले ही प्रारम्भ हो चुका था। वास्तव में स्वयं गुरु गोबिन्द सिंह तथा उनका कार्य, दोनों उस विस्तारक्रम का स्वाभाविक फल था जो सिख-मत की स्थापना के समय से ही बराबर चला आता था। वह फसल जो कि गुरु गोबिन्द सिंह के समय में पककर तैयार हुई गुरु नानक की बोई हुई थी तथा गुरु नानक के उत्तराधिकारियों ने उसे सींचा था। निस्सन्देह वह तलवार जिसने खालसा के मार्ग को साफ कर उन्हें विजय का भागी बनाया गुरु

गोबिन्द सिंह की गढ़ी हुई थी, किन्तु उस तलवार के लिए इस्पात गुरु नानक का दिया हुआ था और गुरु नानक ने, मानो हिन्दुओं के कच्चे लोहे को पिघलाकर तथा उस धातु से जन-समूह की उदासीनता, अंधविश्वासों तथा पुरोहितों के कपट-दम्भ-रूपी मल को जलाकर उस इस्पात को तैयार किया था।

'खालसा' निर्माण की प्रतिक्रिया

'खालसा' निर्माण की चारों ओर तीव्र प्रतिक्रिया हुई। 'पहुल' संस्कार में दीक्षित होने के पश्चात् आनन्दपुर में एकत्र हुआ सिख अपने-अपने घरों को लौटकर नवपंथ का प्रचार करने लगे। सरहिंद और लाहौर के मुगल सूबेदार और पहाड़ी प्रदेशों के राजा इससे वहुत चौकन्ने हुए। इसमें सबसे अधिक चिंता कहिलूर के राजा को हुई, जिसके क्षेत्र में आनन्दपुर पड़ता था।

कहिलूर के राजा ने हंडूर के राजा की सम्मति से एक पत्र गुरु गोविन्द सिंह को भेजा, जिसमें लिखा था कि या तो वे आनन्दपुर की वह भूमि छोड़कर कहीं और चले जाएं अथवा उसका किराया दें। गुरु गोविन्द सिंह ने उत्तर दिया कि यह भूमि मेरे पिता ने पूरा मूल्य देकर खरीदी है। इसके पूर्व इसका कोई किराया नहीं दिया गया और न भविष्य में दिया जायेगा। इस विवाद को लेकर संघर्ष प्रारम्भ हो गया।

पहाड़ी राजाओं ने पैंदे खान और दीनाबेग नामक दो पंचहजारी मुगल सरदारों की सहायता से गुरुजी पर आक्रमण किया। डॉ. नारंग के कथनानुसार पहाड़ी राजाओं और मुग़ल सरदारों की सम्मिलित शक्ति लगभग 20 हजार योद्धाओं की थी। गुरु गोविन्द सिंह के पास उस समय केवल आठ हजार योद्धा थे। शत्रु सैनिकों ने आनन्दपुर के चारों ओर घेरा डाल लिया और भयानक संघर्ष प्रारंभ हो गया। पहाड़ी राजाओं की ओर से राजा भीमचन्द, राजा अजमेरचन्द, राजा जसबालिया, राजा केसरीचन्द, राजा घमंडीसिंह आदि अपनी सेना का संचालन कर रहे थे। गुरुजी की ओर से शेरसिंह और नाहरसिंह लौहगढ़ की रक्षा कर रहे थे। उदयसिंह फतेहगढ़ की रक्षा कर रहे था। स्वयं गुरु गोविन्दसिंह तथा उनके ज्येष्ठ पुत्र अजीत सिंह खालसा सेना का संचालन कर रहे थे।

पहले दिन के युद्ध में कुंवर अजीतसिंह के बाण से राजा केसरीचंद घायल हो गया और जगतुल्लह नामक मुग़ल सरदार उदयसिंह के हाथों मारा गया। दूसरे दिन शत्रु-सेना ने आनन्दपुर का मुख्य द्वार तोड़ने के लिए एक हाथी को शराब पिलाकर मस्त किया और उसके मस्तक पर बर्छी-भाले आदि लगाकर उसे आगे भेजा। गुरु गोबिंद सिंह ने अपने एक सैनिक बचित्तर सिंह को हाथी का सामना करने के लिए आगे भेजा। बचित्तर सिंह के बर्छे के एक तीक्ष्ण प्रहार से हाथी चिंघाड़ता हुआ वापस मुड़ गया और उसने अपनी सेना के ही बहुत-से सैनिकों को रौंद डाला।

इस युद्ध में गुरु गोबिन्द सिंह के हाथों मुगल सेनापति पैंदे खान मारा गया तथा

दीनाबेग बुरी तरह घायल होकर युद्धभूमि से भाग गया। उदयसिंह ने राजा केसरीचन्द का सिर काट लिया। अन्त में शत्रु-सेना साहस छोड़कर युद्ध-भूमि से भाग खड़ी हुई। विजयी खालसा सेना ने शत्रुओं का रोपड़ तक पीछा किया।

यह युद्ध सन् 1700 ई. में हुआ था। अपनी पराजय से हताश होकर पहाड़ी राजाओं ने औरंगजेब को एक आवेदन पत्र भेजा। इस आवेदन पत्र से मुगल-सेना के कान खड़े हो गए। औरंगजेब उस समय दक्षिण के युद्धों में व्यस्त था। संभवतः उसने वहीं से सरहिंद और लाहौर के सूबेदारों को गुरु जी पर आक्रमण करने की आज्ञा दी। दोनों सूबेदारों की सेनाएं सरहिंद में एकत्र हुईं और उन्होंने गुरु गोबिंद सिंह के विरुद्ध कूच किया। गुरु जी को इस परिस्थिति का भान हो चुका था। उन्होंने प्रतिरोध की पूरी तैयारी की।

युद्धारंभ

लाहौर और सरहिंद की सम्मिलित सेनाओं ने एक ओर से उन पर आक्रमण किया और पहाड़ी राजाओं की सेना ने दूसरे ओर से। गुरु गोबिन्द सिंह इस समय निरमोह नामक स्थान पर थे। गुरुजी ने अपनी सीमित शक्ति से उन सेनाओं का प्रबल प्रतिरोध किया। युद्ध एक पूरा दिन और रात चलता रहा। अन्त में शत्रु-सेना को बाध्य होकर पीछे हटना पड़ा। गुरुजी ने भी अपनी सेना सहित निरमोह को छोड़कर आनन्दपुर की ओर प्रस्थान किया। अभी उन्होंने नदी पार ही की थी कि शत्रु-सेना ने उन पर फिर आक्रमण कर दिया। नदी-तट पर फिर भयानक संघर्ष हुआ। इस युद्ध में भी उनकी पूर्ण विजय हुई।

इस युद्ध की समाप्ति पर बिसाली के राजा ने उन्हें अपने राज्य में आमन्त्रित किया। उसका निमंत्रण स्वीकार कर गुरुजी ने बिसाली में कुछ समय तक निवास किया। यहां उनकी शक्ति कम समझकर कहिलूर के राजा ने उन पर पुनः आक्रमण कर दिया, परन्तु इस युद्ध में भी गुरुजी ने उसे पूरी तरह पराजित करके भगा दिया।

कहिलूर का राजा अपनी लगातार हार से बहुत निराश हो चुका था। अपना अभिमान छोड़कर वह बिसाली में गुरुजी से आकर मिला और उनसे संधि कर ली। वहां से वे आनन्दपुर वापस आ गये और उन्होंने आनन्दगढ़ नाम से एक नया दुर्ग बनवाया।

अपने आसपास के क्षेत्रों पर सिखों का प्रभाव बहुत बढ़ गया था। गुरु गोबिन्द सिंह की सैन्यशक्ति प्रतिदिन बढ़ती जा रही थी। दक्षिण के युद्धों में व्यस्त औरंगजेब सरहिंद और लाहौर के सूबेदारों को बार-बार आदेश दे रहा था कि वे अपनी सैनिक शक्ति सहित पहाड़ी राजाओं की सहायता करें और गुरुजी पर नियंत्रण स्थापित करें, किन्तु बार-बार मुग़लों और पहाड़ी राजाओं की सेनाएं आनन्दपुर से पराजित होकर लौट रही थीं। पहाड़ी राजा कभी तो गुरु से आकर संधि कर लेते थे और कभी अवसर मिलते ही उन पर आक्रमण कर देते थे।

सैयद बेग और आलिफ खां नामक दो मुगल सरदार लाहौर से दिल्ली की ओर जा रहे थे, तभी पहाड़ी राजाओं ने उन्हें दो हजार रुपए प्रतिदिन देना स्वीकार करके गुरु गोबिन्द सिंह पर आक्रमण करने के लिए भेजा। दोनों मुगल सरदारों के पास 10 हजार की सशस्त्र और सुशिक्षित सेना थी। गुरुजी उस समय अपनी थोड़ी-सी सेना सहित चमकौर के निकट थे। यहीं उनका मुगल सेना से सामना हो गया। युद्ध का समाचार मिलते ही आनन्दपुर से सिखों की एक सेना भी उनकी सहायतार्थ के लिए वहां पहुंच गई।

मुगल सेनापति सैयद बेग गुरु गोबिन्द सिंह के विषय में पहले बहुत कुछ सुन चुका था। प्रत्यक्ष युद्ध में उनका सम्मोहक व्यक्तित्व एवं उनकी अद्‌भुत वीरता देखकर वह बहुत प्रभावित हुआ और वह अपने सैनिकों सहित उनके पक्ष में आ मिला। इस नाटकीय घटना से आलिफ खां का साहस टूट गया और वह अपने सैनिकों सहित मैदान छोड़कर भाग खड़ा हुआ। कुछ समय पश्चात् पहाड़ी राजाओं ने फिर एक सम्मिलित सेना सहित गुरु गोबिन्द सिंह पर आक्रमण किया, परन्तु इस बार भी वे बुरी तरह पराजित हुए।

अंत में पराजित राजाओं ने फिर मुग़ल सम्राट की शरण में जाने का निश्चय किया। औरंगजेब पंजाब के अपने सूबेदारों तथा पहाड़ी राजाओं की बार-बार की पराजय से बहुत चिंतित हो उठा था। पंजाब मुगल साम्राज्य का सबसे सुदृढ़ केंद्रीय प्रदेश था। एक नवजात आन्दोलन के हाथों शाही सेना की बार-बार पराजय से मुगल साम्राज्य की सीमाओं की वृद्धि का इच्छुक औरंगजेब अपनी राजधानी के इतने निकट साम्राज्य की जड़ों को इस प्रकार हिलता देखकर बुरी तरह घबरा गया और उसने एक विशाल सेना उन पर आक्रमण करने के लिए भेजी। इस सेना में सरहिंद, लाहौर और जम्मू के सूबेदारों की सेनाएं भी सम्मिलित हुईं। बूटी शाह के मतानुसार 22 पहाड़ी राजाओं ने अपनी सेनाओं से इस विशाल सेना की सहायता की।

आनन्दपुर का घेरा

गुरु गोबिन्द सिंह ने यथाशक्ति इस संकट का सामना करने की तैयारी की थी। उन्होंने स्थान-स्थान पर मोर्चे स्थापित किए। भयंकर युद्ध प्रारम्भ हुआ। खालसा सेना ने मुगल और पहाड़ी राजाओं को मारकर पीछे हटा दिया। शत्रु-सेना के अनेक सैनिक खालसा सेना द्वारा बंदी बनाए जाने पर पुनः युद्ध में न जाने का वादा करके अपनी जान बचाने लगे। मुगल सेनापतियों और पहाड़ी राजाओं ने आनन्दपुर से दूर हटकर स्थिति का विश्लेषण किया और अपनी विशाल सेना सहित आनन्दपुर के चारों ओर कड़ा घेरा डाल दिया।

यह घेरा इतनी दृढ़ता से डाला गया कि आनन्दपुर से किसी का भी आना-जाना

पूर्णतया बन्द हो गया। धीरे-धीरे रसद की समस्या पैदा होने लगी। अनाज इतना महंगा हो गया कि एक रुपये सेर बिकने लगा। आनन्दपुर में पानी की भी विकट समस्या उत्पन्न हो गई। ऐसी स्थिति में चार-चार सिख बाहर निकलते। एक ओर की घेरा डाले हुए शत्रु-सेना की टुकड़ी से दो सिख लड़ते हुए शहीद हो जाते और दो किसी प्रकार कुछ खान पान की सामग्री जल अंदर ले आते। प्रतिदिन अनाज की समस्या जटिल होती गई। बहुधा सिखों की कोई प्रबल टुकड़ी रात के अंधेरे में शत्रु-सेना के अनाज-भंडार पर छापा मारती और जो कुछ भी हाथ लगता उठा लाती। कुछ दिन इस तरह चलता रहा परन्तु यह स्थिति देखकर शत्रु-सेना में अपना अनाज-भंडार एक स्थान पर एकत्रित किया और बड़ी दृढ़ता से उसकी रक्षा की व्यवस्था की।

जैसे-जैसे भोजन की अवस्था बिगड़ती गई सिख-सेना की व्याकुलता भी बढ़ती गई। उनमें से कुछ गुरु जी से दुर्ग छोड़ देने का आग्रह करने लगे। गुरु गोविन्द सिंह ने उन्हें धैर्यपूर्वक स्थिति का सामना करने के लिए कहा परन्तु भूख की पीड़ा से अनेक सैनिकों का धैर्य टूटने लगा। प्रतिदिन आनन्दपुर छोड़ देने का आग्रह बढ़ता गया। उधर मुगल सेनापति और पहाड़ी राजा गुरुजी के पास कुरान और गीता की सौगन्ध के साथ यह संदेश भेजने लगे कि यदि वे दुर्ग छोड़ दें तो उन्हें यहां से सुरक्षित निकल जाने दिया जायेगा। गुरुजी को उनकी सौगन्धों पर विश्वास नहीं था, परन्तु भूख से पीड़ित सिखों का आग्रह बढ़ता जा रहा था।

कहते हैं कि एक दिन गुरुजी ने कह दिया, जो दुर्ग छोड़कर जाना चाहते हैं वे यह लिखकर दे दें कि वे उनसे गुरु और शिष्य का संबंध तोड़ते हैं। 40 सिखों ने यह 'बेदावा' लिख दिया और रात्रि के अंधेरे में वे दुर्ग छोड़कर चले गये।

आनन्दपुर का घेरा पड़े लगभग आठ महीने हो गये थे। अन्त में दुर्ग छोड़ देने का निश्चय हुआ। गुरु गोविन्द सिंह अपनी माता, पत्नियों और चारों पुत्रों, अजीत सिंह जुझार सिंह, जोरावर सिंह और फतह सिंह तथा बचे-खुचे सिखों सहित रात्रि को किला छोड़कर बाहर निकल गये।

किला छोड़ते समय कुछ मूल्यवान सामग्री साथ ले ली गई। एकत्रित धन सिखों में बांट दिया गया और उन्हें अस्त्र-शस्त्रों से पूरी तरह सुसज्जित कर दिया गया था। गुरु गोविन्द सिंह ने स्वयं अपनी तथा अपने दरबारी कवियों की रचित रचनाओं को संभालने का पूर्ण प्रयास किया। श्रद्धालु सिखों द्वारा उनकी अधिकांश रचनाएं तो किसी प्रकार बचा ली गईं, जिनका आगे चलकर भाई मनी सिंह ने संपादन किया, परन्तु अन्य कवियों की अधिकांश रचनाएं नष्ट हो गईं।

वह 20-21 दिसम्बर, 1704 की रात्रि थी जब उन्होंने अपनी बची सेना और परिवार सहित दुर्ग छोड़ दिया। अभी वे सरसा नदी तट पर पहुंचे ही थे कि पीछे से शत्रु-सेना अपनी सभी सौगन्धों को भुलाकर आ गई। वर्षा और शीतकाल की रात्रि में नदी-तट पर ही संघर्ष हुआ। कुछ सिखों ने मुगल-सेना को युद्ध में व्यस्त रखा और वे

अपने चालीस सैनिकों और दो पुत्रों अजीत सिंह (19 वर्ष) तथा जुझार सिंह (14 वर्ष) सहित चमकौर की गढ़ी तक पहुंच गये। परन्तु नदी-तट पर हुए युद्ध की अवस्था में उनका शेष परिवार उनसे छिन्न-भिन्न हो गया। उनके दो कनिष्ठ पुत्र, जोरावर सिंह (9 वर्ष) और फतह सिंह (7 वर्ष) अपनी दादी, माता गूजरी सहित अपने एक रसोइए गंगाराम के साथ उसके गांव की ओर चले गये। विश्वासघाती गंगाराम ने उन्हें धन के लोभ में सरहिंद के सूबेदार वजीर खान को सौंप दिया। इस्लाम न स्वीकार करने के कारण 27 दिसम्बर, 1704 को उन्हें जीवित दीवार में चुनवा दिया गया। माता मुजरी ने इस शोक में अपने प्राण त्याग दिये। उनकी दोनों पत्नियां, सुंदरी और साहिव देवी भी उस ववंडर में उनसे बिछुड़ गईं और भाई मनी सिंह के साथ किसी प्रकार दिल्ली पहुंच गईं।

चमकौर की गढ़ी भी शत्रुओं द्वारा घेर ली गई। गुरु गोविन्द सिंह उनके पुत्रों और चालीस साथियों ने बड़ी वीरतापूर्वक युद्ध किया। गुरु गोविन्द सिंह के बाणों की वर्षा से मुगल सेनापति नाहर खां मारा गया और ख्वाजा मुहम्मद ने गढ़ी की दीवार के नीचे छिपकर अपनी जान बचाई। सेनापति ने कुंवर अजीत सिंह और जुझार सिंह की इस युद्ध में प्रदर्शित अद्भुत वीरता का भी विस्तृत वर्णन *गुरु शोभा* में किया है।

एक-एक करके गुरु के अधिकांश साथी शहीद हो गए। उनके दोनों ज्येष्ठ पुत्रों ने भी शत्रुओं का संहार करते हुए युद्ध में वीरगति प्राप्त की। अंत में चमकौर त्याग देने का निश्चय हुआ। 22-23 दिसम्बर, 1704 को रात्रि के अंधकार में बचे हुए अपने तीन साथियों, भाई दया सिंह, भाई धर्म सिंह और भाई मान सिंह सहित वे मुगल-सेना की आंखों में धूल झोंककर निकल गये। भाई सुक्खासिंह ने अपने *गुरु विलास* में लिखा है कि चमकौर दुर्ग में उपस्थित एक सिख, 'संगत सिंह' की शक्ल गुरु गोविन्द सिंह से बहुत मिलती थी। शत्रु को धोखा देने के लिए वह गुरुजी के वस्त्र और कलगी धारण करके उन पर बाण-वर्षा करता रहा और गुरुजी गढ़ी छोड़कर निकल गये।

संकट के वे दिन

उनके तीनों साथी विभिन्न दिशाओं में चले गये। गुरुजी के उधर-उधर भटकने, अनेक स्थानों पर पीछा करती हुई शत्रु-सेना से बाल-बाल बचने और नंगे पैर माछीवाड़ा के घने और कांटों-भरे जंगल में अपने-आपको छिपाए रखने की कहानी बड़ी रोमांचक है। कितने ही दिन उन्होंने आक के पत्ते खाकर अपनी क्षुधा शान्त की। कितनी ही शीत की रातें उन्होंने आकाश के चमकते हुए सितारों की छाया में निर्वस्त्र गुजारीं। उसी समय उनके तीन साथी भी उन्हें आ मिले। इस प्रकार की स्थिति में दो पठानों, नबी खां और गनी खां ने उनकी सहायता की। वे जानते थे कि शाही सेना उनके पीछे पड़ी हुई है, परन्तु उन्होंने उनके लिए अपने प्राणों का संकट स्वीकार किया। उन्होंने उन्हें मुसलमान फकीरों जैसे नीले वस्त्र पहनाये और उन्हें 'उच्च का पीर' घोषित कर एक चारपाई पर

बैठाकर ले गए। 'उच्च पीर' से दो अर्थ व्यक्त हुए। एक 'ऊंचा पीर'; दूसरा 'उच्च' (मुलतान के निकट मुसलमानों का एक पवित्र स्थान) का पीर। एक बार शाही सेना की एक टुकड़ी ने उन्हें घेर लिया। टुकड़ी के नायक को कुछ संदेह हो गया। उसने अनेक प्रश्न किये और फिर भी जब उसे संतोष नहीं हुआ, उसके काजी पीर मुहम्मद को जांच करने के लिए बुला भेजा। संयोग से काजी पीर मुहम्मद ने गुरु गोबिन्द सिंह को बचपन में फारसी पढ़ाई थी। उसने भी उनकी सहायता की और सैनिक टुकड़ी को संतोषजनक उत्तर देकर परिस्थिति को संभाल लिया। गुरुजी के इन मित्र मुसलमानों के परिवारों के पास आज भी उनके द्वारा दिये हुए हस्ताक्षरयुक्त धन्यवाद-पत्र सुरक्षित हैं और दर्शकों को वे बड़ी श्रद्धा से उन पत्रों का दर्शन कराते हैं।

वहां से वे जतपुरा पहुंचे, जहां एक अन्य मुसलमान राय कल्हा ने उनकी सहायता की। गुरुजी ने उससे किसी को भेजकर सरहिंद से अपने कनिष्ठ पुत्रों को समाचार मंगवाने के लिए कहा। कुछ दिनों पश्चात् राय कल्हा का संदेशवाहक सरहिंद के सूबेदार वजीर खां द्वारा गुरुपुत्रों की नृशंस हत्या का हृदय-विदारक समाचार लाया। दुःखी पिता ने इन समाचार को बड़े धैर्य से सुना और कहा—"नहीं, मेरे पुत्र मरे नहीं है। उन्होंने धर्म का सौदा करने से इनकार कर दिया। वे अमर हो गये हैं।" कहते-कहते उन्होंने धरती पर लगा एक पौधा उखाड़ दिया और घोषित किया—"इस धरती से शत्रु भी इसी प्रकार उखाड़ दिया जाएगा।"

वहां से आगे चलकर गुरु गोबिन्द सिंह दीना नामक स्थान पर आये। धीरे-धीरे उनके और बहुत-से शिष्य भी उनके साथ आ मिले थे। वहां से अनेक स्थानों पर रुकते और अपनी शक्ति को पुनःसंगठित करते हुए वे खिदराना नामक स्थान पर आ पहुंचे।

खिदराना (मुक्तसर) का युद्ध

सरहिंद के सूबेदार वजीर खान की सेना निरन्तर उनका पीछा कर रही थी। गुरु गोबिन्द सिंह के पास उस समय तक फिर कुछ सेना एकत्र हो गई थी। उन्होंने देखा, खिदराना का ढाब (पोखर) में जल है, किंतु आसपास कहीं जल उपलब्ध नहीं है। युद्ध की दृष्टि से स्थान उपयुक्त समझकर उन्होंने निकट के घने जंगल में अपना मोर्चा बना लिया। यहां मुगल-सेना ने फिर उन पर आक्रमण किया, परन्तु इस युद्ध में गुरु गोबिन्द सिंह ने उन्हें पूरी तरह पराजित कर दिया। सिख-सेना ने अपने लिए जल का प्रवंध पहले से किया हुआ था, परंतु शत्रु-सेना जल के अभाव में त्राहि-त्राहि कर उठी और उसे मैदान छोड़ना पड़ा।

इस युद्ध में उन चालीस सिखों ने अद्भुत पराक्रम का प्रदर्शन कर वीरगति प्राप्त की जो आनन्दपुर में क्षुधा से व्याकुल हो गुरु जी का साथ छोड़ आए थे। इस युद्ध में प्राण देकर उन्होंने अपने उस कृत्य का प्रायश्चित किया। तब से सिखों की दैनिक

प्राथनाओं में इन्हें 'चालीस मुक्ते' कहकर बड़ी श्रद्धा से स्मरण किया जाता है। खिदराना को तब से 'मुक्तसर' कहते हैं और इस युद्ध की स्मृति में प्रतिवर्ष, माघ में यहां एक बड़ा मेला लगता है।

खिदराना के युद्ध के पश्चात् गुरु गोबिन्द सिंह स्थान-स्थान पर कुछ समय तक विचरण करते रहे, फिर तलवंडी साबू पहुंचे जिसे आज 'दमदमा' कहते हैं। यहां उन का एक घनिष्ठ मित्र डल्ला रहता था, उसने उनकी पूरी सहायता की। सामरिक प्रतिरक्षा की दृष्टि से यह स्थान बहुत उपयुक्त था। गुरुजी यहां कुछ समय तक बड़ी शान्ति के साथ रहे।

यहां रहकर उन्होंने पंजाब के इस मालवा-क्षेत्र में अपने मत का प्रचार किया। इस क्षेत्र के सिखों के बहुत-से पुराने घराने तथा राजवंश इन्हीं दिनों उनके हाथों से पहुल लेकर 'खालसा पंथ' में दीक्षित हुए। इन नव दीक्षितों में डल्ला भी एक था, परन्तु विशेषरूप से उल्लेखनीय तिलोका और रामा दो भाई थे। पंजाब के दो प्रसिद्ध राजवंशों—पटियाला और नाभा के ये पूर्व-पुरुष थे। इनके अतिरिक्त और बहुत-से लोग यहां 'खालसा' पंथ में दीक्षित हुए।

दमदमा का यह निवास गुरु गोविंद सिंह के जीवन के साहित्यिक पहलू की दृष्टि से भी बहुत महत्वपूर्ण है। *गुरु ग्रन्थ साहिब* का आज जो रूप उपलब्ध है, वह गुरु गोविन्द सिंह के निर्देश में यही उसे प्राप्त हुआ। लगता है, 'गुरु ग्रंथ साहिब' को पुनः सम्पादित कराने के कार्य में यहां उन्हें काफी समय लगा होगा। धीरे-धीरे यह स्थान अध्ययन का केन्द्र बन गया और इसीलिए इसे 'सिखों की काशी' कहा जाने लगा।

औरंगजेब को पत्र

सेनापति ने *गुरु शोभा* में लिखा है कि खिदराना का युद्ध समाप्त होने के पश्चात् गुरु गोबिन्द सिंह ने भाई दया सिंह के द्वारा एक पत्र औरंगजेब को भिजवाया।

इस पत्र के शेर 53 और 54 से यह स्पष्ट है कि यह पत्र औरंगजेब द्वारा प्राप्त किसी पत्र के उत्तर में लिखा गया था। 53वें शेर का भावार्थ है :

तुम्हारा कर्तव्य है कि काम को पूरा करो (और अपने) लिखे अनुसार विचार करो।

54वें शेर में लिखा है :

लिखा हुआ पत्र पहुंच गया है। मौखिक भी कह दिया गया है। (तुम्हें) चाहिए कि उसे सुख से पूरा करो।

सिख-इतिहासकारों ने इसका उल्लेख किया है कि औरंगजेब ने गुरु गोबिन्द सिंह को प्रत्यक्ष भेंट करने के लिए बुलाया था। उस पत्र के उत्तर में ही यह पत्र लिखा होगा।

औरंगजेब उस समय अहमदनगर में था। कुछ समय की प्रतीक्षा के पश्चात् भाई

दया सिंह यह पत्र औरंगजेब के पास पहुंचाने में सफल हो गए। यह उस समय के ऐतिहासिक सूत्रों से ज्ञात होता है कि औरंगजेब ने तत्काल यह आज्ञा प्रसारित करा दी कि गुरु गोबिंद सिंह को कोई कष्ट न दिया जाए और सम्मान सहित बादशाह के पास लाया जाए।

दक्षिण की ओर

भाई दया सिंह अहमदनगर में औरंगजेब को पत्र दे सकने में सफल हुए या नहीं, इस बात का पता गुरु गोबिन्द सिंह को बहुत समय तक नहीं लगा और वे पंजाब से दक्षिण की ओर चल दिए।

उन्होंने अक्तूबर 1706 में राजस्थान (मारवाड़) के मार्ग से दक्षिण जाने का निर्णय किया। इस निर्णय के अनुसार वे राजस्थान की ओर चल पड़े। राजस्थान में अनेक राजपूत राजाओं ने उनका स्वागत किया। जब वे बघौर नामक स्थान पर पहुंचे तो भाई दया सिंह दक्षिण से वापस आते हुए उन्हें यहीं मिले। उन्होंने उन्हें सभी समाचारों से अवगत कराया। यहीं उन्हें औरंगजेब की अहमदनगर में मृत्यु (20 फरवरी, 1707) का समाचार मिला।

औरंगजेब की मृत्यु ने उस समय की परिस्थिति में एक बड़ा परिवर्तन कर दिया। अब दक्षिण की ओर जाने का कोई विशेष अर्थ नहीं था, इसलिए वे दिल्ली की ओर चल दिए। गुरु गोबिंद सिंह की दोनों पत्नियां उस समय दिल्ली में ही थीं।

औरंगजेब की मृत्यु होते ही मुगल शाहजादों में सिंहासन के लिए परम्परागत युद्ध छिड़ गया। औरंगजेब के दूसरे पुत्र आजम ने, जो उस समय दक्षिण में था, झटपट अपने को बादशाह घोषित कर दिया और सेना सहित उत्तर की ओर चल पड़ा। औरंगजेब का ज्येष्ठ पुत्र मुअज्जम उत्तर में था। उसने आजम से निपटने के लिए युद्ध की तैयारी की।

गुरु गोबिन्द सिंह और मुअज्जम का परिचय इस घटना से लगभग दस वर्ष पूर्व हो चुका था, जब मुअज्जम पहाड़ी राजाओं के विद्रोह को दबाने के लिए पंजाब आया था, उस समय उसके व्यक्तिगत सचिव भाई नंदलाल द्वारा उसे उनका विशेष परिचय प्राप्त हुआ था। संभव है इस समय भी भाई नंदलाल ने ही उसे गुरुजी से सहायता प्राप्त करने के लिए प्रेरित किया हो।

इस सहायता का सैनिक दृष्टि से विशेष महत्व नहीं था। गुरु गोबिन्द सिंह के साथ उस समय कोई विशेष सैनिक शक्ति भी नहीं थी। खाफी खान की 'मुंतखिब-उल लुबाब' के अनुसार उनके साथ केवल दो-तीन सौ भालाधारी सवार थे, परन्तु इस सहायता का एक अन्य दृष्टि से शाहजादे के लिए काफी महत्व था। मुगल शासक बहुधा अपनी कठिनाइयों के अवसर पर संतों-फकीरों का आशीर्वाद प्राप्त करने का प्रयास किया करते थे। संभव है इस सहायता की मांग उसी दृष्टि से की गयी हो।

दोनों भाइयों का युद्ध आगरा के निकट जाजऊ नामक स्थान पर 18 जून, 1707 को हुआ जिसमें आजमशाह पराजित हुआ और मारा गया। मुअज्जम, बहादुरशाह के नाम से दिल्ली के मुगल सिंहासन पर बैठा।

दिल्ली में गुरु गोबिन्द सिंह कुछ समय तक रहे। दिल्ली के सिखों ने उनका बहुत सम्मान किया। यमुना के किनारे उन्होंने अपना डेरा डाला और सहस्रों की संख्या में लोग एकत्र होकर उनका उपदेश सुनने लगे।

कुछ समय के पश्चात् उन्होंने आगरा की ओर प्रस्थान किया। मार्ग में मथुरा, वृन्दावन की यात्रा करते हुए वे आगरा के निकट आ गये और बादशाह के निवास-स्थान से लगभग दो कोस के अंतर पर उन्होंने अपना डेरा लगा दिया।

कुछ समय पश्चात् बहादुरशाह ने उन्हें मिलने के लिए बुलाया। 2 अगस्त, 1707 को उनकी भेंट बहादुरशाह से हुई। गुरु गोबिन्द सिंह उस समय सैनिक वेश में पूर्णरूप से सज्जित थे। बहादुरशाह ने उनका स्वागत किया और जाजऊ युद्ध की उस सहायता के लिए उसने धन्यवाद दिया। उसने उन्हें एक मूल्यवान खिलअत, एक धुगधुगी और एक कलगी भेंट की।

गुरु गोबिन्द सिंह आगरा में ही अपना डेरा लगाए रहे। दूर-दूर से श्रद्धालु वहां आने लगे। इस बीच बादशाह से विभिन्न महत्वपूर्ण विषयों पर उनकी चर्चा भी होती रही।

12 नवम्बर 1707 को बहादुरशाह राजपूतों का विद्रोह दबाने के लिए चल दिया। गुरु गोबिन्द सिंह से उसकी बातचीत हो ही रही थी इसलिए बादशाह के आग्रह से वे भी अपने सैनिकों सहित उसके साथ हो लिए। राजस्थान में ही बहादुरशाह को समाचार मिला कि दक्षिण में उसके छोटे भाई कामबख्श ने विद्रोह कर दिया है, इसलिए वह वहां से दक्षिण की ओर चल पड़ा।

नांदेड़ में

शाही सेना जून 1708 में ताप्ती पार करके बुरहानपुर पहुंची। अगस्त 1708 में बाणगंगा को पार कर सितम्बर के प्रारम्भ में यह सेना गोदावरी के किनारे बसे स्थान नांदेड़ में पहुंच गई। शाही सेना यहां से हैदराबाद की ओर कामबख्श का विद्रोह दमन करने के लिए चली गई। गुरु गोबिन्द सिंह अपनी सैन्य टुकड़ी के साथ वहीं टिके रहे।

नांदेड़ में गुरु गोबिन्द सिंह की भेंट माधोदास नामक एक वैरागी से हुई। दक्षिण जाते समय उज्जैन में गुरु गोबिन्द सिंह की भेंट दादूपंथी गुरु नारायणदास से हुई थी। वे रामेश्वर से लौट रहे थे। गुरु गोबिन्द सिंह ने उनसे पूछा—'उधर क्या देखा?' नारायणदास ने कहा कि और तो सब मिट्टी-पत्थर है किन्तु नाबेर मे एक वैरागी महन्त है जो अद्वितीय है। जिन्न और भूत इसके नौकर हैं; वे इसके वश में हैं। बस, यही पुरुष

देखने योग्य है।

गुरु गोबिन्द सिंह उससे भेंट करने के लिए उसके डेरे पर गये। माधोदास उस समय डेरे पर नहीं था। गुरुजी उसकी गद्दी पर बैठकर उसकी प्रतीक्षा करने लगे। उसके शिष्यों ने दौड़कर माधोदास को इनके आने का संदेश दिया। कहते हैं, माधोदास ने गुरु गोबिन्द सिंह को अपनी गद्दी से गिराने के लिए बहुत-से जादू-टोने किए परन्तु उसे कोई सफलता न मिली।

गुरु गोबिन्द सिंह ने उसे कर्म का संदेश दिया। उसके सम्मुख उन्होंने मातृभूमि की अवस्था का चित्रण किया। वे माधोदास के अन्दर छिपी अनन्त शक्तियों की पहचान कर चुके थे। उनके हृदयग्राही वक्तव्य तथा उनके धार्मिक उत्साह ने माधोदास के हृदय पर ऐसा गहरा प्रभाव डाला कि वह गुरु का शिष्य हो गया, अपने-आपको गुरु का बंदा अथवा गुलाम कहने लगा और उसने अपना जीवन गुरु के चरणों में अर्पण कर दिया। तभी से उसका नाम 'बन्दा' पड़ गया। गुरु गोबिन्द सिंह ने उसे अपना उत्तराधिकारी बनाया और उनके द्वारा प्रारम्भ किये गये कार्य को आगे बढ़ाने के लिए पंजाब की ओर भेजा।

नान्देड़ पहुंचने के लगभग एक मास के अन्दर ही 7 अक्तूबर, 1708 को प्रातःकाल गुरु गोबिन्द सिंह जी के जीवन की लीला अचानक समाप्त हो गई।

गुरु शोभा में लिखा है कि एक पठान कुछ दांव लेकर प्रभु (गुरु गोबिन्द सिंह) के पास आया और दो-तीन घड़ी वहां बैठा पर उसका दांव नहीं लगा, क्योंकि वहां बहुत लोग उपस्थित थे। उस दिन वह चला गया और दूसरे दिन फिर आया। उस दिन भी वह दो-तीन घड़ी बैठकर घात लगाता रहा परन्तु उस दिन भी उसे सफलता नहीं मिली और वह चला गया। इस प्रकार वह कई दिन आता रहा परन्तु उसका दांव न लगा, परन्तु अनेक बार आने के कारण उसने इस भेद का पता लगा लिया कि उसके काम का समय संध्या का ही है। वह दुष्ट एक दिन शाम के समय आया। साहिब (गुरु गोबिन्द सिंह) ने उसे अपने निकट बुलाया और अपने पास बैठाकर प्रसाद दिया जिसे उस दुष्ट ने हाथ में लेकर मुंह में डाल लिया। उस समय वहां कोई सिख नहीं था, केवल एक रक्षक था, वह भी ऊंघ गया था। इतने में प्रभु स्वयं विश्राम करने लगे। अवसर देखकर उस दुष्ट पठान ने उन पर छुरे से आक्रमण कर दिया। उसने उन पर दो वार किए कि गुरु गोबिन्द सिंह ने निकट रखी अपनी तलवार के एक ही वार से उसको वहीं मार डाला। फिर उन्होंने आवाज देकर शिष्यों को बुलाया। झटपट बहुत-से लोग वहां आ गये और उसके दो साथियों को जो डेरे के बाहर प्रतीक्षा कर रहे थे, पकड़कर मार डाला गया। अभी तक किसी को यह नहीं पता लगा था कि गुरुजी स्वयं जख्मी हो गए हैं, परन्तु जब वे उठे और लड़खड़ाए, तब उन्हें दुखद घटना का पता लगा। वे दुख में डूब गये। उन्होंने सबको सान्त्वना दी। उसी समय घाव धोकर सी दिये गये, परन्तु जब उन्होंने उठने का प्रयास किया तो धागे टूट गए। घाव फिर सी दिये गये और उन पर मरहम लगा दी गई।

तीन-चार दिन व्यतीत हुए। बहुत-से सिख उनके दर्शन के लिए आ रहे थे।

उनकी प्रार्थना पर वे दरबार में आए। फिर कुछ दिन व्यतीत हुए। पठान के घातक आक्रमण से उनकी रक्षा हो गई है, यह विश्वास करके सिखों में आनंद छा गया, परन्तु वे समझ गये थे कि उनका अन्त समय निकट आ गया है। एक रात्रि को थोड़ा भोजन करके वे लेट गए। आधी रात से चार घड़ी समय अधिक व्यतीत हुआ कि उन्होंने सब सिखों को बुलाया। सभी सिख उनके निकट एकत्र हो गए और गुरु गोविन्द सिंह जी ने उन्हें अन्तिम वार 'वाहि गुरुजी की फतेह' कहा और उनकी आत्मा ने अपनी नश्वर देह को छोड़ दिया।

देहावसान के समय गुरु गोविंद सिंह जी की आयु मात्र 42 वर्ष की थी।

विहार की भूमि को उन्हें जन्म देने का गौरव प्राप्त हुआ तो महाराष्ट्र की वीरप्रसू भूमि में उनका अन्तिम संस्कार हुआ। नांदेड़ में उनकी स्मृति में बना हुआ भव्य गुरुद्वारा के लाखों श्रद्धालु दर्शनार्थियों के लिए 'सचखंड हजूर-साहब' नाम से विख्यात एक महत्वपूर्ण तीर्थ स्थान है।

गुरु गोबिंद सिंह का युद्ध-दर्शन

शांति की कितनी भी कामना क्यों न की जाए, युद्ध मनुष्य की नियति है। इसके बिना वह कभी जिया नहीं, न ही इसके बिना वह कभी जी सकेगा। पश्चिमी देशों में युद्ध के मनोविज्ञान पर बहुत काम किया गया है। हमारे देश में इस दृष्टि से विशेष चिंतन नहीं हुआ। जो थोड़ा-बहुत हुआ भी, वह गंभीर विचार या दर्शन के स्तर पर कभी नहीं उभरा। इस देश में भी बड़े-बड़े युद्ध हुए। महाभारत का युद्ध तो मानव इतिहास की अद्वितीय घटना है। शायद उस युद्ध में हुए विनाश का व्याघात इतना प्रबल था कि इस देश की पूरी मानसिकता युद्ध कर्म से विरत ही नहीं हुई, उससे विरक्ति भी अनुभव करने लगी। हमारा संपूर्ण चिंतन आत्मा, परमात्मा, मोक्ष, माया और सृष्टि की उत्पत्ति की गुत्थियों को सुलझाने की ओर मुड़ गया। यह चिंतन बढ़ते-बढ़ते इस स्थिति तक पहुंचा जहां सारा संसार और उसके सभी कार्य-कलाप मिथ्या दिखने लगे, केवल ब्रह्म ही एकमात्र सत्य रह गया।

इस देश में सुगठित होकर युद्ध-दर्शन का विकास न हो पाने का एक प्रमुख कारण यह है कि यहां जीवन-मत्यु की सभी समस्याओं का अंतर्भेदन व्यक्तिमुखी हुआ, समाजमुखी नहीं। आध्यात्मिक और भौतिक क्षेत्रों के विविध आयामों पर चिंतन-मनन करते हुए इस देश में अनेक शास्त्रों की रचना हुई किंतु युद्ध-दर्शन पर कोई उल्लेखनीय शास्त्र नहीं रचा गया। मनुष्य का इतिहास युद्धों से भरा हुआ इतिहास है। धार्मिक परिवेश में इस कर्म की भरपूर निंदा हुई है और मनुष्य को इस कर्म से विरत करने के बहुत-से प्रयास हुए हैं, किंतु धर्म-क्षेत्र में इस कर्म को मान्यता भी भरपूर प्राप्त हुई और युद्ध कार्य को कभी धर्मयुद्ध, कभी ज़िहाद और कभी क्रूसेड के नाम से धार्मिक-नैतिक स्वीकृति निरंतर मिलती रही है। युद्ध का अपना एक कौशल है, इससे आगे बढ़कर उसका एक पूरा दर्शन है। प्राचीन काल से यहां चार पुरुषार्थों की चर्चा होती रही, जिन्हें पुरुषार्थ-चतुष्टय

कहा जाता है। ये हैं धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। यदि ध्यान से देखा जाए तो ये चारों पुरुषार्थ व्यक्ति के निजी जीवन से ही अधिक संबंध रखते हैं! इनका पूरे समाज, पूरे देश, पूरे राष्ट्र के साथ संबंध होना आवश्यक नहीं है, किंतु युद्ध एकाकी संक्रिया न होकर सामूहिक कर्म है। युद्ध पूरे समाज के साथ जुड़कर ही पूर्ण होता है। इस देश में धर्म पर बहुत कुछ सोचा और लिखा गया। मोक्ष की कामना से हमारे शास्त्र भरे पड़े हैं। अर्थ और कुटिल राजनीति पर चाणक्य जैसे मनीषी ने बहुत कुछ लिखा। काम की तो यहां पूजा होती रही। हमारे अनेक मंदिरों में निर्मित मिथुन-मूर्तियां इस बात का प्रमाण है। ऋषि वास्यायन का 'कामसूत्र' संसार की बेजोड़ रचना है, परंतु मुझे ऐसा कोई ग्रंथ याद नहीं आता, जो युद्ध कला और युद्ध दर्शन की व्यापकता को समाहित करता हो। इस देश की समाज-व्यवस्था में युद्ध कर्म, समाज के केवल एक वर्ग, क्षत्रियों तक ही सीमित था, पूरे समाज में यह वर्ग कभी दस प्रतिशत से अधिक नहीं था। इस वर्ग में परंपरा के रूप में शस्त्र पूजा अवश्य होती थी, किंतु उसके लिए भी यह मात्र एक रूढ़ि बनकर रह गई थी। संसार के विभिन्न भागों में किस प्रकार के नए अस्त्र-शस्त्र बन रहे हैं और किस प्रकार उन्हें प्रयोग में लाया जा रहा है, इस विषय में इस देश में कभी गहरी रुचि व्यक्त नहीं की गई।

यह भी सच है कि *गीता* में कुरुक्षेत्र की समर-भूमि में अर्जुन के मन में युद्ध के प्रति आई हुई विरक्ति को दूर करते हुए श्रीकृष्ण उसे युद्ध के लिए प्रेरित करते हैं और कहते हैं कि यदि वह धर्मयुक्त युद्ध को नहीं करेगा तो स्वधर्म और कीर्ति को खोकर पाप को प्राप्त होगा :

अथ चेत्त्वमिमं धर्म्यं संग्रामं न करिष्यसि
ततः स्वधर्मं कीर्तिं च हित्वा पापमवाप्स्यसि

(गीता, अध्याय 2, श्लोक 33)

किंतु *गीता* में आई ऐसी उक्तियों के बावजूद युद्धकर्म को उसकी समग्रता में कभी इस देश में गंभीरता से नही लिया गया।

युद्ध एक पूरा दर्शन है, जीवन दृष्टि है, इस बात को संभवतः सबसे पहले गुरु गोबिंद सिंह ने, तीन सौ वर्ष पहले आत्मसात किया था। उन्होंने अनुभव किया था कि कृपाण हाथ में लेकर युद्धभूमि में जाकर शत्रु से भिड़ जाना ही पर्याप्त नहीं है। यह काम तो इस देश की क्षत्रिय जातियां सदियों से करती आ रही थीं। आवश्यकता यह थी कि युद्ध-कर्म को किस प्रकार लोगों की मानसिकता का हिस्सा बना दिया जाए, उनके लिए यह एक पूरा जीवन-दर्शन बन जाए। सबसे बड़ी बात यह कि इस कर्म में केवल दस प्रतिशत लोगों की नहीं, शत-प्रतिशत लोगों की भागीदारी कैसे प्राप्त की जाए।

गुरु गोबिंद सिंह के युद्ध-दर्शन का पहला सूत्र था लोगों के अंदर सदियों से जड़ जमाए बैठी हीन भावना को दूर करना। उन्होंने निश्चय किया कि वे छोटी समझी जाने

वाली जातियों को बड़प्पन देंगे। जिनकी जाति और कुल को कभी सम्मान नहीं मिला, सरदारी नहीं मिली, ऐसे कीड़े समझे जाने वाले लोगों को मैं शेर बनाऊंगा। इनके सामने तुर्कों के झुंड हाथियों की तरह भागेंगे इन्हें मैं सरदार बनाऊंगा। तभी मेरा नाम गोबिंद सिंह सार्थक होगा। पंथ प्रकाश के रचयिता ज्ञानी ज्ञान सिंह के शब्दों में :

जिन की जाति और कुल माहीं।
सरदारी नहि भई कदाहीं।
कीटन तै इनको मृगिंदू।
करो हरन हित तुरक गजिंदू
इन ही को सरदार बनावों।।
तबै गोबिंद सिंह नाम सदावों।।

यह विचार कर के बैसाखी वाले दिन गुरु गोबिंद सिंह ने खालसा पंथ का निर्माण किया :

इहु विचार कर सतगुरु पंथ खालसा कीन।
भीरू जातिन के तई अती बड़प्पन दीन।।

प्राचीन पंथ प्रकाश के रचयिता भाई रतन सिंह भंगू ने अनेक जातियों के नाम गिनाए हैं जो सदियों से राजनीति से दूर थीं, जिन्होंने सपने में भी पातशाही के बारे में नहीं सोचा था। ऐसे लोगों को गुरु गोबिंद सिंह ने अपने साथ जोड़ा, इन्हें सिंह बनाया, इनके हाथ में अस्त्र-शस्त्र दिए और इनके मन में यह विश्वास उत्पन्न किया कि वे संसार की बड़ी-से बड़ी शक्ति से टकराने का दावा कर सकते हैं। यह बहुत बड़ा चमत्कार था। गुरु गोबिंद सिंह ने यह चमत्कार कर दिखाया।

उस समय की समाज-व्यवस्था में यह वात वड़ी अनहोनी जैसी थी। उच्च वर्ण के लोगों ने, यहां तक कि उनके संबंधियों ने भी, उनकी इस नीति का विरोध किया था। दशम ग्रंथ में किन्हीं पंडित केशो राम को उसकी आपत्तियों का उत्तर देते हुए गुरु गोबिंद सिंह ने कहा था—मैंने अपने सभी युद्ध इन लोगों की सहायता से ही जीते हैं। मेरे सभी कष्ट इन्हीं की कृपा से दूर हुए हैं। इन्हीं की कृपा से मेरा सम्मान है, नहीं तो मेरे जैसे करोड़ों लोग इस दुनिया में हैं :

युद्ध जिते इनही के प्रसादि इनही के प्रसादि सु दान करे।
अघ अउघ टरै इन्ही के प्रसादि इनही की कृपा पुन धाम भरे।।
इनही के प्रसादि सु बिदिया लई इनही की कृपा सभ सत्रु मरे।।
इनही की कृपा तै सजै हम हैं नहि मो सो गरीब करोर परे।

गरीब और दलित लोगों को इतना सम्मान अपने युग में गुरु गोविंद सिंह ने ही

दिया था। अपनी बात को आगे बढ़ाते हुए उन्होंने कहा था—"मुझे इन्हीं की सेवा करना अच्छा लगता है, इन्हीं को दान देना भला लगता है, इन्हीं को दिया हुआ दान ही आगे चल कर फलदायी होगा, शेष तो सब कुछ बहुत फीका है। इसलिए मेरा घर, मेरा तन-मन, सिर और धन सब इन्हीं का है।"

सेव करी इनही की भावत अउर की सेव सुहात न जी को।
दान दयो इनही को भलो अरु आन को दान न लागत नीको।।
आगे फलै इनही को दयो जग में जस अउर दयो सभ फीको।
मो गृह मो तन ते मन ते सिर लउ घन है सब ही इनही को।।

गुरु गोविंद सिंह ने छोटे और हीन समझे जाने वाले लोगों के मन में जिस आत्मविश्वास का संचार किया था, उनमें अपने अधिकारों के प्रति जो जागरूकता उत्पन्न की थी और जिस शोषणविहीन समतावादी समाज की संकल्पना की थी, आधुनिक भारतीय समाज उसे ही प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील दिखता है। तीन सौ वर्ष पूर्व खालसा पंथ के निर्माण की पृष्ठभूमि में यही परिकल्पना कार्य करती दिखाई देती है। इस कार्य के लिए उन्होंने सन् 1699 की बैसाखी के दिन देश-भर में फैले हुए लोगों का एक विशाल सम्मेलन बुलाया और उसमें एक कड़ी परीक्षा द्वारा पांच व्यक्तियों का चयन किया। इन पांच व्यक्तियों में एक खत्री, एक जाट, एक धोबी, एक कहार और एक नाई जाति का था। यह भी एक संयोग था कि इनमें एक पंजाबी, एक पश्चिमी उत्तरप्रदेश का, एक गुजराती, एक उड़िया और एक कर्नाटक का था।

गुरु गोविंद सिंह ने इन्हें *पंज प्यारे* कहा। इनके नामों के साथ सिंह शब्द जोड़ दिया। इन्हें नया गणवेश दिया। इनकी सहायता से लोहे के कढ़ाव में, लोहे के खंडे के स्पर्श से, गुरुवाणी का पाठ करते हुए और गुरु-पत्नी द्वारा इस जल में मिलाए गए मीठे बताशों से एक अमृत तैयार हुआ।

उस दिन लगभग बीस हजार व्यक्तियों ने इस अमृत का पान किया। इनमें से ऊंच-नीच और बड़े-छोटे की भावना समाप्त हो जाए, इसलिए गुरु गोबिंद सिंह ने स्वयं इनके हाथ से लेकर अमृतपान किया। हीनता की ग्रंथि को नष्ट करने का यह अद्भुत उपाय था कि स्वयं गुरु अपने शिष्यों के सम्मुख अंजुलि फैलाकर घुटनों के बल बैठ गया।

मुगलों के शासनकाल में आम हिंदुओं को पगड़ी बांधने, शस्त्र धारण करने और घोड़े पर चढ़ने की अनुमति नहीं थी। गुरु गोबिंद सिंह ने इस शाही हुक्म को चुनौती देते हुए उन्हें केश रखने, पगड़ी बांधने, शस्त्र धारण करने और घोड़े पर चढ़ने की आज्ञा दी।

आम लोगों के अंदर बैठी हुई हीन भावना का एक मुख्य कारण यह भी था कि ये लोग पीढ़ी-दर-पीढ़ी से ऐसे काम कर रहे थे जिन्हें छोटा या हीन कर्म माना जाता था जो जिस जाति में पैदा हुआ वह पीढ़ी दर पीढ़ी वही जाति-कर्म करने को अभिशप्त रहा। गुरु गोबिंद सिंह ने निश्चय किया कि मैं इनकी हीन भावना को दूर करने के लिए इनकी

जाति से जुड़े कर्म दूर कर इनका वर्गांतर कर दूंगा। मैं इन्हीं क्षत्रिय कर्म ग्रहण करने की प्रेरणा दूंगा। यह शस्त्रधारी सिंह हो जाएंगे। मैं इन्हें शिकार खेलना सिखा दूंगा और इन्हें जंग करने की शिक्षा दूंगा। पंथ प्रकाश में इस प्रसंग का उल्लेख करते हुए लिखा है :

तातें इनके जाती करम।
छुड़वा भरो क्षत्री धरम।
सिंह नाम शस्त्री जब थैहैं।
पाण वीर रस की चढ़ जैहें।
खेलन इन्हें शिकार सिखइए।
सिख मत जंग करन की दईऐ।।

उन्नीसवीं शती के उत्तरार्द्ध की इस रचना में एक घटना का उल्लेख किया है। एक दिन गुरु गोबिंद सिंह के सम्मुख कुछ सिखों ने आकर पुकार की कि तुर्क हमें बड़ा दुःख देते हैं। आपके लिए हम जो सुंदर वस्तुएं और भेंट लेकर आते हैं, मार्ग में हमसे छीन लेते हैं। हममें इतनी सामर्थ्य नहीं कि हम उनसे बच सकें। हे सतगुरु, आप इसका कोई उपाय बताइए :

इक दिन संगत आई पुकारी।
तुरक देत दुख हम को भारी।
सुंदर वस्तु, आप हित जो है।
कार भेट दसवद जुहो है।
घर ते संगत लै के आवत।
मग में तुरक छीन लै जावत।
नहि इतफाक हमारे में है।
जिस बल हम उन तै बच जैहे
करो उपाए सतगुरो सोई।
जो तुम करयो चहो सो होई।।

गुरु गोबिंद सिंह ने कहा, 'तुम अपने हाथ में शस्त्र लो और उनका सामना करो।'

यह सुनकर वे लोग बड़े अधीर होकर कहने लगे—मुगल-पठान बड़े वीर हैं, शस्त्र विद्या के ज्ञाता हैं। हम तो उनके सामने अज्ञानी बालकों की तरह हैं। हम मोठ बाज़रा खाते हैं, ये शराब, कबाब उड़ाते हैं। हम बकरी, तीतर के समान हैं, वे बाज और भेड़िए की तरह हैं। हम उनसे कैसे लड़ सकते हैं? उन्हें देखकर हम थर-थर कांपने लगते हैं :

सुन सिख बोले होइ अधीर
मुगल पठानादिक बड़ बीर।

शस्त्र विद्या के सौ ज्ञाता।
हम उन आगे वाल अज्ञाता।
मोठ वाजरी हम नित खेहैं।
सोउ शराब-कवाब उड़े हैं।
बकरी, चिड़िया, तीतर, सम हम।
वाज बघयाड़न तै सो नहिं कम।
उनसे लड़न तो किम हो है।
सम्मुख वात आत नहि को है।
पेख उनै हम थरथर कपै।
जो सो चहित देत हम सपै।

यह सुनकर गुरु गोविंद सिंह ने सोचा, ये लोग तुर्कों से इतना क्यों डरते हैं। एक तो ये लोग गरीव हैं, दूसरे इनके नाम भी वहुत दब्बू किस्म के हैं। तीसरे इनकी छोटी जाति का अहसास इनमें हीनता की भावना पैदा करता है। उन्होंने सोचा कि इनसे पुराने जाति-कर्म छुड़वाकर इनमें क्षत्रियों का तेज भरना चाहिए। जब इन्हें 'सिंह' नाम मिलेगा तो इनमें वीर रस का संचार होगा। इन्हें शिकार खेलना चाहिए, इन्हें युद्ध करना आना चाहिए :

इह सुन सतगुरु ऐस विचारी।
एहु दवै रहे उनै अगारी।।
इन को करम गरीवी के हैं।
दूसर नाम निकारो से हैं।
तीसर जाति कमो जट वणीए।।
नाई छीवे झीउरा गणीए।
रोड़े खत्री सैणी खाती।
बणजारे आदिक बख्याती।।
तांते इनके जाती करम।
छुड़वा भरो क्षत्री धरम।
सिंह नाम शास्त्री जब थैहे
खेलन इन्हें शिकार सिखईऐ।
सिख मत जंग करन की दईऐ।।

उन्होंने यह भी निश्चय किया कि वे बड़े लोगों को छोड़कर नीच समझे जाने वाले लोगों को मान-सत्कार देंगे, वैसे ही जैसे सोने की अंगूठी बड़ी उंगलियों को छोड़कर छोटी उंगली में पहनाई जाती है

पुन सभ जन की लघु उंगरी
तज बड़ीअन तिह पावत मुंदरी

गुरु गोबिंद सिंह ने इस प्रकार युद्ध-कर्म को केवल क्षत्रिय वर्ग तक ही सीमित नहीं रखा। इस कार्य में उन्होंने उन वर्गों को भी शामिल कर लिया, जिन्होंने कभी इस बात की कल्पना भी नहीं की थी कि समाज उन्हें योद्धा और वीर सैनिक के रूप में भी देखेगा।

युद्ध एक सामूहिक क्रिया है। वह एकाकी कार्य नहीं है। हमारे देश में जो लोग युद्धकर्म को अपना जातीय गुण मानते थे, वे भी व्यक्तिगत वीरता को बहुत महत्व देते थे, किंतु इस कार्य में वीरों की नहीं, वीर सैनिकों की आवश्यकता होती है। रणभूमि में व्यक्ति नहीं, सेनाएं युद्ध करती हैं और अंत में कोई व्यक्ति, वह कितना ही बड़ा पराक्रमी योद्धा क्यों न हो, विजयी नहीं होता, उसकी सेना विजय प्राप्त करती है। गुरु गोबिंद सिंह ने इस सत्य की पहचान की और अपना ध्यान इन बात पर केंद्रित किया कि किस प्रकार समाज के सभी वर्गों की भागीदारी प्राप्त करके पराक्रमी सेना का निर्माण किया जाए।

समाज में चाहे जितनी ऊंच-नीच और छुआछूत की भावना हो, एक योद्धा निजी तौर पर चाहे जितना इस भावना से ग्रसित हो, किंतु सैन्य संचालन में ये बंधन पूरी तरह त्याज्य होते हैं। सेना में सभी सैनिक सामूहिक रूप में जीते हैं, सामूहिक रूप से खाते-पीते हैं। सामूहिक रूप से प्रशिक्षण लेते हैं और सामूहिक रूप से युद्ध करते हैं।

किंतु कठोर जाति-नियमों के कारण इस देश में सामूहिक भावना का अभाव था। सुप्रसिद्ध इतिहासकार डॉ. जदुनाथ सरकार ने अपनी पुस्तक 'मिलिट्री हिस्ट्री आफ इंडिया' में लिखा है कि "हिन्दू धर्म का दर्शन उदात्त हो सकता है, किंतु वह पूर्ण सामाजिक एकता तथा अनुयायियों की समानता की सीख नहीं देता। पूर्ण सामाजिक एकता तथा अनुयायियों की समानता इस्लाम की सबसे महत्वपूर्ण देन है।"

जात-पांत और छूआछूत की भावना को हिंदू सैनिक युद्धभूमि में भी अपने साथ रखते थे। पृथ्वीराज चौहान और शहाबुद्दीन गोरी के मध्य हुए युद्ध में राजपूत सेना की हार का एक कारण यह भी था कि शहाबुद्दीन की सेना ने राजपूतों पर बहुत सुबह आक्रमण कर दिया था। राजपूत युद्ध से पहले भोजन नहीं कर सके थे। उन्हें भूखे पेट लड़ना पड़ा था। कठोर जाति-नियमों के कारण वे युद्धक्षेत्र में ही कुछ खा-पीकर तरोताज़ा नहीं हो सकते थे।

पानीपत की तीसरी लड़ाई में अफगानों और मराठों के मध्य हुए युद्ध में भी मराठों की हार का एक कारण यह था कि हर मराठा सैनिक अपने घोड़े की काठी के नीचे अपनी रोटी सेंकने के लिए अपना अलग तवा रखता था और छूआछूत का पूरी तरह पालन करता था।

गुरु गोबिन्द सिंह ने इस नीति को पूरी तरह बदल दिया। गुरु नानक के समय से ही सिखों में लंगर की प्रथा द्वारा खान-पान में से सभी प्रकार का भेदभाव नष्ट किया

जा चुका था। गुरु गोविन्द सिंह ने पाहुल की प्रथा में सभी सिखों को एक ही पात्र से अमृत पिलाया और स्वयं भी पिया।

सेना में भरती होने वाले प्रत्येक सैनिक को एक सौगंध लेनी होती है, जिसमें वह अपने उद्देश्य और आदर्श को दोहराता है। अमृतपान की प्रथा एक सौगंध थी, जिसमें दीक्षित होते समय प्रत्येक सिख अपने अंदर की कुछ रूढ़ मान्यताओं को नष्ट करने की घोषणा करता था। ये थीं—धर्मनाश (वर्णाश्रम धर्म से मुक्ति), कर्मनाश (कर्मकांड से मुक्ति), भरम (भ्रम) नाश (अंधविश्वासों से मुक्ति), कुलनाश (उच्च कुल या वर्ण में जन्म लेने की भावना से मुक्ति) और कृतनाश (हीन समझे जाने वाले कामों से मुक्ति)।

गुरु गोविंद सिंह जानते थे कि एक अच्छा सैनिक युद्ध में तभी पूरी तन्मयता और उत्साह से भाग लेता है जब उसे यह विश्वास होता है कि वह किसी महान उद्देश्य की पूर्ति के लिए युद्ध कर रहा है और इस कार्य में ईश्वर उसका सहायक है। इस्लामी दुनिया के 'जिहाद' और ईसाई संसार के 'क्रूसेड' में युद्ध को धर्मभावना के साथ जोड़ा जाता है।

गुरु गोविंद सिंह ने भी अपने अनुयायियों में यह विश्वास भरा कि वे जो कार्य कर रहे हैं, वह ईश्वरीय कार्य है। 'वाहिगुरु का खालसा-वाहिगुरु की फतेह' जैसे उद्घोष की पृष्ठभूमि में यही भावना है—खालसा वाहिगुरु की रचना है और वाहिगुरु की सदैव विजय होती है। उन्होंने अपनी आत्मकथा *विचित्र नाटक* में अपने जीवन का मन्तव्य स्पष्ट करते हुए कहा था :

धर्म चलावन संत उबारन
दुस्ट सभन को मूल उपारन
याही काज धरा हम जनमं
समझु लेहु साधू सब मनमं

धर्म की स्थापना, संत पुरुषों का उद्धार और दुष्टों का समूल नाश करने के लिए मैंने जन्म लिया है। इसलिए गुरु गोविंद सिंह के लिए युद्ध केवल एक सामान्य कर्म नहीं था, वह धर्मयुद्ध था। धर्मयुद्ध की आकांक्षा से प्रेरित होकर ही उन्होंने यह आयोजन किया था। अपनी रचना *कृष्णावतार* में उन्होंने इस भाव को पूरे आग्रह से स्पष्ट किया था—मैंने भागवत के दशम स्कन्ध को जन-भाषा में अन्य किसी भाव से प्रेरित होकर नहीं लिखा है। हे प्रभु, मेरे मन में तो केवल धर्मयुद्ध का चाव है :

दसम कथा भागौत की भाषा करी बनाइ,
अवर वासना नाहिं प्रभु धरम जुद्ध की चाइ,

अपने एक सवैये में उन्होंने लिखा था—"जिस परम शक्ति ने सुंभ-निसुंभ जैसे करोड़ों निशाचरों का क्षण-भर में संहार कर दिया; धूम्रलोचन, चण्ड, मुण्ड और महिपासुर

को पल-भर में नष्ट कर दिया; चामर और रक्तबीज जैसे राक्षसों को झटककर दूर फेंक दिया; ऐसे स्वामी का सहारा पाकर भला मुझे किसकी परवाह है—

सुम्भ निसुम्भ से कोट निसाचर जाहि छिनेक बिखे हनि डारे।
धूमर लोचन चंड औ मुंड से माहष से पल बीच निवारे।।
चामर से रन चिच्छुर से रकतिछन से झट दै झझकारे।
ऐसो सु साहिबु पाइ कहा परबाह रही इस दास तिहारे।।

अपने उद्देश्य की प्राप्ति के लिए गुरु गोबिंद सिंह ने वीर-काव्य का सृजन किया और देश के अनेक भागों से आए अपने आश्रित कवियों से करवाया। उन्होंने प्राचीन ग्रंथों को जनभाषा में रूपांतरित किया और करवाया। चंडी, राम, कृष्ण तथा अन्य अवतार-कथाओं की रचना के पीछे उनका एक ही उद्देश्य था कि सदियों से दासता, निर्धनता और उत्पीड़न झेलती हुई जनता में उत्साह और वीरता की ऐसी ज्योति जगाई जाए जिससे वे अन्याय, अत्याचार और नित्य नए आक्रमणों का न केवल सामना कर सकें बल्कि उन्हें रणभूमि में परास्त कर सकें।

इस दृष्टि से दुर्गा की कथा ने उन्हें सबसे अधिक आकर्षित और प्रभावित किया। मार्कण्डेय पुराण में वर्णित चंडी की कथा को उन्होंने तीन बार जनभाषा में लिखा—दो बार बृज में और एक बार पंजाबी में। अवतार-कथाओं में उन भागों पर विशेष ध्यान दिया जिनमें युद्ध का विशेष वर्णन है। उदाहरण के लिए *रामावतार* रचना में कुल 864 छंद हैं। इनमें से 400 से अधिक में केवल युद्ध-चित्रण है।

लोगों में वीर-भाव का निर्माण करने के लिए आम जनता में उन दिनों प्रचलित नाम खैराती, फकीरा, घसीटा, निचकू, रुलदू, मंगतू आदि बदलकर उन्हें अजीत सिंह, जुझार सिंह, रणजीत सिंह, रणवीर सिंह, शेर सिंह, जोरावर सिंह, फतेह सिंह जैसे नाम दे दिए। उन्होंने केवल आम लोगों के ही नाम नहीं बदले, वरन् परमात्मा के भी वैष्णव परंपरा वाले कोमल नाम—हरि, बनवारी, गोपाल, केशव, माधव, वंशीधर, रणछोड़, रासबिहारी के स्थान पर काल, महाकाल, सर्वकाल, सर्वलोह, चक्रपाणि, असिपाणि, खड्गकेतु, दुष्टहंता, अरिदमन जैसे युद्ध-प्रकृति के नामों से पुकारा। शस्त्रधारी होना तो ईश्वर का विशेष गुण है ही स्वयं अस्त्र-शस्त्र ही ईश्वर के प्रतीक हैं। शस्त्रों की स्तुति में गुरु गोबिंद सिंह ने 'शस्त्रनाम माला' जैसे ग्रंथ की रचना की। *विचित्र नाटक* ग्रंथ का प्रारंभ ही वे खड्ग की स्तुति से करते हैं :

नमस्कार स्री खड्ग कउ करौ सुहित चित लाइ।
पूरन करौ गिरंथ इह तुम मोहि करहु सहाइ।

यहां यह बात ध्यान देने योग्य है कि इस देश में साधारणतः सभी विचारों एवं रसों के कवि अपने ग्रंथ की निर्विघ्न समाप्ति के लिए ज्ञान की अधिष्ठात्री देवी सरस्वती

की स्तुति करते आए हैं और वीणापाणि से ही इस प्रकार का वरदान मांगते रहे हैं। किंतु गुरु गोविंद सिंह ने इस कार्य के लिए खड्ग, खड्गपाणि अथवा भगवती का ही स्मरण किया है। एक अन्य छंद में कवि ने कालरूप तेग की स्तुति करते हुए कहा :

खग खंड विहंडं खल दल खंड अति रण मंडं बरबंडं।
भुजदंड अखडं तेज प्रचंडं जोति अमंडं भानु प्रभं।।
सुख संता करणं दुरमति दरणं किलबिख हरण असि सरनं।।
जै जै जग करण सृष्टि उबारण मन पति पारण जय तेगं।।

उनकी दृष्टि में शस्त्र भी शस्त्रधारी काल की भांति एकरूप एवं निर्विकार है :

नमो खड्ग खंड कृपाण कटारं।
सदा एक रूपं सदा निरविकारं।।

काल के रूप में उन्होंने ईश्वर के वीर रूप और उग्र रूप की प्रतिष्ठा की। डमरू बजाते हुए, फणिधर के समान फुफकारते, बाघ के समान दहाड़ते, दामिनी के समान हंसते, रक्त पीते हुए, अष्टायुध धारण किए, सिंह पर सवार अपनी दाढ़ में सभी को चबाते हुए भयावह रूप का चित्रण उनके साहित्य में अनेक स्थानों पर हुआ है। उदाहरणस्वरूप उनकी रचना *अकाल स्तुति* में काल का यह रूप द्रष्टव्य है :

डांवरू डवंकै बबर बवंकै भुजा फरंकै तेज बरं।
लंकुड़िया फाधै आयुध बांधै सैन विमदेन काल असुरं।।
अस्टायुध चमकै भूषण दमकै अति सित झमकै फूंक फणं।
जै जै होसी महिषासुर मर्दन रम्मक पर्दन दैत जिणं।।

गुरु गोविन्द सिंह की आत्मकथा *विचित्र नाटक* से काल के इस रौद्र रूप का उल्लेख मात्र उदाहरण के लिए प्रस्तुत है, अन्यथा ऐसे रूप-चित्रों का *दशम ग्रन्थ* में कोई अभाव नहीं है :

करं काम चापियं कृपाणं करालं।
महातेज तेज तेजं विराजै विसालं।।
महादाढ़ दाढ़ं सु सोह अपारं।
जिनै चरवीयं जीव जग्यं हजारं।।
डमा डम्म डमरू सितासेत छत्रं।
हहाहूह हासं झमा झम्म अत्रं।।
महाघोर सबदं बजै संख ऐसे।
प्रलैकाल के काल की ज्वाल जैसे।।

गुरु गोबिन्द सिंह के सम्मुख 'काल' के साकार रूप की कल्पना भी अस्त्रयुक्त है। जनता के सम्मुख ईश्वर का वंशी बजाने, गाएं चराने, माखन चुराने का रूप ही प्रमुख था। उन्होंने उसके सम्मुख खड्गपाणि, कृपाणपाणि, वाणपाणि, दण्डधारी, चक्रपाणि, असिपाणि, असिध्वज, खड्गकेतु, आदि अनेक वीररूप रखे।

युद्ध का दर्शन मृत्युभय के मुक्त हुए बिना सार्थक नहीं हो सकता। एक सैनिक यदि मृत्यु से डरेगा तो वह सैनिक-कर्म का ठीक से निर्वाह नहीं कर सकता। सच बात तो यह है कि भयमुक्त हुए बिना तो संसार में मात्र जीवित रहने के लिए जो संघर्ष करना पड़ता है वह भी सार्थक रूप से नहीं हो पाता। गुरु नानक ने इस सच को अपनी वाणी में उजागर करते हुए कहा था—यदि तुम जीवन-संग्राम रूपी प्रेम का खेल खेलना चाहते हो तो अपने सिर को हथेली पर रखकर मेरे पास आओ। इस मार्ग पर पैर बढ़ाने की शर्त यह है कि बिना किसी दुविधा के सिर अर्पित करना होगा :

जउ तउ प्रेम खेलण का चाउ।
सिरु धरि तली गली मेरी आउ।।
इतु मारगि पैर धरीजै।।
सिर दीजै काणि न कीजै।।

पांचवें गुरु गुरु अर्जुन देव ने भी कहा था—पहले मरना स्वीकार कर लो, जीवन की आशा छोड़ दो, सबके पैरों की धूल बन जाओ, तभी मेरे पास आओ :

पहिलां मरणि कबूल जीवन की छडि आस
होउ सभनि की रेणका तउ आउ हमारे पासि।

सिख गुरुओं के माध्यम से जिस बलिदानी परंपरा का निर्माण इस देश में हुआ उसमें दस में से तीन गुरु-गुरु अर्जुन, गुरु तेग बहादुर और स्वयं गुरु गोबिंद सिंह ने अपने जीवन की आहुति दी। गुरु गोबिंद सिंह के काव्य में ऐसी उक्तियों को कई बार दोहराया गया है जिसमें वे जीवन-संग्राम में युद्ध करते हुए मृत्यु का वरण करना चाहते हैं। *कृष्णावतार* में वे कहते हैं :

अब रीझकै देहु वहै हम कउ जोउ हउ बिनती कर जोर करौ।
जब आउ की अउध निदान बनै अति ही रन में तब जूझ मरौं।

इसी भाव को वे *चंडी चरित्र* में दोहराते हैं :

अरु सिख हौं अपने ही मन को इह लालच हउ गुन तउ उचरौ।
जब आव की अउध निदान बनै अति ही रन मै तब जूझ मरौं।

कृष्णावतार में इस भाव को इस प्रकार व्यक्त करते हैं :

सस्त्रन सिउ अति हीन भीतर जूझ मरौं कहि साच पतीजै।
संत सहाइ सदा जग माहि कृपा करि स्याम इई बरु दीजै।।

इसी रचना में वे करते हैं :

जूझ मरो रन मै तजि भै तुमते प्रभु स्याम इहै बरु पावै।

गुरु गोविंद सिंह ने एक ऐसा युद्ध दर्शन विकसित किया जिससे पीड़ित, दलित और निरीह तथा निरुपाय बना भीरु समाज अपनी कायरता त्याग कर, भयमुक्त होकर रणभूमि में जूझने की आकांक्षा लेकर समाज में फैले हुए छुआछूत, जात-पांत और ऊंच-नीच के भाव को तिलांजलि देकर, एक नए प्रकार के अनुशासन में ढलकर अपने समय की संसार की सबसे बड़ी राज-शक्ति को चुनौती देने के लिए उठ खड़ा हुआ। इसी दर्शन का प्रभाव था कि मात्र एक सदी में पूरा परिदृश्य बदल गया। हजारों वर्षों से उत्तर-पश्चिम की ओर से इस देश में अवाध गति से आती हुई आक्रांता शक्तियों का मार्ग अवरुद्ध ही नहीं हुआ, बल्कि उन्हें खदेड़कर देश से बाहर निकाल दिया गया।

गुरुवाणी

गुरु ग्रंथ साहब सिखों का मुख्य धार्मिक ग्रंथ है। यह ग्रंथ सिखों के साथ ही अन्य असंख्य लोगों का पूज्य ग्रंथ भी है जो गृहीत अर्थों में सिख नहीं है। पंजाब और सिंध की बहुत बड़ी जनसंख्या के अतिरिक्त देश के विभिन्न भागों में फैले हुए अगणित नानक पंथियों, उदासियों, रामरायियों, राधास्वामियों तथा अन्य सम्प्रदायों के मध्य भी वह समादृत है। इतना होते हुए भी गुरु ग्रंथ साहब में क्या है, इसका परिचय अधिक लोगों को नहीं है। सामान्यतः यही समझा जाता है कि यह सिखों का धर्म ग्रंथ है और इसमें सिख गुरुओं की वाणियां संगृहीत हैं। इसलिए गुरु ग्रंथ का संक्षिप्त परिचय यहां उपयुक्त रहेगा।

गुरु ग्रंथ साहब लगभग 1400 पृष्ठों का एक विशाल ग्रंथ हैं। पांचवें गुरु, श्री गुरु अर्जुन देव ने सन् 1604 में इसका संपादन कार्य पूरा किया था। *गुरु ग्रंथ साहब* में इनकी रचनाएं संग्रहीत हैं :

सिख गुरु

1. गुरु नानक देव, 2. गुरु अंगद देव, 3. गुरु अमर दास, 4. गुरु रामदास, 5. गुरु अर्जुन देव, 6. गुरु तेग़ बहादुर। इस ग्रंथ में गुरु तेग़ बहादुर की वाणी गुरु गोविंद सिंह ने सम्मिलित की थी।

भक्तगण

1. शेख फरीद, 2. जयदेव, 3. त्रिलोचन, 4. नामदेव, 5. सधना, 6. बैणी, 7. रामानंद, 8. कबीर, 9. रविदास, 10. पीपा, 11. सैण, 12. धन्ना, 13. भीखन, 14. परमानंद, 15. सूरदास।

भट्ट तथा अन्य कवि

1. मरदाना, 2. सुंदर दास, 3. सता और बलवंड, 4. कलसहार, 5. जालप, 6. कीरत, 7. भिक्खा, 8. सल्ह, 9. भल्ह, 10. गयंद, 11. मथुरा, 12. बल्ह, 13. हरिवंश, 14. नल्ह।

गुरु ग्रंथ साहिब में संकलित अधिकांश वाणी सिख गुरुओं की है, परंतु शेख फरीद, कबीर दास, रविदास, नामदेव आदि संतों-भक्तों की रचनाओं का बहुत बड़ा अंश इसमें संगृहीत किया गया है।

अनेक पक्षों से यह ग्रंथ संसार का अद्वितीय एवं अनोखा धर्म ग्रंथ हैं। इसमें 35 रचनाकारों की वाणियां संगृहीत हैं। कुछ एक प्राचीन प्रतियों में मीरा का भी एक पद है। इन रचनाकारों में हिंदू भी हैं और मुसलमान भी, उच्च वर्ण के संत भी हैं और तथाकथित नीच वर्ण के भी। बारहवीं शती के शेख फरीद (जन्म, 1173 ई.) और जयदेव (जन्म 1170 ई.) से लेकर सत्रहवीं सदी के गुरु तेग बहादुर (जन्म 1621 ई.) की लगभग 5 शताब्दियों की परिधि में फैले गुरुओं, संतों, सूफीओं और भट्टों की रचनाएं इस ग्रंथ में हैं। तत्कालीन भारत के अनेक धर्मों-जातियों का ही प्रतिनिधित्व इस ग्रंथ में नहीं हुआ, अपितु अनेक प्रांतों का भी हुआ। जयदेव बंगाल के थे, तो नामदेव, त्रिलोचन और परमानंद महाराष्ट्र के थे, सधना सिंध के थे, धन्ना राजस्थान के, सैन मध्यप्रदेश के, रामानंद, कबीर, रविदास, भीखन उत्तर प्रदेश के, शेख फरीद पश्चिमी पंजाब के तथा सभी गुरु केंद्रीय पंजाब के थे।

गुरु ग्रंथ साहिब की संपादकीय व्यवस्था इस प्रकार है। संपूर्ण वाणी 31 रागों में विभाजित है। पहले भाग में श्रद्धालुओं के नित्य पाठ (नितनेम) में आने वाली कुछ वाणियां हैं। इनमें जपुजी (गुरु नानक), रहरासि (गुरु नानक, गुरु रामदास और गुरु अर्जुन के पद) और सोहिला (गुरु नानक, गुरु रामदास और गुरु अर्जुनदेव के पद) है। ये रचनाएं प्रारंभ के तेरह पृष्ठों में हैं। श्रद्धालु जपुजी का पाठ प्रातःकाल, रहरासि का शाम को और सोहिला का रात को सोने से पहले करते हैं। इसके पश्चात् राग प्रारंभ होते हैं। यही इस ग्रंथ का मुख्य भाग है जो पृष्ठ 14 से प्रारंभ होकर पृष्ठ 1352 तक है। यह भाग 31 रागों में विभाजित है। *गुरु ग्रंथ साहब* की वाणी के गायन के लिए जिन रागों का निर्धारण किया गया है वे हैं :

1. सिरी, 2. माझ, 3. गउड़ी, 4. आसा, 5. गूजरी, 6. देव गंधारी, 7. बिहागड़ा, 8. बड़हंस, 9. सोरठि, 10. धनासरी, 11. जैतसिरी, 12. टोडी, 13. बैराड़ी, 14. तिलंग, 15. सूही, 16. बिलावल, 17. गोड, 18. रामकली, 19. नट नाराइन, 20. माली गउडी, 21. मारु, 22. तुखारी, 23. केदारा, 24. भैरउ, 25. बसंत, 26. सारंग, 27. मलार, 28. कानड़ा, 29. कलिआन, 30. प्रभाती, 31. जजैवंती। अंतिम भाग (पृष्ठ 1353 से 1430 तक) में फरीद, कबीर, गुरु नानक, गुरु अमरदास, गुरु रामदास, गुरु अर्जुन देव और गुरु

तेग बहादुर के कुछ श्लोक, 12 भट्ट कवियों के सवैये और रागमाला शामिल है। इससे यह स्पष्ट है कि *गुरु ग्रंथ साहब* का लगभग संपूर्ण कलेवर रागाश्रित वाणियों का है।

रागों में वाणी का क्रम

सामान्यतः प्रत्येक राग में वाणियों का क्रम इस प्रकार रखा गया है–

क–शवद (शव्द)

ख–असटपदीआ (अष्टपदियां)

ग–छंत (छंद)

घ–वार

च–अन्य भक्तों की वाणी

गुरु ग्रंथ साहिव में संगृहीत सभी सिख गुरुओं ने अपनी रचनाओं में 'नानक' कवि नाम का ही उपयोग किया है। इससे प्रायः भ्रम भी पैदा होता है। पद के अंत में नानक नाम देखकर यह अनुमान सहज ही लगा लिया जाता है कि यह रचना प्रथम गुरु श्री गुरु नानक देव की है। हिंदी साहित्य के अनेक ग्रंथों में अन्य गुरुओं की रचनाओं को गुरु नानक के नाम से उद्धृत किया गया है, उसके पीछे भी यही भ्रम काम करता है। *गुरु ग्रंथ साहिव* के संपादक गुरु अर्जुन देव ने इस वात का ध्यान रखा और प्रत्येक नानक (गुरु) की रचना के साथ महला एक, दो, तीन, चार, पांच, नौ, शीर्षक लगा दिया। उदाहरण के लिए *गुरु ग्रंथ साहिव* में प्रत्येक शवद का प्रारंभ इस प्रकार होता है :

सिरी रागु महला 1

\+ +

माझ महला 4

\+ +

गउडी महला 5

इसका अर्थ है यह पद 'सिरी राग' में निबद्ध है और इसके रचयिता प्रथम नानक हैं। इसी तरह यह पद माझ राग में है और इसके रचयिता चौथे नानक (गुरु रामदास) हैं : या यह पद 'गउडी राग' में है और यह पांचवे नानक (गुरु अर्जुन) रचित है :

गुरु ग्रंथ साहिब का विषय

गुरु ग्रंथ साहिब का स्वरूप प्रबंधात्मक नहीं है। यद्यपि इसमें संकलित कुछ रचनाएं प्रबंध-स्वरूप की हैं। परम सत्ता की स्तुति में आडम्बर और अहंकार रहित विशुद्ध प्रेम और विह्वल भाव से गाए हुए भजनों का संग्रह इस ग्रंथ में है। इसमें ज्ञान, कर्म और भक्ति का अद्भुत समन्वय है। मनुष्य को मिथ्याडंबरों, पाखंडों, अवनतिमूलक अंधविश्वासों, ऊंच-नीच के मनुष्यकृत भेदों से ऊपर उठकर उसमें प्रेम, समता, बंधुता और परमेश्वर में

अनन्य प्रीति पैदा कर चिरंतन आनंद की अनुभूति उत्पन्न करना ही इस ग्रंथ का मूल विषय है। सत्य, संतोष और विचार इन तीनों वस्तुओं का मानो एक पात्र में एकत्रीकरण हुआ है। इन्हें परमेश्वर के अमृत नाम रूपी रस में गूंथा गया है। इसका आस्वाद करने वाले जिज्ञासु का कल्याण निश्चित है। पांचवे गुरु, गुरु अर्जुन देव ने इस भाव को इस तरह व्यक्त किया है :

थाल विचि तिंनि वसूत पईओ, सतु संतोख वीचारो।।
अमृत नामु ठाकुर का पईओ, जिसका सभसु अधारो।।
जे को खावै जे को भुंचै तिसका होई उधारो।।
एह वसतु तजी नह जाई नित-नित रखु उरि धारो।।
तम संसारु चरन लगि तरीए सभु नानक ब्रह्म पसारो।।

परमात्मा की परिकल्पना

गुरु नानक तथा अन्य गुरु ईश्वर के निर्गुण और निराकार रूप के उपासक थे। वे अवतारवाद के समर्थक नहीं थे। वे उसे अजन्मा और अयोनि मानते थे, परंतु निर्गुण का अर्थ गुणहीन न होकर गुणातीत है, इसी प्रकार निराकार का अर्थ आकारहीनता के साथ ही साथ आकारातीत भी होता है अर्थात् उभय स्वरूप है। वह दोनों है और दोनों से परे है। गुरु नानक के सिध गोसटि (सिद्ध गोष्ठी) में कहा कि उसी परमसत्ता ने अव्यक्त निर्गुण से सगुण रूप को उत्पन्न किया–

अविगतो निरमाइलु उपजै
निरगुण ते सरगुण थीआ।।

गुरु अमरदास ने कहा कि परमात्मा स्वयं ही निर्गुण स्वरूप है और स्वयं ही सगुण स्वरूप है। जो इस तथ्य को पहचानता है, वही वास्तविक पंडित है :

निरगुण सरगुण आपे सोई।
सतु पछाणै सो पंडित होई।।

गुरु अर्जुन की अनेक उक्तियों में इसी तथ्य की पुष्टि की गई है–

तूं निरगुण तूं सरगुनी

\+ +

निरंकार आकार आपि निरगुण सरगुन एक है

\+ +

निरगुन आपि सरगुन भी ओही।
कला धारि जिनि सगली मोही।।

गुरु नानक ने अपनी सुप्रसिद्ध रचना 'जपुजी' के प्रारंभ में निम्नलिखित मूलमंत्र के द्वारा परमात्मा की परिकल्पना स्पष्ट की है :

एक ओंकार

ओंकार, सतिनामु करता पुरखु निरभउ निरवैरु
अकाल मूरति अजूनी सैंभ गुरु प्रसादि।

(वह एक है, उसका नाम सत्य है, वह सृष्टि का कर्त्ता है, वह सभी में व्याप्त है, वह भय मुक्त है, वह शत्रुता रहित है, वह काल रहित है, वह अजन्मा है, स्वयं से प्रकाशित है और गुरु की कृपा से उसका साक्षात्कार किया जाता है।)

गुरुवाणी में सर्वत्र परमात्मा के सर्वव्यापक, सर्वपोषक और सर्वरक्षक स्वरूप का वर्णन किया गया है :

चार कुंट चउदह भवन सगल विआपत राम
\+ + + + *(गउड़ी म. 5)*
सो अंतरि सो वाहरि अनंत
घटि घटि बिआपि रहिआ भगवंत

(गउड़ी म. 5)

वह सर्व शक्तिमान है, करण-कारण समर्थ है :

करण कारण समरथ प्रेम जो करे सो होई।
खिन महि थापि उथापदा तिस बिन नहि कोई।।

(वार जैतसरी म. 5)

जिस प्रकार वनस्पति में अग्नि और दूध में घी व्याप्त है, उसी तरह परमेश्वर की ज्योति ऊंच-नीच सब में पसरी हुई है :

सगल बनसपत महि बैसंतरु सगल दूध महि घीआ।।
ऊंच नींच महि जोत समाणी घटि घटि माधउ जीआ।।

(सोरठ म. 5)

सृष्टि रचना

गुरुवाणी में परमात्मा को ही सृष्टि का कर्त्ता और कारण माना गया है। परमात्मा के अस्तित्व से ही सारी सृष्टि दृश्य रूप में प्रकट हुई :

आपीन्है आपु साजिओ आपीन्है रचिओ नाउ

(वार आसा म. 1)

गुरु अमरदास ने लिखा है कि परमात्मा स्वयं ही सृष्टि का कारण और कर्त्ता है। वही सृष्टि की रचना करता है और फिर स्वयं उसे देखता है। परमात्मा सभी में व्याप्त है, फिर भी अलक्ष्य है :

आपे कारण करता करे सृष्टि देखे आपि उपाई।
सभ एको इकू बरतदा, अलखु न लखिआ जाई।।

(सिरी रागु म. 3)

सिख धर्म की मान्यता है कि सृष्टि की उत्पत्ति हुक्म से होती है। गुरु नानक ने कहा कि प्रत्येक वस्तु उसी के भीतर है, उसके बाहर कुछ भी नहीं। उस 'हुकम' को यदि कोई भलीभांति समझ सके तो फिर उसे अपने को भिन्न सिद्ध करने वाले, अहंकार का बोध नहीं होता :

हुकमै अंदरि सभु को बाहरि हुकम न कोई।।
नानक हुकमै जे बुझै, त हउमै कहै न कोई।।

(जपुजी)

इसलिए परमात्मा के 'हुकम' से ही सभी आकार निर्मित होते हैं। उस 'हुकम' का वर्णन भी नहीं किया जा सकता। उसके 'हुकम' से जीव उत्पन्न होते है और उसी 'हुकम' से उन्हें मान-सम्मान प्राप्त होता है :

हुकमी होवनि आकार हुकमु न कहिआ जाई।
हुकमी होवनि जीअ हुकमि मिलै वडिआई।

(जपुजी)

अर्थात सभी प्रकार की आकार सृष्टि उस एक परमात्मा के 'हुकम' से होती है। उसके 'हुकम' के संबंध में कोई कुछ नहीं कह सकता। 'हुकम' से जीवों को अस्तित्व प्राप्त होता है, 'हुकम' से ही उन्हें बड़ाई (जीवन की सार्थकता) प्राप्त होती है। गुरु अर्जुन देव ने इसी भाव की पुष्टि करते हुए कहा है :

हुकमे धारि अधर रहावै
हुकमे उपजै हुकमि समावै

(सुखमनी)

अर्थात् परमात्मा ने संपूर्ण सृष्टि को अपनी आज्ञा में धारण किया और फिर विना

किसी (दृश्य) आधार के उसे टिका रखा है। सब कुछ उसी के हुकम से उत्पन्न होता है और अंत में उसी के 'हुकम' में समा जाता है।

परमात्मा के 'हुकम' से ही सृष्टि का निर्माण होता है आर वह स्वयं इस संपूर्ण दृश्य-अदृश्य सृष्टि में पसरा हुआ है। गुरु अर्जुन देव संपूर्ण सृष्टि को परमात्मा का ही स्वरूप मानते हैं :

तूं पेड़ साख तेरी फूली। तू सूखमु होआ असथूली।।
तूं जलिनिधि तूं फेनु बुदबुदा तुधु बिनु अवरु न भालीऐ जीउ।।
तूं सूतु मणीए भी तूं है तू गंठी मेरु सिरि तूं है।
आदि मधि अंति प्रभु सोई अवरु न कोई दिखालीऐ जीउ।। 2 ।।

अर्थात तू (परमात्मा) पेड़ है, तेरी सृष्टि रूपी पुष्पित शाखाएं भी तुझी से हैं। तू सूक्ष्म है जो सृष्टि के रूप धारण किए हुए हैं। तू ही समुद्र है, तू ही उसका फेन और बुलबुला है। तुम्हारे अतिरिक्त और किसी की मुझे तलाश नहीं है। तू ही सूत है और तू ही माला की गुरिया है, तू माला की गांठ है और तू ही समेरु है। हे प्रभु, सृष्टि के आदि, मध्य और अंत में तू ही व्याप्त है। मुझे कोई और दिखाई ही नहीं देता।

सृष्टि रचना एक रहस्य है। इस रहस्य को प्रभु ही जानता है। गुरु अर्जुन देव के शब्दों में :

नानक करते की जाने करता रचना

(सुखमनी)

गुरु नानक ने 'जपुजी' में अपनी जिज्ञासा व्यक्त करते हुए कहा—"सृष्टि की रचना किस समय, किस वक्त, किस तिथि को, किस वार, किस ऋतु, महीने में हुई? पंडितों को उस समय का ज्ञान नहीं, जिसमें वे पुराणों में उसका उल्लेख कर सकते। काज़िओं को उस वक्त का पता नहीं, इसलिए कुरान में इस संबंध में कुछ लिखा नहीं है। योगी भी सृष्टि की रचना की तिथि और वार को नहीं जानते। अन्य किसी को भी इस रचना की ऋतु और मास का पता नहीं। जिस कर्ता (परमेश्वर) ने इस सृष्टि की रचना की है, वही इसे जानता है।'

गुरु ग्रंथ साहिब में स्थान-स्थान पर कहा गया है कि जिस परमात्मा से सृष्टि की उत्पति होती है, अंत में उसी में सब कुछ विलीन होता है :

जिस ते उपजै तिसते बिनसे घटि घटि सचु भरपूरि।
आपे मेलि मिलावही साचै महलि हदूरि।।

सृष्टि की अनंतता के संबंध में आज के वैज्ञानिक अनुसंधानों ने अपना मत प्रकट किया है। गुरु ग्रंथ साहब में इस अनंतता की चर्चा अनेक स्थानों पर की गई है। जपुजी

में गुरु नानक कहते है :

असंख नाव असंख थाव।
अगम अगम असंख लोअ।।
\+ + +
पाताला पाताल लख आगासा आगास

ब्रह्म को सत्य और उसकी रचना को मिथ्या मानने पर वहुत-सा आग्रह इस देश में किया गया है। अद्वैत वेदांत में इन प्रश्नों पर वार-वार विचार हुआ है कि माया भ्रम है, मिथ्या है या सत् है? यह ब्रह्म से भिन्न है या अभिन्न। यह मानते हुए भी माया ईश्वर की शक्ति है जिसके माध्यम से ईश्वर अनंत रूपात्मक जगत की सृष्टि करता है। वेदांतियों ने माया और जगत का निरंतर तिरस्कार किया और बार-बार इसे मिथ्या कहा। इसका परिणाम यह भी हुआ कि 'मिथ्या संसार' के दायित्वों के प्रति भी लोग उदासीन होने लगे और प्रत्यक्ष जीवन और जगत के प्रति निरासक्ति का भाव वढ़ने लगा जो इस देश की अनेक व्याधियों का कारण बना।

गुरु ग्रंथ साहव में जगत को मिथ्या नहीं माना गया और न ही इसे भ्रम कहा गया है। परमात्मा सच है और उसकी रचना भी सच है :

सचे तेरे खंड सचे ब्रह्मंड
सचे तेरे लोअ सचे आकार।।
सचे तेरे करणे सरव वीचार।।

(वार आसा महला, पृष्ठ 463)

'आसा दी वार' में गुरु नानक ने स्पष्ट कहा है कि यह संसार सच्चे (परमात्मा) की कोठरी है और इसमें सच्चे (परमात्मा) का निवास है :

इहु जगु सचै की है कोठड़ी
सचै का विचि वासु।।

परंतु *गुरु ग्रंथ साहिब* में ऐसी उक्तियों की भी कमी नहीं जहां संसार को स्वप्नवत्[2], जल के बुदवुदे के समान[3], जल के फेन के सदृश[4], मृगतृष्णा की तरह[5], बालू की दीवार, के समान या विष के समुद्र की तरह माना गया है।

परंतु यह किसी प्रकार का अंतर्विरोध नहीं है। सिख गुरुओं ने इस संसार को कर्मभूमि माना है। वह कर्म करते हुए, सांसारिक दायित्वों का पालन करते हुए, आसक्ति में निरासक्त जीवन जीने के हामी हैं। गुरु नानक का कथन है :

जैसे जल महि कमल निरालामु मुरगाई नैसाणे
सुरति सबदि भव सागर तरीऐ नानक नामु बखाणे।

(गुरु ग्रंथ साहब, पृष्ठ 638)

यह संसार कर्मभूमि के रूप में, परमेश्वर की आत्मसृष्टि के रूप में सच है, परंतु जो लोग इस संसार के भोगों को ही अंतिम सच मान बैठते हैं, उनके लिए भोगयुक्त संसार की असारता की बात स्थान-स्थान पर कही गई है।[6]

माया

वह शक्ति जो व्यक्ति को संसार में अपने अस्तित्व की सार्थक दिशा से भटकाकर पथभ्रष्ट करती है, माया है। भारतीय दर्शन में माया पर बहुत विचार किया गया है। शंकराचार्य के दर्शन में माया और अविद्या को समानार्थक माना गया है और उसकी शक्तियों का वर्णन किया गया है—प्रथम आवरण शक्ति जिसके द्वारा माया ब्रह्म के वास्तविक स्वरूप को आच्छादित कर देती है और द्वितीय विक्षेप शक्ति जिसके द्वारा माया अद्वैत ब्रह्म के स्थान पर नाना रूपात्मक जगत को उत्पन्न करती है।

शंकर के बाद के वेदांती माया को ब्रह्म की भावात्मक शक्ति मानते हैं तथा अविद्या को अभावात्मक शक्ति के रूप में मानते हैं, परंतु माया के स्वरूप की लेकर स्वयं वेदांतियों में अनेक मतभेद रहे हैं।

गुरु ग्रंथ साहब में माया का स्वतंत्र अस्तित्व स्वीकार नहीं किया गया, उसे परमात्मा के 'हुकम' से उत्पन्न माना गया है :

निरंकारिक आकारु उपइआ
माइआ मोहु हुकमि बजाइआ

अर्थात् उस निराकार सत्ता ने ही दृश्यमान आकार स्वरूप को रचना की है। उसके 'हुकम' से ही माया-मोह की रचना हुई है।

गुरु नानक ने एक स्थान पर लिखा है—'वह निरंजन' (माया से रहित प्रभु) आप ही आप हैं और उसी ने अपने आपको (सृष्टि के रूप में) उत्पन्न किया है। उसने स्वयं जगत रूपी खेल की रचना की है। उस प्रभु ने ही सत् रज, तम त्रिगुणों की रचना की और माया-मोह की वृद्धि की :

आपे आप निरंजना जिनि आपु उपाइआ।
आपे खेलु रचाइओनु सभु जगतु सवाइआ।।
त्रैगुण आपि सिरजिअनु माइआ मोह बधाइआ।।

(गुरु ग्रंथ साहब, पृष्ठ, 1237)

यह ठीक है कि माया की रचना भी प्रभु द्वारा हुई, क्योंकि वह तो सर्व रचनाशील है, परंतु माया के बंधन से उबरकर प्रभु-सानिध्य मिल सकता है। इसी पद की अगली दो पंक्तियों में गुरु नानक कहते हैं :

गुरु परसादी उबरे जिन भाणा भाइया।।
नानक सच वरतदा सभ सचि समाइआ।।

(गुरु ग्रंथ साहब, पृष्ठ, 1237)

(जो गुरु के प्रसाद से परमात्मा की इच्छा को समझने में समर्थ हो गए, वे उबर गए। परमात्मा रूपी सच सभी में समाहित है और सर्वत्र घटित है।)

माया की असीम शक्ति को सभी मानते हैं। वह भटका देती है, मन में दुविधा उत्पन्न कर देती है, पर यदि सही मार्गदर्शक (गुरु) मिल जाए तो दुविधा मिट जाती है और मुक्ति का द्वार खुल जाता है :

विनु गुरु मुकति न पाईए
ना दुविधा माइआ जाइ।

माया के विविध रूपों में—काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार—इन पांचों भावों की हमारे देश के धार्मिक परिवेश में बहुत चर्चा हुई है। *गुरु ग्रंथ साहब* में भी कहा गया है कि इन पांच दूतों ने सारे संसार को अपने मोहपाश में जकड़ रखा है :

पंच दूत मुहहि संसार

(गुरु ग्रंथ साहब, पृष्ठ, 113)

हउमै (अहंकार)

गुरु ग्रंथ साहब में अनेक स्थानों पर इन पांच विकारों की चर्चा हुई है परंतु 'हउमै' (अहंकार) की चर्चा सबसे अधिक है। अन्य विकार (काम, क्रोध, लोभ और मोह) संभवतः इतने आयामी नहीं हैं, जितना अहंकार है। इस बहु आयामी विकार को गुरुओं ने परमपद की प्राप्ति में सबसे बड़ी बाधा माना है।

गुरुओं ने अहंकार के लिए 'हउमै' शब्द का प्रयोग किया है। जहां 'हउमै' है वहां सत्य का साक्षात्कार नहीं हो सकता। 'नाम' सत्य से साक्षात्कार का प्रतीक है, परन्तु हउमै से उसका विरोध है, दोनों एक साथ नहीं रह सकते :

हउमै नावै नालि विरोध है
दुई ना बसहि इक ठाइ

(गुरु ग्रंथ साहब, पृष्ठ 560)

संत कबीर ने भी कहा है :
जब मैं था तब हरि नहीं, जब हरि है मैं नाहिं।
प्रेम गली अति सांकरी, या में दो न समाहि।

परमात्मा हमारे ही अंदर है, परन्तु वह दिखाई नहीं देता क्योंकि हउमै का पर्दा बीच में पड़ा हुआ है। हउमै के कारण ही माया-मोह के वशीभूत हो सारा जगत अज्ञान की निद्रा में सो रहा है। इस भ्रम की निवृति कैसे हो। परमात्मा और जीव एक ही साथ एक ही घर में रहते हैं, परन्तु दोनों परस्पर न मिलते हैं न बात करते हैं। एक वस्तु (नाम) के बिना पांचों ज्ञानेन्द्रियां दुःखी हैं और वह वस्तु अगोचर स्थान में है :

अंतरि अलखु न जाई लखिआ विचि पड़दा हउमै पाई।
माइआ मोहि सभी जगु तोइआ इहु भरम कहहु किउ जाई।
एका संगति इकतु गृहि बसते, मिलि बात न करते भाई।
एक बसतु बिनु, पंच दुहेले ओह बसतु अगोचर ठाई।
(गुरु ग्रंथ साहब, पृष्ठ 205)

गुरु रामदास कहते हैं कि स्त्री रूपी जीवात्मा और पुरुष रूपी परमात्मा साथ-साथ रहते हैं, परंतु नारी अपने पति से मिल नहीं पाती क्योंकि हउमै की कठिन भीति दोनों के बीच खड़ी हुई है :

धन पिउ का इक ही संगि वासा
विचि हउमै भीति करारी
(*गुरु ग्रंथ साहब*, पृष्ठ 1263)

गुरुओं ने बार-बार कहा है कि हउमै एक बहुत बड़ा रोग है :
हउमै बड़ा रोगु है, सिरि भार जमकालि।
(गुरु ग्रंथ साहब, पृष्ठ 1258)

हउमैं बड़ा रोगु है मरि जैसे आवै जाइ।
\+ + + *(गुरु ग्रंथ साहब, पृष्ठ 562)*
हउमै रोगी सभु जगत विआपिआ
तनि कउ जनम मरण दुखु भारी। (गुरु ग्रंथ साहब, पृष्ठ 735)
\+ + +
नानक हउमै रोग बुरे
\+ + + *(गुरु ग्रंथ साहब, पृष्ठ 1153)*

हउमै दीरघु रोगु है दारु भी इस माहि (गुरु ग्रंथ साहब, पृष्ठ 466)

हउमै बहुआयामी रोग है। व्यक्ति अनेक प्रकार के अहंकार रूपों में ग्रसित हो जाता है अथवा ग्रसित हो जाने की संभावना बराबर बनी रहती है। यह अहंकार अपनी साधना का हो सकता है, विद्या का हो सकता है, तर्क बुद्धि का हो सकता है, जाति का हो सकता है। हमारे देश में विद्या का अहंकार बहुत व्यापक रहा है। पढ़ना और फिर वाद-विवाद द्वारा अपने पांडित्य का प्रदर्शन करना भारतीय विद्वानों का विशिष्ट गुण रहा है। गुरु अमरदास ने एक स्थान पर कहा है :

पंडित पड़ि पड़ि वादु बखाणाहि
बिनु गुर भरमि भुलाने।

(पंडित लोग पढ़-पढ़कर वाद-विवाद में पड़े रहते हैं। गुरु के अभाव में अपने पांडित्य के भ्रम में सत्य को भूले हुए हैं)

गुरु नानक ने पांडित्य के अहंकारियों के लिए कहा था :

पड़ीए जैती आरजा पड़ीअहि जेते सास।
नानक लेखे इक गल होरु हउमै झखणा झाख।।

(चाहे संपूर्ण आयु पढ़ा जाए, चाहे अपनी हर सांस में पढ़ा जाए, परंतु यदि एक बात, सत्य की समझ उत्पन्न नहीं हुई तो शेष अहंकार सिर खपाई के अतिरिक्त कुछ नहीं)

इसलिए गुरुवाणी में कहा गया है कि ब्राह्मण (या पंडित) वह है जो ब्रह्म को पहचानता है, जो दिन-रात हरि नाम में डूबा रहता है, सद्गुरु के निर्देश में चलता है, सच और संयम को अर्जित करता है। ऐसा ब्राह्मण अहंकार रूपी रोग से मुक्त हो जाता है:

ब्रह्मु बिंदे सो ब्राह्मण कहीऐ जि
अनदिनु हरि लिव लाए।
सतिगुर पूछै सचु संजमु कमावै
हउमै रोगु तिसु जाए।।

(गुरु ग्रंथ साहब, पृ. 512)

जाति के अहंकार का *गुरुवाणी* में स्थान-स्थान पर निषेध किया गया है :

जाति का गरबु न करीअहि कोई।।
ब्रह्म बिंदे सो ब्राह्मण होई।।
जाति का गरबु न करि मूरख गवारा।।
इसु गरब ते चलहि बहुत विकारा।।

धन-संपत्ति और रूप-यौवन संबंधी अहंकार की चर्चा करते हुए *गुरुवाणी* में कहा

गया है कि राज-पाट, गृहशोभा, रूप-जवानी, धन-दौलत, हाथी-घोड़े आदि सबकी प्राप्ति का अभिमान यहीं रह जाएगा, आगे किसी काम नहीं आएगा :

राज मिलक जोबन गृह सोभा रूपवंत जोआनी।
बहुत दरबु हसती अरु घोड़े लाख-लाख बेआनी।।
आगै दरगहि कामि न आवै छोडि जलै अभिमानी।।

गुरु नानक कहते हैं—राज, माल, रूप, जाति और यौवन ये पांच बड़े शक्तिशाली ठग हैं। इन ठगों से संपूर्ण संसार को ठग लिया है, इन्होंने किसी की लाज नहीं रखी :

राजु मालु रूपु जाति जोबनु पंजे ठग
एनी ठगों जगु ठगिआ किने न रखी लज।।

(*गुरु ग्रंथ साहब,* पृष्ठ 1288)

गुरु अर्जुन देव ने अपनी रचना सुखमनी में कहा है कि जिनके अंदर राज्य का अभिमान है, वह नरक का कुत्ता होता है, जिसे अपने यौवन का अभिमान है वह व्यक्ति बिष्ठा का कीड़ा बनता है, जिसे अपने कर्मों का अभिमान है, वह अनेक योनियों में भ्रमण करता हुआ बार-बार जन्मता और मरता है, जिसे अपने धन या भूमि का गर्व है, वह मूर्ख, अंधा और अज्ञानी है। धन प्राप्त करके जो अभिमान करता है तिनके की तरह उसके साथ कुछ भी नहीं जाता। जिसे अपनी फौज या अपने आदमियों का बहुत अभिमान है, उसका पल भर में विनाश हो जाता है, जिसे अपने बलवान होने का गर्व है, वह क्षण मात्र में खाक हो जाता है। जो अपने अहंकार के सामने किसी को कुछ नहीं समझता, उसे धर्मराज के हाथों दुर्गति प्राप्त होती है। गुरु की कृपा से जिसका अभिमान नष्ट हो जाता है, वही व्यक्ति परमात्मा के द्वार पर स्वीकार किया जाता है :

जिसके अंतरि राज अभिमानु
सो नरक पाती होवत सुआन।
जो जानै मैं जोबन वंतु।
सो होवत बिसटा का जंतु।।
आपस कउ करमवंत कहावै।
जनमि मरै बहु जोनि भ्रमावै।।
धन भूमि का जो करै गुमानु।
सो मूरख अंधा अगिआनु।।
करि किरपा जिस के हिरदै गरीबी बसावै।।
नानक ईहा मुकतु आगै सुखु पावै।।
धनवंता होइ करि गरबाबै।

तृण समानि कछु संगि न जावै।।
बहु लश्कर मानुख ऊपर करे आस।
पल भीतर ते का होई विनास।।
सभ ते आप जानै बलवंतु।
खिन गहि होइ जाइ भसमंतु।।
किसै न वदै आपि अहंकारी।।
धरम राइ तिसु करे खुआरी।।
गुर प्रसादि जा का मिटै अभिमानु।।
सो जनु नानक दरगह परवानु

(*गुरु ग्रंथ साहब*, पृष्ठ 278)

वास्तविकता तो यह है कि अहंकारी मूल बात को समझ ही नहीं सकता, उसे अपने आप की समझ भी नहीं होती और वह सदैव भ्रमित रहता है :

मूलु न बुझै आपु न सूझै भरमि विआपी अहंमनी

(गुरु ग्रंथ साहब, पृष्ठ 1186)

जब तक हमारा मन हउमैं और अहंकार की लहरों में हिचकोले खा रहा है, तब तक 'सबद' का स्वाद नहीं आ सकता और न ही परमात्मा के नाम के साथ प्यार उत्पन्न हो सकता है।[7]

संत कबीर ने एक स्थान पर कहा है कि मोक्ष का द्वार बहुत संकरा है, राई के दाने से भी छोटा है। इस मार्ग से मेरा स्थूल मन किस प्रकार निकल सकेगा।[8]

गुरु अमरदास ने इसी संदर्भ में अपना मत व्यक्त करते हुए कहा कि मोक्ष का द्वार बहुत छोटा है, इसमें से कोई विरला ही निकल सकता है। अहंकार के कारण मन स्थूल हो गया है, इसलिए वह इतनी तंग राह से कैसे जा सकता है, परंतु इस मन की स्थूलता का उपाय भी है। सतगुरु के मिलने से अहंकार चला जाता है, उसमें सत्य की ज्योति प्रकाशित हो जाती है। ऐसा जीव सदैव मुक्त है। सहज ढंग से वह मुक्ति द्वार में प्रवेश पा सकता है।[9]

हउमैं से बचने का उपाय क्या है? *गुरुवाणी* कहती है कि अहंकार को दूर करने और सच के पहचान की पहली आवश्यकता 'सद्गुरु' की प्राप्ति है :

नानक सतगुरि मिलीऐ हउमै गई,
ता सचु वसिआ मन आइ।
सब कमावै सचि रहे, सचे सेवि समाइ।।

सही मार्गदर्शक के मिलते ही अहंकार से मुक्ति की प्रक्रिया प्रारंभ हो जाती है।

गुरु अर्जुन देव स्वयं इस प्रश्न को उभारते हैं—हे संतों, कोई ऐसा उपाय बताओ जिससे हउमै और गर्व का निवारण हो सके।[10]

वे स्वयं ही इस प्रश्न का उत्तर देते हैं। अहंकार नाश के लिए आवश्यक है कि व्यक्ति सर्वत्र परमात्मा के अस्तित्व को अनुभव करे, अपने आपको सबकी धूल समझने की विनीत दृष्टि का विकास करे, प्रभु को सदा अपने निकट समझे, सभी रोगों को औषधि 'नाम' निर्मल जल अमृत को गुरु के द्वार से प्राप्ति करे।[11]

गुरुवाणी कहती है कि बिना 'सबद' (शब्द) के न तो भ्रम नष्ट होता है, न व्यक्ति के मन से अहंकार दूर होता है :

बिनु सबदै भरमु न चूकई ना विचहु हउमै जाइ।।

(गुरु ग्रंथ साहब, पृष्ठ 67)

इसलिए अहंकार को मारने के लिए और माया के भ्रम से मुक्त होने के लिए 'सबद' का सहारा लेना आवश्यक है :

सबदै हउमै मारीऐ माइआ का भ्रमु जाइ।।

(गुरु ग्रंथ साहब, पृष्ठ 67)

इस प्रकार अहंकार के नाश होने से विचार की प्राप्ति होती है, सच का आधार प्राप्त होता है और ईश्वर में मन पूरी तरह रम जाता है।[12]

अहंकार नष्ट होते ही व्यक्ति की मति में स्थिरता आ जाती है और उसे शाश्वत शांति की प्राप्ति होती है।

तिसु जन सांति सदा मति निहचल,
जिसका अभिमानु गवाए।

(*गुरु ग्रंथ साहब,* पृष्ठ 491)

जीव और ब्रह्म की अभेदता के सिद्धांत को गुरुवाणी में पूरी तरह स्वीकार किया गया है :

हरि हरिजन दुई एक हैं बिंब विचार कछु नाहिं।
जल ते ऊपजै तरंग जिउं जल ही बिखै समाहि।।

जैसे जल की तरंग जल से निकलकर जल में समा जाती है, वैसे ही जीव परब्रह्म से उपजता है और उसी में समा जाता है।

गुरु नानक कहते हैं कि सभी प्राणियों में एक परमात्मा की ज्योति ही व्याप्त है। उसी के प्रकाश से सब कुछ प्रकाशित हो रहा है :

सभ महि जोति जोति है सोई।।
तिसदै चानणि सभ महि चानणु होई।।

परंतु इस अभेदत्व की पहचान जीव क्यों नहीं कर पाता? जीव और ब्रह्म के बीच माया और अहंकार का पर्दा पड़ा हुआ है। गुरु की प्राप्ति से भ्रम की निवृत्ति होती है। अहंभाव नष्ट होते ही व्यक्ति का 'स्व' वृहत्तर 'स्व' में विलीन हो जाता है और जीव तथा परमात्मा एक रूप, एक रंग हो जाते हैं :

अभेदत्व की स्थिति में जीव और परमात्मा एक रूप हो जाते हैं। हरि और हरिजन में कोई अंतर नहीं रहता। गुरु तेग बहादुर कहते हैं :

जो प्रानी निसि दिनि भजे रूप राम तिह जानु।
हरि जनि हरि अंतर नहीं नानक साची मानु।।

\+ \+ \+

जिह घटि सिमरनु राम को सो नरु मुकता जानु।
तिह नर हरि अंतरु नहीं नानक साची मानु।।

(गुरु ग्रंथ साहब, पृ. 1428)

गुरु

हम किछु नाहीं एकै ओही। आगै पीछे उको सोई।।
नानक गुरि खोए भ्रम भंगा। हम ओह मिलि होवें इक रंगा।।

(गुरु ग्रंथ साहब, पृ. 362)

गुरुवाणी गुरु के मुख से निसृत वाणी है। गुरु और वाणी अनुपूरक हैं, एक रूप हैं और अभेद हैं, इसलिए गुरु वाणी है और वाणी गुरु है। कहा भी गया है :

वाणी गुरु गुरु है बाणी बिचि बाणी अमृत सारे।।
गुरुबाणी कहै सेवकु जनु मानै परतखि गुरु निसतारे।।

ज्ञान प्राप्ति के लिए गुरु की अनिवार्यता और महत्ता पर संपूर्ण भारतीय साहित्य में बहुत कुछ कहा गया है। मध्ययुगीन संतों की वाणी में गुरु को गोबिंद के समान कहा गया है[13] और कहीं-कहीं तो गुरु को गोबिंद की अपेक्षा इसलिए प्राथमिकता दी गई है, क्योंकि गुरु की कृपा से गोबिंद की अनुभूति होती है।[14]

परंतु एक धर्म मत के रूप में सिखों में गुरु की जितनी महत्ता और प्रतिष्ठा है उतनी शायद ही कहीं और हो। पांचवे गुरु, गुरु अर्जुन देव द्वारा संपादित ग्रंथ को दस गुरुओं के पश्चात् गुरु पद आसीन कर देने का जो कार्य गुरु गोविंद सिंह ने किया, उससे भी इस गुरु-संस्था की महत्ता पुष्ट होती है।

सिख समाज में आज गुरु शब्द का वही स्थान है जो प्राचीन धर्म साहित्य में अवतार शब्द का है। गुरुमत में गुरु शब्द उस सत्पुरुष के लिए इस्तेमाल हुआ है जो अकाल पुरुष प्रेरित हो और विशिष्ट कार्य को संपन्न करने के लिए संसार में आया हो। गुरु नानक देव एक ऐसी ही विभूति थे। अन्य नौ सिख गुरुओं के लिए तो उनके पूर्व गुरु ही गुरु थे और गुरु नानक देव आदि गुरु थे, परंतु गुरु नानक का गुरु कौन था? गुरु नानक देव ने कहा है कि मेरा गुरु तो स्वयं अपरंपार पारब्रह्म परमेश्वर है :

ततु निरंजनु जोति सबाई सोहं भेदु न कोई जोउ।।
अपरंपर पारब्रह्म परमेसरु, नानक गुर मिलिआ सोई जीउ।।

(गुरु ग्रंथ साहब, पृ. 566)

गुरुवाणी में ऐसे अनेक संकेत हैं जहां परब्रह्म परमेश्वर ही गुरु है। गुरु अर्जुन देव ने भी लिखा है कि मेरा गुरु तो परब्रह्म है, उसी का हृदय में ध्यान रखना चाहिए :

गुरु मेरा परब्रह्म परमेसुरु
ताका हिरदै धरि मन धिआनु।।

(गुरु ग्रंथ साहब, पृ. 827)

इसी प्रसंग में वे कहते हैं कि गुरु और परमेश्वर को एक ही रूप जानो। उसे जो अच्छा लगता है, वही स्वीकार है :

गुरु परमेसुर एको जाणु
जो तिसु भावै सो परवाणु।

(गुरु ग्रंथ साहब, पृ. 864)

एक अन्य स्थान पर गुरु अर्जुन देव कहते हैं—परब्रह्म परमेश्वर सद्गुरु ने सभी जीव-जंतुओं को अपने वश में कर रखा है :

पारब्रह्म परमेसुर सतिगुर बसि कीने जिनि सगले जंत

(*गुरु ग्रंथ साहब*, पृ. 827)

परंतु ऐसे गुरु की खोज कैसे हो जो परमेश्वर के समकक्ष या उससे एक रूप हो। गुरु अमरदास कहते हैं कि :

ए मन ऐसा सतिगुरु खोजि लहु
जितु सेविऐ जनम मरण दुखु जाह
कूड़ै की पालि विचहु निकले,
सचु वसै मनि आइ।।

(गुरु ग्रंथ साहब, पृ. 561)

(रे मन, ऐसा सद्गुरु खोज लो, जिसकी सेवा से जन्म-मरण का दुख चला जाए, बीच से झूठ का पर्दा हट जाए और मन में सच आकर बस जाए।)

गुरु नानक कहते हैं कि गुरु उसे बनाओ जो हृदय में सच्चाई को दृढ़ कराता है, अकथनीय परमात्मा का कथन करता है, शब्द ब्रह्म से मिलाप कराता है।[15]

गुरु रामदास कहते हैं कि जिसे मिलने से मन में आनंद उत्पन्न हो उसे सद्गुरु कहना चाहिए। ऐसे व्यक्ति से मिलने पर मन की दुविधा नष्ट हो जाती है और हरि से सानिध्य का परमपद प्राप्त होता है।[16]

गुरु अर्जुन देव कहते हैं कि यदि ऐसा गुरु मिल जाए तो मनुष्य जीवन की संपूर्ण युक्ति की पूर्ति हो जाती हैं। हंसते, खेलते, पहनते, खाते हुए अर्थात् सभी प्रकार के सांसारिक दायित्वों को पालन करते हुए मनुष्य की मुक्ति हो जाती है।[17]

परंतु ऐसा गुरु भी तो ईश्वर की कृपा से ही मिलता है। *गुरुवाणी* में स्थान-स्थान पर कहा गया है कि परमात्मा की अलौकिक कृपा से ही सद्गुरु की प्राप्ति होती है :

पूरे भागि सतिगुरु पाईऐ
जे हरि प्रभु बखस करेइ (पृ. 851)
\+ + +
नदरि करे ता गुरु मिलाए (पृ. 1054)
\+ + +
आपा दइआ करे प्रभु दाता सतिगुरु पुरखु मिलाए (पृ. 773)

गुरुवाणी में स्थान-स्थान पर पाखंडी गुरुओं और आगुओं से सतर्क रहने का भी निर्देश है। गुरु की इतनी महत्ता देखकर अनेक ढोंगी व्यक्ति अपने आप को 'गुरु' घोषित करने लगते हैं। वे स्वयं तो डूबते ही हैं, अपने अनुयायियों को भी डुबो देते हैं। गुरु नानक कहते हैं—जिस व्यक्ति में कुछ है नहीं, वह क्या उपदेश देगा, क्या दिखाएगा। जिसके

क्रिया-कर्म, बोलचाल गंदगी से भरे हुए हैं ऐसा गुरु स्वयं तो कुछ समझता नहीं पर लोगों को समझाता घूमता है। जो स्वयं अंधा है, वह औरों को रास्ता दिखाता है। ऐसा व्यक्ति सभी को डुबो देता है। आगे चलकर उसके मुंह पर मार पड़ती है, तब उसकी वास्तविकता प्रकट होती है।[18]

एक अन्य स्थान पर गुरु नानक कहते हैं—जिसका गुरु अंधा है उसके चेले को कहीं स्थान नहीं मिलता। बिना सद्गुरु के नाम की प्राप्ति नहीं होती और बिना नाम के स्वाद कैसा? ऐसे व्यक्ति को संसार में आकर उसी तरह पछताना पड़ता है। जैसे सूने घर में जाकर कौवे को पछताना पड़ता है।[19]

दृष्टिहीन, स्वार्थी और पाखंडी अगुआ या गुरु किस प्रकार अपने अनुयायियों को पथभ्रष्ट करते हैं, इस संबंध में गुरुवाणी में अनेक बार चर्चा की गई है। सही और सुयोग्य मार्गदर्शक का नेतृत्व जनता को सर्वतोमुखी प्रगति की ओर ले जाता है, परंतु पाखंडी और स्वार्थी नेता अपनी ओछी मति के कारण जनता को पथभ्रष्ट करते हैं। गुरु नानक के शब्दों में—यदि आगु (गुरु) स्वयं दृष्टिहीन हो तो उसका अनुयायी किस तरह मार्ग की पहचान कर सकेगा? ऐसा नेता तो अपनी ओछी मति से स्वयं लुट रहा है भला वह किस प्रकार सही राह की पहचान कर सकेगा।[20]

इसीलिए गुरु रामदास कहते हैं :

बिबेक गुरु गुरु समदरसी
तिसु मिलिऐ संक उतारे

(गुरु ग्रंथ साहब, पृ. 621)

(विवेकवान और समदर्शी गुरु से भेंट होने पर ही शंकाओं की निवृत्ति हो सकती है)

सामान्यतः हमारे देश की आध्यात्मिक साधना और भक्ति साहित्य अत्यंत एकांगी है। उसमें व्यक्ति के कल्याण और उसके मोक्ष की कल्पना और कामना तो की गई है, परंतु साधना और भक्ति को सामाजिक संदर्भों से बहुत कम जोड़ा गया है। हमारे देश का हर जिज्ञासु अपने दुख की चिंता से आतुर है और ऐसे मार्ग की तलाश में है जो उसे इस भौतिक संसार की पीड़ाओं, बंधनों और व्याधियों से छुटकारा दिलाकर निर्विकल्प समाधि में मग्न कर दे। अपनी मुक्ति के लिए इस देश का साधक भगवद् भक्ति करता है, साधना करता है, संन्यास ग्रहण करता है और फिर कठोरतम तपस्याओं में अपने आपको निमग्न करता है। उसकी समस्त क्रियाओं का उद्देश्य उसकी अपनी मुक्ति है। अपने आसपास फैले विशाल जन-समूह में उसकी उतनी ही रुचि है कि वह समूह उसकी साधना के मार्ग में सहायक बने और इस समाज को उसका एक ही उपदेश है कि जैसे वह अपनी मोक्ष-साधना में रत है वैसे ही इस समाज का व्यक्ति (अलग-अलग) अपने

कल्याण का उपाय करे।

गुरुवाणी का संदेश इस देश की इस परंपरागत मान्यता में कुछ अन्य तत्वों पर विशेषरूप से आग्रह करता है जो गुरुवाणी के संदेश को वैयक्तिक कल्याण कामना की परिधि से निकालकर बृहत्तर सामाजिक कल्याण और सामाजिक सरोकार से जोड़ देते हैं। इस संदर्भ में तीन विशिष्ट तत्वों की संक्षिप्त चर्चा समीचीन होगी। ये तत्व हैं—संगत, सेवा और उद्यम।

संगत

'संगत' शब्द का सिख-परिवेश में महत्वपूर्ण स्थान है। संगत शब्द में ही सामाजिकता की ध्वनि है और गुरुवाणी बार-बार इस बात पर आग्रह करती है, संगत के विना व्यक्ति का कल्याण नहीं है :

मेरे माधउ जी,
सत संगति मिले सो तरिआ।
गुरु प्रसादि परम पद पाइआ,
सूकें कासटु हरिया

(गुरु ग्रंथ साहब, पृ. 465)

(हे मेरे माधव, उसी का कल्याण होता है, जिसे सत् संगत प्राप्त हो। गुरु के प्रसाद से उसे परम पद मिलता है जैसे सूखी लकड़ी हरी हो जाती है।)

गुरु रामदास कहते हैं—हरि का निवास ही सत् संगत में है। संगत में मिलकर ही तुम हरि-गुण से परिचित हो सकते हो।[21]

गुरु अर्जुन देव कहते हैं—बहुत खोजवीन के बाद मैंने सर्वत्र यही सुना कि साधु संगति के बिना किसी का कल्याण नहीं होता।[22]

गुरु अर्जुन देव कहते हैं कि जब से मुझे साधु संगत मिली है तब से दूसरों से प्राप्त पीड़ा का बोध जाता रहा है। अब मेरा न तो कोई शत्रु है, न ही मेरे लिए कोई वेगाना है। सभी के साथ मेरा संबंध है।[23]

गुरु रामदास का कथन है कि संगति में ही हरि-प्रभु का निवास है।[24] और संत कबीर इसी बात पर आग्रह करते हुए कहते हैं कि यह किसे बताऊं कि साधु-संगति में ही स्वर्ग है।[25]

हमारे देश के साधना और भक्ति मार्ग अत्यंत एकाकी रहे हैं। हर घर का अपना मंदिर, अपना देवता, अपनी पूजा पद्धति और अपनी आकांक्षाएं रहीं। इसका परिणाम यह हुआ कि हमारे देश में सामाजिक-संबंधों को दृढ़ करने के लिए सामाजिक-मंचों का सदा

अभाव रहा।

इस्लाम में मस्जिद में अपने अन्य सहधर्मियों के साथ मिलकर नमाज पढ़ने का विशेष महत्व है। इस पद्धति ने इस्लाग के सामाजिक संगठन को बढ़ावा दिया। गुरुमत में इस सामाजिक मिलन और सामूहिक पूजा पद्धति के महत्व को समझा गया। गुरु-सिख के लिए गुरवाणी का पाठ करना ही आवश्यक नहीं माना गया, बल्कि उसका संगत में जाना और एक पंगत में बैठकर खाना भी आवश्यक माना गया। भाई गुरदास ने अनेक स्थानों पर सिख का चलकर गुरुद्वारे में पहुंचने और साधु-संगत में जाकर बैठने के महत्व पर प्रकाश डाला है :

गुरमुख पैर सकारथे,
गुरमुख मारग चाल चलंदे।
गुरुदुआरे जान चल
साध संगत चल जाइ वहंदे(वारां भाई गुरदास)
\+ \+ \+
गुर सिख भलके उठके अमृत वेले सर नावंदा।।
गुरु के बचन उचारके धरमसाल दी सुरत करंदा।।
साध संगत विच जाइकै गुरवाणी दे प्रीत सुणंदा।।

(वारां भाई गुरदास)

सेवा

सामाजिक बोध और सामाजिक सरोकार का दूसरा महत्वपूर्ण पहलू सेवा है। भारत की परंपरागत समाज-पद्धति में सेवा का कार्य एक वर्ग या वर्ण विशेष का सौंप दिया गया और सामाजिक जीवन में उन्हें सबसे नीची स्थिति दी गई। परिणाम यह हुआ कि समाज का अधिकांश वर्ग परजीवी हो गया। वह अपनी छोटे-छोटे कार्यों के लिए उस वर्ग विशेष पर निर्भर करने लगा। दूसरे के लिए कुछ अपना तो दूर स्वयं अपना काम करना भी व्यक्ति को अपमानजनक लगने लगा। सेवा के द्वारा सामाजिक जीवन में जो सौहार्द्र, आत्मीयता, विनम्रता और एकात्मकता का भाव पैदा होता है, हमारा समाज उससे पूरी तरह वंचित हो गया।

सामाजिक जीवन को जो स्थिति उस समय सर्वाधिक दूषित कर रही थी, वह थी सेवावृत्ति से जुड़ी हुई सामाजिक स्तर की नीचता की अनुभूति। सेवा कार्य निम्नकोटि का कार्य है, नीची जातियों के लोगों का कार्य है, यह दंभ समाज के एक वर्ग में व्याप्त था। गुरु नानक ने यह अनुभव किया कि सेवावृत्ति को सामान्य स्थिति तक लाने की पहली शर्त है, नीची समझी जाने वाली जातियों से गहरी सम्पृक्ति। उन्होंने अपने आपको उन

कथित नीच जातियों से जोड़ लिया और घोषणा कर दी—नीची जातियों में भी नीची जातियां हैं और उनमें भी जो नीचे हैं, मैं उनके संग-साथ हूं—मुझे अपने को बड़ा समझने वालों से कुछ लेना-देना नहीं है, क्योंकि मैं मानता हूं कि जहां नीचों को संभाला जाता है, परमात्मा की कृपा दृष्टि भी वहीं पड़ती है :

नींचा अंदरि नीच जाति नोची हू अति नीचु।
नानकु तिनकै संगि साथ वडिआ सिउ किया रीस।
जिथे नीच संभालीअनि तिथै नदरि तेरी वखसीस।।

(गुरु ग्रंथ साहव, पृ. 15)

इस प्रकार समाज में सेवा कार्य में रत नीच समझी जाने वाली जातियों से अपना संवंध जोड़कर गुरु नानक तथा अन्य गुरुओं ने सेवा कार्य पर भरपूर जोर दिया। गुरु नानक ने कहा—ईश्वर के घर में उसी को स्थान प्राप्त है जो दुनिया में सेवा अर्जित करते हैं।[26]

गुरु अर्जुन देव ने *सुखमनी* में लिखा है कि जो भी व्यक्ति चारों पदार्थो (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) की कामना करता है उसे साधुजनों की सेवा करनी चाहिए।[27]

एक अन्य स्थान पर गुरु अर्जुन देव कहते हैं—प्रातःकाल से ही मैं जन (साधु व्यक्तियों) की चरण सेवा में लग जाऊं। रात-दिन उनका दर्शन प्राप्त करूं। अपना तन, मन, अर्पण करके मैं जनसेवा करूं और अपनी जिह्वा से हरि गुण गाऊं।[28]

गुरु अर्जुन देव तो यहां तक कहते हैं कि मैं साधु जनों की चरण धूलि को अपने मुख और मस्तक पर लगाकर काम-क्रोध के विष को जला दूं। अपने को मैं नीच मानूं और मन में अपने को नीच मानने का सुख धारण करूं।[29]

उद्यम

गुरुवाणी में 'उद्यम' पर विशेष महत्व दिया जाना, इस देश के सामाजिक परिवेश की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है। संसार को नश्वर, अनित्य और मिथ्या मानने पर इस देश में दार्शनिकों, साधकों और भक्तों ने इतना बल दिया कि सांसारिक कार्यो के प्रति अरुचि और उपेक्षा सामान्य जन में नैतिक मूल्य का स्थान पा गई। संसार से विरक्त होना, संन्यास ग्रहण करना और प्रभु प्राप्ति के प्रयत्नों की ओर से अकर्मण्य, निष्क्रिय और परजीवी जीवन व्यतीत करना इस देश में सामाजिक प्रतिष्ठा का अधिकारी हो गया। एक समय इस देश में ऐसा आया कि सामाजिक दृष्टि से पूरी तरह अनुपयोगी योगियों, संन्यासियों, भिक्षुकों की विशाल जनसंख्या अलख निरंजन या सीता-राम और राधेश्याम कहती हुई सम्पूर्ण देश में घूम-घूमकर 'मोहमाया ग्रस्त गृहस्थियों' को संसार की असारता का उपदेश देकर, उनका कल्याण करने का दम करती हुई उन्हीं पर आश्रित हो गई। ऐसे

ही लोगों की लंबी कतार देखकर संभवतः गोस्वामी तुलसीदास ने कहा होगा :

नार मुई घर संपत नासी।
मूड़ मुड़ाए भए संन्यासी।।

गुरुवाणी ने सबसे पहले तो इसी बात का खंडन किया कि यह दृश्यमान संसार मिथ्या है, इसलिए त्याज्य है। गुरु अमरदास ने कहा कि यह विश्व संसार जो तुम देखते हो यह मिथ्या नहीं है। यह तो हरि का रूप है। हरि अपने व्यक्त रूप में यहां दृश्यमान है।[30] इसलिए संसार से भागकर अकर्मण्य जीवन बिताने की आवश्यकता नहीं है। गुरुवाणी में इसीलिए गृहस्थ-धर्म को श्रेष्ठ धर्म माना गया है। गुरु नानक ने कहा–''व्यक्ति घर में रहकर भी इसी प्रकार निर्लिप्त रह सकता है जैसे कमल जल में रहकर जल से निर्लिप्त होता है।''[31]

गुरु अमरदास कहते हैं–हे मन! तुम घर में रहकर माया से अछूते रहो। गुरुमुख वह है जो सच और संयम को करणी करता है।[32]

गुरु गोबिंद सिंह कहते हैं–रे मन ऐसा संन्यास धारण करो कि अपने घर को ही वन समझो और निर्लिप्तिता अपने मन में ही उत्पन्न करो।[33]

गुरु नानक कहते हैं कि सद्गुरु का इतना बड़प्पन है कि मुझे पुत्र-कलत्र के मध्य की गति प्राप्त हो गई।[34]

इसीलिए गुरु नानक ने कहा कि जो व्यक्ति स्वयं परिश्रम करके कुछ धन अर्जित करता है और फिर उसमें से धार्मिक-सामाजिक कार्यों के लिए देता है, वही सही मार्ग को पहचानता है।[35]

गुरु रामदास ने स्पष्ट रूप से कहा कि जो अपने आपको गुरु का सिख कहता है वह प्रातः उठकर हरि नाम जपता है और फिर जीवन यापन के लिए उद्यम करता है। समय-समय पर अमृतसर में स्नान करता है।[36]

गुरु अर्जुन देव कहते हैं उद्यम करने से मन शीतल होता है। हरि मार्ग पर चलने से संपूर्ण भ्रम नष्ट हो जाता है।[37]

गुरु अर्जुन देव ने व्यक्ति के सम्मुख एक जीवनादर्शन प्रस्तुत किया–तुम उद्यम करते हुए जियो, कमाते हुए सुख प्राप्ति करो, ध्यान करते हुए प्रभु से मिलो। तुम्हारी सारी चिंताएं दूर हो जाएंगी।[38]

युग बोध

गुरु ग्रंथ साहब धर्म ग्रंथ है। उसमें मुक्ति की कामना, मार्ग और उपलब्धि की दिशा पर विचार भी है और निर्देश भी, परंतु गुरुवाणी का विचार और निर्देश अध्यात्म और परलोक की समस्याओं और सरोकार तक ही सीमित नहीं है। गुरुवाणी अपने समय के समाज और व्यक्ति के इहलौकिक यथार्थ से अपने आपको जोड़ती है और अपने

विचार तथा निर्देश की परिधि में उसे भरसक समेटती है। इसलिए गुरुवाणी में ऐसी उक्तियों की कमी नहीं है जो तत्कालीन व्यक्ति के विसंगत चरित्र, सामाजिक मूल्यों के पतन, सत्ताधारी व्यक्ति या व्यक्तियों की निरंकुशता, समाज के नेताओं की भ्रष्टता और अयोग्यता तथा ऐसी स्थिति में सामान्य-जन के विभ्रम का बड़ा सटीक चित्रण करती है।

राजनीतिक पराधीनता के उस युग में गुरु नानक संभवतः पहले भारतीय संत-कवि थे जिन्होंने कहा था—यह समय छुरी के समान है, राजा कसाई के समान हो गए है, धर्म पंख लगाकर उड़ गया है। चारों तरफ़ झूठ की अमावस्या छाई है, सत्य का चंद्रमा कहीं दिखाई नहीं देता। पता नहीं वह कहां उदय हुआ हैं। मैं (जीवात्मा) पथ ढूंढकर व्याकुल हो गई हूं, अंधेरे में कहीं राह नहीं सूझती।[39]

अपने समय के अत्याचारी शासकों के संबंध में बड़ी आक्रोश भरी वाणी में उन्होंने कहा—इस समय राजागण व्याघ्र के समान हिंसक हैं, उनके अधिकारी कुत्तों के समान लालची हैं। ये लोग निरीह जनता को बिना किसी कारण पीड़ित करते रहते हैं। इनके नौकर-चाकर अपने पैरों के नाखूनों से लोगों को जख्मी करते रहते हैं और उनका लहू कुत्तों की तरह चाट जाते हैं। जहां इनके कर्मों की परख होगी, वहां इनकी नाक काट ली जाएगी।[40]

अपने समय के राजाओं, तथा राज-कर्मचारियों द्वारा निरीह जनता पर किए जाने वाले अत्याचारों पर तीव्र रोष व्यक्त करने वाले गुरु नानक ने मुगल आक्रांता बाबर के आक्रमण को अपनी आंखों से देखा था। मुगल सैनिकों की लूटमार और मारकाट से इस देश की जनता की जो दुर्दशा हुई, गुरु नानक ने उसका मार्मिक वर्णन अपनी वाणी में किया है—जिन स्त्रियों के सिर में सुंदर पट्टियां शोभित होती थीं, जिनकी मांग में सिंदूर भरा हुआ था, आक्रमणकारियों ने उनके केश काट डाले और उन्हें धूल में इस तरह घसीटा कि उनके गले तक धूल भर गई। जो महलों में निवास करती थीं, अब उन्हें बाहर बैठने की भी जगह नहीं मिलती। विवाहित स्त्रियां अपने पतियों के पास सुशोभित थीं। वे पालकियों में बैठकर आई थीं। उन पर लोग धन न्योछावर करते थे। बहुमूल्य पंखे आस-पास झूलते थे, उन पर लाखों रुपयों की वर्षा होती थी। वे मेवे खाती थीं, सेजों पर रमण करती थीं। अब उनके गले की मोतियों की माला टूट गई है और उसके स्थान पर आक्रमणकारियों ने रस्सियां डाल दी हैं। धन और यौवन ने उन्हें अपने रंग में रंग रखा था। अब ये दोनों ही उनके वैरी हो गए हैं। सिपाहियों को आज्ञा मिली और वे उनकी इज्जत लूटकर चलते बने।[41]

ऐसी करुणाजनक स्थिति में गुरु नानक ने परमेश्वर के प्रति अपनी शिकायत व्यक्त करते हुए कहा—हे परमात्मा! बाबर ने खुरासान पर आक्रमण किया परंतु तुमने उसकी रक्षा कर ली और हिंदुस्तान को उसके आक्रमण से आतंकित कर दिया। तुम स्वयं इस स्थिति को उत्पन्न करते हो, परंतु अपने को दोष न देने के लिए तुमने मुगलों को यमदूत बनाकर इस देश पर आक्रमण करा दिया। चारों ओर इतनी मार-काट हुई कि लोग

त्राहि-त्राहि कर रहे हैं। क्या तुम्हारे मन में इन निरीह जनों के प्रति थोड़ा-सा भी दर्द नहीं उत्पन्न हो रहा है? हे कर्ता, तुम तो सभी प्राणियों के समान रूप से रक्षक होने का दावा करते हो? यदि एक शक्तिशाली सिंह निरपराध पशुओं के झुंड पर आक्रमण कर दे तो उनके स्वामी को कुछ तो पुरुषार्थ दिखाना चाहिए।[42]

अपने देश पर विदेशियों द्वारा हुए अत्याचारों से विक्षुब्ध होकर ईश्वर के प्रति ऐसी ताड़ना भरी शिकायत सारे भक्ति-साहित्य में निश्चय ही अद्वितीय है और अनुपम भी, परंतु गुरु नानक उन लोगों को भी क्षमा नहीं करते जिनकी चरित्रहीनता, अकर्मण्यता और ऐशपरस्ती के कारण इस देश की ऐसी दुर्दशा हुई :

रतन बिगाड़ि विगोए कुत्तीं
मुइआ सार न काई

(गुरु ग्रंथ साहब, पृ. 360)

इन कुत्तों ने रत्न के समान इस सुंदर देश को बिगाड़ कर नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। इनके मरने के बाद इन्हें कौन पूछेगा?

सामाजिक जीवन की विद्रूपता पर अनेक उक्तियां गुरुवाणी में स्थान-स्थान पर प्राप्त होती है। एक स्थान पर गुरु नानक कहते हैं–"आजकल लोग कुत्ते के मुंह वाले हो गए हैं, उनका खाद्य-पदार्थ मनुष्य का मांस है। अर्थात् कुत्तों के समान लालची हो गए हैं और रिश्वत तथा बेईमानी का पैसा खाते हैं। वे झूठ बोल-बोलकर भौंकते हैं, धर्म संबंधी विचार समाप्त हो चुके हैं। इनके जीवन काल में इनकी इज्जत नहीं, मरने पर तो इनका बुरा होता ही है।[43]

योगियों-संन्यासियों का हाल यह है कि बाहर तो भस्म का लेप करते हैं किंतु अंदर अंधेरा रहता है। वे किंथा-झोली आदि धारण करके बाहर से अनेक वेश बनाते हैं परंतु अहंकार और दुर्बद्धि से भरे हुए हैं :

बाहर भसम लेपन करे अंतरि गुबारी
खिंथा झोली बहु भेख करे दुरमति अहंकारी।।

(गुरु ग्रंथ साहब, पृ. 1242)

पाखंड की दशा यह है कि हर साधू-संन्यासी अपने आपको त्रिकालदर्शी घोषित कर रहा है। वह संसार को ठगने के निमित्त आंख बंद करता है, नाक पकड़ता है। अंगूठे और उंगलियों से नाक पकड़कर यह दंभ करता है कि मुझे तीनों लोकों का ज्ञान है। परंतु ऐसे लोग अपने पीछे रखी वस्तु को भी देख नहीं सकते। यह कैसा पद्मासन है :

अखी न मीटहि नाक पकड़हि ठगण कउ संसारु।।
आंट सेती नाकु पकड़हि सूझते तिनि लोअ।
मगर पाछै कछु न सूझै एहु पदमु अलोअ।।

(गुरु ग्रंथ साहब, पृ. 662)

धार्मिक नेताओं की भ्रष्टता का चित्रण करते हुए गुरु नानक ने कहा—काजी झूठ बोलकर हराम की कमाई खाता है, ब्राह्मण जीवों को दुख देकर तीर्थों में स्नान करता घूमता है, योगी अंधा है। उसे युक्ति का पता नहीं। समाज के ये तीनों पथ-प्रदर्शक अज्ञान के उजाड़ में पड़े हुए हैं :

कादी कूड़ बोलि मलु खाइ।
ब्राह्मण नावै जीवा घाइ।।
जोगी जुगति न जाणैं अंधु।
तीनों ओजाड़ का वंधु।।

(गुरु ग्रंथ साहब, पृ. 662)

जब समाज के मूल्य विघटित होने लगें, धर्म के नाम पर पाखंड का बोलबाला हो, सामाजिक जीवन ऊंच-नीच में बंटकर अनाचार से ग्रसित हो जाए, समाज के नेता भ्रष्ट और स्वार्थी हो जाएं, शासक वर्ग निरंकुश होकर जनता का शोषण करने लगे तो स्वाभाविक है कि समाज का व्यक्ति अनेक प्रकार की विसंगतियों और विरोधाभासों का शिकार हो जाएगा। मुगल शासन के एक हिंदू कर्मचारी को फटकारते हुए गुरु नानक ने कहा—तुम गऊ ब्राह्मण पर कर लगाते हो और गोबर का सहारा लेकर अपना उद्धार करना चाहते हो। धोती, तिलक और माला धारण करते हो और धान मलेच्छों का खाते हों। घर के अंदर पूजा करते हों और बाहर शासकों को प्रसन्न करने के लिए कुरान पढ़ते हों। यह सब पाखंड तुम छोड़ क्यों नहीं देते?[44]

अपने समय के हाकिमों की कटु आलोचना करते हुए गुरु नानक ने कहा—ये लोग मनुष्य भक्षी हैं पर पढ़ते हैं नमाज। उनके हिंदू कर्मचारी गले में जनेऊ पहनते हैं, पर निरीह जनता पर छुरी चलाते हैं। ब्राह्मण उन हिंदुओं के घर जाकर पूजा करते हैं और अधर्म के कमाए गए धन का वे भी स्वाद चखते हैं। यह सब झूठी पूंजी है, झूठा व्यापार है, झूठ बोलकर ये लोग अपने आहार की व्यवस्था करते हैं। शर्म और धर्म का डेरा दूर हो गया है और सभी स्थानों पर झूठ व्याप गया है।[45]

गुरुवाणी का संपूर्ण आग्रह 'सच' की पहचान पर है। परंतु जब चारों ओर झूठ का पसारा हो और झूठ को ही सच बनाकर पेश किया जा रहा हो, उस समय सच की पहचान करने वाला विरला ही होगा। गुरु के शब्द की सहायता से व्यक्ति सच की पहचान कर सकता है :

साचे का गाहक विरला को जाणु।
गुर कै सबदि आपु पछाणु।।

(गुरु ग्रंथ साहब, पृ. 664)

परंतु हृदय की सच्चाई के बिना सच कैसे प्राप्त होगा। इसके लिए शरीर से झूठ की मैल उतारनी पड़ेगी।[46]

गुरु नानक आग्रह करते हैं कि जिनके पास सच है उनके पास सभी दुखों की दवा है। सच उनके अंदर के सभी पाप धोकर बाहर निकाल देता है।[47]

इसके साथ ही गुरु नानक यह भी कहते हैं कि सच मात्र एक अवधारणा ही नहीं है, बल्कि जीवन में चरितार्थ भी होना चाहिए। सच-सच पुकारने या कहने से जीवन में सच नहीं आता। वह आता है सच को नित्य-प्रति के जीवन में उतारने से, उसे अपने आचरण में ढालने से। इसलिए *गुरुवाणी* का कथन है कि संसार में सभी कुछ सच से नीचे है, परंतु सच-आचरण, सच से भी ऊपर है :

सचहु औरे सभु को
उपरि सचु अचारु

सच की पहचान पाने वाला व्यक्ति केवल अपनी ही मुक्ति का उपाय नहीं खोजता, वह औरों को भी मुक्ति का मार्ग दिखाता है। वह हरि का नाम जपता है और दूसरों को भी मुक्ति का मार्ग दिखाने के सामाजिक-बोध के कारण हरि से सुख की प्राप्ति होती है:

आपि मुकतु अवरा मुकतु करावै।।
हरि नामु जपै हरि ते सुखु पावै।।

(गुरु ग्रंथ साहब, पृ. 664)

संदर्भ

1. *कवणु सु वेला वखतु कवणु कवण थिति कवण वारु।*
   कवणि सि रुति माहु कवणु जितु होआ आकारु।।
   वेल न पाईआ पंडती जि होवे लेखु पुराण।।
   वखतु न पाइआ कादीआं जि लिखिनि लेखु कुराणु।।
   थिति वारु ना जोगी जाणै रुति माहु ना कोई।।
   जा करता सिरठी कउ साजे आपै जाणै सोई।।
2. *सकल जगत है जैसे सुपना*
   बिनसत जगत न बार : गुरु ग्रंथ साहब, पृष्ठ 633

\+ + +

जैसे सुपना रेनि का तैसा संसार

(गुरु ग्रंथ साहब, पृष्ठ 808)

3. *जैसे जल से बुदबुदा उपजै बिनसै नीत।*
   जगु रचना तैसे रची कहु नानक सुन मीत।।

(गुरु ग्रंथ साहब, पृष्ठ 1363)

4. *जिउ जल ऊपरि फेनबुदबुदा तैसा बहु संसार।*
   जिसते होआ तिसहि समाणी चूकि गया संसार!!

(गुरु ग्रंथ साहब, पृष्ठ 1258)

5. *मृग तसना जिउ झूठो,*
   एहु जग देखिए तासि उठि धावै।।

(गुरु ग्रंथ साहब, पृष्ठ 126)

6. *सगल जगतु है जैसे सुपना बिनसत लगत न बार।*
   बारु भीत बनाई रचि पचि रहत नहीं दिन चारि।।

(गुरु ग्रंथ साहब, पृष्ठ 68)

7. *मन पिआरिआ जीव मित्रा बिखु सागरु संसारे*

(गुरु ग्रंथ साहब, पृष्ठ, 76)

8. *जिचरु इहु मन लहरो विचि है हउमै बहुत अहंकारु।*
   सबदे सादु न अवाई, नामि न लगै पिआरु।।

(गुरु ग्रंथ साहब, पृष्ठ 1247)

9. *कबीर मुकति दुआरा संकुरा राई दसएं भाइ।।*
   मनु तउ मैगलु होइ रहिउ निकसो किउ कैजाइ।।
10. *नानक मुकति दुआरा अति नीका नाना होइ सु जाइ।*
    हउमै मनु असथूलु है किउ करि विचुदे जाइ।।
    सतिगुरु मिलिऐ हउमै गई जोति रहो सभ आइ।।
    इहु जीउ सदा मुकतु है सहजै रहिआ समाइ।।(1)
11. *संतू बताइहु कारी जितु हउमै गरब निवारी।।*

(गुरु ग्रंथ साहब, पृष्ठ 616)

12. *सरब भूत पारब्रह्म करि मानिआ होवां सगल रैनारी।।*
13. *हउमै गरबु गवाइऐ पाईऐ बीचार।।*
    साहिब सिउ मनु मानिआ दे साचु अधार।।

(गुरु ग्रंथ साहब, पृष्ठ 421)

पेखिओ प्रभु जीउ अपुने संगे चूकै भीति भ्रमारी।।
अउखधु नाम निरमल जल अमृत पाईए गुरु दुआरी।
कहु नानक जिसु मसतकि लिखिआ तिसु गुर मिलि रोग विदारी।।

(गुरु ग्रंथ साहब, पृष्ठ 616-27)

14. *गुरु गोबिंद तो एक है दूजा यहु आकार।*
आपा मेटत जीवत मरै, तौ पावै करतार।।

(संत कबीर)

15. *गुरु गोबिंद दोउ खड़े, काके लागों पांइ।*
बलिहारी उन गुरु को जिन गोबिंद दिया बताइ।।

(संत कबीर)

16. *सो गुरु करउ जि साचु दडावै।*
अकथु कथावै सबदि।।

17. *जिसु मिलिऐ मनि होइ अनंदु सो सतिगुरु कहीऐ।।*
मन की दुबिधा बिनसि जाइ हरि परम पदु लहीऐ।।

(गुरु ग्रंथ साहब, पृ. 168)

18. *नानक सतिगुरि भेटिऐ पूरी होवे जुगति।*
हंसदिआं, खेलदिआं, पैनदिआं, खावंदिआ विचे होवै मुकति।।

(गुरु ग्रंथ साहब, पृ. 522)

19. *जा हउ नाही ता किआ आखा किहु नाही किया होआ।*
कीता करणा कहिआ कथना भरिआ भरि भरि धोवां।।
आपि न बुझा लोक बुझाई ऐसा आगू होवां।।

20. *गुरु जिना का अंधुवा चेले नाही ठाउ।*
बिनु सतिगुरु नाउ न पाईऐ बिनु नावै किआ सुआउ।।
आइ गइआ पहुतावणा जिउ सुंजै घरि काउ।।

(गुरु ग्रंथ साहब, पृ. 58)

नानक अंधा होइ के दसे राहै सभसु मुहाए साथै।
अगे गईआ मुहे मुहि पाहि सु ऐसा आगू जावे।।

(गुरु ग्रंथ साहब, पृ. 150)

21. *अंधा आगू जे थीऐ किउ पाधरु जाणै*
आपि मुसे मति होछीए कि उ राहु पछाणे

(गुरु ग्रंथ साहब, पृ. 767)

22. *सत् संगति महि हरि हरि बसिआ*
मिलि संगति हरि गुन जान

(गुरु ग्रंथ साहब, पृ. 1335)

23. *खोजा खोजत सुनी इह सोइ।*
साध संगति बिनु तरिआ न कोई

(गुरु ग्रंथ साहब, पृ. 373)

24. *बिसरि गई सभ ताति पराई।।*
जब ते साध संगति मोहि पाई।।
ना को बैरी नहीं बेगाना
सगल संगि हम कउ बनि आई।

(गुरु ग्रंथ साहब, पृ. 1266)

25. *विचि संगत हरि प्रभु जीउ*

(गुरु ग्रंथ साहब, पृ. 1314)

26. *कहु कबीर इह कहीऐ काहि।*
साध संगति बैकुंठे आहि।

(गुरु ग्रंथ साहब, पृ. 325)

27. *विचि दुनिया सेवा कमाईऐ।*
ता दरगह बैसणुं पाईऐ।।

(गुरु ग्रंथ साहब, पृ. 26)

28. *चार पदारथ जो को मांगै*
साध जना की सेवा लागै

(गुरु ग्रंथ साहब, पृ. 266)

29. *प्रातःकाल लागउ जन चरनी निसबासरु दरमु पावउ।*
तनु मनु अरपि करउ जनसेवा रसना हरि गुन गावउ।।

(गुरु ग्रंथ साहब, पृ. 533)

30. *साधू धूरि लाई मुखि मसतकि काम क्रोध बिखु जारउ।।*
सभते नीचु आतम करि मानउ मन महि इहु सुखु धारउ।।

(गुरु ग्रंथ साहब, पृ. 26)

31. *एहु बिसु संसार तुम देखदे,*
एहु हरि का रूप है हरि रूप नदरी आइआ।।

(गुरु ग्रंथ साहब, पृ. 922)

32. *विचै गृहि सदा रहै उदासी*
जिउ कमलु रहै विचि पाणी है।

(गुरु ग्रंथ साहब, पृ. 1070)

33. *मन रे गृह की माहि उदास।*
सच संजमु करणी सो करै गुरमुखि होइ परगासु

(गुरु ग्रंथ साहब, पृ. 26)

34. *रे मन ऐसो करि सनिआसा।*
बन से सदन सभै कर समझहु मन ही माहि उदासा।।

(दशम ग्रंथ, पृ. 709)

35. *सतिगुर की ऐसी वडिआई।*
पुत्र कलत्र विचे गति पाई

(गुरु ग्रंथ साहब, पृ. 661)

36. *घाल खाई किछु हथहु देई।।*
नानक राह पछाणै सेई।।

(गुरु ग्रंथ साहब, पृ. 1245)

37. *गुर सतिगुर का जो सिखु अखाए।*
सु भलके उठि हरिनामु धिआए।।
उदमु करे भलके परभाती
इसनानु करे अमृतसरि नावै।।

(गुरु ग्रंथ साहब, पृ. 305)

38. *उदम करत मन निरमलु होआ।।*
हरि मारगि चलत भ्रम सगल खोआ।।

(गुरु ग्रंथ साहब, पृ. 99)

39. *उदमु करेदिआ जीउ तूं कमावदिआ सुख भुंच।*
धिआइदआ तूं प्रभु मिलु नानक उतरी चिंत।।

(गुरु ग्रंथ साहब, पृ. 522)

40. *कलि काती, राजै कासाई धरमु पंखु उडरिआ।*
कडु अमावस, सच चंद्रमा दीसै नाही कह चड़िआ।।
हउ भालि विकुंनी होई। अंधेरे राहु न कोई।।

(गुरु ग्रंथ साहब, पृ. 145)

41. *राजे सींह मुकद्दम कुत्ते। जाइ जगाइन बैठे सुते।।*
चाकर नहंदा पाइहिं घाउ रितु पितु कुतिहो चटि जाहु।।
जिथै जीआं होसी सार। नकीं बढ़ी लाइतबार।।

(गुरु ग्रंथ साहब, पृ. 1288)

42. *जिनि सिरि सोहनि पटीआ मागी पाइ संधूर।*
से सिर काती मुनीअहिं गल विचि आवै धूड़ि।।
महला अंदरि होंदीआ हुनि बहनि न मिलंह हदूरि।।
\+ \+ \+
जदहु सीआ वीआहीआ लाड़े सोहनि पासि।
ही डोली चढ़ि आईआ दंद खंड कीते रासि।।
उपरहु पानी वारीऐ झले झिमकिन पासि।।
इकु लखु लहिं बहिठीआ लखु लहहिं खड़ीआ।।
गरी छुआरे खादीआ माणन्हि सेजड़ीआ।।

तिन्ह गलि सिलका पाईआ तुटन्हि मोतसरीआ।।
धनु जोबनु दुइ बैरी होए जिन्ही रखे रंगु लाइ।।
दूता नो फुरमाइआ लै चले पति गवाइ।।

(गुरु ग्रंथ साहब, पृ. 410)

43. *खुरासान खसमाना कीआ हिंदुस्तान डराइआ।*
आपै दोसु न देई करता जमु करि मुगलु चढ़ाइआ।।
एती मार पई कुरलाणे तै की दरदु न आइआ।।
करता तूं सभता का सोई।।
जे सकता सकते कउ मारे ता मनि रोसु न होई।।
सकता सीहु मारे पै वगै खसमै सा पुरसाई।।

(गुरु ग्रंथ साहब, पृ. 360)

44. *कलि होइ कुते मुहीखाजु होआ मुरदारु।*
कुडु बोलि बोलि भउकणा चूका धरम बीचारु।।
जिन जीवंदिआ पति नहीं मुइआ मंदी सोइ।।
लिखिआ होवै नानका करता करे सु होइ।।

(गुरु ग्रंथ साहब, पृ. 1242)

45. *गऊ बिराहमण कउ करु लावहु गोबरि तरणिन जाई।*
धोती टिका ते जपमाली धानु मलेच्छां खाई।
अंतरि पूजा पड़डि कतेबा संजमु तुरका भाई।
छोड़ी ले पाखंड नाम लहिऐ जाहि तरंदा।।

(गुरु ग्रंथ साहब, पृ. 471)

46. *माणस खाणे करहि निवाज। छुरी बगाइनि तिन गलि ताग।*
तिनघरि ब्रह्मण पुरहि नाद। उनाभि आवहि ओई साद।।
कूड़ी रासि कूड़ा वापारु। कूड़ बोलि करहि आहारु।।
सरण धरम का डेरा दूरी नानक कूड़ रहिआ भरपूरि।।

(गुरु ग्रंथ साहब, पृ. 471)

47. *सचु ता परु जाणीऐ जा रिदै सचा होई।*
कूड़ की मलु उतरै तनु करे हछा धोइ।।

(गुरु ग्रंथ साहब, पृ. 468)

48. *सचु सभना होइ दारु पाप कढै धोइ।*
नानक बखाणै बैनती जिन सचु पलै होई।

(गुरु ग्रंथ साहब, पृ. 468)

उपसंहार

सिख विचारधारा ने अपने समय के धर्म और समाज व्यवस्था को सर्वथा नई दिशा दी। भक्ति, ज्ञान, उपासना, शास्त्र-अध्ययन, आध्यात्मिक चिंतन दार्शनिक वाद-विवाद को एक सीमित परिधि से निकालकर समाज के उस वर्ग के बीच पहुंचा दिया जो इससे पूरी तरह वंचित था।

प्राचीन काल से ही इस देश में जो व्यवस्था विकसित हुई थी उसमें आध्यात्मिक ज्ञान पर एक वर्ग का एकाधिकार था। इस चिंतन के लिए जिस भाषा का उपयोग होता था, वह भी जन सामान्य की भाषा नहीं थी। ब्राह्मण वर्ग संस्कृत को छोड़कर किसी भी प्राकृत में संवाद करना अपना अपमान समझता था। किसी निम्न समझी जाने वाली जाति के लिए शास्त्र का अध्ययन वर्जित ही नहीं था, वरन वह एक दंडनीय अपराध भी था। शंबूक का उदाहरण इस दृष्टि से बहु उल्लिखित उदाहरण है।

संभवतः सबसे पहले बुद्धदेव ने इन वर्जनाओं का त्याग किया। इस वर्जित क्षेत्र में शूद्र और महिलाओं की भी स्वीकृति होनी प्रारम्भ हो गई और ज्ञान-चर्चा के लिए संस्कृत का स्थान जन-भाषाएं लेने लग गईं।

शास्त्रमार्गी और लोकमार्गी धाराओं का यह टकराव इस देश में अनेक शताब्दियों तक चलता रहा। अनेक शतियों तक इस देश में बौद्धधर्म का व्यापक प्रभाव दिखाई दिया किंतु श्रुति-स्मृति धारा का वर्चस्व कभी शिथिल नहीं पड़ा।

देश में भागवत् धर्म के पुनरुत्थान के साथ इतना अंतर अवश्य आया कि वर्ण व्यवस्था और श्रुति सम्मत पथ का आग्रहशील वर्ग भी शूद्रों और महिलाओं को भक्ति के क्षेत्र प्रवेश करने की अनुमति देने को तैयार हो गया। किंतु यह अधिकार न ब्राह्मण की श्रेष्ठता को अस्वीकार करने के लिए था, न धर्म के क्षेत्र में उसके एकाधिकार को खंडित करने की अनुमति देना था, न वर्णाश्रम व्यवस्था में कोई ढील देता था। वह शूद्र

को भक्त मानने को तैयार था किंतु उसे ज्ञानी मानने को तैयार नहीं था।

अद्विज जातियों में भक्ति के प्रवेश ने उनमें आत्मबोध भी जगाया और वे उन सभी बातों पर प्रश्नचिह्न लगाने लगे जो उन्हें भेदभाव पूर्ण लगती थीं। श्रुति-स्मृतिमार्गी भक्तिधारा के समानान्तर उन्होंने अपनी भक्तिधारा का विकास किया और उन सभी वर्गों और जातियों को अपने साथ जोड़ लिया जो इस संसार से पूरी तरह टूटे हुए थे।

द्रविड़ प्रदेश में यह स्वर नवमी-दसवीं शती में ही उभरने लगा था। फिर यह स्वर महाराष्ट्र और गुजरात से होता हुआ उत्तर भारत में आ गया और 'जाति पात पूछै नहिं कोई। हरि को भजै सो हरि को होई' का उद्घोष सभी ओर गूंजने लगा।

किंतु इस स्वर को एक सबल मंच देने का कार्य पंजाब में हुआ। गुरु नानक देव तथा परवर्ती सिख गुरु अद्विज जातियों में से नहीं आए थे, किंतु श्रुति-स्मृतिमार्गी असमानता मूलक जीवन पद्धति को उन्होंने स्वीकार नहीं किया। उन्होंने अपने आपको नामदेव, कबीर, धन्ना, सैण वाली परम्परा से जोड़ा। यह परम्परा परमशक्ति को निर्गुण-निराकार मानती है, मूर्ति पूजा और अवतारवाद को अस्वीकार करती है, देव, स्थान, तीर्थ यात्रा तथा वे सभी कर्मकांड, जो श्रुति-स्मृतिमार्गी भक्ति के आवश्यक अंग थे, को नकार देती है, स्वानुभूति अनुभव को वह किसी भी शास्त्र से अधिक मान्यता देती है, केवल भक्ति ही नहीं, वरन अध्यात्म और दर्शन क्षेत्र के सभी चिंतन और ज्ञान में छोटी से छोटी समझी जाने वाली जाति का पूरा हस्तक्षेप स्वीकार करती है। यहां तक कि वह विधर्मी मुसलमान का भी इस संवाद में दोनों बाहें फैलाकर स्वागत करती है। यह कार्य श्रुति-स्मृतिमार्गी भक्ति में स्वीकृत नहीं था।

गुरु ग्रंथ साहब में इन संतों की वाणियों को स्थान मिला। इसमें अवतारवादी संत भी हैं, किंतु अपनी उदार दृष्टि के कारण वे नीची समझी गई श्रेणियों में भी स्वीकृत हैं। जयदेव और रामानंद इसके उदाहरण हैं, किंतु एक बात ध्यान देने की है। गुरु ग्रंथ में संगृहीत सभी 15 संतों के कुल 778 पद हैं। इन संतों का यदि वर्णों की दृष्टि से विभाजन किया जाए तो जयदेव, रामानंद, परमानंद और सूरदास ब्राह्मण हैं। पीपा क्षत्रिय है। त्रिलोचन वैश्य थे। शेख फरीद, कबीर और भीखण मुसलमान थे। शेष—नामदेव, रविदास, सधना, सैण, धन्ना, वेणी शूद्र जातियों में से थे। इनमें सबसे अधिक पद (541) कबीरदास के हैं, फिर शेख फरीद (122), नामदेव (60) और रविदास के (40) पद हैं।

अन्य संतों के एक से चार पदों को इस ग्रंथ में स्थान नहीं दिया है?

पदों की संख्या की दृष्टि से देखा जाए तो *गुरु ग्रंथ* में चार संतों—कबीर, फरीद, नामदेव और रविदास को विशेष महत्व प्राप्त है। श्रुति-स्मृति की मान्यताओं के अनुसार ये सभी संत त्याज्य स्थिति के संत थे। शेख फरीद मुसलमान थे। कबीर और उनके निर्गुण पंथ को सगुण, अवतारवादी भक्तों के कई शताब्दियों तक निरंतर विरोध, उपेक्षा और निंदा का सामना करना पड़ा। यह आक्रोश इतना अधिक था कि कबीर की छवि को अश्लीलता और फूहड़ता के सभी विशेषणों से युक्त भी किया गया। होली के अवसर

पर उत्तरप्रदेश में जो अत्यंत अश्लील और भद्‌दे गीत गाए जाते हैं, उनके साथ 'कबिरा' जुड़ा हुआ होता है।

उन्हीं कबीर को *गुरु ग्रंथ साहब* में सबसे प्रमुख स्थान प्राप्त हुआ।

गुरु ग्रंथ साहब में संगृहीत रचनाएं गत 400 वर्षों से बिना किसी परिवर्तन के पूरी तरह सुरक्षित हैं। बीसवीं शती में जब संत कबीर की रचनाओं की खोज की जाने लगी तो इसमें संगृहीत उनके 'पद' और 'सलोक' ही सबसे अधिक प्रामाणिक माने गए। शेख फरीद की रचनाएं पंजाबी में होने का सबसे प्रमुख कारण इनका इस ग्रंथ में प्राप्त होना है। यही बात नामदेव और रविदास के संबंध में भी कही जा सकती है।

इस ग्रंथ में शामिल अनेक संत ऐसे हैं जिन्हें आज केवल उन्हीं पदों से याद किया जाता है जो इस ग्रंथ में हैं। सधना, वेणी, पीपा, सैण, धन्ना, भीखन, परमानंद इस ग्रंथ के माध्यम से ही स्मरण किए जाते हैं। महाराष्ट्र के संत नामदेव की पंजाब में बहुत प्रसिद्धि है और स्थान-स्थान पर उनके केंद्र बने हुए हैं। इसका स्रोत भी *गुरु ग्रंथ साहब* में संगृहीत उनके 60 पद हैं। वे पंजाब और महाराष्ट्र के बीच निरंतर संवाद की सबसे मजबूत कड़ी हैं। इस ग्रंथ में संगृहीत होने के कारण ही पंजाब तथा संसार के अनेक भागों में रविदासी गुरुद्वारे बने हुए हैं, जिनमें रविदास के पदों का उसी प्रकार कीर्तन होता है जिस प्रकार इस ग्रंथ में संगृहीत अन्य गुरुओं, भक्तों और सूफियों की रचनाओं का। चार सौ वर्ष पहले ऐसे किसी ग्रंथ के निर्माण की परिकल्पना अपने आप में एक अद्‌भुत बात थी।

गुरु ग्रंथ साहब में संत कवियों की समान अवधारणाएं

मध्ययुगीन धर्म साधना के दो स्वरूप हमारे सम्मुख स्पष्ट रूप से उभरते हैं। एक शास्त्र मार्गी है दूसरा लोक मार्गी है। आधुनिक विद्वान आठवीं शताब्दी को भारतीय साहित्य के पूर्व युग की अंतिम सीमा मानते हैं। आठवीं से अठारहवीं शती तक को सामान्यतः मध्य युग माना जाता है। इस काल के भी दो भाग हैं। आठवीं से तेरहवीं शती का काल पूर्व मध्य युग है और तेरहवीं से अठारहवीं शती तक काल उत्तर मध्य युग है।

पूर्व मध्य काल (गुप्त काल) में हिंदू धर्म का जो स्वरूप विकसित हुआ था उसमें पूर्ववर्ती आर्ष ग्रंथों को अकाट्य रूप से प्रमाण मानने की प्रवृत्ति उत्तरोत्तर बढ़ती गई थी। वेदों को स्वतः प्रमाण मानने के आग्रह से यह बद्धमूल हो गई और वेद विरोधी संप्रदायों को नास्तिक और हेय मानने की बुद्धि निरंतर वढ़ोतरी पर रही। प्रायः सभी सम्प्रदायों में उपास्य देवताओं की मूर्ति कल्पित की गई और प्रत्येक देवता की शक्ति की भी कल्पना की गई। इन देवियों और देवताओं की स्तुति में मनोहर काव्य रचे गए।

वौद्धधर्म इस काल में वैदिक-पौराणिक हिंदू धर्म की सबसे अधिक प्रतिरोधी शक्ति था। *महाभारत* और *भागवत* आदि ग्रंथों में कलियुग का बड़ा ही चिंताजनक और उद्वेलित करने वाला रूप चित्रित किया गया है। प्रायः हर पुराण में कलियुग की ह्रासमूलक प्रवृत्तियों का चित्रण किया गया है। इस बात पर विशेष आग्रह किया गया है कि लोगों का नैतिक चरित्र पतित हो जाएगा। श्रुति-स्मृति में दिए गए निर्देश मिटने लगेंगे। वर्णाश्रम व्यवस्था टूटने लगेगी। शूद्र लोग संन्यास लेकर उच्च वर्गों को उपदेश देने का ढोंग रचेंगे। स्त्रियां चरित्रहीन हो जाएंगी।

महामहोपाध्याय डॉ. पांडुरंग वामन काणे का अनुमान है कि (*धर्म शास्त्र का इतिहास*, पृष्ठ 895) सन् ईसवीं की चौथी शताब्दी तक इस प्रकार के विश्वास ने जड़

जमा ली हागी। उन्होंने अनेक पुराणों में ज्यों का त्यों पाया जाने वाला श्लोक दिया है, जिसके अनुसार कलियुग में वे लोग धर्मोपदेश करेंगे जो शठता युक्त बुद्धि से रहने वाले या गलत मान्यता के विश्वासी होंगे, उनके दांत सफेद होंगे (भ-दंत), वे जितेंद्रिय होने का दावा करेंगे तथा मुण्डिल और काषायवस्त्र धारण करने वाले होंगे :

शुक्लदंता जिताक्षाशय मुण्डाः काषायवाससः।
शुद्धाधर्म वदिष्यंति शाठ्य बुद्ध्योपजीवितः।।

पुराणों के अनुसार कलि काल में आने वाली पतनशीलता की मुख्य चिंताएं है– (1) श्रुति और स्मृतियों में वर्णित आचार की अवज्ञा (2) वर्णाश्रम व्यवस्था का टूटना (3) शूद्रों का संन्यासी होकर उच्च वर्गों को उपदेश देना (4) ऐसे उपदेश देने वालों के दात सफेद होना–भ-दंत, होना (5) उनका अपने आप को जितेन्द्रिय होने का दावा करना (6) मुंडित होना (7) काषाय वस्त्रों को धारण करना (8) उनका शठ बुद्धि होना।

क्या ये सभी बातें इस देश में बौद्ध धर्म के अभ्युत्थान की ओर संकेत नहीं करती हैं? बुद्ध धर्म न शूद्रों को भी संन्यासी बनकर उपदेश देने की अनुमति दी थी। बौद्ध विहारों में स्त्रियों के प्रवेश को स्वीकार किया था। बौद्ध भिक्षु मुण्डित होते थे, काषाय वस्त्र धारण करते थे। भ-दंत को अति सम्मानित कहा जाता था। उन्होंने वेदों को अपौरुषैय और अकाट्य नहीं स्वीकार किया था। जिस श्लोक में शठता युक्त बुद्धि वाले, कलियुगी व्यक्ति को सफेद दांतों वाला-भ-दंत कहा गया है वह बौद्ध भिक्षु के लिए एक सम्मानित शब्द है।

ब्राह्मण व्यवस्थावादियों की मान्यताओं को बौद्ध धर्म की मान्यताएं चुनौती देती थीं। इसलिए दोनों विचारों में निरंतर टकराव होता रहता था। इस तथ्य का स्पष्ट संकेत आधुनिक हिंदी साहित्य के अत्यंत सम्मानित साहित्यकार जयशंकर प्रसाद के नाटक *चंद्रगुप्त* में मिलता है। चाणक्य पूरी तरह ब्राह्मणवादी मान्यताओं का पोषक है। इस नाटक में वह स्थान-स्थान पर मगध के शासक महापद्म नंद पर अपना आक्रोश इसलिए व्यक्त करता है कि वह शूद्र और बौद्ध है।

मध्य युग में इस टकराव को नया रूप प्राप्त हुआ। तमिल के अलवार संतों में शूद्र भी थे और स्त्रियां भी। यह एक प्रकार से श्रुति-स्मृति परक ब्राह्मणवादी व्यवस्था का निषेध था। दक्षिण भारत में ही आचार्यों का प्रादुर्भाव हुआ। इन्होंने विविध तर्कों से भागवत धर्म की श्रेष्ठता का प्रतिपादन किया। आचार्य रंगनाथ, मुनिश्री यामुनाचार्य, रामानुजाचार्य, निम्बार्काचार्य, मध्वाचार्य, बल्लभाचार्य आदि आचार्यों ने वैष्णव साधना के लगभग उसी स्वरूप की स्थापना की जो पुराण प्रतिपादित थी। इतना अवश्य हुआ कि उपासना का जो अधिकार असवर्णों ने स्वयं ले लिया था, उसका विरोध नहीं हुआ। स्वामी रामानंद ने ऐसे लोगों को बाद में अपना शिष्य भी बनाया।

किंतु इस स्थिति में एक बात अवश्य उभरी। अधिसंख्य स्वर्ण जातियों के भक्तों

का रुझान सगुण भक्ति धारा की ओर रहा। अवतारवाद, श्रुति-स्मृति निष्ठा, मूर्तिपूजा कर्मकांड, ब्राह्मण की प्रतिष्ठा और भूदेवता के रूप में उनकी मान्यता इनके आधार रहे।

अद्विज जातियों के संतों का रुझान निर्गुण भक्ति की ओर गया। प्रारंभ में इनके आकर्षण केंद्र में सगुण भक्ति के अनेक तत्व रहे, फिर धीरे-धीरे ये निर्गुण धारा के निकट आते गए। संत नामदेव का उदाहरण इस दृष्टि से उल्लेखनीय है। दक्षिण भारत से उत्तर भारत की ओर आती हुई भक्ति का बहुत महत्वपूर्ण पड़ाव महाराष्ट्र है। यहां ब्राह्मण और अब्राह्मण दोनों प्रकार के भक्तों का प्रादुर्भाव हुआ। नामदेव का इनमें बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। वे बीठल (विष्णु) के उपासक थे। छोटी जाति का होने के कारण मंदिर के पुजारियों ने उन्हें मंदिर से बाहर निकाल दिया था। इस बात का उल्लेख नामदेव ने स्वयं अपनी रचना में गहन पीड़ा के साथ दिया है।

हसत खेलत तेरे देहुरे आया।।
भगति करत नामा पकरि उठाया।।
हीनड़ी जाति मेरी जादम राया।।
छीपे के जनम काहे को आया।।

उन्होंने विष्णु के अवतार 'जादमराया' (यादव राव-कृष्ण) से यह गिला किया कि मैं तुम्हारे मंदिर में हंसता-खेलता आया था, किंतु मुझे वहां से तुम्हारे पुरोहितों ने पकड़कर उठा दिया। मेरा दोष इतना ही था कि मैं हीन जाति का था। हे बीठल देव! तुमने मुझे छीपे का जन्म क्यों दिया?

शूद्र जाति के भक्तों के प्रति सवर्ण जाति-व्यवस्था का यह भाव सर्वत्र था। नामदेव तेरहवीं-चौदहवीं शती के भक्त थे। कुछ समय पश्चात भक्ति की लहर उत्तर की ओर आई तो इन जातियों ने अपने आपको इस लहर से दूर नहीं रखा। किंतु उन्होंने अवतार, मुर्तिपूजा और श्रुति-स्मृति सम्मत सगुण धारा से पूरी तरह नहीं बांधा। इस धारा में उनका स्थान वही हो सकता था जिसका चित्रण नामदेव ने किया था।

कबीर के समय निर्गुण और सगुण भक्ति धारा का टकराव बहुत मुखर हो उठता है। कबीर ब्राह्मण की प्रभुता को पूरी तरह नकार देते हैं। नामदेव उनसे पूर्व ही ईश्वर की उस अवधारणा की आत्मसात कर चुके थे जो निर्गुण भक्ति की ओर उन्मुख थी। इस अवधारणा में ईश्वर किसी एक स्थान (मंदिर), तीर्थ स्थल और अवतारी पुरुष तक सीमित नहीं है। वह एक है और अनेक होकर सर्वत्र विराजता है। वह घट-घट वासी है:

एक अनेक बिआपक पूरक जत देखउ तत सोई।।
घट-घट अंतरि सरब निरन्तरि केवल एक मुरारी।।

अब नामदेव का बीठल किसी मंदिर तक सीमित नहीं है, जहां से उन्हें निष्कासित किया जा सके। वे कहते हैं :

ईभै बीठलु, ऊभै बीठलु, बीठल बिनु संसार नहीं।।
थान थनंतरि नामा प्रणवै, पूरि रहउ तू सरब मही।।

वे अपने पिता बीठल से कहते हैं—इन पंडितों को यह भ्रम है कि ये ऊंची जाति वाले हैं। इसलिए ये लोग मुझसे क्रोधित हो गए और इन्होंने शूद्र-शूद्र कहकर मुझे मार-मारकर मंदिर से उठा दिया। ये पांडे मुझे नीच कहते हैं। इससे तो तुम्हारी प्रतिष्ठा ही घटती है क्योंकि तुम्हारा भक्त नीच कैसे हो सकता है :

आलावंती इहु भ्रम जो है मुझ ऊपरि सभि कोपिला।।
सूद्र सूद्र करि मारि उठाइउ, कहा करउ बाप बीठुला।।
... .
ए पंडीआ भोकउ ढेढ कहतु तेरी पैज पिछंउडी होइला।।

गुरु ग्रंथ साहब में संगृहीत संतों की रचनाओं का अध्ययन करने के पश्चात इनकी समान और सांझी अवधारणाओं और प्रवृत्तियों को रेखांकित किया जा सकता है। इनमें से सर्व प्रमुख परब्रह्म की अवधारणा है।

ये संत ईश्वर बोधक उन सभी शब्दों का प्रयोग करते हैं जो उस समय प्रचलित थे। इसमें वैदिक वैष्णव, शैव, शाक्त, बौद्ध और इस्लामी परिवेश में प्रचलित सभी नाम आ जाते हैं। अपने-अपने संदर्भों में ये नाम अवतार, मुर्ति, देवता-देवी, सगुण, निर्गुण और किसी संप्रदाय अथवा मज़हब से संबंधित हो सकते हैं, किंतु संतों की वाणी में आते ही वे अपना अर्थ-विस्तार कर लेते हैं और अपनी परिभाषा को छोड़कर बहुत आगे निकल जाते हैं।

ये संत कवि परमतत्व की असीम स्थिति, उसकी सर्वव्यापकता और उसके अनंत रूपों की चर्चा करते हैं। उनकी दृष्टि में राम-कृष्ण आदि सभी अवतार शिव, ब्रह्मा तथा सभी देवता तथा सभी देवियां उस परब्रह्म द्वारा उत्पन्न की गई हैं, जिनकी ग़णना अपरिमित है।

गुरु ग्रंथ साहब में संगृहीत एक पद में संत कबीर इस विशालता और अनंतता की चर्चा करते हुए कहते हैं :

कोटि सूरजा कै परगास।। कोटि महादेव अरु कबिलास।।
दुरगा कोटि जाकै मरदनु करै। ब्रह्मा कोटि बेद उचरै।।।।
जहु जाचहु तउ केवल राम। आन देव सिउ नाही काम।। रहाउ।।
कोटि चंद्र में करहि चराक।। सुर तेतीसउ जेवहि पाक।।
नवग्रह कोटि ठाढे दरबार।। धरम कोटि जाकै प्रतिहार।। 2।।

(पृष्ठ 1162-63)

ऐसे ही भाव को व्यक्त करत हुई पंचम गुरु, गुरु अर्जुन देव की अष्टपदी है :
कोटि बिसन कीने अवतार। कोटि ब्रह्मंड जाके धरम साल।।

कोटि महेस उपाइ समाए।। कोटि ब्रह्में जगु साजण जाए।। । ।।
ऐसो धनी गुविंद हमारा।। बरनि ना साकउ गुण बिसथारा।।
कोटि माइआ जाकै सेवकाई।। कोटि जीझ जाकी सिहजाई।।
कोटि अपार जना तेरै अंगि।। कोटि भगत बसत हरि संगि।। 2।।

\+ \+ \+ \+ \+ \+

अविगत नाथु अगोचर स्वामी।। पुर रहिआ घट अंतरजामी
जतकत देखउ तेरा बासा।। नानक कउ गुरि कीओ प्रगासा।।

(पृष्ठ 1156-57)

इन संतों में वैष्णव परंपरा के नाम सबसे अधिक प्रिय हैं। राम, रामइआ, हरि, गोपाल, केशव, मुरारी, माधव, बनवारी, बीठल जैसे नाम बार-बार प्रयोग में लाए जाते हैं, किंतु ये अपने प्रचलित अर्थों का अतिक्रमण कर जाते हैं। उदाहरण स्वरूप राम शब्द का प्रयोग सभी सगुण कवि दशरथ पुत्र राम के संदर्भ में करते हैं। बाल्मीकि से लेकर तुलसीदास और केशवदास तक दशरथ पुत्र राम की कथा का वर्णन अनगिनत कवियों ने बड़े भक्ति भाव से किया है। तुलसीदास तो उन्हें साक्षात परब्रह्म मानते हैं।

कबीर दास के राम दशरथ पुत्र नहीं हैं :

दसरथ सुत तिहुं ओर बखाना।।
राम नाम का मरन हैं आना।।
\+ \+ \+
एक राम दशरथ का प्यारा।।
एक राम ने सकल पसारा।।

उनके राम और कृष्ण राजा दशरथ के घर में अवतरित नहीं हुए हैं, उन्होंने लंका के राजा को नहीं मारा। वह देवकी की कोख से पैदा नहीं हुए और न यशोदा के वात्सल्य की छाया में पले हैं। न वे ग्वालों के संग घूमे हैं और न गोवर्धन पर्वत को अपनी उंगली पर उठाया है। न उन्होंने वामन होकर बलि को छला है और न वेद के उद्धार हेतु वाराह बनकर धरती को अपने दांतों पर उठाया है। वे गंडल के शालिग्राम भी नहीं हैं और न मत्स्य, कच्छप आदि रूपों में जल में डोले हैं। वे न नर-नारयण रूप में बद्रीनाथ में ध्यान लगाकर बैठे हैं और न परशुराम बनकर क्षत्रियों का नाश करने गए हैं। उन्होंने द्वारिका में शरीर नहीं छोड़ा और न वे जगन्नाथ धाम में आसन जमाकर बैठे हैं। संत कबीर की दृष्टि में ये सब वाहरी व्यवहार हैं। समूचे संसार में व्याप्त होने वाले राम इनसे अधिक अगम है :

ता साहब के नामों साथा। दुख सुख कोटि जो रह्यो अनाथा
ना दसरथि घरि औतरि आवा ना लंका का राव सतावा।।

देवै कूख न औतरि आवा। ना जसवै ले गोद खेलावा।।
ना वो ग्वालन के संग फिरिया। गोवरधन ले ना करि धरिया।।
वामन होय नही बलि छलिया। धरनी वेद न लेने उधरिया।।
गंडक सालिग राम न कोला। कच्छ, मच्छ है जलहिं न डोला।।
बद्री बैठा ध्यान नहि लावा। परसुराम हवै खत्री न सतावा।।
द्वारमती सरीर न छोड़ा। जगन्नाथ ले प्यउ न गाड़ा।।
कहै कबीर विचारि करि ये ऊले व्यवहार।।
याहीं थे जो अगम है, सो बरति रह्या संसार।।

संत कबीर ने इस पद में विष्णु के सभी अवतारों-राम, कृष्ण, वामन, वाराह, मत्स्य, कच्छप, नरनारायण, परशुराम आदि को पूरी तरह नकार दिया।

संत रविदास ने भी इसे पूरी तरह अस्वीकार किया कि उनके राम दशरथ के पुत्र थे :

रविदास हमारी राम जो, दसरथ करि सुत नाहिं।।
राम हमउ महि रमि रहयो विसब कुटंबह मांहि।।
घट-घट बिआयक राम है रामंहि बूझे कोय।।
रविदास बूझे सोई राम कूं, जउ राम सनेही होय।।

अपने इष्टदेव के प्रति ऐसी अवधारणा लगभग सभी संतों की रही है। जयदेव गीत गोबिंद के रचयिता थे, जो कृष्ण को समर्पित है। किंतु आदि ग्रंथ में सम्मिलित उनका पद राम और कृष्ण के अवतारी रूप पर बल नहीं देता, वरन उनके सर्वव्यापी सर्वोच्च, सर्वशक्तिमान पर आग्रह करता है :

परमादि पुरुष मनोपिमं सति आदि भाव हतं।।
परमदुभूतं परकृति परं जादचिंति सरबगतं।।
केवल राम नाम मनोरम।।
बदि अमृत तक मइअं।।

राम भक्ति के प्रथम आचार्य के रूप में स्वामी रामानंद की स्वीकृति सर्वमान्य है। यह भी कम आश्चर्य की बात नहीं है कि कबीर और तुलसीदास- दोनों ने ही राम भक्ति को अपना आधार बनाया। एक ने उन्हें निर्गुण में स्वीकार किया तो दूसरे ने सगुण रूप में। किंतु इन दोनों संतों के प्रेरणा स्रोत स्वामी रामानंद है। राघवानंद स्वामी को उनका गुरु माना जाता है। किंतु वे उस परंपरा को स्वीकार करते थे, जिसमें न शूद्रों का स्थान था, न स्त्रियों का। यह भी कहा जाता है कि रामानंद का अपने शिष्य वर्ग में शूद्रों और स्त्रियों को भी स्थान दिए जाने के कारण अपने गृरु से मतभेद हो गया था, इसलिए उन्होंने

नया संप्रदाय स्थापित कर लिया था।

उदारचेता स्वामी रामानंद को निर्गुण संतों ने भी आदर दिया और सगुण भक्तों ने भी। *गुरु ग्रंथ साहब* में उनका जो पद सम्मलित है, वह निर्गुण मार्गी संतों की विचार सरणि के अनुकूल है। इसमें मंदिर की कर्मकांडी पूजा की अपेक्षा अपने हृदय में भी ब्रह्म को ढूंढने पर बल है, वेद-पुराण के प्रति भी निगुर्णियों वाला दृष्टिकोण है और गुरु की कृपा से सभी भ्रमों से निवारण की युक्ति पर बल है।

निगुर्ण विचारधारा वाले संत आर्ष ग्रंथों को अकाट्य नहीं मानते। वे वेदों का स्वतः प्रमाण भी नहीं मानते, न ही शास्त्र वचन को अंतिम सत्य मानते हैं। उनका आग्रह ईश्वर से अनन्य प्रेम, उसकी भक्ति और आत्मानुभूति पर अधिक है। तुलसीदास जैसे सगुण भक्त अपनी बात की सच्चाई यह तर्क देकर प्रमाणित करते हैं कि वह श्रुति सम्मत है:

श्रुति सम्मत हरि भगति पथ, संजुत विरति विवेक।
तेहि न चलहि नर मोहि वस कल्पहिं पंथ अनेक।

किंतु ऐसा आग्रह इन संतों का नहीं है। रामानंद अपने पद में कहते हैं :

वेद-पुराण सभ देखे जोइ
उहों तउ जाईऐ जउ ईहां न होई

गुरु ग्रंथ साहब का मूल आग्रह ईश्वर नाम को समझने, उसे बूझने, उसे आत्मसात करने और जीवन में धारण करने में है, वेद अथवा कतेब (कुर्रान) के पढ़ने मात्र से नहीं है। गुरु अमरदास कहते हैं :

सिम्रित सासत्र बहुतु बिसथारा।।
माइआ मोहु पसरिया पासारा।।
मूरख पड़हि सबदु न बूझहि,
गुरमुखि बिरलै जाता हो।।

गुरु ग्रंथ साहब में संगृहीत पद में परमानंद भी इस बात पर आग्रह करते हैं कि यदि मनुष्य में भक्ति की पवित्र भावना नहीं उत्पन्न हुई, दान वृत्ति नहीं उपजी, काम, क्रोध, लोभ, परनिंदा जैसी वृत्तियां दूर नहीं हुई तो मात्र पुराण सुन लेने से क्या होगाः

तै नर किआ पुरान सुनि कीना
अनपावनी भगति नही उपजी,
भूखै दानु न दीना।। 1।।रहाउ।।
कामु न बिसरिउ, क्रोध न बिसारिउ,
लोभ न छूटिउ देवा।।

परनिंदा मुख ते नहीं छूटी,
निफल भई सभ सेवा।। 1 ।।

कबीर ने स्पष्ट शब्दों में कहा कि पंडित वेद-पुराण पढ़ते हैं, मौलाना कुरान पढ़ते हैं, किंतु जिन्हें राम की पहचान नहीं है वे नरक में जाते हैं :

पंडित वेद-पुराण पढ़ै औ मौलाना पढ़ै कुरान।।
कह कबीर वे नरक गये जिन हरदम राम न जाना।।

इस संतों की आस्था बाहरी कर्म-कांण्डों में नहीं है। गुरु ग्रंथ साहब में एक पद ऐसा है, जिसके प्रारंभ में लिखा है 'भैरउ महला-5' अर्थात यह पद पांचवे गुरु, गुरु अर्जुन देव ने भैरव राग में रचा है, किंतु पद के अंत में लिखा है—कहु कबीर, इहु कीआ वखाना कुछ टीकाकारों का मत है कि इस पद की रचना पंचम गुरु ने की थी, किंतु इसे उन्होंने संत कबीर को अर्पित किया था। इस पद में कहा गया है—मैं तो उस परम सत्ता की सेवा करता हूं जिसके पास सभी समस्याओं का समाधान है। पूरा पद इस प्रकार है :

वरत न रहउ, नह रमदाना।।
तिसु सेवी, जो रखै निदाना।।
ऐकु गोसाई अलहु मेरा।।
हिंदू तुरक दूहों नेबेरा।। । ।। रहाउ।।
हज काबै जाउ न तीरथ पूजा।।
एको सेवी अवरु न दूजा।। 2 ।।
पूजा करउ न निवाज गुजारउ।।
एक निरंकार ले रिदे नमसकारउ।। 3।।
ना हम हिंदू, न मुसलमान।।
अलह राम के पिंड परान।। 4।।
कहु कबीर इहु कीआ बखाना।।
गुर पीर मिलि, खुदि खसमु पछाना।।5।।।

संत कबीर ने तो स्मृतियों की स्पष्ट निंदा की है। स्मृतियों द्वारा ही वर्ण व्यवस्था, ऊंच-नीच, धर्म और समाज में नारी की स्थिति की व्याख्या है जिसे ये संत पूरी तरह से नकारते हैं। कबीर कहते हैं :

स्मृतियों को वेद की पुत्री कहते हैं। ये (वर्ण) व्यवस्था और कर्मकांड की जंजीर और रस्सी लेकर आई हैं। इन्होंने अपने (श्रद्धालुओं) नगर को बांध लिया है और इन्हें मोहजाल में जकड़ कर इनके सिर पर काल का तीर तान दिया है। यह जंजीर काटे कटती नहीं, तोड़ने से टूटती भी नहीं। यह सर्पिणी बनकर सारे संसार को खा रही है। हम देखते

हैं कि इन स्मृतियों ने (इनके द्वारा दी हुई व्यवस्था ने) संपूर्ण संसार को लूट लिया है। कबीर तो राम का नाम लेकर इनसे मुक्त हो गया है :

वेद की पुत्री सिंम्रत है भाई।।
सांकल जेवरी लै आई।। 1।।
आपन नगर आप ते बाधिआ।।
मोह कै फाधि काल सरु सांधिआ।। 1।। रहाउ।।
कटी न कटै तूटि नह जाई।।
सा सापनि होइ जग कउ खाई।। 2।।
हम देखतु, जिनि सभु जगु लूटिआ।।
कहु कबीर, मैं राम कहि छूटिआ।।3।।

स्पष्ट है कि पूर्व मध्यकाल (आठवीं से तेरहवीं शती) में जिस श्रुति-स्मृति सम्मत भक्ति पर अत्यधिक जोर था, जिस काल पर स्मृतियों और पुराणों का पूरा प्रभाव था, जिस काल में ब्राह्मणों और बौद्धों का आपसी टकराव चरम पर था और कर्मकांड पूरी तरह छाया हुआ था, उस काल और उसके पश्चात उत्तर मध्यकाल में इसके विरुद्ध स्वर मुखरित हुआ। भक्ति के क्षेत्र में शूद्र भी आए और स्त्रियां भी। इन्होंने श्रुति-स्मृति की अकाट्य मान्यता को नकार दिया, कर्मकांड की खिल्ली उड़ाई अवतारवाद को अस्वीकार कर दिया, मूर्तिपूजा के प्रति अपनी अनास्था व्यक्त की, परमसत्ता को धर्म स्थानों और तीर्थ यात्रा से मुक्त कर दिया, जाति-पांति के बंधन तोड़ दिए और इस बात का उद्घोष कर दिया कि :

जाति पाति पूछै नहि कोई,
हरि को भजै सो हरि का होई।

मूर्ति पूजा की निस्सारता की चर्चा करते हुए नामदेव ने अपनी प्रौढ़ावस्था में अनेक प्रश्न उठाए—घड़ा लाकर उसमें पानी भरकर मैं अपने ठाकुर को स्नान कैसे कराऊं, जल में तो बयालीस लाख जीव रहते हैं जिनमें मेरा बीठल रहता है। फूलों की माला अपने ठाकुर को कैसे पहनाऊं, क्योंकि भंवरे ने तो उसकी गंध पहले ही ले ली है। दूध लाकर उससे बनाई खीर का भोग अपने ठाकुर को कैसे लगाऊं, क्योंकि बछड़े ने पहले ही उसे जूठा कर दिया है। मेरा बीठल तो सर्वत्र बसता है, वह तो संपूर्ण सृष्टि में व्यापक है :

आनील कुंभ, भराइले ऊदक,
ठाकुर को इसनानु करउ।।
बइआलीस लाख जी जल महि होते,
बीठल मैला काइ करउ।।

जत्र जाउ तत बीठल भैला।।
महाअनंद करे सदकेला।।
संत कबीर ने तो बड़े स्पष्ट शब्दों में कह दिया :
पाथर पूजे हरि मिलै तो मैं पूजूं पहार।।
ताते यह चाकी भली, पीस खाय संसार।।

गुरु अर्जुन देव ने मूर्तिपूजा की निस्सारता व्यक्त करते अपने एक पद में कहा है :

घर महि ठाकुरु नदरि अ न आवै,
गल महि पाहणु लै लटकावै।।1 ।।
भरमे भूला साकतु फिरता।।
नीरु बिरोलै खपि खपि मरता।।2 ।।।
जिसु पाहण किउ ठाकुर कहता।।
उह पाहणु लै उस कउ डुबता।। 3।।
गुनहनगार लूण हरामी।।
पाहणु नाव न पारगरामी।। 4।।
गुर मिलि नानक ठाकुर जाता।।।
जलि थलि महीअल पूरन विधाता।। 5।।

(गुरु ग्रंथ साहब, पृष्ठ 738)

ये संत बहुदेववाद को भी स्वीकार नहीं करते। ये एक ईश्वर की अवधारणा को स्वीकार करते हैं। गुरु नानक ने ओकांर के साथ 'एक' लगाकर इस तथ्य की पुष्टि कर दी थी। उन्होंने आग्रह पूर्वक कहा था :

जेता सबदु सूरति धुनि तेती,
जेता रूप काइआ तेरी।
साहिब मेरा एको है, एको है भाई एको है।
संत कबीर ने भी यही घोषित किया था :

साई मेरा एक तू और न दूजा कोय

संत कवियों का आराध्य मनुष्य-मनुष्य में कोई भेद-भाव नहीं करता। वह किसी विशिष्ट धर्म, मत, मज़हब सम्प्रदाय के साथ जुड़ा हुआ नहीं है। वह सर्वव्यापी है, सर्वपालक है, सर्वहंता है। वह सभी का पिता है, सभी उसके पुत्र हैं। उसका कोई वर्ण नहीं हैं कोई जाति नहीं है, रूप-अरूप नहीं है, उसका कोई विशेष स्थान अथवा गांव नहीं

है। संत कबीर कहते हैं :

करता के कुछु रूप न रेखा। करता के कुछ वरन न बेखा।
ताके जात गोत कुछ नाही। महिमा बरन न जाय मो पाही।
रूप अरूप नहीं तोहि ताऊं। वर्न अवर्न नहीं तंहि ठाऊं।
कहै कबीर विचारि कै, जाके वर्न न गांव।।
निराकार औ निर्गुना, है पूरत सब ठांव।।

गुरु अर्जुन देव कहते हैं कि परमात्मा उसी प्रकार व्यापक है जैसे सभी वनस्पतियों में आग समायी हुई है, दूध में घी समाया हुआ है। इसी प्रकार परमात्मा की ज्योति ऊंच-नीच सभी में व्याप्त है। वह तो घट-घट में बसता है :

सगल बनसपित महि बैसंतरू सगल दूध महि घीआ।।
ऊंच-नीच महि जोति समानी, घटि-घटि माधउ जीआ।।

(पृ. 617)

संत नामदेव इस भाव को व्यक्त करते हुए कहते हैं :
कहस नामदेउ हरि की रचना, देखहु रिदै बीचारी।।
घट-घट अंतर सरब निरंतर केवल एक मुरारी।।

(पृ. 485)

शेख फरीद ने कहा कि खुदा जनता में बसता है और जनता खुदा में बसती है। यदि उसके बिना और किसी का अस्तित्व नहीं है तो बुरा किसे कहा जाए :

फरीदा खालकु खलक महि खालक बसै रब माहि।।
मंदा किस नौं आखीऐ जां तिस बिन कोइ नाहि।।

(पृ. 1381)

ब्राह्मण, पांडा, पंडिया, पांडे आदि शब्दों द्वारा इन संतों ने उस पुरोहित वर्ग को अनेक बार संबोधित किया है, जिसकी मान्यताओं और कर्मकांडों के कारण तत्कालीन समाज में कठोर वर्ण व्यवस्था को प्रश्रय मिलता था, अद्विज जातियों के साथ अन्यायपूर्ण व्यवहार किया जाता था, उन्हें ईश्वर-भक्ति से वंचित रखा जाता था, उन्हें मंदिर-प्रवेश नहीं करने दिया जाता था और उन्हें शूद्र कहकर अपमानित किया जाता था।

नामदेव जैसे निस्पृह संत को इन्हीं पंडे-पुरोहितों ने मंदिर से इसलिए निष्कासित कर दिया था, क्योंकि जाति के छीपा थे। ऐसे ही एक पांडे को संबोधित करते हुए उन्होंने कहा था :

ऐ पाण्डे, मुझे तो सर्वव्यापी बीठल के दर्शन हो गए, जिसे तुम मंदिर में ही सीमित

मानते रहे (और जहां से मुझे तुमने निष्कासित कर दिया था)।। हे मूर्ख यह बात मैं तुम्हें समझाता हूं। तुमने अपने सभी पूज्य केंद्रों को स्वयं ही लांछित कर रखा है। तुम्हारी गायत्री लोध किसान का खेत खा रही थी। किसान ने लाठी से उसकी टांग तोड़ दी, जिससे वह लंगड़ी-लंगड़ी चलती है। (एक पौराणिक कथा के अनुसार किसी शाप के कारण गायत्री को गाय की योनि प्राप्त हुई। उस गाय ने किसी किसान का खेत चर लिया। किसान ने क्रोधित होकर उसकी एक टांग तोड़ दी, परिणामस्वरूप वह लंगड़ी हो गई।)

हे पाण्डे, मैंने तुम्हारा महादेव सफेद बैल पर चढ़कर आते हुए देखा था। उन्होंने अपने एक मोदी भक्त के घर भोजन तैयार कराया। उन्होंने भोजन तो किया नहीं, उल्टे उसके बेटे की हत्या कर दी। (एक प्रचलित कथा के अनुसार महादेव ने किसी भक्त के घर भोजन तैयार करवाया। भोजन रुचिकर न लगने के कारण उन्होंने भक्त को शाप दिया और उसके पुत्र की मृत्यु हो गई।)

हे पांडे, तुम्हारे रामचंद्र को भी आते देखा था। उनकी रावण से लड़ाई हो गई और वे अपनी पत्नी गवां बैठे।''

नामदेव ने ये बातें पाण्डे को क्यों स्मरण कराईं? लगता है वे उस वर्ग से बहुत असंतुष्ट थे, जो उनकी भक्ति के मार्ग में न केवल बाधाएं उत्पन्न करता था, वरन् उन्हें लांछित भी करता था। इसे एक क्रुद्ध तथा अपमानित मन की प्रतिक्रिया मानना चाहिए। पद के अंत में वे यह भी कहते हैं कि हिंदु तो पूरी तरह रूढ़िग्रस्त होकर अंधा हो गया है, तुर्क (मुसलमान) भी बड़ी सीमा तक इस रूढ़िग्रस्तता का शिकार हो गया है। इसलिए वह काना है। इन दोनों से ज्ञानी सयाना है। हिंदू मंदिर में पूजा करता है, मुसलमान मस्जिद में जाता है। नामदेव तो उसकी सेवा करता है जो न मंदिर में है, न मस्जिद में।

नामदेव का पद इस प्रकार है :

आजु नामे बीठल देखिया, मूरख को समझाऊ रे।।
पांडे तुमरी गाइत्री, लोधे का खेत खाती थी।।
लैकरि ठेगा टंगरी तोरी, लांगत लांगत जाती थी।। 1।।
पांडे तुम्हारा महादेव,
धउले बलद चडिआ आवत देखिआ था।।
मोदी के घर खाणा पाका, वा का लड़का मारिआ था ।।2।।
पांडे तुम्हारा राम चंदु, सो भी आउत देखिआ था।।
रावन सेती सरबर होई, घर की जोड़ गवाई थी।। 3।।
हिंदू अन्ना तुरकू काणा।।
दोहू से गिआनी सिआणा।।
हिंदू पूजै देहुरा, मुसलमान मसीत।।

नामे सोई सेविआ, जह देहरा न मसीत।।4।।

एक अन्य पद में नामदेव ने अपने बीठल को संबोधित करते हुए कहा—इन पंडितों को यह भ्रम है कि ये ऊंची जाति के हैं। इसलिए इन्होंने मुझे शूद्र कहकर मंदिर से मारकर उठा दिया। यदि तुमने मुझे मृत्यु के बाद मुक्ति दे दी तो उसे कौन जानेगा। ये पांडे तो मुझे नीच कहते हैं। यह तो तुम्हारा अपमान है। तुमने तो नामदेव के लिए मंदिर का द्वार घुमा दिया था ओर पंडो को पीठ दिखा दी थी :

मो कउ तूं न विसारि, तू न विसारि।।
तू न बिसारे रामईआ।। 1।।रहाउ।।
आलावंती एहु भ्रमु जो है
मुझ ऊपरि सभ कोपिलां।।
कहा करउ बाप बीठला।। 1।।
मूए हुए जउ मुकती देहुगे।।
मुकति न जाने कोइला।।
ऐ पंडिआ मोकउ ढेढ कहत,
तेरी पजै पिंछुउडी होइला।।
जो तू दइआलु कृपालु कहीअतु हैं,
अतिभुज भइओ अपारला।।
फेरि दीआ देहुरा नामे कउ,
पंडीअन कउ पिछवारला।। 3।।।

संत कबीर ने अपने एक पद में पांडे को संबोधित करते हुए कहा—तुमने कैसी कुमति धारण कर ली है। इससे तो तुम परिवार सहित (भवसागर में) डूब जाओगे। वेद-पुराण पढ़ने से तुम्हें क्या लाभ होगा। यह (ज्ञान का भार) तो वैसा ही है जैसे गधे पर चंदन का बोझ लाद दिया जाए। तुम्हारा उद्धार कैसे होगा, क्योंकि तुम्हें तो राम-नाम का मर्म ही नहीं मालूम। तुम (यज्ञ में) जीवों का वध करते हो और इसे धर्म कहते हो। तुम अपने आप को मुनिवर कहते हो, फिर कसाई किसे कहेंगें? मन से तुम अंधे हो, स्वयं कुछ बूझते नहीं तुम, और लोगों को कैसे ज्ञान दोगे? धन के लोभ में तुम विद्या बेचते हो, तुम्हारा जन्म तो व्यर्थ जा रहा है। नारद, व्यास ओर शुकदेव भी यही कहते हैः

पंडिया, कवन कुमति तुम लागे।
बूडहुगे परवार सकल सिउ, राम न जपहु अभागे।। रहाउ।।
वेद पुरान पढ़े का किआ गुन, खर चंदन जस भारा।।
राम नाम की गति नहीं जानी, कैसे उतरसि पारा।।1।।
जीअ बधहु सु धरमु करि थापहु, अधरम कहतु कत भाई।।।

आपस कउ मुनिवर करि थापहु का कउ कहहु कसाई।।
मन के अंधे, आपि न बूझहु काहि बुझावहु जाई।।3।।।
नारद बचन, बिआसु कहत है सुक कउ पूछहु जाइ।।
कहें कबीर रामहि रमि छूटहु नाहित बुडे भाई।।4।।

इसी भाव को व्यक्त करते हुए उन्होंने एक अन्य पद में कहा था—वेद के भरोसे रहकर पांडे तो डूबकर मर गया, किंतु कबीर राम के साथ लगकर तर गया :

तूं ब्राहमन मैं कासी का जुलहा।।
माँहिं तोहिं बारबरी कैसे कै बनहि।।
कहं कबीर हम राम लगि उबरै।।
बेदु भरोसे पांडे डूबि मरहिं।।

ब्राह्मण की उच्चता, श्रेष्ठता और भूदेवता जैसी प्रतिष्ठा पर पुराणों और संहिताओं में वहुत कुछ लिखा गया है। संभवतः यही कारण था कि वह अहंकार की सभी सीमाओं को पार कर गया था और शेष वर्गों, विशेषरूप से शूद्रों, के प्रति उसका दृष्टिकोण हेय भाव से भरा हुआ था। संत कबीर ने उसकी कथित श्रेष्ठता पर जितने प्रश्नचिह्न लगाए उतने किसी अन्य संत ने नहीं। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में पूछा—तुम ब्राह्मण किस प्रकार हो, हम शूद्र किस प्रकार हैं? क्या हमारी शिराओं में लहू बहता है और तुम्हारी शिराओं में दूध प्रवाहित होता है :

तुम कत ब्राह्मण, हम कत सूद।
हम कत लोहू, तुम कत दूध।।

संत कबीर ने ही ब्राह्मण से यह पूछा था कि तुम्हारा जन्म भी उसी पक्रिया से हुआ है जिस प्रक्रिया से सभी प्राणी जन्म लेते हैं :

जौ तू ब्राह्मण ब्राह्मणी जाया।।
तउ आन बाट काहे नहि आया।।

संत कबीर ने पंडित और मुल्ला को सभी झगड़ों की जड़ बताया। उन्होंने कहा जब से मैंने इन दोनों का त्याग कर दिया है मेरा किसी से कोई झगड़ा ही नहीं रहा :

हमारा झगरा रहा न कोऊ।।
पंडित मुलां छाडे दोऊ।।
बुनि बुनि आप, आप पहिरावउ।।
जह नहीं आपु, तहा होई गावहु।। 2।।

पंडित मुलां जो लिखि दीआ।।
छाडि चले हम कछू न लीआ।।3।।

(पृष्ठ 158)

गुरु नानक ने अपने एक पद में कहा—"पंडित पोथी (शास्त्र) पढ़ते हैं, किंतु विचार को नहीं बूझते। दूसरों को उपदेश देते हैं—इससे उनका माया का व्यापार चलता है। उनकी कथनी झूठी है। वे संसार में भटकते रहते हैं। इन्हें 'शब्द' के सार का कोई ज्ञान नहीं है। यह पंडित तो वाद-विवाद में ही पड़े रहते हैं :

पंडित वाचहि पोथीआ ना बूझहि वीचारु।।
आन को मती दे चलहि माइआ का वापारु।।
कथनी झूठी जगु भवै रहणी सबदु सु सारु।।6।।

(पृष्ठ 55)

गुरु अर्जुन देव ने अपनी रचना सुखमनी में अच्छे आचारवान पंडित के लक्षण बताए है :

सो पंडित जो मन परबौधे।। राम नामु आतम महि सोधे।।
रामनाम सारु रस पीवै।। उस पंडित कै उपदेसि जगु जीवै।।
हरि की कथा हिरदै बसावै।। सो पंडितु फिरि जोनि न आवै।।
बेद पुरान सिम्रित बूझे मूलु।। सूखम महि जाने असथूलु।।
चहु वरना कउ दे उपदेसु।। नानक उसु पंडित कउ सदा अदेसु।।

(पृष्ठ 274)

इस पद में गुरु अर्जुन देव की दो बातें दृष्टव्य है—एक सही अर्थों में पंडित वह है जो केवल शास्त्रों का पढ़ता ही नहीं है, उसके मूल संदेश को भी समझता है। दूसरी महत्वपूर्ण बात यह है कि अपना उपेदश द्विज जातियों तक ही सीमित नहीं रखता, वह चारों वर्णो (शूद्रों सहित) सभी को अपना ज्ञान-भंडार वितरित करता है।

इन संतों की दृष्टि में परमेश्वर की एक विशेषता यह है कि वह नीच समझे जाने वाले लोगों को ऊंचा बना देता है। ऐसे लोग उसकी कृपा के विशेष पात्र है। गुरु नानक ने अपनी पूरी प्रतिवद्धता उनके प्रति व्यक्त की थी, जिन्हें नीच समझा जाता था। यह भी कहा था कि परमेश्वर की कृपा दृष्टि वहां पड़ती है जहां नीचों को संभाला जाता है:

नीचां अंदरि नीच जाति नीची हूं अति नीच।।
नानक तिनके संगि साथ वडिआं सू क्या रीस।।
जित्थे नीच संभालिअन तिथै नदरि तेरी वखसीस।।

संत रविदास कहते हैं—ईश्वर की भक्ति करने से ब्राह्मण, वैश्य, शूद्र, खत्री, डोम,

चंडाल, मलेच्छ आदि सभी पवित्र हो जाते हैं :

ब्रहमन बैस, सूद अरु खत्री,
डोम चंडार मलेछ मन सोई।।
होइ पुनीत भगवंत भजन ते
आपु तारि तारे कुल दोइ।।

(राग बिलावल)

भगवद्भक्ति से नीच समझे जाने वाले लोग ऊंचे उठ पाते हैं, यह विश्वास इन संत कवियों का मूलाधार है। इनका यह विश्वास ही उन्हें उस युग के सगुण भक्तिधारा के द्विज भक्तों की समकक्षता में ले आया था जिसे स्वीकार करने में उन्हें बहुत असुविधा हो रही थीं संत रविदास तो यह भी कहते हैं कि बड़े-बड़े पंडित, सूरमा, छत्रपति, राजा ये भक्त की बरावरी नहीं कर सकते :

पंडित सूर छत्रपति राजा भगत बराबरि अउर न कोई।।

ये यह भी कहते हैं कि मेरा गोविंद तो नीचों को ऊंचा बना देता है। वह किसी से डरता नहीं है। इसी कारण नामदेव (छीपा), कबीर (जुलाहा), त्रिलोचन (वैश्य), सधना (कसाई), सैण (नाई) इन सभी का उद्धार हो गया :

नीचह ऊच कर मेरा गोबिंदु, काहू ते न डरै।।
नामदेव, कबीर, त्रिलोचन, सधना सैन तरै।।

(राग मारु)

ये संत डंके की चोट पर अपनी नीची समझी जानी वाली जाति की घोषणा करते हैं। नामदेव अपने पदों में बार-बार यह कहते हैं कि मैं छीपा हूं। कवीर कहते हैं कि मैं जुलाहा हूं, रविदास बार-बार कहते हैं कि मैं चमार हूं, धन्ना अपने आप को जाट और सैण अपने आप को नाई कहने में कोई संकोच नहीं करते । इस प्रकार वे द्विज भक्तों को जैसे बार-बार चुनौती देते हैं और वह दावा करते हैं कि इन जातियों में जन्म लेकर हमने अपनी भक्ति द्वारा ईश्वर की अनुकंपा प्राप्त कर ली जैसी द्विज जातियों के भक्तों ने अपने शास्त्र बल और पांडित्य के होते हुए भी प्राप्त नहीं की। इसी कारण चौथे गुरु, गुरु रामदास यह कहते हैं कि रविदास चमार ने प्रभु की स्तुति द्वारा अपनी जाति का पतितत्व समाप्त करके ऐसी उत्तम स्थिति प्राप्त की कि चारों वर्णों के लोग उनके चरणों में आ गिरे :

रविदासु चमार उसतति करे,
हरि कीरति निमख इक गाइ।।

पतित जाति उतमु भइआ।।
चारि वरन पए पगि आए।।

(राग सूही)

गुरु नानक ने अपनी रचना 'जपु' परमेश्वर के अनेक गुणों के साथ ही उसके दो नकारात्मक गुणों की भी चर्चा की थी। उन्होंने कहा था कि वह निरभउ (निर्भय) है और निरवैरू (निर्वैर) है। तत्कालीन समाज में कुछ लोग परमेश्वर को इस प्रकार चित्रित कर रहे थे। जैसे वह कुछ लोगों का मित्र है और कुछ का शत्रु है। गुरु नानक ने कहा कि वह किसी से वैर नहीं रखता, वह निर्वैर है। इसी के साथ कुछ लोग यह भी चित्रित कर रहे थे जैसे परमात्मा भी भयग्रस्त है। वह भी अपने बिचौलियों की सिफारिश के विना किसी प्राणी को अपने निकट नहीं आने देता।

ये संत समाज में पुरोहित वर्णो द्वारा उत्पन्न किए गए भय-भाव को दूर करना चाहते थे। संत रविदास ने *कहा-नीचहु ऊच करें मेरा गोबिंद काहू ते न डरै।*

उस समय लोग भयग्रस्त थे—पुरोहित वर्ग से जो उन्हें पाप, पुण्य, नरक-स्वर्ग, ईश्वरीय कोप, प्रकृति के आक्रोश से डराता रहता था। दूसरा शासक वर्ग था, जो सामान्य-जन को अपनी राज-शक्ति से भयभीत किए रखता था। संतों ने कहा-प्रभु की शरण में आओ, क्यों कि यह निर्भय है, वह किसी से नहीं डरता। गुरु नानक ने कहा—जब सच से साक्षात्कार होता है तो भय चला जाता है :

मन रे साचु मिले भउ जाई।।

गुरु तेग बहादुर ने कहा था—वही व्यक्ति सच्चा ज्ञानी है जो किसी को भयमीत नहीं करता, न ही किसी का भय स्वीकार करता है :

भै काहू कउ देत नहि, नहि भै मानत आन।
कहु नानक सुनि रे मना गिआनी ताहि बखान।।

उन्हीं के शब्दों में परमेश्वर के प्रमुख गुण हैं—कि वह भय का नाश करता है, दुर्मति नष्ट करता है और वह अनाथों का नाथ है :

भै नासन दुरमति हरन कल महि हरि को नामु।
निसि दिनु जो नानक भजै सफल होहि तिह काम

ये संत अपने समय के सामाजिक अन्याय के प्रति अपनी आवाज बुलंद करते हैं, उसका तीव्र विरोध करते हैं और भेद-भाव रहित समतामूलक समाज की स्थापना का संकल्प करते हैं। इसके साथ ही उन्होंने अपने समय की राजनीतिक स्थितियों को भी झेला और अपनी प्रतिक्रियाएं व्यक्त कीं।

अपने समय के शासक मोहम्मद बिन तुग़लक से संत नामदेव का टकराव हो गया

था। वे तीर्थाटन करते हुए दिल्ली पहुंचे तो सुलतान ने उन्हें बंदी बना लिया और कहा तुम बड़े भक्त हो। मैं तुम्हारे राम के काम देखना चाहता हूं। तुम मरी मेरी हुई गाय को जीवित कर दो नहीं तो तुम्हारी गर्दन उड़ा दी जाएगी। इस प्रसंग का वर्णन नामदेव ने स्वयं किया है :

सुलतान पूछै, सुनु बे नामा।।
देखहु राम तुम्हारे कामा।। 9।।
नामा सुलतान बाधिला।।
देखहु तेरा हरि बीठुला।। 9।।रहाउ।।
बिसमिलि गऊ देहु जीवाइ।।
नातरु गरदनि मारउ ठाइ।। 2।।
...+ + +
बादिसाहु चढिउ अहंकरि।।
गज हसती दोनों चमकारि।।5 ।।

इस पद में नामदेव के अनुसार उनके सम्मुख राज्य-शक्ति का संकट खड़ा हो गया था, जिसे बीठल ने अपनी कृपा से दूर कर दिया था।

संत कबीर सिंकदर लोधी के कोपभाजन बन गए थे। इसका वर्णन उनकी रचनाओं में भी मिलता है। *गुरु ग्रंथ साहब* में संगृहीत एक पद में वे कहते हैं—हे प्रभु (बादशाह सिकंदर लोधी के आदेश से) काजी ने आदेश दिया है कि इस कबीर पर हाथी चढ़ा दो। किंतु हे मेरे ठाकुर, मेरा तो तुम्हीं पर जोर है। मेरी बाहें बांधकर उन्होंने मुझे मिट्टी के ढेले की तरह हाथी के सामने फेंक दिया। महावत ने उसे अंकुश से मार कर मेरी ओर बढ़ाया भी, किंतु हाथी के हृदय में तो भगवान का वास था, इसलिए सभी संकटों से मेरी रक्षा हुई :

भुजा बांधि, मिला करि डारिउ।।
हसती कोपि, मूंड महि मारिउ।।
हसति भागि कै चीसा मारै।।
इआ मूरति कै हउ बलिहारै।। 9।।
आहि मेरे ठाकुर तुमरा जोरु।।
काजी बकिबो, हसती तोर ।। 9।।रहाउ।।
रे महावत, तुझु डारउ काटि।।
इसहि तुरावहु घालहु साटि।।
हसति न तोरै, धरै धिआनु।।
वाकै रिदै बसे भगवानु ।।2।।
किआ अपराधु संत है कीना।।

बांधि पोट कुंचर कउं दीना।।
कुंचर पोट लै लै नमसकारे।।
बूझी नहीं काजी अंधिआरै ।। 3।।
तीनि बार पतीआ भरि लीना।।
मन कठोर अजहू न पतीना।।
कहि कबीर हमरा गोबिंदु ।।
चउथे पद महिजन की जिंदु।। 44।।

संत कबीर ब्राह्मणों के कर्मकांड और मुल्लाओं की शरियत की निरंतर आलोचना करते रहे और इस कारण उन्होंने दोनों वर्गों के धर्म के अगुवाओं को अपने विरुद्ध कर लिया। कहा जाता है कि इन्होंने मिलकर सिकन्दर लोधी से उनकी शिकायत की, जिसका परिणाम यह हुआ कि उन्हें राज्य-शक्ति द्वारा अनेक प्रकार के कष्ट दिए गए। अपने एक पद में उन्होंने इस का उल्लेख करते हुए कहा कि उन्हें जंजीरों से जकड़ा गया, गंगा में वहा दिया गया। किंतु जिनका मन प्रभु के चरणों में लगा होता है, उनका मन विचलित नहीं होता इसलिए उनका तन भी नहीं डरता। स्वयं गंगा ने उनकी जंजीरें तोड़ दी और कबीर इस प्रकार गंगा की लहरों पर उतरने लगे जैसे मृगछाला पर बैठे हों :

गंगा गुसाइनि गहिर गंभीर।।
जंजीर बांध करि खरे कबीर।।1।।
मनु न डिगै, तनु काहे कउ डराइ।।
चरन कमल चितु रहिउ समाइ।।रहाउ।।
गंगा की लहरि मेरी टूटी जंजीर।।
मृगछाला पर बैठे कबीर ।।2।।
कहि कबीर कीउ संग न साथ।।
जल थल राखन है रघुनाथ।।3।।

(पृष्ठ 162)

उस समय की राज्य-व्यवस्था, विदेशी आक्रमण, सरकारी कर्मचारियों की मानसिकता पर गुरु नानक ने बड़ी तीक्ष्ण टिप्पणियां कीं। सुमेर पर्वत पर जब उनकी भेंट सिद्धों के साथ हुई तो सिद्धों ने पूछा कि देश की क्या स्थिति है तो उन्होंने उत्तर दिया—"इस कलियुग में राजा कसाई हो गए हैं, धर्म पंख लगाकर उड़ गया है, झूठ की अमावस छाई हुई है, सच का चंद्रमा कहीं दिखाई नहीं देता :

कलि राती राजे कासाई धरमु पंख करि उडरिया।।
कूडु अमावस सचु चंद्रमा दीसै नाही कह चड़िया।।

(पृष्ठ 145)

तत्कालीन राज शासकों और उनके कारिंदों के चरित्र और आचरण पर अपना तीव्र रोष व्यक्त करते हुए उन्होंने कहा था–आज के शासक व्याघ्र के समान हिंसक हैं और उनके कारिंदे कुत्तों के समान लालची हैं और शांत जनता को बिना किसी कारण पीड़ित करते रहते हैं। उनके नौकर, कुत्तों के समान, अपने पैर के नाखूनों से लोगों को लहूलुहान करते हैं और उनका खून चाट जाते हैं। जहां इनके कुकर्मों की परख की जाएगी, वहां इनकी नाक कट जाएगी :

राजे सींह मुकद्दम कुत्ते।।
जाइ जगाइन बैठे सुत्ते।।
चाकर नहन्दा पाइन्हि घाउ।।
रतु पितु कुतिहो चटि जाउ।।
जिथे जीआ होसी सार।।
नकी बड़ी लाइत बार।।

(पृष्ठ 288)

बाबर के आक्रमण को गुरु नानक ने अपनी आंखों से देखा था। आक्रमणकारियों ने उन्हें बंदी भी बना लिया था। मगर देशवासियों की उस समय जो दुर्दशा हुई थी, गुरु नानक ने उसका बड़ा मार्मिक चित्रण अपने कुछ पदों में किया है–"जिन स्त्रियों के सिर में सुंदरपटि्टयां शोभित होती थी, जिनकी मांग सिंदूर से भरी होती थी, जालिमों ने उनके बाल काट दिए और उन्हें इतनी बुरी तरह घसीटा कि उनके गले तक धूल भर गई। जो महलों में निवास करती थीं, अब उन्हें बाहर बैठने का स्थान भी नहीं मिलता। विवाहित स्त्रियां, जो अपने पतियों के पास सुशोभित थीं, जो पालकियों में बैठकर आई थीं, जिन पर लोग जल न्योछावर करते थे, उन पर लाखों रुपयों की वर्षा होती थीं, वे मेवे खाती थी, सेज पर रमण करती थीं, अब उनके गलों की मोतियों की माला टूट गई है और उनके स्थान पर अत्याचारियों ने रस्सियां डाल दी हैं। धन और यौवन ने उन्हें अपने रंग में रंग रखा था, अब ये दोनों ही उनके बैरी हो गए हैं। सिपाही उनकी इज़्ज़त लूटकर चले गए हैं :

जिन सिर सोहनि पटि्टयां मांगी पाइ संधूर।।
से सिर काती मुनीअन्हि गल विचि आवै धूड़ि।।।
महला अंदरि होंदीआं हुणि बहणि न मिलन्ह हदूरि।।
जदहु सीआ बीआहिआं, लाड़े सोहनि पासि।।
होडोली चढ़ि आइआं दंद खंड कीते रासि।।
उपरहु पाणी वारीऐ झले झमकनि पासि।।
इक लख लहन्हि बहिठीआं लख लहन्हि खड़ीआ।।
गरी छुआरे खांदीआ, माणनि सेजड़ीआं।।
तिंह गलि सिलका पाईआ तूटनि मोत सरिआ।।

धन जोबनु दुइ वैरी होए जिन्हें रखे रंगि लाइ।।
दूता नो फुरमाइआ लै चलै पति गवाइ।।

इन संत कवियों ने जिस प्रकार की भावनाओं का प्रदर्शन किया, वर्ण व्यवस्था, ऊंच-नीच और असमानता का विरोध किया, ब्राह्मण की श्रेष्ठता पर प्रश्नचिह्न लगाए, अवतारवाद और मूर्तिपूजा को अस्वीकार किया और सर्वव्यापी, घट-घटवासी निर्गुण ब्रह्म के प्रति अपनी आस्था व्यक्त की, वह सब वर्ण व्यवस्था के पोषण और श्रुतिस्मृति के अनुगामी द्विज भक्तों को बहुत विचलित करने वाला था। अपने समय के कृष्ण भक्ति और राम भक्ति के समर्थ भक्तों ने इन संतों द्वारा प्रचारित भक्ति मार्ग और विचारधारा का कहीं परोक्ष और कहीं अत्यंत मुखर होकर खंडन किया। सूरदास और नंददास से भंवरे के माध्यम से उद्धव और गोपियों के मध्य जो संवाद कराया है, वह पूरी तरह निर्गुण भक्ति का खंडन करने का आयोजन था।

इस दृष्टि से गोस्वामी तुलसी दास का मत बहुत स्पष्ट और कठोर भाषा में व्यक्त होता है। उनका सबसे बड़ा कष्ट यह था कि निर्गुण संतों के प्रभाव से श्रुति-स्मृति सम्मत धर्म नष्ट हो रहा था। ब्राह्मण की मान्यता को स्वीकार नहीं किया जा रहा था। ये संत वेद-शास्त्र का मार्ग त्याग कर अपने पंथों की रचना कर रहे थे। वर्णाश्रम व्यवस्था को चुनौती दी जा रही थी। शूद्र जातियों में पैदा हुए संत ब्राह्मणों से अपनी बराबरी का दावा करने लग गए थे। तुलसी दास ने इस सभी प्रवृत्तियों के प्रति अपनी तीखी प्रतिक्रया व्यक्त की। 'दोहावली' में वे कहते हैं :

साखी सबदी दोहरा, कहि किहनी उपखान।।
भगति निरुपहिं भ्गत कलि निंदहिं वेद पुरान।।
सुति सम्मति हरि भक्ति पथ संजुति विरत बिवेक।।
तेहि परिहरहिं बिमोह बस, कल्पहिं पंथ अनेक।।

पुराण काल में भविष्य की जिन पतनशील स्थितियों का चित्रण किया गया था उनका तात्कालिक संबंध बौद्ध धर्म से था। आठवीं शताब्दी में आदि शंकराचार्य के समय से ब्राह्मण धर्म का पुनरुद्धार होता है और श्रुति-स्मृति पोषित धर्म का आग्रह बढ़ता है। किंतु निर्गुणिए संतों के कारण इस प्रवृत्ति का व्यापक विरोध शुरू हो जाता है। तुलसीदास जैसे सगुण भक्तों को लगता है कि चारों और इन्हीं संतों की वाणी सुनी और सराही जा रही है। जैसे वर्षा ऋतु आने पर कोयल चुप हो जाती है और चारों और मेढ़कों का स्वर सुनाई देने लगता है, उसी तरह की स्थिति पैदा हो गई है :

तुलसी पावस के समय, धरो कोकिलन मौन।।
अब तो दादुर बोलिहैं, हमे पूछिहै कौन ।।

(दोहावलि)

ब्राह्मणवादी सगुण कवियों का सारा संकट यह था कि अब शूद्र भी ब्राह्मणों से बहस करने लग गए थे और कहते थे कि जो ब्रह्म को जानता है वह ब्राह्मण है। यह कहकर डांटते हुए अपनी आंखें दिखाते थे :

बादहिं सूद्र द्विजन सन हम तुम में कछु घाटि।।
जानहिं ब्रह्म सो विप्रवर, आंखि देखावहि डांटि।।
एक अन्य स्थान पर तुलसी दास ने कहा :
सूद्र करहिं जप तप ब्रत नाना।।
बैठि बरासन कहहिं पुराना।।
सूद्र द्विजन उपदेसहि ज्ञाना।।
मेलि जनेऊ लेइ कुदाना।।

तुलसीदास की मान्यता थी कि संसार में सभी लोगों के लिए श्रुति ने उनके-उनके धर्म निर्धारित कर दिए हैं। इसमें सभी वर्णों के अपने-अपने धर्म हैं। उन्हें उनका अतिक्रमण नहीं करना चाहिए। शूद्रों को संत बनने और उपदेश देने का अधिकार नहीं है। सभी लोग परस्पर प्रीति तभी बनाए रख सकते हैं, जब वे श्रुति-नीति के अनुसार अपने-अपने धर्म का निर्वाह करें :

सब नर करहिं परस्पर प्रीती,
चलहिं स्वधरम निरत श्रुति नीती।।

श्रुति नीति में पहली बात यह है कि सभी वर्ण (विशेष रूप से शूद्र) के लोगों को ब्राह्मणों के चरणों में अपनी प्रीति जोड़नी चाहिए और अपने-अपने निर्धारित कार्यों में लगना चाहिए :

प्रथमहि विप्रचरन अति प्रीती।।
निज निज करम निरत श्रुति नीती।।

इसलिए यदि कोई ब्राह्मण शील और गुण से हीन है तो भी वह पूजने योग्य है, उसके सामने यदि कोई शूद्र-ज्ञान में प्रवीण हो तो भी उसे त्याग देना चाहिए :

पूजहि विप्र सील गुण हीना।।
तजिय सूद्र गुण ज्ञान प्रवीना।।

तुलसीदास से लगभग एक शताब्दी पहले रविदास ने कहा था :

रैदास ब्राह्मण मत पूजिए जो होवे गुनहीन।।
पांव पूज चण्डाल के जो हो ज्ञान प्रवीन।।

लगता है कि तुलसीदास ने रविदास के इस कथन के प्रत्युत्तर में ही अपनी बात कही थी।

गुरु ग्रंथ साहब में संगृहीत संतों ने अपने वैचारिक साम्य के कारण अपने पदों में एक-दूसरे की श्लाघा करते हुए उन्हें स्मरण किया।

संत कबीर ने अपने एक पद में जयदेव और नामदेव का स्मरण करते हुए कहा है कि गुरु की कृपा से इन संतों ने भक्ति के प्रेम की पहचान की थी :

गुरु परसादो जैदेउ नामा।।
भगति के प्रेमि इन ही है जाना।।

(गुरु ग्रंथ साहब, 'रागु गौड़ी', पृ. 330)

नामदेव और त्रिलोचन समकालीन थे और एक ही क्षेत्र (महाराष्ट्र) के रहने वाले थे। उनके आपस में अच्छे संबंध थे। इन दोनों संतों के आपसी संवाद का भी संत कबीर ने अपने सलोक में उल्लेख किया है और उसके माध्यम से सांसारिक कार्य करते हुए प्रभु भक्ति में निमग्न होने के विचार की पुष्टि की है। नामदेव के मित्र त्रिलोचन कहते हैं कि नामदेव तो माया में लिप्त हो गए। वे तो कपड़े छीपते रहते थे। राम नाम में उनका चित्त नहीं लगता :

नामा माइआ मोहिआ, कहै त्रिलोचन मीतु।।
काहै छीपहु छाइलै, राम न लावहु चीत।।

त्रिलोचन की शंका उत्तर में देते हुए नामदेव कहते हैं—हे त्रिलोचन! भक्त को मुख में राम को स्मरण करना चाहिए। उसे हाथ-पांव से काम करना चाहिए और अपने मन को सदैव प्रभु से लगाए रखना चाहिए :

नामा कहै तिलोचना, मुख ते रामु संभालि।।
हाथ पाउ करि कामु सभु चीतु निरंजन नालि।।

('सलोक कबीर' पृ. 1375)

संत रविदास ने अपने एक पद में कबीर और नामदेव का स्मरण किया है :

हरि हरि हरि हरि हरि हरे हरे।।
हरि सिमरत, जन गए निसतरि तरे।।9।।रहाना।।
हरि के नाम कबीर उजागर।।
जनम जनम के काटे गागर।।9।।
निमत नामदेउ दूधु पीआइआ।।
तउ जग जनम संकट नहीं आइआ।।2।।

('राग आसा', पृ. 487)

एक अन्य पद में संत रविदास ने नामदेव, कबीर, त्रिलोचन, सधना और सैण को स्मरण किया है :

नामदेव कबीरु तिलोचनु सधना सैनु तरे।।
कहि रविदासु सुनहु रे संतहु,
हरि जिउ ते सभै सरे।।2।।

('राग मारु', पृ. 1106)

धन्ना भगत का एक पद आदि ग्रंथ में है। इस पद में नामदेव, कबीर, रविदास, सैण तथा जाट जैसे पिछड़ी जाति का भक्त होने की चर्चा है। ये सभी ईश्वरीय कृपा प्राप्त करने में सफल हुए :

गोबिंद गोबिंद गोबिंद संगि, नामदेउ मनु लीणा।।
आढ दाम को छीबरो, होइओ लाखीणा।।9।।रहाउ।।
बुनना तनना तिआगि के प्रीति चरन कबीरा।।
नीचकुला जोलाहरा भइउ गुनीय गहीरा।।9।।
रविदास ढुवंता ढोर नीति तिन तिआगी माइआ।।
परगुट होआ साथ संगि हरि दरसनु पाइआ।।2।।
सैनु नाई बुतकारिआ उह घरि घरि सुनिआ।।
हिदे वसिआ पारब्रह्म भगता महि गनिआ।।3।।
इइ बिधि सुनि कै जाटरो उठि भगति लागा।।
मिलै प्रतखि गुसाईआं, धन्ना वडभागा।।

(पृष्ठ 780-81)

ये सभी संत एक-दूसरे का स्मरण करते हैं और उन्हें इस तथ्य के आदर्श रूप में प्रस्तुत करते हैं कि इन्होंने नीच समझे जाने वाले कुलों में जन्म लेकर भी, अपनी-अनन्य भक्ति द्वारा प्रभु की कृपा प्राप्त की और सभी ओर इनकी भक्ति की प्रशंसा हुई, इनकी प्रसिद्धि हुई, इन्हें मान्यता प्राप्त हुई। गुरु रामदास जी तो यह भी लिखते हैं कि नामदेव की हरि से ऐसी प्रीति लगी कि जिसे लोग छीपा कहते थे, हरि ने खत्री और ब्राह्मण जैसे सवर्ण जातियों को छोड़कर उन्हें स्वीकार कर लिया :

नामदेव प्रीति लगी हरि सेती लोकु छीपा कहै बुलाइ।।
खत्री ब्राह्मण पिठि दे छोड़े हरि नामदेउ लीआ मुखि लाइ।।3।।

(पृष्ठ 733)

गुरु रामदास कहते हैं कि कलियुग में नाम-पदार्थ जिसे प्राप्त हो गया, जिसे

साधुजनों की संगति मिल गई उसका उद्धार हो गया :

नामा जैदेउ कबीर त्रिलोचन
अउ जात रविदास चमिआर चमईआ।।
जो जो मिलै साधुजन संगति
धन धन्ना जट सैण मिलआ हरिदईआ।।
कलयुग नाम पदारथ भगत जन उधरे।
नामा जैदेउ कबीर त्रिलोचन सभि दोख गए चमरे।।

(पृष्ठ 995)

तृतीय गुरु, गुरु अमरदास कहते हैं कि नामदेव छीबा थे, कबीर जुलाहा थे परंतु पूरे गुरु की कृपा से उन्हें सद्गति प्राप्त हुई। उन्हें ब्रह्म का ज्ञान हो गया, उन्होंने शब्द की सही पहचान कर ली। उनमें से अहंकार की जाति को नष्ट कर दिया। अब तो सुर और नर उनकी रची वाणी का गायन करते हैं। उनके महत्व को मिटाया नहीं जा सकता:

नामा छीवा कबीर जुलाहा पूरे गुरु ते गति पाई।।
ब्रह्म के वेते सवदु पछाणदि हउमै जाति गवाई।।
सुरि नर तिन की वाणी गावहि कोई न मेटै भाई।

(पृष्ठ 67)

गुरु ग्रंथ साहब के संग्रहकर्ता, पंचमगुरु, गुरु अर्जुन देव ने भी इन संतों को अनेक बार अपनी भावाजिल अर्पित की है। वे कहते हैं साधुजनों का संग पाकर सद्बुद्धि की प्राप्ति होती है। तब हरि कीर्तन जीवन का आधार बन जाता है। नामदेव, त्रिलोचन, कबीर और रविदास इसी कारण मुक्त हो गए :

साध संगि नानक बुधि पाई हरि कीरतन आधारो।।
नामदेउ त्रिलोचन कबीर दासरो मुकति भइउ चमिजारो।।

(पृष्ठ 498)

उस समय इन संतों की ख्याति देश-व्यापी थी। नामदेव की प्रसिद्धि देश के एक बड़े भाग में थी। कबीर और रविदास जैसे संत महाराष्ट्र में उद्धृत होते थे। संत एकनाथ कहते हैं :

रोहिदास चमार सब कुछ जाने
कठोरे गंगा देख
तुकाराम ने अपने एक पद में कहा है :

निवृति ज्ञान देव सोपान चांगाजी,
मेरे जी के है जी नामदेव।
नागाजन मित्र नरहरि सुनार।
रविदास कबीर सगे मेरे।।

सूफी काव्य परम्परा के प्रख्यात कवि मलिक मुहम्मद जायसी (सन् 1475-1542) ने भी अपने अखरावट काव्य में जुलाहा कहकर कबीर का स्मरण किया है जिसमें वे कहते हैं कि नारद भी रोकर यह कहते हैं कि प्रेमाभक्ति में इस जुलाहे ने मुझे हरा दिया है :

जा नरद तब रोइ पुकारा। एक जुलाहे सों मैं हारा।।
प्रेम संत नित ताना तनई। जप तप साधि सैकरा भरई।।

पंद्रहवीं, सोलहवीं शती में हुए संत कवियों ने जयदेव, नामदेव, त्रिलोचन, सधना, सैण, धन्ना आदि का बड़ी श्रद्धापूर्वक स्मरण किया है। सत्रहवीं शताब्दी में इनमें कुछ नाम और जुड़ जाते हैं। सतनामी सम्प्रदाय के जगजीवन दास के एक पद में नानक, कबीर, नामदेव और पीपा का उल्लेख है :

नानक कबीर नामदेव पीपा सब हरि के हित प्यारे।।
इसी परम्परा में बुल्ला साहब ने अपने एक पद में कहा है :
मन बसंत खेली अगम फाग। चरन कमल अनुराग जाग।।
खेले नामा और कबीर। खेले नानक बड़े धीर।।
ऐसे मन रहु हरि के पास। सदा होय तोहि मुक्ति बास।
जस धन्ना सेन कबीर दास। नामदेव रै दास दास।।

संत राघव दास (17वीं शती) ने अपने भक्तमाल में कबीर-नानक की परम्परा के अन्य निरंजन संतों का उल्लेख करते हुए गुरु नानक को सूर्य और संत कबीर को मघवा इंद्र कहकर उस काल में उनकी वाणी-प्रभाव की ओर संकेत किया है :

नानक सूरज रूप भूप सारे परकासै।।
मघवा दास कबीर ऊसर सूसर बरखा से।।

(छप्पय 342)

गुरु ग्रंथ साहब में संगृहीत कवि कर्मठ जीवन में आस्था रखने वाले संत थे। वे परजीवी भक्त नहीं थे। संत मलूक दास की इस उक्ति को प्रायः उद्धृत किया जाता है जो निष्क्रियता की ओर संकेत करती है :

अजगर करै न चाकरी पंछी करै न काम।
दास मलुका कहि गए, सबको दाता राम।।

परंतु अधिसंख्य संतों का दृष्टिकोण ऐसा नहीं था। नामदेव और त्रिलोचन के संवाद की चर्चा पहले हो चुकी है। 'हाथ पांव से काम कर चित्त निरंजन नालि' इनके जीवन का आधार है।

संत रविदास इसी भाव की पुष्टि करते हुए कहते हैं :

जिह्वा तो ओंकार जप हत्थन सों कर कार।।
राम मिलहिं घर आइकर, कहि रविदास विचार।।

श्रम करके जीविकोपार्जन करने को वे पूरा महत्व देते हैं :

रविदास स्रम कर खाइहि जो लौ पार बसाइ।।
नेक कमाई जउ करइ कबेहु न निस्फल जाइ।।

गुरु नानक ने कहा था—जो व्यक्ति मेहनत करके कमाता है और उसमें से कुछ दान-पुन्न करता है, वही सही मार्ग को पहचानता है :

धाल खाइ किछु हत्थहु देह।।
नानक राहु पछाणहि सेइ।।

(पृष्ठ 245)

गुरु अर्जुन देव ने बड़े स्पष्ट शब्दों में कहा था कि व्यक्ति को उद्यम करते हुए जीना चाहिए, कमाते हुए सुख प्राप्त करना चाहिए, ध्यान करते हुए प्रभु की प्राप्ति करनी चाहिए। ऐसा व्यक्ति सभी चिंताओं से मुक्त हो जाता है :

उद्यम करेंदिआ जीउ तू कमावदिआ सुखु भुंचु।।
धिआंदिआ तू प्रभ मिलि नानक उतरी चिंतु।।

(पृष्ठ 522)

यही कारण है कि नामदेव छीपे का काम करते रहते हैं, कबीर जुलाहे का काम करते हैं, रविदास जूते गांठते रहते हैं, सधना कसाई-कर्म करते हैं, धन्ना किसानी करते हैं और गुरु नानक अपने जीवन के अंतिम दिन अपने बसाए नगर करतारपुर में खेती-बाड़ी करते हुए व्यतीत करते हैं।

अपने इष्टदेव के सम्मुख धूप-दीप जलाकर आरती उतारना इस देश की प्राचीन परम्परा है। अपनी यात्राओं के मध्य गुरु नानक देव जब जगन्नाथ पुरी के मंदिर पहुंचे थे तो वहां भगवान जगन्नाथ की आरती उतारने का समय हो गया। गुरु नानक ने वहां एक आरती गाई और उसे सम्पूर्ण ब्रह्मांड का रूप दे दिया, जिसमें पूरा आकाश आरती का थाल है, उसमें सूर्य और चंद्रमा दीपक हैं, सम्पूर्ण तारामंडल थाल में पड़े हुए मोती

हैं। मलय पर्वत की ओर से आती हुई सुगंध धूप का काम करती है। पवन चंवर डुलाता है, वनस्पति आरती के पुष्प हैं। सम्पूर्ण आरती इस प्रकार है :

गगन मै थालु रवि चंदु दीपक बने।।
तारिका मंडल जनकु मोती।।
धूपु मलआनलो पवणु चवरो करे।।
सगल बनराह फूलंत जोती।।9।।
कैसी होइ भावखंडना तेरी आरती।।
अनहता सबद बाजंत भेरी।।रहाउ।।
सहस तव नैन नन नैन है तोहि कउ।।
सहस मूरति नना एक तोही।।
सहस पद बिमल नन एक पद गंध बिनु।।
सहस तव गंध इव चलत मोहती।।
सभ महि जोति जोति है सोई
तिस दै चानणि सभ महि चानणु होई।।
गुर साखी जोति परगुट होइ।।
जो तिसु भावै सु आरती होइ।।3।।
हरि चरण कमल मकरंद लोभित मनो।।
अनदिनो मोहि आही पिआसा।।
कृपा जलु देहि नानक सारिंग कउ।।
होई जा ते तेरै नामि वासा।।

(पृष्ठ 663)

यह आरती एक समर्पित भक्त की आरती है जो उसे किसी एक पूजा स्थान अथवा देवता तक सीमित न करके, विश्वजनीन बना देती है।

किंतु *गुरु ग्रंथ साहब* में संत कबीर, रविदास, सैण और धन्ना की रची आरतियां भी सम्मिलित हैं जिनका कथ्य अन्य संतों-भक्तों की आरती से सर्वथा अलग है। ये संत सामान्य निर्धन परिवारों से आए थे। ईश्वर की भक्ति करते हुए भी ये अपनी सांसारिक आकांक्षाओं की उपेक्षा नहीं करते थे। वे सगुण द्विज भक्तों की भांति भिक्षा को अपना आधार नहीं बनाते थे। ये अपने आराध्य देव से उसकी समग्र कृपा चाहते थे। इस कृपा में आराध्य की भक्ति भी चाहिए, उसका सानिध्य भी चाहिए, साथ ही जीवन की मूलभूल आवश्यकताओं की पूर्ति भी।

कबीर दास अपने एक पद में कहते हैं कि हे प्रभु, भूखे रहकर मुझसे तुम्हारी भक्ति नहीं होती, इसलिए अपनी माला वापस ले लीजिए। मुझे नित्य दो सेर आटा चाहिए, पाव भर घी चाहिए, नमक चाहिए, आधा सेर दाल चाहिए जिससे मैं दोनों वक्त भोजन कर

सकूं। इसी के साथ मुझे सोने के लिए चारपाई, सिरहाना, बिछाने के लिए तलाई, ओढ़ने के लिए रजाई चाहिए। तभी मैं प्रेमपूर्वक तुम्हारी भक्ति कर सकता हूं। यह मेरा लोभ नहीं है। जब मेरा मन स्थिर होगा, तभी मैं हरि को जान सकूंगा :

भूखे भगति न कीजै।। यह माला अपनी लीजै।।
हउ मांगउ संतन रेना।। मैं नाही किसी का देना।।9।।
माधो कैसी बने तुम संगे।। आपिन देहु त लेवहु मंगे।।
दुह सेर मांगहु चूना।। पाउ घीउ संगि लूना।।
अध सेर मांगहु दाले।। मोकउ दोनउ वखत जिवाले।।2।।
खाट मांगउ चउपाई।। सिरहाना अवर तुलाई।।
ऊपर कउ मांगउ खींधा।। तेरी भगति करै जनु थीधा।।3।।
मै नाही कीता लबो। इकु नाउ तेरा मैं फबो।।
कहि कबीर मनु मानिआ।। मनु मानिआ तउ हरि जानिआ।।44।।

धन्ना तो कबीर से दो कदम आगे जाते हैं। उन्हें दाल, सीधा, घी तो चाहिए ही, पहनने के लिए अच्छे कपड़े भी चाहिए और जूते भी। दूध पीने के लिए एक गाय और चढ़ने के लिए घोड़ी भी। वे एक अच्छी गृहणी भी मांगते हैं :

गोपाल तेरा आरता।।
जो जन तुमरी भगति करंते,
तिन के काज सवारता।।9।।
दालि सीधा मागहु घीउ।।
हमरा खुसी करै नित जीउ।।
पन्हीआ छादनु नीका।।
अनाजु मागहु सत सी का।।2।।
गऊ भैस मागउ लावेरी।।
इक ताजनि तुरी चंगेरी।।
घर की गीहनि चंगी।।
जनु धन्ना लेवे मंगी।।2।।

संत रविदास की आरती किसी देवता, मंदिर और भौतिक पदार्थों पर आश्रित नहीं है। प्रभु का नाम ही उनके लिए आरती का आसन है, वही चंदन है, वही केसर है, वही दीपक है, वही बाती है, वही तेल है, वही ज्योति है, वही फूल-माला है, वहीं चंवर है :

नाम तेरो आरती भजनु मुरारे।।
हरि के नामु विनु झूठे सगल पासारे।।9।।रहाउ।।
नामु तेरो आसनो नामु तेरो उरसा।।

नाम तेरा केसरो ले छिटकारे।।
नामु तेरा अंभुला नामु तेरो चंदनो,
घसि जपे नामु तो तुझहि कउ चारे।।1।।
नामु तेरा दीवा नामु तेरो बाती।।
नामु तेरा तेलु ले माहि पसारे।।
नाम तेरे की जोति लगाई।।
भइउ उजियारो भवन सगलारे।।2।।

मूर्त आरती का इस प्रकार निर्देवीकरण करना भी इन संत कवियों की विशेषता भी थी और बाध्यता भी, क्योंकि इन्हें मंदिर में की जा रही आरती में भाग लेने का अधिकार नहीं था।

इस बात की चर्चा पहले की जा चुकी है, कि इन संत कवियों में अनेक को अपने समय के शासकों के हाथों पीड़ित होना पड़ा था। नामदेव, कबीर और गुरु नानक का नाम इस संदर्भ में स्मरण किया जा सकता है।

यह टकराव आगे चलकर कैसा रूप धारण कर सकता है, इसके संकेत संत कबीर और गुरु नानक की वाणी में ढूंढ़े जा सकते हैं। उस समय की राजनीतिक स्थिति कैसी थी इसकी चर्चा भी प्रारंभ की जा चुकी है। सोलहवीं शती में कृष्ण भक्ति के सर्वाधिक उन्नायक-स्वामी वल्लभाचार्य ने देश की स्थिति पर अपनी करुण प्रतिक्रिया व्यक्त की थी—''देश मलेच्छाक्रान्त है, गंगादि तीर्थ दुष्टों द्वारा भ्रष्ट हो रहे हैं, अशिक्षा और अज्ञान के कारण वैदिक धर्म नष्ट हो रहा है, सतुरुष पीड़ित तथा ज्ञान विस्मृत हो रहा है। ऐसी स्थिति कृष्णाश्रय में ही जीवन का कल्याण है।''

यह निराशा और अवसाद भरी प्रतिक्रिया थी। एक पराजित जाति के सम्मुख जैसे इसके अतिरिक्त कोई विकल्प ही नहीं था कि वह सम्मुख उपस्थित भयंकर संकट की ओर से आंखें मूंद ले अथवा उसके लिए करुण रोदन करते हुए भगवान की शरण का सहारा ले ले। देश की आत्मा को जाग्रत किया जा सकता है, लोगों को अन्यायी विदेशी शासन के विरुद्ध खड़ा किया जा सकता है, अपने उद्देश्य की प्राप्ति के लिए अपने प्राण-न्यौछावर करने की प्रेरणा उनमें उत्पन्न की जा सकती है, यह विचार भक्तिकाल में कहीं अपनी जगह नहीं बना पाता।

इस दृष्टि से संत कबीर की एक अभिव्यक्ति अपने संपूर्ण परिवेश में सर्वथा अनूठी है। उसके आध्यात्मिक अर्थ तो है ही, लौकिक अर्थों में भी वह अपना जो संदेश देती है उसकी अर्थ ध्वनि बहुत दूर तक सुनी जा सकती है।

मारु राग में उनका एक पद है :

गगन दमामा बाजिउ, परिउ नीसानै घाउ।।
खेत जु मांडिउ सूरमा, अब जूझन को दाउ।।1।।

सूरा सो पहिचानिऐ जू लरै दीन के हेत।।
पुरजा पुरजा कटि मरै, कवहू न छाडै खेत।।2।।

(पृष्ठ 105)

इस पद की शब्दावली भक्ति-काव्य की सामान्य और प्रचलित शब्दावली से सर्वथा विपरीत है। आकाश में युद्ध के नगाड़े बजना, निशाने पर घाव लगाना, सूरमाओं द्वारा युद्ध क्षेत्र को मांडना और उसमें जूझने का अवसर ढूंढ़ना, स्थितियों के सम्मुख योद्धा वनकर खड़ा होना है, उनके सम्मुख दीन-हीन होकर समर्पण करना नहीं है। संत कबीर ऐसे योद्धा की सही पहचान भी बताते हैं। सूरमा वह है जो गरीव (अयवा धर्म) के लिए लड़ना है। इस लड़ाई में पुरजा-पुरजा कट कर मरना तो पसंद करता है, किंतु युद्ध क्षेत्र से भागता नहीं।

सम्पूर्ण कबीर-साहित्य में यह पद अपना पृथक रंग लिए हुए है और संभवतः एक मात्र है।

गुरु नानक की रचनाओं में ऐसी अभिव्यक्तियां एक से अधिक हैं। उनकी एक रचना इस दृष्टि से बहुचर्चित है :

जउ तउ प्रेम खेलन का चाउ।।
सिर धरि तली गली मेरी आउ।।
इतु मारगि पैर धरीजै।।
सिर दीजै काणि न कीजै।।

(पृष्ठ 1412)

गुरु नानक भी इस पद में जिस शब्दावली का प्रयोग करते हैं, वह भी भक्ति काव्य की सामान्य शब्दावली नहीं है। वे कहते हैं, यदि तुम्हें जीवन को समर्पित करने वाले प्रेम का खेल खेलना है तो अपने सिर को हथेली पर रखकर मेरे पास आना होगा। यदि इस मार्ग पर अपना पग रखोगे, तो शर्त–यह है सिर देना होगा। उसमें किसी प्रकार का संकोच प्रकट नहीं करना होगा।

संत कबीर का पद गुरु नानक के पद से लगभग पचास वर्ष पहले लिखा गया होगा। लगता है कि इन दोनों संतों में कहीं गहरा भाव-साम्य था और अलक्ष्य संवाद भी था। स्थितियों के प्रति अपनी असामान्य प्रतिक्रिया संत कबीर ने व्यक्त की थी, किंतु उनके पश्चात् उनके उत्तराधिकारियों ने उसे इतनी गंभीरता से नहीं लिया और कबीर की विचार धारा को एक पंथ की सीमाओं में ही रखा।

किंतु गुरु नानक की परम्परा ने इस विचार को शिथिल नहीं होने दिया। परिणाम यह हुआ कि उस समय के शासकों से टकराव बढ़ता गया। पांचवें और नौंवे गुरु को अपना बलिदान देना पड़ा। गुरु गोबिंद सिंह ने उसे अपनी पूरी संगति दे दी।
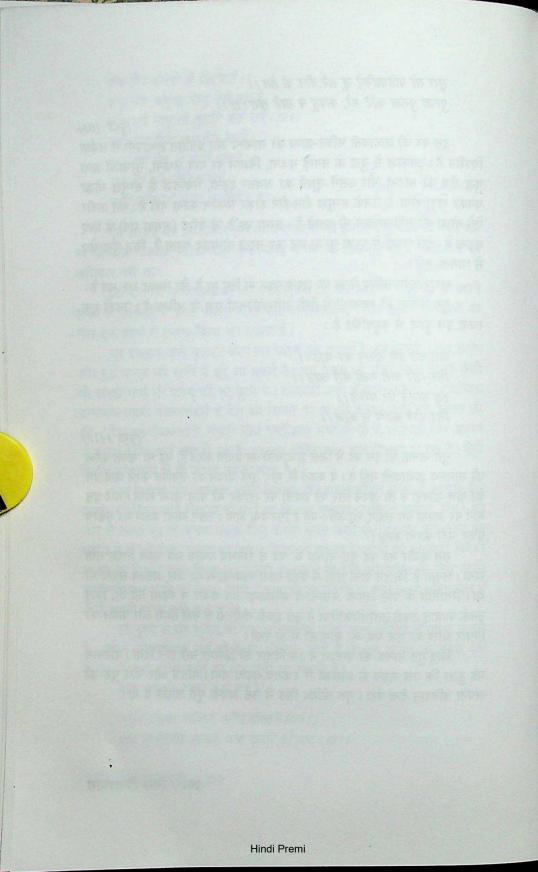
गुरु नानक

गुरुं नानक

बाहर की बैठक में बहुत-से आदमी इकट्ठे थे और अंदर के आंगन में बहुत-सी औरतें जमा थीं। तलवंडी गांव के पटवारी कालू मेहता की पत्नी तृप्ता ने कैसे बच्चे को जन्म दिया है—यह जानने के लिए सभी लोग बहुत उत्सुक थे। इतने मे दौलतां नाम की दाई उस कमरे से बाहर निकली जहां बच्चे का जन्म हुआ था। सभी ने देखा कि दौलतां के चेहरे पर खुशी झलक रही है। वह कुछ घबराई हुई भी लगती है। गांव के जमींदार रायबुलार ने आगे बढ़कर पूछा—'अरी दौलतां क्या खुशखबरी लाई है।'

'बधाई हो...बधाई हो,' दौलतां बड़े उत्साह से बोली—'लड़का हुआ है...पर...'

'पर क्या?' सभी लोग एकदम चौंक उठे। कालू मेहता ने कुछ घबड़ाकर पूछा—तृप्ता और काका दोनों ठीक हैं ना?'

दौलतां बोली—'सब ठीक है...चिंता की कोई बात नहीं, पर यह बालक तो कुछ विचित्र-सा है। बच्चे जन्म लेकर रोते हैं, पर यह इस तरह मुस्करा रहा है जैसे बड़े लोग मुस्कराते हैं।'

सभी लोग दौलतां की बात सुनकर आश्चर्य में पड़ गए। कालू मेहता को जहां पुत्र-जन्म की खुशी थी, वहीं दौलतां की बात सुनकर वे कुछ सोच में पड़ गए। इतने में गांव के पुरोहित पंडित हरदयाल भी वहां आ गए। कालू मेहता ने बालक के इस प्रकार मुस्कराने की बात पंडितजी को बताई। पंडितजी ने कहा—'चिंता की कोई बात नहीं। मैं जरा बालक को एक बार देख लूं।'

पंडितजी ने बालक को देखा। आश्चर्य से उनका मुंह खुला का खुला रह गया। बालक के मस्तक पर अद्भुत प्रकाश फैला हुआ था। उन्होंने दोनों हाथ जोड़कर बालक को नमस्कार किया।

उन्हें इस तरह नवजात बालक को नमस्कार करता देखकर सभी लोगों को और भी आश्चर्य हुआ। रायबुलार ने पूछा—'पंडितजी, क्या बात है?'

'जमींदार साहब!' पंडितजी बोले—'इस बालक ने हमारे गांव में हमारी धरती पर जन्म लिया है, यह हमारे लिए बड़े सौभाग्य की बात है। यह बालक तो महान अवतारी पुरुष है। बड़ा होकर यह भूली-भटकी जनता को सच्चाई और ज्ञान का रास्ता दिखाएगा। ऊंच-नीच, हिंदू-मुसलमान यह सभी के बीच में विचरेगा, सभी को उपदेश देगा। सभी इसे अपना कहेंगे, सभी इसे मान देंगे।'

इस बात को हुए पांच सौ वर्ष से अधिक हो चुके हैं। उस बालक का नाम रखा गया था नानक, जो आगे चलकर गुरु नानक या बाबा नानक के नाम से जगत-प्रसिद्ध हुए।

नानक जब कुछ बड़े हुए तो उन्हें पढ़ने के लिए पाठशाला भेजा गया, पर ऐसे विचित्र विद्यार्थी से तो पंडितजी भी जल्दी की परेशान हो गए। पंडितजी ने नानक से पट्टी पर 'अ' लिखवाया। नानक ने 'अ' तो लिख दिया, पर पूछा—'पंडितजी! 'अ' का अर्थ क्या है?'

पंडितजी सोच में पड़ गए। भला 'अ' का क्या अर्थ हो सकता है। 'अ' तो मात्र एक अक्षर है।

बालक नानक को पाठशाला और मदरसे की दीवारें सन्तुष्ट नहीं कर सकीं। वह तो अपने गांव के आसपास के जंगलों में चले जाते और साधु-संतों की संगति करते और ईश्वर, प्रकृति तथा जीव के सम्बन्ध में उनसे खूब बातें करते।

जब उनके पिता कालू मेहता ने देखा कि नानक का मन पढ़ने-लिखने में नहीं लग रहा है तो उन्होंने कहा—'बेटा, यदि तुम्हारा मन पढ़ाई-लिखाई में नहीं लगता तो घर की गाय-भैंसें ही चरा लाया करो।'

पिता की आज्ञा मानकर नानक ढोरों को चराने ले गए। जानवर इधर-उधर चरने लगे और नानक एक वटवृक्ष के नीचे बैठकर भगवान के ध्यान में मग्न हो गए। नानक की भैंसें एक किसान के खेत में जा घुसीं और उसे चर गईं। किसान को जब यह पता लगा तो वह बहुत नाराज हुआ और उसने कालू मेहता से हर्जाने की मांग की।

उनके पिता ने उनके यज्ञोपवीत संस्कार के लिए मुहूर्त निकलवाया। इस समारोह के लिए सभी सम्बन्धियों को न्योता दे दिया गया। जब संस्कार-विधि का समय आया तो नानक ने जनेऊ पहनने से इनकार कर दिया। सभी को बड़ा आश्चर्य हुआ और गुस्सा भी आया। पुरोहितजी ने बड़े क्रोध से पूछा—'क्यों, तुम यह जनेऊ क्यों नहीं पहनोगे?'

'यह जनेऊ तो कुछ दिन बाद गंदा हो जाएगा', नानक ने कहा।

'तुम कैसा जनेऊ पहनना चाहते हो?' पुरोहित ने तिनककर पूछा।

'मुझे तो ऐसा जनेऊ चाहिए जो न कभी गंदा हो, न कभी टूटे, न कभी जले और न कभी नष्ट हो।' नानक ने बड़े सहज भाव से कहा।

'अरे ऐसा जनेऊ कहां से आएगा?' कालू मेहता ने आगे बढ़कर डांटकर पूछा।

'आ सकता है', नानक ने बड़े शांत भाव से कहा—'मेरे लिए ऐसा जनेऊ बनाओ

जो दया रूपी कपास को बंटकर संतोष रूपी सूत का बना हो। उसमें संयम की गांठ से सच्चाई की बंटाई हो। बताइए पंडिजती आपके पास ऐसा जनेऊ है! यदि है तो मुझे पहना दीजिए।'

नानक की बात सुनकर पुरोहित सोच में पड़ गए। भला ऐसा जनेऊ कहां मिलेगा? बालक नानक की इन विचित्र बातों से पिता कालू मेहता बहुत परेशान थे। उन्हें लगा, नानक ने ऐसी उल्टी-सीधी बातें कर सारी बिरादरी के सामने उनका सिर नीचा कर दिया है।

बहुत सोच-विचार करके उन्होंने नानक को किसी व्यापार में लगाने का निश्चय किया। उन्हें एक छोटी-सी दुकान खुलवा दी गई। कुछ दिन बाद पिता ने कहा—'बेटा नानक, ये लो बीस रुपये। पास के गांव में बाजार लगा है। वहां से अपनी दुकान के लिए कुछ सौदा खरीद लाओ।'

नानक ने रुपये ले लिए और बोले—'पिताजी, कैसा सौदा लाऊं?'

'खरा सौदा होना चाहिए', पिता ने कहा—'जिससे तुम्हें खूब लाभ मिले।'

'अच्छी बात है, पिताजी!' नानक ने सोचते हुए कहा—'मैं ऐसा सौदा ही खरीदूंगा।'

नानक रुपये लेकर बाजार चल दिए। रास्ते में सोचते जाते कि ऐसा कौन-सा सौदा है जिससे बहुत-सा लाभ मिल सकता है।

रास्ते में एक जंगल पड़ता था। नानक उसमें से निकलकर जा रहे थे कि उन्हें साधुओं की एक मंडली मिल गई। साधुओं ने नानक को देखा तो बोले—'बच्चा, हम कई दिन से भूखे हैं। हमें भोजन करा दो। भूखों को भोजन कराने से बहुत लाभ होता है।'

'बहुत लाभ होता है,' नानक ने मन ही मन सोचा—'पिताजी ने कहा था कि ऐसा सौदा करना जिसमें बहुत लाभ हो। यह भी तो बड़े लाभ का सौदा है।'

'महात्माजी!' नानक ने साधुओं से कहा—'आप मेरे साथ चलिए। मैं आपको भोजन कराऊंगा और बहुत-सा लाभ कमाऊंगा।'

नानक के पास जितने भी रुपये थे, उन सभी रुपयों से उन्होंने साधुओं को भरपेट भोजन कराया और उनकी जरूरत की दूसरी चीज़ें उन्हें ले दीं।

नानक खाली हाथ घर वापस आ गए। पिता ने पूछा—'तुम कौन-सा सौदा खरीदकर लाए हो?'

नानक ने कहा—'मैंने बड़े लाभ वाला सौदा खरीदा है। मैंने आपके दिए रुपयों से भूखे साधुओं को भोजन करा दिया है, पिताजी! भूखों को भोजन कराने से बहुत लाभ होता है ना?'

नानक की बात सुनकर कालू मेहता गुस्से में भर गए और उन्होंने नानक को बहुत अधिक डांटा।

नानक को डांट पड़ती देखकर उनकी माता को बड़ा दुख हुआ। उन्होंने नानक को समझाते हुए कहा—'बेटा, तुम अपने पिता का कहना मानो। तुम अपने आपमें ही इतना

डूबे हुए रहते हो कि लोग समझते हैं कि तुम अपनी सुध-बुध गंवा बैठे हो। लोग तुम्हारे बारे में कैसी-कैसी बातें करते हैं, तुम्हारी हंसी उड़ाते हैं।'

'मां, तुम लोगों की चिंता क्यों करती हो?' नानक ने कहा—'ये सारे लोग अज्ञान के अंधेरे में डूबे हुए हैं।'

मां ने कहा—'बेटा, तुम दुनिया की चिंता छोड़कर अपने घर की चिंता करो।'

नानक ने कहा—'मेरी अच्छी मां! सारा संसार लोभ और अंहकार की आग में जल रहा है। तुम चाहती हो कि मैं उसकी चिन्ता छोड़कर अपने परिवार की चिंता करूं। मां, क्या मैं परमेश्वर की इस सारी सृष्टि को ऐसे ही जलने दूं?'

बेचारी भोली-भाली मां को नानक की कोई भी बात समझ में नहीं आई।

परिवार के बड़े-बूढ़ों ने सोचा, अवश्य ही नानक को कोई मानसिक रोग है। सभी ने सलाह दी कि किसी वैद्य को बुलाकर नानक को दिखाया जाए। कालू मेहता ने गांव के वैद्य को बुलाया। वैद्यराज नानक की बांह पकड़कर नब्ज टटोलने लगे तो नानक मुस्करा दिए और बोले—'वैद्यजी मेरी नब्ज क्यों टटोल रहे हैं। मेरे शरीर में तो कोई कष्ट नहीं है।'

'तो तुम्हें कहां कष्ट है?' वैद्यजी ने पूछा।

'मेरी आत्मा में', नानक ने कहा।

'आत्मा में!' वैद्यजी ने आश्चर्य से पूछा—'आत्मा में कैसा कष्ट है, नानक?'

नानक ने कहा—'वैद्यजी मेरी आत्मा में कष्ट यह है कि मैं अपने परमात्मा से विछुड़ गया हूं। उससे मिलने की तीव्र इच्छा मुझे लगातार सता रही है।'

वैद्यजी ने हाथ जोड़कर उनके सामने सिर झुका दिया और कहा—'तुम्हारे रोग की दवा तुम्हारे अंदर ही है।'

वैद्यजी का उत्तर सुनकर नानक के माता-पिता बहुत उदास हुए और बोले—'हम तुम्हारे माता-पिता हैं नानक! आखिर हमारा भी तो तुम पर कुछ अधिकार है।'

नानक ने कहा—'मुझे पता नहीं, उस ईश्वर के सिवा मेरा कौन पिता है—कौन माता है। मैं कहां से आया हूं—किस काम के लिए आया हूं।'

'नानक का विवाह कर देना चाहिए', एक अनुभवी संबंधी ने सलाह देते हुए कहा—'विवाह के बाद नानक को घर-गिरस्ती का मोह पड़ जाएगा और वह सांसारिक कामों में रुचि लेने लगेगा।'

सम्बन्धी का यह विचार सभी को बहुत पसन्द आया। इस समय तक नानक की आयु चौदह वर्ष की हो चुकी थी। पहले लड़के-लड़कियों के विवाह बड़ी छोटी उम्र में ही कर दिए जाते थे। कुछ समय बाद बटाला निवासी मूलराज की पुत्री सुलक्खनी से नानक का विवाह कर दिया गया। सुलक्खनी से नानकजी के दो बेटे पैदा हुए, एक का नाम था—श्रीचंद और दूसरे का लक्ष्मीचंद।

पर इससे भी उनके स्वभाव में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। नानक का मन दुनियावी

कामों में लगता ही नहीं था। वह अधिकतर साधु-संतों की संगत में रहते। उनसे तरह-तरह की बातें करते, उनके सामने तरह-तरह के प्रश्न रखते और जब कभी अकेले होते तो एकान्त में बैठकर कुछ सोचा करते।

नानक की बड़ी बहन का नाम था नानकी। वह नानक से बहुत प्यार करती थी और नानक को समझती भी सबसे ज्यादा थी। वह सुल्तानपुर लोधी नामक नगर में नवाब दौलतखान के एक कर्मचारी जयराम से ब्याही हुई थी। उसने कुछ दिनों के लिए नानक को अपने पास बुलवा लिया।

जब नानक सुल्तानपुर पहुंचे तो जयराम उन्हें नवाब से मिलाने के लिए ले गया। नवाब ने नानक को देखा तो देखता ही रह गया। उनका भोला-भाला चेहरा, कुछ पाने को व्याकुल आंखें, कुछ बोलते से होंठ, मस्तक पर चमकता हुआ तेज—यह सब देखकर नवाब बहुत प्रभावित हुआ। वह नानक से बोला—'आप मेरे पास काम करना पसंद करेंगे।'

'हां, यदि काम मेरी पंसद का होगा तो करूंगा', नानक ने कहा।

'कैसा काम आपको पसंद होगा', नवाब ने पूछा।

'जिससे बहुत-से लोगों का भला हो', नानक का उत्तर था।

नवाब ने कुछ देर सोचा। फिर बोला—'आप हमारे मोदीखाने का काम संभालिए। यहां से अनाज बांटा जाता हैं आप यह काम अच्छी तरह कर लेंगे।'

नानक ने यह काम करना मंजूर कर लिया। वह अपने काम को बहुत अच्छी तरह करते थे, परन्तु जो रसद उन्हें अपने लिए मिलती थी उसे वे साधु-संतों में बांट देते थे।

एक बार नानक किसी को रसद तोलकर दे रहे थे। अपने तराजू से वे बारह बार तोल चुके। जब तेरहवीं बार तोलने लगे तो मुंह से निकला 'तेरा'। तेरा का एक मतलब है 'तेरह' और दूसरा मतलब है 'तुम्हारा' अर्थात् परमात्मा का। बस नानक की रट 'तेरा' पर ही लग गई। 'तेरा', 'तेरा' कहकर नानक ने न जाने कितनी रसद उसे तौल दी।

लोगों ने नवाब से शिकायत की कि नानक तो मोदीखाने को लुटाए दे रहे हैं, पर जब जांच-पड़ताल की गई तो रसद पूरी निकली।

नानक पास में ही बहती हुई नदी पर स्नान करने आया करते थे। एक दिन वे स्नान करने गए और तीन दिन तक वापस नहीं आए। घर में सभी को बहुत चिंता हुई। लोगों ने सोचा कि नानक नदी में ही कहीं डूब गए हैं, पर बहन नानकी कहती थी—'मुझे विश्वास है कि मेरा भाई जीवित है। उसे तो अभी संसार में बहुत बड़े-बड़े काम करने हैं। वह भला कैसे डूब सकता है।'

और तीन दिन बाद नानक एकाएक प्रकट हो गए। लोगों में खुशी की लहर दौड़ गई। इन तीन दिनों में नानक समाधि में लीन रहे थे और इसी समाधि में उन्हें परमात्मा का प्रकाश अनुभव हुआ था। लोगों ने बड़े आश्चर्य से देखा कि नानक का रूप-रंग पूरी

तरह से बदला हुआ हैं उनका मुख-मंडल प्रकाश से चमक रहा है। उनकी आंखों से अद्भुत ज्योति फूट रही है और उनके मुंह से लगातार निकल रहा है—'ना कोई हिन्दू, ना कोई मुसलमान!'

जब गुरु नानक ने कहा कि न कोई हिन्दू है, न मुसलमान है तो कटटरपंथी हिन्दू और मुसलमान दोनों ही उनसे नाराज होने लगे। शहर के काजी ने नवाब दौलतखान से शिकायत की। नवाब ने उन्हें बुला भेजा और पूछा—'यह आपको क्या हो गया है? आप कहते हैं कि न कोई हिन्दू है न मुसलमान है। इसका मतलब क्या है?'

नानकजी ने कहा—'मैं इंसान और इंसान में कोई भेद नहीं मानता। ईश्वर मनुष्य की पहचान उसके अच्छे गुणों से करता है न कि उसके हिन्दू या मुसलमान होने के कारण।'

नवाब के पास ही शहर का काजी बैठा हुआ था। उसने कहा—'क्या आप यह जानते हैं कि एक मुसलमान को खुदा की दरगाह में सिर्फ इसलिए जगह मिल जाती है, क्योंकि वह मुसलमान है?'

नानकजी ने कहा—'मैं नहीं मानता कि किसी को सिर्फ मुसलमान होने के कारण ही खुदा की दरगाह में जगह मिल सकती है अपने-आपको मुसलमान कहने वाले ऐसे कितने हैं जो सच्चे मुसलमान हैं? ऐसा मुसलमान अपने संतों द्वारा बताए धर्म पर चलता है। वह गरीबों की मदद करता है, रब की रजा में खुश रहता है। सभी जीवों पर रहम करता है। ऐसा व्यक्ति ही मुसलमान कहलाने का अधिकारी है।'

नानक ने आगे कहा—'दूसरों पर दया का भाव ही ऐसे मुसलमान की मस्जिद है, धीरज ही उसका मुसल्ला है, जिस पर बैठकर वह नमाज पढ़ता है। ईमानदारी की कमाई ही उसकी कुरान है, बुरे कर्मों के प्रति लज्जित होना ही उसकी सुन्नत है। शील ही उसका रोजा है, उसके अच्छे कर्म ही काबा है और सच्चाई ही उसका पीर है।'

काजी ने पूछा—'और पांच वक्त की नमाज के बारे मे आप क्या कहते हैं?'

नानकजी ने कहा—'उसकी पहली नमाज सच्चाई है, ईमानदारी की कमाई दूसरी नमाज है, खुदा की बंदगी तीसरी नमाज है, मन को पवित्र रखना उसकी चौथी नमाज है और सारे संसार का भला चाहना उसकी पांचवीं नमाज है। हे काजी, जो ऐसी नमाज पढ़ता है वही सच्चा मुसलमान है!'

उनकी बात सुनकर काजी बहुत सोच में पड़ गया। वह रोज नमाज तो पढ़ता था पर उसका मन इधर-उधर भटकता रहता था। इतने में शाम की नमाज का वक्त हो गया। नानकजी सहित सभी लोग मस्जिद में आ गए। काजी खड़ा होकर नमाज पढ़ने लगा। जब नमाज पूरी हुई तो नवाब ने पूछा, 'आपने नमाज क्यों नहीं पढ़ी?'

नानकजी हंस दिए और बोले—'नमाज पढ़वाने वाले काजी का मन तो कहीं और था।'

काजी ने बड़े आश्चर्य से पूछा—'कहां था मेरा मन?'

नानक जी ने कहा—'काजी जी की गाय ने अभी बछड़ा दिया है। इनके घर के अहाते में एक कुआं है। बछड़ा खुला हुआ था। काजी जी लगातार सोच रहे थे कि बछड़ा कुएं में न गिर जाए। इन्हें तो बछड़े की चिन्ता सता रही थी। नमाज में इनका मन ही नहीं था।'

काजी और नवाब बड़े आश्चर्य से उनकी तरफ देखने लगे।

'और नवाब साहब', गुरु नानक बोले—'आपका मन भी नमाज में नहीं था। जब आप नमाज पढ़ रहे थे, आपका मन काबुल में घोड़े खरीद रहा था। क्यों यह ठीक है ना?'

नवाब ने दुगुने आश्चर्य से उन्हें देखा। काजी और नवाब दोनों ही सोच रहे थे कि उनके मन की बात नानकजी को कैसे पता लगी।

नवाब ने नानक से कहा—'नानक, लोग कहते हैं तुम अजीब-अजीब सी बातें करते हो। लोग समझते हैं तुम दीवाने हो गए हो।'

नानक ने बड़ी मस्ती भरी आवाज में कहा—'कोई मुझे भूत कहता है और कोई बेताल। कोई मुझ पर तरस खाकर कहता है कि बेचारा हूं, पर मैं तो परमात्मा के नाम का दीवाना हो गया हूं। मैं उसके बिना और किसी को नहीं जानता।'

इसके बाद उन्होंने नवाब की नौकरी छोड़ दी। नवाब ने बहुत चाहा कि नानक अपना काम करते रहें, परन्तु उन्होंने कहा—'अब मैं उस स्वामी की नौकरी करूंगा जिसके सामने सारा संसार, पशु-पक्षी, देवी-देवता, पैगम्बर-औलिया हाथ बांधे, सिर झुकाए खड़े रहते हैं। अब मैं उसी से मांगूंगा जो सभी को देता है, सभी का दाता है!'

सुल्तानपुर में ही एक मिरासी मुसलमान नानक का मित्र बन गया था। उसका नाम था। मरदाना। वह रबाब बहुत अच्छी बजाता था। नानक जब भक्तिभाव से गीत गाते तो वह उनके साथ रबाब बजाता था। नानक के व्यक्तित्व से मरदाना इतना प्रभावित हुआ कि फिर वह उनका जीवन भर का साथी बन गया।

इस बीच नानकजी की ख्याति चारों तरफ फैल चुकी थी कोई उन्हें बाबा नानक कहता, कोई नानक शाह फकीर और कोई गुरु नानक।

अब गुरु नानक ने घर-बार सब कुछ छोड़ दिया। इस समय भारत की जनता विदेशी आक्रमणकारियों द्वारा बुरी तरह सताई जा रही थी। ज्ञान का स्थान अंधविश्वास ने ले लिया था। सारा समाज ऊंच-नीच और जाति-पांति में बुरी तरह बंटा हुआ था। धर्म के अगुवा ब्राह्मण, काजी और योगी, साधारण जनता को धर्म के नाम पर लूट रहे थे। सरकारी कर्मचारी और छोड़-बड़े जमींदार जनता का खून-चूस रहे थे। जनता की ऐसी दशा देखकर गुरु नानक मरदाना को साथ लेकर जनता के बीच निकल पड़े।

पहले गुरु नानक ने दक्षिणी-पश्चिमी पंजाब की यात्रा शुरू की। यात्रा के दौरान गुरु नानक जहां भी रुकते, वे अपना डेरा बस्ती से बाहर ही लगाते और जो भी कंदमूल

खाने को मिल जाता उसी से अपनी भूख मिटा लेते, पर मरदाना को यह सब खाने की आदत नहीं थी। वह तो अच्छा और स्वादिष्ट भोजन करना चाहता था।

एक दिन जब गुरु नानक ने देखा कि मरदाना बहुत परेशान है तो उन्होंने उसे गांव में जाने की आज्ञा दे दी। गांव में मरदाना की बड़ी आवभगत हुई। लोगों ने उसे स्वादिष्ट भोजन तो कराया ही, साथ में बहुत तरह के सूती, ऊनी और रेशमी कपड़े तथा गिरी, छुहारे, बादाम आदि अनेक प्रकार के स्वादिष्ट पदार्थ भी भेंट किए। लोगों की इस सेवा से मरदाना बड़ा प्रसन्न हुआ और सारे सामान की गठरी बांधकर गुरु नानक की ओर चल दिया। अपने साथी को सामान से लदा देखकर गुरु नानकजी मुसकराए और बोले–'अरे मरदाना, इतनी बड़ी गठरी कहां से बांध लाए?'

'गुरुजी!' मरदाना बड़े उत्साह से बोला–'अब कई दिनों तक हमें खाने-पीने और ओढ़ने-बिछाने की चिन्ता नहीं करनी पड़ेगी। गांव वालों ने मुझे खूब भरपेट खिलाया है और बहुत-सा सामान साथ बांध दिया है।'

गुरु नानक ने कहा–'मरदाना! यह तुमने अच्छा नहीं किया। हम तो गृहस्थ में रहकर त्याग का उपदेश देते हैं और तुमने त्याग का रास्ता अपनाकर इतना लोभ किया।'

मरदाना बड़े संकोच से बोला–'पर गुरुजी, ये सभी चीज़ें तो लोगों ने खुद ही दी हैं। मैंने उनसे मांगी थोड़े ही थीं।'

'ये सब चीज़ें दूसरे लोगों को दे दो, जिन्हें इनकी हमसे ज्यादा जरूरत है', गुरु नानक ने समझाते हुए कहा–'जिस तरह दान देने वाले को अपनी धर्म की कमाई में से ही दान देना चाहिए, उसी तरह दान लेने वाले को उतना ही दान लेना चाहिए, जितने की उसे जरूरत है।'

मरदाना ने वे सभी चीज़ें लोगों में बांट दीं।

यात्रा करते-करते गुरु नानक और मरदाना सैदपुर नामक गांव में आ निकले। यहां लालो नाम का एक बढ़ई रहता था। वह बहुत भला व्यक्ति था। मेहनत की कमाई खाता था, भगवान का भजन करता था और साधु-संतों की सेवा करता था। गुरुजी उसके अतिथि बने। नगर में यह बात तुरन्त फैल गई कि ऊंची जाति के दो साधु एक गरीब और छोटी जाति वाले के घर का खाना खा रहे हैं।

उसी गांव में ऊंची जाति का एक धनवान व्यक्ति रहता था। उसका नाम था मलिक भागो। उसने अपने घर पर पितर-पक्ष के अवसर पर बहुत बड़ा भोज दिया था। उसमें उसने दूर-दूर से बहुत से साधु-संतों को बुलाया था। उसने गुरु नानक को भी उस भोज के लिए न्योता भेजा। पर गुरुजी ने उसके भोज में जाने से इनकार कर दिया। उनका इनकार सुनकर लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ। मलिक भागो के घर पर न्योता खाने के लिए तो सभी लोग बड़े लालायित रहते थे, क्योंकि वहां कई तरह के पकवान खाने को मिलते थे। न्योता लाने वाले ने पूछा–'क्यों महाराज, आप मलिक भागो के यहां जाने से

इनकार क्यों कर रहे हैं? क्या आपको ऊंची जाति वालों के बजाय नीची जाति वालों का साथ अधिक अच्छा लगता हैं?'

गुरु नानक ने कहा--'हां, तुम ठीक कहते हो। नीच जातियों में भी जो नीचे हैं और उनमें भी जो और नीचे हैं—मैं सदा उनके साथ हूं। मुझे बड़ी जाति वालों से कुछ लेना-देना नहीं हैं।'

नौकरों ने जाकर मलिक भागो को गुरु नानक का यह उत्तर दिया तो वह बड़ा नाराज हुआ। उसने अपने नौकरों को आज्ञा दी यदि नानक खुशी से न आएं तो उन्हें जबरदस्ती ले आओ। नौकर गुरुजी के पास पहुंचे और चलने का आग्रह करने लगें। पहले तो वे तैयार नहीं हुए परन्तु उनके बहुत कहने पर वे कुछ सोचकर उनके साथ चल दिए। जब वे मलिक भागो की विशाल हवेली पर पहुंचे तो उन्हें भोजन परोसा गया, किन्तु उन्होंने खाने से इनकार कर दिया।

मलिक भागो ने बड़े गुस्से से पूछा—'एक शूद्र के घर का भोजन करने में आपको तनिक भी आपत्ति नहीं हुई। मैं तो ऊंची जाति का आदमी हूं। साथ ही मेरे पास धन-दौलत भी बहुत है। मैंने आज कितने की तरह के पकवान बनवाए हैं। आप मेरे घर का भोजन करने से इनकार क्यों कर रहे हैं?'

गुरु नानक ने कहा—'मैं ऊंची-नीच के भेदभाव को नहीं मानता। मेरी दृष्टि में वह व्यक्ति ऊंचा है जो अपनी मेहनत की कमाई खाता है और उसी में से कुछ गरीबों को दान करता है। लालो अपने गाढ़े पसीने से कमाता है और उसी में से थोड़ा-बहुत निकालकर साधु-संतों की सेवा में लगाता है। तुम्हारी कमाई में मुझे गरीबों, असहायों और बेबसों के खून के छींटे नजर आते हैं।'

कहते हैं कि इस अवसर पर उन्होंने एक हाथ में लालो की सूखी रोटी ली और दूसरे में मलिक भागो के बनाए हुए पकवान। जब उन्होंने अपनी दोनों मुट्ठियों को कसा तो सभी लोगों ने बड़े आश्चर्य से देखा कि लालो की रोटी से दूध टपक रहा है और भागो की रोटी से खून निकल रहा है।

गुरु नानक और मरदाना वहां से आगे बढ़े। घूमते-घूमते वे मुलतान की ओर निकल गए। यहां उनकी भेंट एक ऐसे ठग से हुई जिसने अपना वेश सज्जनों जैसा बना रखा था। वह माला लिए सड़क के किनारे बैठा रहता था और रास्ते से निकलने वाले यात्रियों को कभी-कभी आंख खोलकर देख लेता था। उसने वहां एक मंदिर बना रखा था और एक मस्जिद भी। हिंदू होता तो उसे मंदिर में चलने को कहता और मुसलमान होता तो उसे मस्जिद में ले जाता। वहां वह उनकी बड़ी खातिर करता और रात में वहीं-कहीं उनके सोने का इंतजाम कर देता। फिर जैसे ही रात हो जाती वह सोते हुए यात्री की हत्या करके उसकी लाश को एक कुएं मे फेंक देता और उसका सारा सामान लूट लेता। सुबह होते ही वह घर के बाहर फिर समाधि लगाकर बैठ जाता, माला फेरने लगता और अपने नए

शिकार की राह देखने लगता।

जब उसने गुरु नानक और मरदाना को आते देखा तो उसने अपने आदमियों से कहा—'इसके साथ बहुत अच्छा व्यवहार करो।'

उसके आदमियों ने वैसा ही किया। जब रात हुई तो उन्होंने गुरुजी और मरदाने के सोने का प्रबन्ध किया। गुरुजी ने उनकी कपट भरी आंखों में झांका और कहा—'सोने से पहले मैं भगवान का नाम लेता हूं। आओ तुम लोग भी मेरे पास बैठो और भगवान का भजन सुनो।'

गुरु नानक ने इस समय जो भजन गाया उसका अर्थ था। 'कांसे का बर्तन ऊपर से कितना चमकता है परन्तु जितनी बार उसे धोएं उसमें से मैल ही मैल निकलता है। बाहर से हवेली की कितनी भी मीनाकारी की जाए परन्तु भीतर से यदि वह पोली है तो वह जल्दी ही गिर जाएगी। बगुला नदी के किनारे किसी भक्त की तरह आंख मूंदकर एक टांग पर खड़ा हो जाता है, पर उसकी नजर भोली-भाली मछलियों पर रहती है। सेमल का वृक्ष कितना ऊंचा होता है, पर उसका फल फीका और पत्ते बेकार होते हैं।'

जब सज्जन ठग ने गुरु नानक की यह वाणी सुनी तो उसका दिल दहल उठा। उसकी सोई हुई आत्मा जाग उठी और वह अपने बुरे कामों के लिए पछताने लगा। वह गुरु नानक के चरणों पर गिर पड़ा और रोते हुए बोला—'आपने मुझे नया जीवन दिया है। अब आप ही बताइए कि मैं अपने पापों का प्रायश्चित कैसे करूं?'

गुरु नानक ने कहा—'पाप की जो कमाई तुमने जमा कर रखी है उसे निर्धनों में बांट दो और आगे से सीधा और सच्चा जीवन बिताओ।'

उसने ऐसा ही किया।

वहां से घूमते-फिरते गुरु नानक पानीपत की तरफ आ निकले। यहां पर शाह शरफ नाम के प्रसिद्ध सूफी फकीर रहते थे। गुरु नानक से उनकी भेंट हुई। शाह ने गुरु नानक से पूछा—'फकीर होकर आपने घर-गिरस्तियों जैसे कपड़े क्यों पहन रखें हैं?'

गुरु नानक ने उत्तर दिया—'जो मनुष्य परमेश्वर के दर पर अपने सुख-स्वाद और अहंकार का त्याग करके झुक जाता है, वह जो भी वस्त्र धारण कर ले, परमात्मा उसे स्वीकार कर लेता है।'

शाह ने पूछा—'आप किस जाति के हैं और आप किस मत को मानते हैं?'

गुरु नानक ने कहा—'मेरी वही जाति है जो आग और हवा की है, जो शत्रु और मित्र में भेद नहीं करती। सच्चाई का रास्ता ही मेरा मत है।'

शाह ने फिर पूछा—'सच्चा साधु कौन है?'

'जो जीवन में ही संसार के बंधनों से मुक्त रहे। जो ईश्वर को सभी स्थानों पर देखे, जो मनुष्य और मनुष्य के बीच भेद न करे वही सच्चा साधु है।' गुरु नानक का उत्तर था।

शाह शरफ गुरुजी की बातचीत से बहुत प्रसन्न हुए और बोले–'हे ईश्वर के प्यारे! तुम्हारे दर्शन ने मुझे ईश्वर के दर्शन करवा दिए हैं।'

कुछ दिन बाद गुरु नानक हरिद्वार आ गए। वहां उन्होंने देखा कि लोग पूर्व दिशा में जल चढ़ा रहे हैं। गुरुजी ने एक व्यक्ति से पूछा–'आप यह जल किसे चढ़ा रहे हैं?'

वह बोला–'स्वर्ग में हमारे पितर बैठे हैं। उनकी आत्मा की शांति के लिए हम यह जल चढ़ा रहे हैं?'

गुरु नानक मुस्कराये। उन्होंने गंगा में खड़े होकर पश्चिम दिशा में पानी फेंकना शुरू किया। यह देखकर लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ।

'अरे, आप पश्चिम दिशा में जल क्यों चढ़ा रहे हैं?' किसी ने पूछा।

'बात यह है', गुरुजी ने कहा–'मैं पश्चिम का रहने वाला हूं। वहां मेरे गांव में मेरा एक खेत है। इस वर्ष ठीक से वर्षा नहीं हुई है इसलिए मैं अपने खेत को पानी दे रहा हूं।'

सब लोग उनकी बात को सुनकर हंसने लगे। एक व्यक्ति बोला–'अरे, क्या आप इतना भी नहीं समझते कि यहां से दिया हुआ पानी इतनी दूर नहीं पहुंच सकता।'

'अच्छा!' गुरु नानक ने कहा–'यदि मेरा पानी कुछ मील की दूरी तक नहीं जा सकता तो आपका दिया हुआ जल परलोक में बैठे हुए पितरों तक कैसे पहुंच जाता है?'

उनकी बात सुनकर सब भौंचक्के से एक-दूसरे के मुंह की ओर देखने लगे।

वहीं पर गुरु नानक धोखे से एक ब्राह्मण के चौके में चले गए। ब्राह्मण क्रोध से जल उठा और कड़ककर बोला–'आपने मेरा चौका भ्रष्ट कर दिया है। मैं इसे नित्य धोता हूं, पोंछता हूं, धूप देता हूं और अपनी जाति वालों के अलावा इसमें और किसी को नहीं आने देता।'

गुरु नानक ने कहा–'पर, हे ब्राह्मण देवता। आपका चौका तो पहले से ही भ्रष्ट है। आपके अंदर क्रोध का भूत बैठा है जो नीची जाति वालों को देखकर जलने लगता है। आपके अंदर कुबुद्धि की डोमनी, निर्दयता की कसाइन और परनिंदा की मेहतरानी बैठी है। जब इतनी नीची जातियां तुम्हारे अंदर बसती हैं तो चौके के बाहर लकीर भर खींच देने से पवित्रता कैसे उत्पन्न होगी?'

गुरु नानक एक नगर में अपना डेरा लगाए हुए थे। उस नगर के हजारों लोग नित्य-प्रति उनके दर्शन करने के लिए आते और उनके उपदेश सुनते थे। उस नगर का एक दुकानदार भी नित्य गुरुजी के दर्शन करने और उपदेश सुनने के लिए जाया करता था। उसके एक पड़ोसी दुकानदार ने उससे एक दिन पूछा–'भाई, तुम रोज शाम को कहां जाते हो?'

'गुरुजी का उपदेश सुनने,' वह बोला।

'मुझे भी साथ ले चला करो', दूसरे ने कहा।

पहला दुकानदार उसे साथ ले जाने के लिए राजी हो गया।

शाम को दुकान बंद करके दोनों दुकानदार गुरुजी के दर्शन करने चल दिए। रास्ते में वेश्याओं का बाजार पड़ता था। जब वे दोनों उस बाजार से निकल रहे थे तो दूसरे दुकानदार की नजर एक वेश्या पर पड़ गई। उसका मन डोल उठा। वह पहले से बोला–'तुम गुरुजी के दर्शन करने जाओ। मैं तो इस वेश्या से मिलने जा रहा हूं।'

'यह बुरी बात है,' पहले ने समझाया, पर दूसरे ने उसकी बात पर ध्यान नहीं दिया और वेश्या के कोठे की ओर बढ़ गया। पहला गुरुजी के उपदेश सुनने के लिए चला गया।

अब दोनों शाम को इकट्ठे अपने घर से निकलते थे। वेश्याओं के बाजार तक दोनों साथ-साथ आते थे। वहां आकर दूसरा वेश्या से मिलने चला जाता और पहला गुरुजी के दर्शन करने चला जाता लौटते समय दोनों एक ही स्थान पर मिलते और फिर साथ-साथ घर वापस आ जाते।

एक दिन दूसरा जब वेश्या के कोठे पर चढ़ा तो वहां ताला लगा नजर आया। वह बहुत निराश हुआ और लौटकर रोज के स्थान पर अपने साथी की प्रतीक्षा करने लगा। बैठे-बैठे उसने अपनी जेब से चाकू निकाला और वहां की धरती खुरचने लगा। खुरचते-खुरचते उसे मिट्टी में कोई चमकती चीज दिखाई दी। मिट्टी हटाकर उसने देखा। वह एक सोने की मोहर थी। उसने सोचा यहां और भी मोहरें हो सकती है। वह अपने चाकू से जगह को लगातार खुरचता रहा। कुछ देर बाद उसे एक मटका दिखाई दिया। वह मन ही मन बड़ा खुश हुआ। उसका विश्वास था कि उस मटके में मोहरें भरी होंगी। उसने बड़ी आशा से वह मटका बाहर निकाला, पर जब उसने मटके का मुंह खोला तो उसकी आशा निराशा में बदल गई। मटके में कोयला भरा हुआ था।

इतने में उसे पहला दुकानदार बड़ी परेशान हालत में आता हुआ दिखाई दिया। वह लंगड़ा-लंगड़ाकर चल रहा था। दूसरे ने पूछा–'क्यों भाई क्या हुआ? बड़े परेशान दिखाई देते हो!'

पहले ने कहा–'क्या बताऊं। गुरुजी का उपदेश सुनकर बाहर निकला तो एक तेज कांटा पैर में चुभ गया। कांटा तो निकल गया है, पर खून बंद नहीं हुआ है और बहुत दर्द हो रहा है।'

दूसरे ने कहा–'मेरा भाग्य तुमसे अच्छा है। तुम गुरु के उपदेश सुनने जाते हो तो तुम्हें यह कष्ट मिला। मैं वेश्या के पास जाता हूं तो देखो मुझे सोने की मोहर मिली।' यह सुनकर पहला और परेशान हो गया। पुण्य करने वाले को कष्ट मिले और पाप करने वाले को सोने की मोहर मिले यह तो बड़ी अजीब बात हुई।

दोनों ने निश्चय किया–'आओ, गुरुजी के पास चलकर इस बात के रहस्य का पता लगाएं।'

दोनों दुकानदार गुरु नानक के पास पहुंचे। उनकी बात सुनकर गुरुजी मुस्कराए

। उन्होंने कहा—'वेश्या के पास जाने वाले दुकानदार ने पिछले जन्म में किसी जरूरतमंद व्यक्ति को एक मोहर देकर उसकी सहायता की थी। उसके बदले में इसे इस जन्म में घड़ा भरकर मोहरें मिलनी थीं, पर इस जन्म में आकर यह बुरे कामों में फंस गया। इसलिए इसका सोने की मोहरों से भरा हुआ मटका कोयले में बदल गया, परन्तु जो मोहर इसने दान की थी। वह इसे उसी तरह वापस मिल गई।'

पहले दुकानदार ने पूछा—'परन्तु गुरुजी, मैं तो अच्छे कर्म करता हूं। मुझे यह कष्ट क्यों मिला?''

गुरुजी मुस्कराए—'इसका कारण भी लगभग वैसा ही है, पिछले जन्म में तुम अपने ग्राहकों को बहुत ठगते थे और जिन जरूरतमंद लोगों को रुपया उधार देते थे, उनसे बहुत ज्यादा ब्याज वसूल करते थे। उसके बदले में तुम्हें इस जन्म में सूली मिलनी थी, पर इस जन्म में आकर तुमने अच्छे कर्म करने शुरू कर दिए। इसलिए सूली दिन प्रतिदिन छोटी होती चली गई और एक कांटे के रूप में बदल गई। आज तुम्हें वही कांटा चुभा है। इससे पिछले जन्म के तुम्हारे सभी पाप नष्ट हो गए हैं और तुम्हारा आगामी जीवन सुखमय बन गया है। इस तरह बुरे कर्मों से पूर्व जीवन के पुण्य समाप्त हो जाते हैं और अच्छे कर्मों से पूर्व जीवन के पाप भी धुल जाते हैं।'

गुरु नानक और उनका साथी मरदाना अब पूर्वी भारत की यात्रा करने निकल पड़े। इस समय गुरुजी ने अपनी वेशभूषा बड़ी विचित्र बना रखी थी। वे अंबुआ रंग का चोला पहने हुए थे। उस पर सफेद रंग का दुपट्टा पड़ा हुआ था। सिर पर टोपी ऐसी थी जैसी मुसलमान कलंदर पहनते हैं। साथ ही मस्तक पर उन्होंने केसरिया तिलक लगा रखा था। इस वेशभूषा का कुछ भाग हिन्दुओं जैसा था और कुछ भाग मुसलमानों जैसा। उन्हें देखकर यह अनुमान लगाना कठिन था कि वे हिन्दू हैं या मुसलमान।

पीलीभीत के पास पहुंचकर वे योगियों के प्रसिद्ध केन्द्र गौरखमता में रुक गए।

योगियों ने उनसे कहा—'बिना योग धारण किए, किसी को सिद्धि प्राप्त नहीं होती।'

'आप ठीक कहते हैं, गुरुजी ने कहा—'बिना योग के सिद्धि प्राप्त नहीं होती, परन्तु योग है क्या। योग न तो कंठा पहनने में है न श्रंगी बजाने में है, न डंडा लेने में है और न शरीर पर भस्म लगाने में हैं जो माया के बीच रहकर माया से अलग रहता है, वही सच्चा योगी है। ऐसा योगी कोरी बातें नहीं करता! वह सभी मनुष्यों को समान समझता है।'

यहां से चलते हुए गुरु नानक और मरदाना बनारस आ पहुंचे। सुबह का समय था। गुरु नानक और मरदाना धीरे-धीरे गंगा-घाट की तरफ जा रहे थे कि उनकी भेंट चतुरदास नाम के एक ईश्वर भक्त से हुई। वह बोला—'आप किस तरह के भक्त हैं। न आपके हाथ में सुमरनी है, न आपके पास शालिग्राम है। आपकी मुक्ति कैसे होगी?'

गुरु नानक ने कहा—'चतुरदासजी, ईश्वर की पूजा ही शालिग्राम है। अच्छी करनी

ही सुमरनी है। राम-नाम का जप ही वह मार्ग है जिससे मनुष्य की मुक्ति होती है।'

बनारस से चलकर घूमते-फिरते गुरु नानक और मरदाना गयाजी पहुंचे। यहां के पंडों ने गुरु नानक से पितरों की आत्मा की शांति के लिए श्राद्ध करने के लिए कहा।

गुरु नानक ने कहा—'परमात्मा का नाम ही मेरे लिए श्राद्ध के पिंड, पत्तल और क्रिया है। उसका नाम ही मेरा दीपक है। इसमें दुख रूपी तेल पड़ा है जो जलता रहता है। यह दीपक जितना जलता है उतना ही मृत्यु का भय मुझसे दूर हटता जाता है। यहां-वहां आगे-पीछे परमात्मा का नाम ही मेरा आधार है।'

आगे बढ़ते हुए वे एक ऐसे नगर में से गुजरे जहां एक धनी व्यक्ति के यहां पुत्र-जन्म की खुशियां मनाई जा रही थीं। दूसरे ही दिन उस बच्चे की मृत्यु हो गई। जहां एक दिन पहले गाना-बजाना था, वहीं अब रोना-पीटना मचा था। यह देखकर मरदाना ने गुरु नानक से पूछा—'गुरुजी! क्या बात है कि मनुष्य कभी आनन्द में मग्न होता है और कभी दुख में डूब जाता है। आखिर इस जीवन का उद्देश्य क्या है?'

गुरुजी ने कहा—'ज्ञान के अभाव के कारण ही मनुष्य जीवन के सुखों में दुख को भूल जाता है जब सुख चले जाते हैं तब दुख उसे बहुत भारी लगता है, परन्तु ईश्वर की आराधना करने वाला व्यक्ति न सुख में फूलता है और न दुख में दुखी होता है। वह दोनों स्थितियों में सन्तुष्ट रहता है।'

वहां से गुरु नानक मरदाना के साथ घूमते-फिरते एक गांव में पहुंचे। वहां के लोग उन्हें देखकर बहुत खुश हुए। उन्होंने उनकी आवभगत की। गांव के सभी स्त्री-पुरुषों ने उनकी बड़ी सेवा की और उनके उपदेशों को बड़े ध्यान से सुना। जब गुरु नानक उस गांव से विदा लेने लगे तो उन्होंने उस गांव के रहने वालों को आशीर्वाद दिया—'इस गांव में रहने वाले लोग उजड़ जाएं।'

फिर यात्रा करते-करते वे एक दूसरे गांव में पहुंचे। वहां के लोगों ने उनके साथ बिल्कुल उल्टा व्यवहार किया। किसी ने उनका स्वागत नहीं किया। यहां तक कि किसी ने उन्हें पानी तक के लिए नहीं पूछा। गुरु नानक और उनका साथी मरदाना जल्दी उस गांव से विदा हो गए। जाते-जाते गुरुजी उस गांव के लोगों को आशीर्वाद देते गए—'ये सब यहीं बसते रहे।'

उनके इस प्रकार के आशीर्वाद से मरदाना बड़े चक्कर में पड़ा। गुरु नानक के वचनों का रहस्य उसकी समझ में नहीं आया। उसने पूछ ही तो लिया—'गुरुजी, आपकी बात मेरी समझ में नहीं आई?'

नानकजी ने पूछा—'कौन-सी बात, मरदाना?'

'यही...' मरदाना बोला—'जिस गांव में हमारी आवभगत हुई, जहां के लोगों ने हमारी सेवा की, आपके उपदेश सुने...उन्हें आपने उजड़ जाने का आशीर्वाद दिया और जिस गांव में हमारा तिरस्कार हुआ, जहां के लोगों ने आपका उपदेश ग्रहण करना तो दूर आपको पानी तक के लिए नहीं पूछा—'उन्हें आपने वहीं पर सदा बसते रहने का आशीर्वाद

दे दिया। इसका क्या अर्थ है?'

मरदाना की बात सुनकर गुरु नानक मुस्कराए, बोले—'मरदाना, बात बड़ी सीधी-सादी है। जो लोग अच्छे हैं, सेवा भाव वाले हैं उन्हें एक ही जगह पर नहीं रहना चाहिए। ये लोग उजड़कर नई-नई जगहों पर बसेंगे और वहां अपने गुणों का प्रसार करेंगे, परन्तु जो लोग बुरे हैं, जो दू""रों की सेवा करने की बजाय उनका तिरस्कार करते हैं और अपने स्वार्थों में ही डूबे रहते हें, ऐसे लोगों को एक ही स्थान पर रहना चाहिए। यदि ये लोग फैलेंगे तो अपने आचरण से दूसरे लोगों को भी भ्रष्ट करेंगे।'

अब गुरु नानक और मरदाना आसाम पहुंच गए थे। उसे तब कामरूप देश कहा जाता था। कहते हैं उन दिनों वहां स्त्रियों का ही राज था। वहां की स्त्रियां अपनी सुंदरता और मोहिनी शक्ति के कारण बहुत प्रसिद्ध थीं।

मरदाना कुछ भोजन-सामग्री लेने के लिए नगर में गया। जब वह महल के पास पहुंचा तो रानी ने उसे महल में बुला लिया। महल का वैभव और रानी की सुंदरता देखकर मरदाना सब कुछ भूल गया।

जब मरदाना काफी देर तक वापस नहीं आया तो गुरुजी उसे ढूंढने निकले। नगर में आकर उन्हें मरदाना का समाचार मिला। वे महल में पहुंचे तो देखा, मरदाना तो पूरी तरह रानी के वश में पड़ा हुआ है।

उन्होंने रानी से कहा—'मेरे साथी को छोड़ दो।'

'आपका साथी तो अपनी इच्छा से यहां आया है', रानी ने कहा—'इसलिए मैं उसे नहीं जाने दूंगी।'

'सुनो', गुरुजी ने कहा—'क्या तुम मिट्टी देकर कस्तूरी पा सकती हो?'

'नहीं', रानी ने कहा—'मिट्टी देकर कस्तूरी कैसे मिलेगी।'

'इसी तरह बुरे आचरण से सच्चे प्रिय का मिलन कैसे होगा?' उन्होंने कहा—'तुम्हारे मन में यदि प्रिय मिलन की भूख है तो पहले अपना चाल-चलन तो सुधारो।'

परन्तु कामरूप की रानी और उसकी सहेलियां अपनी सुंदरता और धन-सम्पत्ति के नशे में डूबी हुई थीं। उन्होंने गुरु नानक को अपनी सुंदरता और सोना-चांदी तथा सुंदर-सुंदर वस्त्र दिखाकर की कोशिश करनी शुरू कर दी।

गुरुजी ने यह देखकर कहा—'ऐ मूर्ख, इन सब चीजों का तुम इतना अभिमान क्यों करती हो? अपने मन में हरि के प्रेम का रस भरो। वही सबका स्वामी है। यह बाहरी रूप-शृंगार सब बेकार है। अपनी आंखों में ईश्वर के भय रूपी सुरमे की सलाई लगाओ, ईश्वर के भक्ति भाव का ही शृंगार करो। तुम सच्ची सुहागिन तभी समझी जाओगी जब ईश्वर रूपी पति से प्रेम करोगी।'

रानी उनके उपदेशों से बहत प्रभावित हुई और अपनी भूल के लिए उनसे क्षमा मांगने लगी। गुरुजी ने कहा—'यदि तुम अपने सभी कामों में ईश्वर को सदैव याद रखोगी

तो तुम्हारा भला होगा।'

कामरूप से गुरु नानक और मरदाना ब्रह्मपुत्र नदी के एक रास्ते से वापस मुड़े और अनेक स्थानों की यात्रा करते हुए जगन्नाथपुरी पहुंचे। यहां के सुप्रसिद्ध मंदिर में संध्या के समय जगन्नाथजी की आरती होने लगी। चांदी के थालों में दीपक जलाकर आरती हो रही थी। धूप की सुगंध से सारा वातावरण महक रहा था। गुरुजी सब कुछ देखते हुए चुपचाप खड़े थे। उन्हें संसार के स्वामी की यह आरती बहुत छोटी जान पड़ी। उन्होंने अपनी आंखें आकाश की ओर उठाईं और एक नई आरती का गायन करने लगे, जिसका भावार्थ था—

'आकाश रूपी थाल में सूरज और चंद्रमा रूपी दीपक जल रहे हैं। आकाश में झिलमिलाते हुए तारे उस थाल में जड़े हुए मोती हैं। मलय पर्वत की ओर से आती हुई वायु धूप का काम कर रही है। पवन चंवर डुला रहा है। सम्पूर्ण वनस्पति पूजा के फूल बन गई है, अनहद नाद भेरी का काम कर रहा है। हे ईश्वर, तुम्हारी ऐसी अद्‌भुत आरती हो रही है।'

गुरु नानक और मरदाना को घर से निकले हुए कई वर्ष हो चुके थे। मरदाना घर जाने को बहुत व्याकुल हो रहा था और बार-बार घर वापस चलने का आग्रह कर रहा था। गुरुजी ने उसकी बात मान ली और वे दोनों पंजाब की ओर वापस मुड़ चले।

रास्ते में उनकी भेंट एक पाखंडी साधु से हुई। वह आंखें बंद करके बैठा हुआ था। उसके चारों ओर भीड़ लगी हुई थी। उसके शिष्य कह रहे थे—'महात्माजी बहुत पहुंचे हुए हैं। वे त्रिकालदर्शी हैं। इन्हें भूत, वर्तमान और भविष्य का सब हाल पता है। इनकी आंखें बंद हैं, पर ये सभी कुछ देख सकते हैं।'

लोग बड़ी श्रद्धा से उनकी बातें सुन रहे थे। महात्माजी पर खूब दान-दक्षिणा चढ़ा रहे थे। गुरु नानक और मरदाना भी काफी देर तक भीड़ में खड़े होकर यह तमाशा देखते रहे। फिर उन्होंने मरदाना को इशारा किया। मरदाना आगे बढ़ा और उसने साधु के आगे रखे हुए कमण्डल को उठाकर उसके पीछे रख दिया।

नानकजी ने पूछा—'महाराज आपका कमंडल कहां है?'

साधु ने बंद आंखों से बहुत अनुमान लगाए, उसके शिष्यों ने भी बहुत-से इशारे किए पर वह यह नहीं बता सका कि कमण्डल कहां है?

देखने वाले हंसने लगे।

गुरुजी ने कहा—'पाखंड करके दुनिया को धोखे में डाला जा सकता है, पर परमात्मा को तुम किस प्रकार धोखा दोगे?'

गुरु नानक और मरदाना कई वर्ष बाद वापस लौटे। गुरु नानक को देखकर उनकी माता की आखों में आंसू भर आए, पिता भाव-विह्वल हो उठे। पत्नी की खुशी का ठिकाना

न रहा और दोनों लड़के—श्रीचंद और लक्ष्मीचंद उनसे आकर लिपट गए। मरदाना भी अपने परिवार के लोगों से मिला। कुछ समय दोनों ने अपने परिवार के साथ बिताया और फिर अगली यात्रा पर चल पड़े।

इस यात्रा के दौरान पाक पत्तन में गुरु नानक प्रसिद्ध सूफी फकीर शेख इब्राहीम से मिले।

शेखजी ने पूछा—'नानकजी, आप कहते हैं परमात्मा एक है, यह तो ठीक है। परन्तु उसे पाने के रास्ते दो हैं। आदमी किसे छोड़े किसे अपनाए?'

गुरुजी ने कहा—'शेखजी परमात्मा एक है और उसे पाने का रास्ता भी एक है। मनुष्य को सच्चा मार्ग पहचानना चाहिए।'

शेखजी ने पूछा—'वह छुरी कौन-सी है जिससे दी गई बलि खुदा के दरबार में मंजूर होती है?'

गुरुजी ने कहा—'सच की छुरी हो, ईश्वर के नाम की उस पर सान चढ़ाई जाए, गुणों की म्यान में उसे रखा जाए। ऐसी छुरी से जो भी कटता है, वह ईश्वर के दरबार में मंजूर किया जाता है।'

शेख इब्राहीम से विदा होकर गुरु नानक और मरदाना गोइंदवाल नाम के गांव में पहुंचे। गांव के बाहर एक कोढ़ी रहता था। वह उन्हें अपनी झोंपड़ी में ले गया और उसने उनकी बड़ी सेवा की। लोग उस कोढ़ी से घृणा करते थे और कोई उसके पास नहीं जाता था। गुरु नानक और मरदाना को अपनी झोंपड़ी में लाकर वह कोढ़ी बहुत खुश हुआ।

उसने पूछा—'हे गुरुदेव, मुझे इस भयानक रोग ने क्यों जकड़ रखा है? क्या कभी मैं इस रोग से छुटकारा पा सकूंगा?'

गुरुजी ने कहा—'ईश्वर को भुला देने और उसके नियमों की अवहेलना करने से हमें रोग जकड़ लेते हैं। शरीर के रोग तो दवा-दारू से चाहे दूर भी हो जाएं, परन्तु आत्मा के रोग ईश्वर रूपी अग्नि को अपने अंदर जलाने से ही नष्ट होते हैं।'

गुरु नानक और मरदाना ने उस रोगी की खूब सेवा की और वह कुछ दिनों में पूरी तरह निरोग हो गया।

यात्रा करते-करते गुरु नानक लाहौर पहुंचे, यहां दुनीचंद नाम का एक करोड़पति रहता था। जब उसने गुरुजी के आने की खबर सुनी तो वह उन्हें बड़े आदर से अपने घर ले गया। वह अपने पिता का श्राद्ध कर रहा था और अपने घर पर उसने एक विशाल ब्रह्म-भोज का प्रबंध किया था।

गुरुजी ने देखा, दुनीचंद के दरवाजे पर बहुत-सी झंडियां बंधी हुई हैं।

उन्होंने पूछा—'ये झंडियां क्यों बांध रखी हैं?'

उन्हें बताया गया—'एक झंडी का मतलब है एक लाख रुपये। जितनी झंडियां हैं, दुनीचंद के पास उतने ही लाख रुपये हैं।'

गुरुजी कुछ सोचने लगे। फिर उन्होंने दुनीचंद को बुलाकर कहा—'मेरे पास एक सुई है। इसे मैं तुम्हारे पास रखता हूं। यह मेरी अमानत है। मैं परलोक में यह सुई तुमसे ले लूंगा।'

दुनीचंद यह सुनकर बड़े आश्चर्य में पड़ा। उसने पूछा—'गुरुजी, यह कैसे संभव है? इस लोक की चीज उस लोक में कैसे जा सकती है?'

गुरुजी ने कहा—'दुनीचंद, एक छोटी-सी सुई भी दूसरे लोक में नहीं जा सकती तो तुम अपनी सम्पत्ति का इतना अभिमान क्यों कर रहे हो? इतना दिखावा क्यों कर रहे हो? यह तुम्हारे साथ किस तरह जाएगी?'

दुनीचंद यह सुनकर बहुत लज्जित हुआ।

यहां से चलकर गुरु नानक और मरदाना रावी के तट पर उस स्थान पर पहुंचे जहां अब करतारपुर नगर है। यहां वे कुछ दिनों तक टिके रहे और लोगों को उपदेश देते रहे।

यहां उनके पास एक बालक रोज आता था और बड़ी श्रद्धा से उनका उपदेश सुनता था। एक दिन गुरुजी का ध्यान उसकी तरफ गया। वे बोले—'तुम तो इतनी छोटी उमर में ही परमात्मा के ध्यान में डूबे रहते हो। तुम्हें यह लगन कैसे लगी?'

उसने कहा—'गुरुजी! एक बार मैंने अपनी मां को चूल्हा जलाते हुए देखा। मैंने देखा बड़ी लकड़ियों के बजाय छोटी लकड़ियों में आग जल्दी लगती है। यह देखकर मैंने सोचा कि मैं भी तो छोटी लकड़ी की तरह ही हूं। संसार की बुराइयों की आग मुझे पहले पकड़ेगी। इसीलिए मैं अभी से आपकी शरण में आ गया हूं।'

गुरुजी उसका उत्तर सुनकर बड़े प्रसन्न हुए और बोले—'अरे, तुम तो बिल्कुल बुड्ढ़ों की तरह ज्ञान की बातें करते हो।

तब से उस बालक का नाम 'बाबा बुड्ढ़ा' पड़ गया।

करतारपुर में कुछ समय बिताने के बाद गुरु नानक ने दक्षिण भारत की यात्रा शुरू की। अनेक स्थानों पर रुकते, लोगों को उपदेश देते हुए और अनेक तरह के अंधविश्वासों और पाखंडों का खंडन करते हुए गुरु नानक और मरदाना लंका तक पहुंच गए। वहां पहुंचकर उन्होंने राजा के बाग में डेरा लगा लिया। राजा को पता लगा कि उत्तर भारत से एक बड़े महात्मा आए हैं। वह उनसे मिलने के लिए बाग में आया।

'क्या आप योगी हैं?' राजा ने पूछा।

'हां...' गुरु नानक ने कहा—मैं अपने ढंग का योगी हूं। मैं मानता हूं कि योगी वह है जिसका मन निर्मल हो, जो ईश्वर के प्रेम में डूबा हुआ हो और जिसके मन की चंचलता दूर हो गई हो।'

'क्या आप ब्राह्मण हैं?' राजा ने पूछा।

'ब्राह्मण वह है जो ब्रह्म के ज्ञान रूपी जल में स्नान करता है।' गुरु नानक ने

कहा—'वह उस एक परमशक्ति को ही पहचानता है जो तीनों लोकों में समाया हुआ है।'

'क्या आप व्यापारी हैं?' राजा ने फिर पूछा।

'हां, मैं जीभ की डंडी से दिल के पल्ले में अतौल ईश्वर को सदैव तौलता रहता हूं।' गुरु नानक ने उत्तर दिया।

राजा उनके सम्मुख नतमस्तक हो गया।

लंका में कुछ समय बिताने के बाद गुरु नानक और मरदाना पंजाब की ओर मुड़े।

रास्ते में एक योगी ने उनसे पूछा—'लोग आपको ऋद्धियों-सिद्धियों का स्वामी समझते हैं। कोई चमत्कार हमें भी करके दिखाइए।'

गुरु नानक ने कहा—'मेरे पास दो ही प्रकार के चमत्कार हैं। 'शब्द का रंग' और 'गुरु का संग' इन्हीं की सहायता से मैं मनुष्य का मन बदल देता हूं। यदि मैं और तरह के चमत्कार करने लगूं तो इससे मनुष्य को क्या लाभ होगा? मनुष्य का सबसे बड़ा सुख यही है कि ईश्वर की कृपा से द्वार उसके लिए खुल जाएं।'

कुछ दिनों बाद गुरु नानक और मरदाना ने उत्तराखंड की यात्रा शुरू की। पंजाब से चलकर वे कश्मीर पहुंचे। वहां से हिमालय की पर्वतमाला से होते हुए वे सुमेरु पर्वत तक पहुंच गए। यहां बहुत से सिद्ध और योगी साधना में लगे हुए थे। गुरु नानक और मरदाना को वहां देखकर उन्हें बहुत आश्चर्य हुआ।

उन्होंने पूछा—'आप कहां से आए हैं? भारत की स्थिति इस समय कैसी है?'

गुरुजी ने उत्तर दिया—'देश की स्थिति अच्छी नहीं है। राजा कसाइयों की तरह निर्दयी हैं, धर्म पंख लगाकर उड़ गया है। चारों ओर अमावस का अंधेरा छाया हुआ है। सच्चाई का चन्द्रमा कहीं दिखाई नहीं देता।'

गुरु नानक और मरदाना कई दिन तक सिद्धों से बातचीत करते रहे। एक दिन एक सिद्ध ने पूछा, 'संसार तो एक अथाह सागर है। इससे बचकर कैसे जाया जा सकता है?'

'जैसे जल में कमल या नदी में मुरगाबी निर्लिप्त रहती है, उसी तरह जिसने अपने मन में ईश्वर के नाम को बसा रखा है, वह बिना किसी संकट के इस संसार सागर को पार कर जाता है।'

कुछ दिन तक सिद्धों से चर्चा करने के बाद गुरु नानक और मरदाना देश की ओर वापस मुड़े। रास्ते में वे हसन अब्दाल नाम की जगह पर रुके। यहां एक छोटी-सी पहाड़ी पर वली कंधारी नाम का फकीर रहता था।

'गुरुजी, बहुत प्यास लगी है', मरदाना ने कहा।

गुरुजी ने इधर-उधर देखा और कहा, 'मरदाना, नीचे तो कहीं पानी दिखाई नहीं देता। ऊपर पहाड़ी पर एक चश्मे का पानी है। वहां एक फकीर रहता है। उसी के पास चले जाओ। वह तुम्हें पानी पिला देगा।'

मरदाना पहाड़ी की ओर चल दिया। फकीर की कुटिया के पास पहुंचकर उसने

आवाज लगाई, 'फकीरजी....फकीरजी!'

वली कंधारी बाहर आया और आंखें तरेरकर बोला—'कौन है तू?'

'मैं मरदाना हूं', उसने कहा—'मुझे बड़ी प्यास लगी है। मुझे थोड़ा पानी पिला दीजिए।'

'नहीं है यहां पानी-वानी', वली कंधारी वड़े गुस्से से बोला—'भाग जा यहां से।'

मरदाना निराश होकर वापस मुड़ चला।

गुरुजी ने पूछा—'क्यों मरदाना पानी मिला?'

'नहीं महाराज!' वह बोला—'यह फकीर तो बड़ा क्रोधी मालूम पड़ता है। मुझे बिना पानी के ही उसने भगा दिया।'

गुरु नानक मुस्कराए। बोले—'अच्छा मरदाना उस सामने की बड़ी चट्टान के नीचे जो पत्थर रखा है उसे उठाओ।'

'क्यों महाराज?' मरदाना ने आश्चर्य से पूछा।

'मैं जो कहता हूं वह करो', गुरुजी ने शांत स्वर से कहा।

मरदाना ने कुछ जोर लगाकर वह पत्थर उठाया। फिर एकदम खुशी से चीख उठा—'गुरुजी....पानी...पानी!'

पत्थर के नीचे से स्वच्छ पानी का चश्मा निकल आया था, पर सबसे अधिक आश्चर्य और संयोग की बात यह थी कि जैसे-जैसे नीचे का पानी तेज होता जा रहा था वैसे ही वैसे पहाड़ी के ऊपर का चश्मा सूखता जा रहा था।

जब वली कंधारी ने अपना चश्मा सूखता देखा तो उसे बड़ा गुस्सा आया। उसने क्रोध में आकर पहाड़ी से एक बड़ा-सा पत्थर गुरुजी की ओर लुढ़का दिया।

'गुरुजी, बचिए...बचिए...!' पत्थर आता देखकर मरदाना चीखा।

'तुम चिन्ता न करो!' गुरुजी ने आते हुए पत्थर को देखा। जब वह पास आ गया तो उन्होंने उसे अपने हाथ से रोक दिया।

उस घटना की स्मृति में इसी स्थान पर 'पंजा साहब' नाम का प्रसिद्ध गुरुद्वारा बना जो अब पाकिस्तान में है।

गुरु नानक लगभग सभी प्रमुख वैष्णव, शैव, जैन, बौद्ध तीर्थों की यात्रा कर चुके थे। अब उन्होंने मुसलमानों के पवित्र स्थानों की यात्रा का विचार किया। उन्होंने और मरदाना के हाजियों जैसे नीले कपड़े पहने, उन्हीं की तरह बगल में एक किताब दबाई। हाथ-पैर धोने के लिए कूजा और इबादत करने के लिए मुसल्ला अपने साथ लिया। अब वे पूरी तरह से हाजी लगते थे।

जब वे बहुत लम्बी यात्रा तय करके अन्य बहुत-से हाजियों के साथ मक्का पहुंचे तो बहुत थक गए थे। उनके पैरों में छाले पड़ गए थे और रात उतर आई थी। वे लेट गए। उनके पैर अनायास उस ओर पसर गए जिधर पवित्र काबा था। हज करने के लिए

आया हुआ कोई व्यक्ति इस तरह नहीं करता। एक मुल्ला ने यह देखा तो उसे बड़ा क्रोध आया। वह चीखकर बोला—'तुम हज करने आए हो और तुम्हें यह भी पता नहीं कि तुम खुदा के घर की तरफ पैर करके पड़े हो।'

उन्होंने वड़ी शांति से कहा—'अरे भाई, जिस ओर खुदा का घर न हो तुम उस तरफ मेरे पैर कर दो।'

मुल्ला न क्रोध में भरकर उनके पैर घसीटकर दूसरी तरफ कर दिए, पर मुल्ला कुछ ही क्षण में आश्चर्य से ठगा-सा रह गया। क्योंकि उसने जिस तरफ उनके पैर किए थे, उसे उसी तरफ कावा दिखाई दे रहा था। कहते हैं कि वह जिस तरफ उनके पैर घुमाता उसे उसी तरफ कावा घूमता हुआ नजर आता।

मक्का में कुछ दिनों तक हाजियों, मुल्लाओं से चर्चा करने के बाद गुरु नानक और मरदाना मदीना की तरफ चल दिए। वहां से वे बगदाद पहुंचे। बगदाद से अफगानिस्तान की यात्रा करते हुए गुरु नानक और मरदाना हिन्दुस्तान वापस आ गए। जब वे मुलतान पहुंचे तो वहां के फकीरों ने उनके आगमन का समाचार सुनकर उनके पास दूध से लवालब भरा हुआ एक कटोरा भेजा। इसका अर्थ यह था कि यहां पहले ही बहुत पीर-फकीर भरे हुए हैं। आपकी गुंजाइश कहां है?

गुरु नानक ने उस कटोरे पर चमेली का फूल रखकर वापस भेज दिया। इसका अर्थ था—मैं यहां इस दूध पर चमेली के फूल की तरह बिना किसी बोझ के सुगंध बनकर रहूंगा।

वहां से आगे बढ़ते हुए गुरु नानक और मरदाना सैदपुर पहुंचे। इन्हीं दिनों बाबर ने हिन्दुस्तान पर चढ़ाई की थी। बाबर के सैनिक सैदपुर भी आ पहुंचे। सारा शहर लूट लिया गया और जो कत्ल होने से बच गया उसे कैद कर लिया गया। मुगल सिपाहियों ने गुरु नानक और मरदाना को भी कैद कर लिया और इन दोनों को भी दूसरे कैदियों की तरह काम पर लगा दिया गया। गुरु नानक को चक्की पीसने के लिए दी गई और मरदाना को घोड़ों की सईसी पर लगा दिया गया, परन्तु जहां अन्य कैदी रोते-चीखते हुए अपनी बेगार करते थे वहां गुरु नानक मस्ती से भरे हुए ईश्वर के भजन गाते रहते थे।

जब बाबर के सेनापति मीरखान को इस बात का पता लगा तो उसने इस बात की सूचना बाबर को दी। बाबर ने कहा—'मैं ऐसे फकीर का दीदार करना चाहता हूं।'

जब गुरु नानक को बावर के सामने लाया गया तो उन्हें देखकर बाबर का सिर झुक गया। उसने क्षमा मांगते हुए कहा—मेरे सिपाहियों ने अनजाने ही आप जैसे फकीरों को दुख पहुंचाया है। मैं शर्मिंदा हूं। अब आप आजाद हैं।'

गुरु नानक ने कहा—'एक मैं ही तो नहीं जिस पर आपके सिपाहियों ने जुल्म ढाए हैं। जब तक कैद किए गए सभी लोगों को छोड़ नहीं दिया जाता, मैं आजाद होकर क्या करूंगा!'

यह सुनकर बादशाह ने सभी बंदियों को छोड़ देने की आज्ञा दे दी।

गुरु नानक अपने जीवन के लगभग 25 वर्ष दूर-दूर देशों की यात्रा करते हुए गुजार चुके थे। अब उनकी आयु लगभग 60 वर्ष की हो चुकी थी। अब वे एक स्थान पर रहकर अपने विचारों का प्रचार करना चाहते थे। इसके लिए उन्होंने करतारपुर नामक स्थान को चुना। वर्षों से बिछुड़ा हुआ उनका परिवार भी यहीं आकर उनके पास रहने लगा।

करतारपुर में लाखों लोग उनके उपदेश सुनने के लिए आने लगे। देखते-देखते यह स्थान एक महत्वपूर्ण तीर्य-स्थान बन गया।

उन लाखों लोगों में लहिणा नाम का एक व्यक्ति भी था, जिसने एक बार गुरु की वाणी सुनी तो उसी से मोहित होकर सदा के लिए उन्हीं के पास रह गया।

लहिणाजी सदा गुरु नानक की सेवा में लगे रहते थे। एक दिन वे खेत से जानवरों के लिए कटिया काटकर ला रहे थे। कीचड़ से उनके कपड़े लथपथ हो गए थे। यह देखकर गुरु नानकजी की पत्नी सुलक्खनीजी ने कहा—'लहिणाजी हमारे अतिथि हैं। आप उनसे ऐसे छोटे काम क्यों करवाते है। देखिए, उनके कपड़ों का क्या हाल हो गया है।'

गुरु नानकजी मुस्कराते हुए बोले—'तुम्हें यह कीचड़ नजर आता है पर यह तो केसर है जिसे ईश्वर ने इनके कपड़ों पर छिड़क दिया हैं।'

इन्हीं दिनों गुरु नानक का जीवन भर का साथी मरदाना उन्हें सदा के लिए छोड़कर परलोक सिधार गया।

गुरु नानकजी की आयु अब लगभग 70 वर्ष की हो चुकी थी। वे अपने काम को किसी योग्य व्यक्ति को सौंपना चाहते थे। लहिणाजी उनकी सेवा में कई वर्ष से थे। गुरु नानक उनकी योग्यता को परख चुके थे। अपने दोनों पुत्रों में उन्हें इस योग्य कोई नहीं दिखाई देता था। अंत में उन्होंने लहिणाजी को अपना उत्तराधिकारी बनाने का फैसला कर लिया।

भाई लहिणाजी को अपना उत्तराधिकारी बनाने से पहले गुरु नानक ने उनकी बड़ी कठिन परीक्षा ली। गुरु नानकजी के दोनों पुत्र श्रीचंद और लक्ष्मीचंद समझते थे कि उनमें से किसी को यह गद्दी मिलेगी। उनके और भी शिष्य थे। उनका ख्याल था कि गुरु नानक उनमें से किसी को चुनेंगे परन्तु गुरु नानक ने चुनाव किया भाई लहिणा का।

एक बार गुरु नानक ने जान-बूझकर एक कटोरा कीचड़ में फेंक दिया। कुछ देर में उनके दोनों बेटे उधर आ निकले। गुरुजी ने एक से कहा—'कीचड़ से वह कटोरा तो निकाल लाओ।'

'अभी किसी नौकर को बुलाता हूं', वह बोला और नौकर बुलाने चल दिया।

गुरुजी मुस्कराए। वे दूसरे से बोले—'चलो, तुम्हीं यह कटोरा निकाल लाओ।'

'अच्छी बात है', वह बोला और इधर-उधर किसी लम्बे बांस की खोज करने लगा जिसकी मदद से विना कपड़े खराब किए वह कटोरा निकाला जा सके।

इतने में भाई लहिणा वहां आ गए। गुरुजी बोले—'क्यों भाई लहिणा, तुम यह कटोरा निकाल सकते हो?'

'क्यों नहीं, गुरुजी!' लहिणाजी ने कहा और बिना किसी बात की चिन्ता किए झटपट कीचड़ में जाकर कटोरा निकाल लाए।

गुरुजी ने मुस्कराते हुए अपने बेटों की ओर देखा।

इसी तरह गुरु नानकजी ने एक बार अपना बड़ा भयानक रूप बनाया। उन्होंने शिकारियों जैसे कपड़े पहन लिए, दो-एक तेज हथियार ले लिए। उनके साथ कुछ शिकारी कुत्ते भी हो लिए। वह रूप बनाकर वे जंगल की ओर चल दिए। उनके पुत्र, भाई लहिणा और बहुत-से शिष्य भी उनके साथ चल दिए।

सब लोग साथ तो चल दिए पर किसी को यह पता नहीं था कि गुरुजी कहां जा रहे हैं और क्यों जा रहे हैं। जंगल में पहुंचकर वे बोले—'मैं यहां शिकार खेलने आया हूं। जो भी मेरे साथ रहेगा उसे शिकार करना पड़ेगा।'

उनका यह उग्र रूप देखकर कुछ लोग बहुत घबराए और वे वहीं से वापस मुड़ गए। बचे हुए लोगों को साथ लेकर गुरुजी आगे बढ़े। कुछ दूर जाने पर उन्हें रास्ते पर बहुत-से पैसे बिखरे हुए दिखाई दिए। कुछ शिष्य लालच में आ गए। उन्होंने जल्दी-जल्दी पैसे बटोरने शुरू कर दिए। गुरुजी आगे बढ़ते गए। पैसे बटोरने वाले लोग, पैसे लेकर अपने घर वापस आ गए।

कुछ और दूर जाने के बाद रास्ते पर रुपये पड़े हुए मिले। बचे हुए शिष्यों में कुछ लोग रुपयों के लालच में आ गए। वे रुपये उठाने लगे। जब वे रुपये उठा चुके तो उन्होंने देखा कि गुरुजी शेष शिष्यों सहित आगे जा चुके हैं। उन्होंने रुपये अपनी जेबों में भर लिए और वापस आ गए।

जो शिष्य गुरुजी के साथ आगे गए थे। कुछ और दूर जाकर उन्होंने देखा कि रास्ते में सोने की अशर्फियां पड़ी हैं। उनमें से कुछ मन ही मन बड़े खुश हुए। उन्होंने अशर्फियां उठानी शुरू कर दीं। जब वे अशिर्फियां उठा चुके तो देखा गुरुजी बहुत आगे जा चुके हैं।

अब गुरुजी के साथ बहुत थोड़े शिष्य, दोनों पुत्र और भाई लहिणाजी रह गए। जब वे कुछ और आगे पहुंचे तो उन्होंने देखा कि रास्ते पर एक मुर्दा रखा हुआ है। उसके चारों ओर चार दीपक जल रहे हैं, मुर्दा एक सफेद चादर से ढका हुआ है।

गुरुजी उस मुर्दे के पास आकर रुक गए। उनके साथ के लोग भी वहीं खड़े हो गए, और इस बात की राह देखने लगे कि देखें, गुरुजी क्या आज्ञा देते हैं?

गुरुजी कुछ देर सोचते रहे फिर गरजकर बोले—'हमारे साथ कौन रहना चाहता है?'

सभी ने बड़े उत्साह से कहा—'हम रहना चाहते हैं।'

'तो इस मुर्दे को खाओ', गुरुजी ने और तीखी आवाज में कहा।

यह सुनकर सब सन्न रह गए। मुर्दे को भला कौन खा सकता है।

उनमें से दो-एक लोग तो खिसकने लगे और बाकी बचे लोगों ने अपना सिर झुका लिया।

'कौन खाएगा यह मुर्दा?' गुरुजी फिर जोर से बोले।

'मैं खाऊंगा सतगुरु,' भाई लहिणा दोनों हाथ जोड़कर उनके सामने आ गए—'आज्ञा दीजिए, इस मुर्दे को सिर की तरफ से खाना शुरू करूं या पैर की तरफ से?'

'बीच से', गुरुजी ने आज्ञा दी।

भाई लहिणा ने गुरुजी को प्रणाम किया और मुर्दे की तरफ बढ़े। गुरुजी के दोनों पुत्र और बचे हुए शिष्य बड़े भय और अचंभे से उन्हें देख रहे थे। लहिणाजी ने मुर्दे के ऊपर से चादर हटाई तो सभी का आश्चर्य से मुंह खुल गया। वहां मुर्दा नहीं था। वहां तो स्वादिष्ट प्रसाद रखा हुआ था।

लहिणाजी प्रसाद का थाल उठाकर गुरुजी के पास ले आए और बोले—'गुरुजी, पहले आप प्रसाद ग्रहण करें, फिर मैं खाऊंगा।'

गुरुजी लहिणा की भक्ति देखकर बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा—'तुम्हें यह पवित्र प्रसाद इसलिए मिला है क्योंकि दूसरों के साथ बांटकर खाना जानते हो। जो व्यक्ति ईश्वर की दी हुई सम्पत्ति का केवल अपने ही हित के लिए उपयोग करता है उसके लिए वह सम्पत्ति सड़े हुए मुर्दे के समान है।

तुमने मेरे रहस्य को पा लिया है। तुम मेरा ही रूप हो, मेरे ही अंग में से जन्मे हो—इसलिए आज से तुम अंगद हो।

अपने जीवन का अंतिम समय निकट देखकर गुरु नानक ने लहिणाजी को गुरु पद पर आसीन कर दिया। उनका नया नामकरण कर दिया गया—अंगद, गुरु अंगद।

फिर वह क्षण भी आ गया जब गुरुजी की आत्मा अपने विशाल स्वरूप में लीन होने के लिए व्याकुल हो उठी। सारी संगत ने 'कीर्तन सोहिला' नामक वाणी का पाठ करना शुरू कर दिया। संगत पाठ करती रही और गुरु नानक समाधि में लीन हो गए।

उनकी ज्योति परमेश्वर की ज्योति में विलीन हो गई, पर उनके उपदेशों की ज्योति आज भी जगमगा रही है।

सिद्धान्त पक्ष

लगभग 500 वर्ष पूर्व गुरु नानक ने कहा था—परमेश्वर का नाम इस समुद्र रूपी संसार में डूबते हुए लोगों के लिए जहाज के समान है। जो इस जहाज का सहारा पा जाता है, वह सहज ही इस संसार सागर से पार उतर जाता है।

परन्तु गुरु नानक की कल्पना का 'नाम' मनुष्य को संसार के काम-धन्धों से दूर नहीं करता। ईश्वर के नाम को ग्रहण करने और इसे सदैव याद रखने का अर्थ यह नहीं है कि मनुष्य सांसारिक दायित्वों को भूलकर, संसार से विरक्त होकर वहीं निर्जन में धूनी रमा ले। उन्होंने कर्म करते हुए सामाजिक दायित्वों का पालन करते हुए 'नाम युक्त' जीवन व्यतीत करने का उपदेश दिया था। इसलिए गुरु नानक की वाणी का रचना-पक्ष दो स्थितियों को समानान्तर ढंग से हमारे सामने रखता है। एक स्थिति है संसार और सांसारिकता की जिसमें धन-सम्पत्ति है, पत्नी और पुत्र है, लोभ, मोह, क्रोध और अहंकार आदि मानसिक प्रवृत्तियां हैं। इस पक्ष का एक सामूहिक नाम है—माया। दूसरी स्थिति परमात्मा की है—जिसमें सांसारिकता से छूटने, उससे उवरने, उससे मुक्त होने और उस परम सत्ता से जुड़ने का बारम्बार आग्रह है। इस पक्ष को नाम कहा गया है। गुरु नानक जिस नाम रूपी जहाज पर चढ़कर पार उतरने का आग्रह अपनी वाणी में करते हैं, वह नाम हमें संसार छोड़ने को नहीं कहता, बल्कि सांसारिकता से मुक्त होने, उससे उबरने का आग्रह करता है।

पांच शताब्दियों से अधिक का समय व्यतीत हो चुका है, जब गुरु नानक का जन्म हुआ था। धार्मिक वाद-विवाद और कर्मकाड़ों से भरे युग में सीधी, सरल और सर्वग्राही जीवन-पद्धति को स्वीकार करने का आदर्श लोगों के सामने रखा। ईश्वर प्रेम का उनका सरल आदर्श था—रे मन ईश्वर से ऐसी प्रीति करो जैसी जल से कमल की होती है। जल की लहरों के धक्के खाकर भी वह जल में विकसित होता है। रे मन हरि से ऐसी प्रीति

करो जैसी मछली की नीर से होती है। मछली जल के बिना एक घड़ी भी जीवित नहीं रह पाती। रे मन हरि से ऐसी प्रीति करो जैसी चातक बादल से करता है। भरे हुए सरोवरों और हरे-भरे स्थलों की अपेक्षा वह बादल से एक बूंद की आशा करता है, रे मन हरि से ऐसी प्रीति करो जैसी जल और दूध में होती है। औटाए जाने पर जल स्वयं खपता है, पर दूध को नहीं खपने देता।

गुरु नानक के ही शब्दों में–

रे मन, ऐसी हरि सिउं प्रीति करि जैसी जल कमलेहि।
लहरी नालि पछाड़ीऐ भी विगसे असनेहि।
रे मन, ऐसी हरि सिउं प्रीति करि जैसी मछुली नीर।
बिनु जल घड़ी न जीवई प्रभु जाणै अभ पीर।।
रे मन, ऐसी हरि सिउं प्रीति करि जैसी चात्रिक मेह।
सर भरि थल हरी आवले इक बूंद न पवई केह।
रे मन, ऐसी हरि सिउं प्रीति करि जैसी जल दुग्ध होइ।
आवट्टणु आपै खपै दुध कउ खपणि न देह।।

मनुष्य और 'नाम' के सम्बन्ध के बीच ऐसी कौन-सी शक्ति है जो बाधक बनकर मध्य में खड़ी है। गुरु नानक कहते हैं, इस सम्बन्ध की सबसे बड़ी बाधा अहंकार है। अहंकार को गुरुवाणी में अनेक स्थानों पर 'हउमै' नाम से पुकारा गया है। जहां 'हउमै' है वहां सत्य की पहचान नहीं हो सकती। 'नाम' सत्य की पहचान का सबसे महत्वपूर्ण साधन है, परन्तु हउमै से उसका विरोध है, दोनों एक साथ नहीं रह सकते–

हउमै नावै नालि विरोध है
दुई न बसहि इक ठाइ।

परमात्मा हमारे ही अंदर है, परन्तु वह दिखाई नहीं देता क्योंकि 'हउमै' का परदा बीच में पड़ा हुआ है। हउमै के कारण ही माया-मोह के वशीभूत हो सारा जगत अज्ञान की निद्रा में सो रहा है। इस भ्रम की निवृति कैसे हो। परमात्मा और जीव एक ही साथ एक ही घर में रहते हैं, परन्तु दोनों न परस्पर मिलते हैं न बात करते हैं। एक वस्तु 'नाम' के बिना पांचों ज्ञानेन्द्रियां दुःखी हैं और वह वस्तु अगोचर स्थान में है–

अंतरि अलखु न लखिआ जाई विचि हउमै परदा पाई।
माया मोह सब जग सोया इह भरम कहहु किउ जाई।।
एका संगति इकतु गृह बसते मिलि बात न करते भाई।
एक बसतु विनु पंच दुहेले ओह बसतु अगोचर ठाई।।

इसीलिए गुरु नानक कहते हैं–अहंकार बहुत बड़ा रोग है, परन्तु उसकी दवा भी

इसी में है—

हउमै दीरघु रोग है
दारू भी इस माहि।

धन-संपत्ति और रूप-यौवन सम्बन्धी अहंकार की चर्चा करते हुए गुरुवाणी में कहा गया है कि राज-पाट गृह-शोभा, रूप-जवानी, धन-दौलत, हाथी-घोड़े आदि सबकी प्राप्ति का अभिमान यहीं रह जाएगा—

राज मिलक जोवन गृह सोभा रूपवंत जोआनी।
वहुत दरब हसती अरू घोड़े लाख-लाख बैआनी।
आगै दरगहि कामि ने आवै छोड़ि चले अभिमानी।

हउमै या अहंकार से बचने का उपाय क्या है? गुरुवाणी कहती है कि अहंकार को दूर करने और सच को पहचानने के लिए पहली आवश्यकता है 'सदगुरु' की प्राप्ति—

नानक सतिगुरि मिलीऐ हउमै गई,
ता सच वसिआ मन आइ।
सच कमावै सचि रहे,
सचे सेवि समाइ।।

सद्गुरु हमें 'शब्द' का ज्ञान देता है। इस शब्द के ज्ञान के बिना न तो भ्रम नष्ट होता है, न व्यक्ति के मन में से अहंकार दूर होता है—

बिनु सबदे भरम न चुकई।
न विचहु हउमै जाइ।।

जीव और ब्रह्म की अभेदता के सिद्धान्त को गुरुवाणी में पूरी तरह स्वीकार किया गया है। जैसे जल की तरंग जल से निकलकर जल में ही समा जाती है, वैसे ही जीव भी परब्रह्म से उपजा है और उसी में समा जाता है—

हरि हरिजन दुई एक है बिब विचार कछु नाहि।
जलते उपजे तरंग जिउं जल ही बिखै समाहि।।

गुरु नानक कहते हैं—सभी प्राणियों में एक परमात्मा की ज्योति ही व्याप्त है। उसी के प्रकाश से सब कुछ प्रकाशित हो रहा है—

सभ महि जोति जोति है सोई।

तिसदै चानणि सभ महि चानणु होई।।

इसलिए उस ज्योति को किसी भी नाम से पुकारा जा सकता है, उसे किसी भी धर्म या धर्म पुस्तक के माध्यम से पाया जा सकता है, उसके लिए कोई भी उपासना पद्धति अपनाई जा सकती है। शर्त परमात्मा के हुक्म को पहचानने की है। गुरु नानक के पांचवें रूप गुरु अर्जुन के शब्दों में–

कोई बोले राम राम कोई खुदाए,
कोई सेवै गोसइयां कोई अलाए।
कारण करण करीम कृपा धार रहीम,
कोई नावे तीरथ कोई हज जाए,
कोई करे पूजा कोई सिर नवाए।।
कोई पढ़े वेद कोई कतेब।
कोई ओढ़े नील, कोई सुपेद,
कहु नानक जिन हुक्म पछाता।
प्रभु साहब का तिनि भेदु जाता।।

गुरु नानक नाम की महत्ता पर बल देते हैं, परन्तु वह नाम किसी व्यक्ति की मात्र अपनी ही चिंता नहीं है। उसका समाज के जीवन से गहरा सरोकार है। इसलिए गुरु नानक कहते हैं नामाराधना अकेले मत करो संगत के मध्य रहकर करो। संगत के बिना व्यक्ति का कल्याण नहीं होता–

मेरे माधो जी,
सत संगति मिले सि तरिआ।
गुरु प्रसादि परम पद पाया,
सूके कासट हरिया।

सामाजिक बोध और सामाजिक सरोकार का दूसरा महत्वपूर्ण पहलू सेवा है। गुरु नानक कहते हैं कि जो व्यक्ति दुनिया में सेवा अर्जित करते हैं, ईश्वर के द्वार पर उसी को सम्मानित स्थान प्राप्त होता है–

विचि दुनिया सेव कमाईऐ।
ता दरगह बैसणु पाईऐ।।

नाम की उपलब्धि और उससे प्राप्त जीवन की सार्थकता के लिए गुरु नानक ने कर्मठ और उद्यमशील जीवन पर बहुत बल दिया। उन्होंने अपनी एक रचना में बड़े स्पष्ट शव्दों में कहा है कि जो व्यक्ति स्वयं परिश्रम करके कुछ धन अर्जित करता है और फिर उसमें से धार्मिक सामाजिक कार्यों के लिए देता है, वही सही मार्ग हो पहचानता है–

घाल खाइ किछु हत्थहु देइ।
नानक राह पछाणे सेइ।।

गुरु नानक की वाणी का सम्पूर्ण आग्रह 'सच' की पहचान पर है, परन्तु जब चारों ओर झूठ का प्रसार हो और झूठ को ही सच बनाकर पेश किया जा रहा हो, उस समय सच की पहचान करने वाला ग्राहक विरला ही होगा। गुरु के शब्दों की सहायता से ही व्यक्ति सच की पहचान कर सकता है–

साचे का गाहक विरला को जाणु।
गुरु के सवद आप पछाणु।

परन्तु हृदय को सच्चाई के बिना सच कैसे प्राप्त होगा। इसके लिए शरीर से झूठ की मैल उतारनी पड़ेगी–

सच ता पर जाणीऐ जा रिदे सचा होइ।
कूड़ की मलु उतरे तनु करे हछा होइ।।
सच सभना हाइ दारू पाप काढ़े धोइ।
नानक वखाणै वेनती जिन सच पले होइ।।

इसके साथ ही गुरु नानक यह भी कहते हैं कि सच मात्र एक अवधारणा ही नहीं है, बल्कि उसे जीवन में चरितार्थ भी होना चाहिए। सच-सच पुकारने या कहने से जीवन में सच नहीं आता। वह आता है सच को नित्य प्रति के जीवन में उतारने से, उसे अपने आचरण में ढालने से। इसलिए गुरु नानक ने कहा था–संसार में सब कुछ सच से नीचे है, परन्तु सच्चा आचरण सच से भी ऊपर है–

सचहु औरे सभु को
ऊपरि सच आचार।

आधुनिक चिंतन और गुरु नानक

किसी भी महापुरुष के संदेश की सार्थकता मुख्य रूप से दो बातों पर निर्भर करती है—एक, उसका संदेश कितना सार्वजनीन, सार्वदेशिक है, दूसरे शताब्दियों के अंतराल के बावजूद वह अपनी कितनी संगति और उपयोगिता बनाए रख सकता है। इस पृष्ठभूमि में गुरु नानक देव का संदेश एक ओर सार्वजनीन और सार्वदेशिक है, दूसरी ओर लगभग पांच शताब्दियों के अंतराल के बाद भी अत्यन्त संगत, उपयोगी और सार्थक है। कई बार तो ऐसा लगता है कि आधुनिक परिवेश में गुरु नानकदेव के संदेश की संगति और सार्थकता पहले से कहीं अधिक मुखरित दिखायी देती है।

आधुनिक चिंतन विचार और तर्क पर आधारित चिंतन है। कोई अवधारणा या विचार केवल इसलिए ही स्वीकार्य या मान्य नहीं है कि वह बहुत पुरानी है और सदियों की लम्बी परम्परा द्वारा वह पोषित है। आधुनिक युग का वैज्ञानिक दृष्टिकोण चीजों को ज्ञान की कसौटी पर परखना सिखाता है। गुरु नानकदेव ने सदा इस बात पर आग्रह किया था कि किसी बात को केवल इसलिए ही न स्वीकार कर लो, क्योंकि बहुत समय से लोग उसे स्वीकार करते चले आ रहे हैं। उन्होंने प्रत्येक मान्यता को तर्क और ज्ञान की कसौटी पर कसने का आग्रह किया। उनके जीवन से सम्बन्धित अनेक दृष्टान्त और साखियां इस बात की पुष्टि करती हैं। जब उनका यज्ञोपवीत संस्कार होने लगा, जब हरिद्वार में उन्होंने गंगा में खड़े हुए लोगों को सूर्य की ओर जल देते देखा, जब गया में पण्डों ने उनसे पिंडदान करने को कहा और जब मक्का शरीफ में मौलवियों ने उनसे यह कहा है कि वे खुदा के घर की ओर पैर करके न सोयें—इन सभी प्रसंगों में उन्होंने तर्क और विचार को आधार बनाकर अन्धविश्वास और संगतिहीन मान्यताओं और अवधारणाओं का खंडन किया और सत्य को पहचानने और उसे ग्रहण करने की प्रेरणा दी। अपनी एक रचना में उन्होंने एक स्थान पर कहा है—

सुण मुंधे हरणाखीए गूढ़ा वैण अपारि।
पहिला वसतु पछाणकै तक कीजै वापारू।

(हे आत्मारूपी हरिणाक्षी मुग्धे, मैं तुमसे एक गूढ़ी बात कहता हूं... पहले वस्तु को तुम अच्छी तरह पहचान लो, फिर उसका व्यापार करो, पहले तथ्य को अच्छी तरह समझ लो, फिर उसका अनुगमन करो।)

हमारा आधुनिक परिवेश मानवीय स्वतन्त्रता, एकता, बंधुता और समानता का समर्थक है। गुरु नानक के संदेश में इन मूल्यों का भरपूर प्रतिपादन है। वे बार-बार व्यक्ति को रूढ़ियों, अन्धविश्वासों, संकीर्णताओं, पाखण्डों और अन्यायी शासकों से मुक्ति का संदेश देते हैं। पाखंडों से भरे एक सरकारी कर्मचारी को सुनाते हुए उन्होंने कहा था—तुम गऊ ब्राह्मण पर कर लगाते हो और गोबर का सहारा लेकर तर जाना चाहते हो। धोती, तिलक और माला धारण करते हो और धान मलेच्छों का खाते हो। घर के अन्दर पूजा करते हो और बाहर शासकों को प्रसन्न करने के लिए कुरान पढ़ते हो। यह सब पाखंड छोड़ क्यों नहीं देते—

गऊ बिराहमण कउ करू लावहु गोबरि तरण न जाई।
धोती टिका तै जपमाली धानु मलेछां खाई।
अन्तर पूजा पड़हि कतेबा संजमु तरका भाई।
छोड़िले पखंडा। नाम लइए जाहि तरंदा।।

गुरु नानकदेव के संदेश का मुख्य बिंदु मानवीय बन्धुता, एकता और समता के भाव का प्रतिपादन रहा है—'एक पिता एकस के हम बारक' का सिद्धान्त उनकी मूल भावना है। हम सबका पिता 'परमेश्वर' एक है। हम सब उसी की संतान हैं, इसलिए हम सब भाई-भाई हैं। इसीलिए गुरु नानकदेव ने जात-पांत, ऊंच-नीच और धनी-निर्धन के विभेद का कड़ा विरोध किया। उन्होंने कहा कि मनुष्य के अंदर की ज्योति को पहचानो, जाति को क्यों पूछते हो, क्योंकि आगे, मरणोपरान्त जहां तुम्हारे सम्बन्ध में अंतिम निर्णय होगा, तुमसे कोई यह नहीं पूछेगा कि तुम्हारी जाति क्या है—

जाणु जोति न पूछहु जाती आगे जाति न हे।

गुरु नानकदेव ने सभी को समान समझने, सभी में एक ईश्वरीय ज्योति के विद्यमान होने को सबसे बड़ी योग साधना माना। उन्होंने कहा—योग कंठा धारण करने में, हाथ में डंडा ले लेने में, शरीर पर भस्म रमा लेने में, कानों में मुद्रा पहन लेने, मूड़ मुड़वाने या शृंगी बजाने में नहीं है। वास्तविक योग संसार में रहते हुए भी सांसारिक बुराइयों से दूर रहने में है। वास्तविक योगी तो वह है जो सभी को समान समझता है, सभी को एक दृष्टि से देखता है—

जोगु न खिंथा जोग न डंडे जोग न भसम चढ़ाइऐ।
जोग न मुन्दी मूंडि मुडाइऐ जोगु न सिंगी वाइऐ।
अंजन माहि निरंजनि रहिऐ जोगु जुगति इव पाइऐ।
गली जोगु न होइ।
एक दृसटि करि समसरि जाणै जोगी कहिऐ सोई।

गुरु नानक ने इस देश के पतन के कारणों का सम्यक विश्लेषण किया। उन्होंने कहा सच बात यह है कि कोई भी देश अपनी अच्छाइयों को खो देने पर ही पतित होता है। मानो ईश्वर स्वयं जिसे नीचे गिराना चाहता है, पहले उसकी सारी अच्छाइयों को उससे छीन लेता है–

जिस नो आपि खुआए करता।
खुस लए चंगिआई।।

परन्तु इस देश की अच्छाइयों को, उसके गुणों को, उसकी एकता को ईश्वर ने क्यों छील लिया? उसे पीड़ित और परतन्त्र होने के लिए क्यों छोड़ दिया? कारण स्पष्ट है। हमारे देश में एक ऐसी समाज व्यवस्था विकसित हो गयी जिसमें कुछ लोग ऊंचे समझ लिए गये और असंख्य लोग नीचाई की उस सीमा तक ले जाए गये जहां उनका जीवन अपमान, घृणा, उपेक्षा, ताड़ना और हीनता की सतत् करुण कहानी भर बनकर रह गया। गुरु नानक देव ने कहा–ईश्वर तुमसे रुष्ट है, इसलिए उसने तुम्हारी सारी अच्छाइयां छीनकर तुम्हें इस स्थिति तक पहुंचा दिया है। उसकी कृपा दृष्टि चाहते हैं तो सबसे पहले इन नीचों को संभालो, इन्हें गले लगाओ, इन्हें ऊपर उठाओ–

जित्थै नीच संभालियन
तित्थै नदरि तेरी बख्शीस।

साथ ही गुरु नानकदेव ने एक घोषणा की, मानो भावी भारत के समतामूलक समाज का वह घोषणा पत्र था–नीचों में भी जो नीची जाति के हैं, उनमें भी जो नीची जाति के हैं, उनमें भी जो नीचे हैं, मैं सदैव उनके साथ हूं। अपने आप को दूसरों से बड़ा समझने वालों से मेरा कोई सम्पर्क नहीं है–

नीचां अंदरि नीच जाति नीची हूं अति नीच।
नानक तिनके संगि साथि वडिआं सू किआ रीस।

गुरु नानक ने अपने समय के समाज को जो सम्मानहीन, लज्जाहीन होकर जीवन व्यतीत कर रहा था, झकझोरकर कहा–अपना सम्मान खोकर जीना हराम है। उस जीवन को जीने के लिए कुछ भी खाया-पीया जाता है, वह सब हराम है–

जे जीवें पति लत्थी जाइ,
सभु हरामु जेता किछु खाइ।

स्त्रियों के संबंध में गुरु नानकदेव ने एक प्रगतिशील और आधुनिक दृष्टिकोण की प्रतिष्ठा की। वह युग नारी निंदकों का युग था। बड़े-बड़े संत-महात्मा नारी को मानवीय प्रगति की सबसे बड़ी बाधा समझते थे। गुरु नानकदेव ने ऐसे लोगों से पूछा—नारी से मनुष्य जन्म लेता है, उसी से उसका विवाह होता है। नारी के द्वारा ही अन्य लोगों से सम्बन्ध जुड़ता है, उसी के द्वारा संसार का क्रम चलता है। जब एक स्त्री मर जाती है तो दूसरी की खोज की जाती है, संसार के सभी बंधन उसी के माध्यम से उत्पन्न होते हैं। ऐसी नारी को बुरा क्यों कहा जाए जिससे बड़े-बड़े राजा जन्म लेते हैं—

भंडि जंमीऐ भंडि निमीऐ भंडि मंगणु वीआहु।
भंडहु होवै दोसती भंडहु चलै राहु।
भंडु मूआ भंडु भालीऐ भंडि होवै बंधानु।
सो किउ मंदा आखीऐ जितु जंमहि राजान।

गुरु नानकदेव अपने समय के अत्यन्त जागरूक जननायक थे। जननायक अपने लोगों में आत्मबोध का भाव उत्पन्न करता है, उन्हें अपनी समस्याओं के प्रति सचेत करता है, उनमें समस्याओं से जूझने की शक्ति पैदा करता है। वह अन्याय का विरोध करता है और शोषक अन्यायी शक्तियों का मुखौटा उतारता है। गुरु नानकदेव ने अपने समय के शासकों और राज-कर्मचारियों के स्वरूप और दुर्नीति का चित्रण करते हुए एक स्थान पर लिखा था—आज के राजा व्याघ्र के समान हिंसक हैं, उनके कर्मचारी कुत्तों के समान लालची हैं जो शान्त जनता को बिना किसी कारण पीड़ित करते रहते हैं उनके नौकर अपने पैरों के नाखूनों से लोगों को जख्मी करते रहते हैं और उनका लहू कुत्तों की तरह चाट जाते हैं। जहां इनके कर्मों की परख की जाएगी, वहां इनकी नाक काट ली जाएगी।

राजे सींह मुकदम कुत्ते।
जाइ जगाइन बैठे सुत्ते।।
चाकर नहदा पाइन्हि घाउ।
रतु पितु कुतिहो चट जाहु।।
जिथे जींआ होसी सार।
नकी वडी लाइत वार।।

उस समय के राजाओं, सामन्तों, राज-कर्मचारियों द्वारा निरीह जनता पर किये जाने वाले अत्याचारों पर इतनी तीव्र प्रतिक्रया व्यक्त करते हुए जब वे इस स्थिति से अधिक द्रवित हो उठते थे तो अपना असंतोष व्यक्त करने के लिए उसके दरबार में पहुंच जाते थे जिसके प्रति रोष व्यक्त करने में सभी अपने आपको असमर्थ समझते हैं। बाबर ने हिन्दुस्तान पर आक्रमण किया। चारों ओर की भयंकर मारकाट में देश की जनता पीड़ित होने लगी। गुरु नानक के ही शब्दों में—जिन स्त्रियों के सिर में सुन्दर पट्टियां शोभित होती थीं, जिनकी मांग में सिंदूर भरा हुआ था, अत्याचारियों ने उनके केश काट डाले और उनको धूल में इस तरह घसीटा कि उनके गले तक धूल भर गयी। जो महलों में निवास

करती थीं, अब उन्हें बाहर बैठने की जगह भी नहीं मिलती। विवाहित स्त्रियां जो अपने पतियों के साथ सुशोभित थीं, जो पालकियों में बैठकर आई थीं, उन पर लोग जल न्योछावर करते थे, बहुमूल्य पदार्थों के जड़े पंखे आसपास झूलते थे...सेजों पर रमण करती थीं, अब उनके गले की मोतियों की माला टूट गयी है और उसके स्थान पर अत्याचारियों ने रस्सियां डाल दी हैं। धन और यौवन उनके बैरी हो गये हैं। सिपाहियों को आज्ञा मिली और वे उनकी इज्जत लूटकर चलते बने—

जिन सिरि सोहनि पट्टीआं मांगी पाइ संधूर।
ते सिर काती मुनीअन्हि गल विचि आवै धूड़।।
महलां अन्दरि होंदिआं हुणि बहणि न मिलन्ह हदूरि।।
धनु जोबनु दुइ बैरी होए जिन्ही रखे रंगु लाइ।
दूता नू फरमाइआ लै चलै पति गवाइ।।

जब चारों ओर ऐसी करुणाजनक स्थिति उत्पन्न हो गयी तो गुरु नानक ने परमात्मा को संबोधित करते हुए कहा—हे परमात्मा, बाबर ने खुरासान पर आक्रमण किया, तुमने उसकी रक्षा कर ली, परन्तु हिन्दुस्तान को उसके आक्रमण से आतंकित कर दिया। तुम स्वयं इस स्थिति को उत्पन्न करते हो, परन्तु अपने को दोष न देने के लिए तुमने मुगलों को यमदूत बनाकर इस देश पर आक्रमण करा दिया। चारों ओर इतनी मार-काट हुई कि लोग त्राहि-त्राहि कर रहे हैं और तुम्हारे मन में इन निरीह जनों के प्रति जरा भी दर्द नहीं उत्पन्न हो रहा है—

खुरासान खसमाना कीआ हिन्दुस्तान डराइआ।
आपै दोस न देई करता जमु करि मुगल चढ़ाइआ।
एती मार पई कुरलाणै तैं की दरदु न आइआ।।

अपने देश पर विदेशियों द्वारा हुए अत्याचारों से विक्षुब्ध होकर ईश्वर के प्रति ऐसी ताड़ना भरी शिकायत गुरु नानकदेव के संदेश को आधुनिक सोच और परिवेश के एकदम निकट ले आती है। इसी प्रसंग में गुरु नानकदेव उन लोगों को भी क्षमा नहीं करते जिनकी चरित्रहीनता, अकर्मण्यता और ऐशपरस्ती के कारण इस देश की ऐसी दुर्दशा हुई—

रतन बिगाड़ि विगोए कुत्ती
मोइआं सार न काई—

इन कुत्तों ने रत्न के समान इस सुन्दर देश को बिगाड़कर नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। इनके मरने के बाद, इनकी कोई खोज-खबर नहीं लेगा।

आधुनिक परिवेश में गुरु नानकदेव का संदेश उतना ही प्रभावशाली और सार्थक है जितना आज से पांच शताब्दी पूर्व था।

गुरु नानक और सामाजिक न्याय

क्या धर्म का अर्थ व्यक्ति के परमात्मा, परलोक, मृत्यु के बाद के जीवन की चिंताओं से जोड़कर ऐसी स्थिति के प्रति प्रयत्नशील बनाना है, जिसे आध्यात्मिक संसार में मोक्ष कहा जाता है अथवा उसमें इस दृश्यमान, इहलौकिक कहे जाने वाले संसार के प्रति जागरूक बनकर कर्तव्यपूर्ण, उद्यमशील जीवन जीने और उसमें हो रहे अन्याय और अत्याचार के विरोध में आवाज बुलंद करना भी शामिल है? आमतौर पर धर्म को ऐसी आध्यात्मिक साधनाओं से जुड़ा हुआ माना जाता है जिसका इहलौकिक जीवन के प्रयत्नों, सुखों, दुखों, संघर्षों से कोई सीधा सरोकार नहीं है, यदि है भी तो वह अधिक स्वीकार्य नहीं है, बल्कि प्रायः तिरस्कार योग्य है।

इस देश में धर्म से जुड़ी हुई जिन चिंताओं का विकास हुआ उसमें व्यक्ति निरन्तर एकाकी बनता चला गया। अपना कल्याण, अपनी मुसीबत, अपना उद्धार उसकी सबसे बड़ी चिंता बन गई। संसार उसके लिए माया का निरर्थक पसारा बन गया, जो उसकी मुक्ति के मार्ग में सबसे बड़ी बाधा है। इस संसार के सभी काम-धंधे उसे व्यर्थ लगने लगे, क्योंकि इसमें कुछ भी स्थिर नहीं है। इस संसार के सभी सम्बन्ध उसे अपने लिए बंधन से दिखाई देने लगे। इससे छुटकारा पाकर भगवान की भक्ति या तप साधना में लीन जीवन ही उसे सार्थक जीवन की सबसे बड़ी पहचान दिखाई देने लगे। इसलिए उसके इहलौकिक जीवन में जो समस्याएं उठीं, जिन अन्यायमूलक व्यवस्थाओं ने जन्म लिया, जो सुख-दुःख आए, उसे उसने भाग्य, ईश्वरेच्छा और धर्म का नाम लेकर आंखें मूंदकर स्वीकार कर लिया।

मध्ययुग का भारतीय जीवन, जिसमें गुरु नानक का जन्म हुआ था, इस प्रकार की जीवन-शैली का पूरी तरह शिकार हो चुका था। एक ओर यहां के लोगों पर मध्य एशिया से आने वाले तुर्क, पठान, मुगल कबीलों के निरन्तर आक्रमण हो रहे थे, दूसरी ओर

चतुर्वर्ण व्यवस्था और उन्हें लागू करने वाली स्मृतियों और संहिताओं ने धर्म और परलोक का नाम लेकर सम्पूर्ण समाज को जात-पांत, ऊंच-नीच, छूत-अछूत की श्रेणियों में बुरी तरह बांटकर असंख्य लोगों को पशुओं से भी बद्तर जीवन जीने के लिए मजबूर कर दिया था।

ऐसी स्थिति में गुरु नानक ने धर्म और आध्यात्मिकता को परलोक मुक्ति, निर्वाण, आवागमन आदि की चिंताओं तक ही सीमित नहीं रखा बल्कि इसे इहलौकिक जीवन के सरोकारों से सीधे-सीधे जोड़, व्यक्ति को उसके एकाकी बोध से निकालकर उसे सामाजिक-बोध का अहसास कराया, उसकी कमियों के लिए उसे प्रताड़ित किया, उसे अन्याय और अत्याचार के विरुद्ध खड़े होने की प्रेरणा दी, उसे उन मूल्यों के प्रति जागरूक किया जो समता, बन्धुआ और स्वतन्त्रता को अपना आधार बनाते हैं और सबसे बड़ी बात उसे इन मूल्यों की रक्षा के लिए प्राण तक न्योछावर करने का आह्वान किया। समय के अंतराल के साथ सिख धर्म और सामाजिक न्याय की लड़ाई एक-दूसरे के पूरक बन गये।

इस देश में सदियों से मनुष्य सामाजिक असमानता और उससे उपजे सामाजिक अन्याय का शिकार रहा है। वर्ण व्यवस्था उसे केवल चार वर्गों में ही नहीं बांटती, उसमें ऊंच-नीच, ग्राह्म-अग्राह्म का भेदभाव भी पैदा करती है। यह व्यवस्था एक वर्ग को 'भूदेवता' बना देती है तो दूसरे वर्ग को अस्पृश्य बनाकर उसे घृणा, उपेक्षा और तिरस्कार के गहरे अंधेरे में ढकेल देती है। इतिहास में ऐसे उदाहरण तो हैं, जब यदा-कदा इस असमानतामूलक व्यवस्था के खिलाफ आवाज उठी, किन्तु यह आवाज कभी बलवती नही हुई, क्योंकि यह संगठित होकर कभी आन्दोलन का रूप नहीं ग्रहण कर सकी। रामायण काल का शूद्र शम्बूक तप साधना करना चाहता है किन्तु शास्त्र एक शूद्र को ऐसा करने की अनुमति नहीं देते। जब वह ऐसा करने का दुस्साहस करता है तो तत्कालीन धर्म-व्यवस्था के आदेशानुसार राम उसकी हत्या कर देते हैं। महाभारत काल में एकलव्य जैसा एक आदिवासी भील जब धनुर्विद्या में क्षत्रिय राजकुमारों की बराबरी करना चाहता है तो द्रोणाचार्य 'गुरु दक्षिण' में उसके दाएं हाथ का अंगूठा मांगकर धनुर्विद्या की दृष्टि से उसे पूरी तरह नाकारा बना देते हैं।

इस असमानतावादी, अन्यायमूलक व्यवस्था के प्रति महाराष्ट्र के नामदेव और वाराणसी के कबीर और रविदास ने जो उक्तियां प्रकट कीं, गुरु ग्रंथ साहब में उन्हें शामिल किया गया है। नामदेव ने अपनी गहरी पीड़ा व्यक्त करते हुए कहा—

हंसत खेलत तेरे देहुरे आया।
भगति करत नामा पकरि उठाया।।
हीनड़ी जाति मेरी जादम राया।
छीपै के जनम काहे को आया।

इन पंक्तियों में छीपा जाति में जन्म लेने वाले व्यक्ति की असीम वेदना उभर आई

है—'हे भगवान मैं तो हंसते-खेलते हुए तेरे द्वार पर आया था, किन्तु धर्म के ठेकेदारों ने मुझे वहां से पकड़कर उठा दिया। इसलिए कि मैं हीन जाति का हूं। यदि मेरे साथ यही व्यवहार होना था तो तुमने मझे छीपा के घर में क्यों जन्म दिया?'

इस असमता और अन्यायमूलक व्यवस्था ने व्यक्ति को सामाजिक स्तर पर नीचा ही नहीं बनाया बल्कि उसमें गहरे तक अपने नीच जाति होने का हीन भाव पैदा कर दिया।

अपनी जाति-जन्म के हीन होने की अनुभूति संत रविदास में भी बहुत गहरी थी—

जाति भी ओछी जन्म भी ओछो, ओछो करम हमारा।
हम सरनागति राम राई को, कहे 'रैदास' चमारा।

इस आरोपित हीनता भाव के प्रति उस युग में कुछ लोगों में असंतोष भी उभरा। इस पीड़ा को संत कबीर ने भी भोगा था। उन्होंने ब्राह्मण को ललकारते हुए पूछा था—

तुम कत बामन हम कत सूद
हम कत लोहू तुम कत दूध

जन्माधारित वर्ण-व्यवस्था की खिल्ली उड़ाते हुए उन्होंने जिज्ञासा व्यक्त की थी—

जै बामन तू बामनी जाया
आन बाट काहे नहिं आया

अन्याय और असमानतामूलक व्यवस्था के प्रति हताश और विरोध प्रकट करने वाले इन प्रयासों को संगठित आन्दोलन का रूप देने का काम सिख आंदोलन ने किया। गुरु नानक का जन्म उच्च समझे जाने वाले वर्ण में हुआ था, किन्तु उन्होंने अपने आप को पूरी तरह से पीड़ित, दलित और तिरस्कृत वर्ग से जोड़ लिया। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा—

नीचां अंदरि नीच जाति नीची हू अति नीच
नानक तिनके संग साथि वडिआं सू किआ रीस

उन्होंने यह भी कहा कि जहां नीच समझे जाने वाले लोगों को संभाला जाता है, वहीं ईश्वर की कृपा दृष्टि पड़ती है—जित्थै नीचु संभालियन तित्थे नदरि तेरी बखसीस।

अपने समय के सामाजिक अन्याय के विरुद्ध यह एक प्रबल आवाज थी किन्तु यह आवाज केवल गुरु नानक तक ही सीमित नहीं रही। यह निरन्तर एक आन्दोलन का रूप धारण करती चली गई। सिख गुरुओं ने सामाजिक न्याय की लड़ाई को केवल वचनों और उपदेशों तक ही सीमित नहीं रखा बल्कि उसे अपने जीवन में व्यावहारिक रूप से ढालकर दिखाया। गुरु नानक ने अपनी यात्राओं में ऐसे लोगों का आथित्य स्वीकार किया

जिन्हें छोटा समझा जाता था। ऐसे में कई बार टकराव की स्थिति भी आई। उन्होंने उस टकराव को झेला और हमेशा निर्बल पक्ष के साथ खड़े हुए। गुरु नानक के जीवन से सम्बन्धित भाई लालो और मलिक भागो की कथा इस बात की पुष्टि करती है।

चौथे गुरु, गुरु रामदास द्वारा अमृतसर की स्थापना और पांचवें गुरु अर्जुन देव द्वारा अमृत सरोवर में हरिमंदिर का निर्माण तथा आदि ग्रंथ का संपादन धार्मिक सामाजिक क्षेत्र में लाये जा रहे परिवर्तनों की दृष्टि से उठाए गये महत्वपूर्ण कदम थे। अमृतसर को गुरु रामदास ने केवल एक नगर के रूप में ही परिकल्पित नहीं किया था, वे इसे इस नये आन्दोलन का धार्मिक-सामाजिक केन्द्र भी बनाना चाहते थे। इस समय देश में तीर्थ स्थानों की कमी नहीं थी, किन्तु उन पर पूरी तरह पुरोहित व्यवस्था छाई हुई थी। वहां का सम्पूर्ण कार्य-व्यवहार उन्हीं के द्वारा बनाये गये नियमों के अनुसार चलता था। छोटे से छोटा धार्मिक अनुष्ठान इन तीर्थ स्थानों पर कब्जा जमाए पंडे-पुरोहितों की सहायता के बिना पूरा नहीं हो सकता था।

गुरु नानक द्वारा बसाया गया करतारपुर पहले ही एक नया तीर्थ स्थान बन चुका था। गुरु रामदास द्वारा बसाया नगर सभी धर्मों, जातियों, सम्प्रदायों के लिए एक सांझा नगर बनने लगा। गुरु अर्जुन ने हरिमंदिर में चार दरवाजे रखकर इस बात की घोषणा कर दी कि यह मंदिर किसी एक धर्म या जाति तक ही सीमित नहीं है। इसमें किसी के लिए भी प्रवेश वर्जित नहीं है। यहां से मिलने वाले उपदेश ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र सभी के लिए सुलभ हैं।

यही दृष्टि आदि ग्रंथ के संपादन के पीछे भी काम कर रही थी। हिन्दू धर्म ग्रन्थों पर ब्राह्मणों का पूरा अधिकार था। वही उनका अध्ययन करते थे, उनकी व्याख्या करते थे और अपनी व्यवस्था देते थे। मुसलमानों की मस्जिदें और धर्मग्रन्थ केवल मुसलमानों के लिए थे। हिन्दू धर्मशास्त्रों का अध्ययन न शूद्र कर सकते थे, न ही स्त्रियां।

गुरु अर्जुन द्वारा निर्मित मंदिर किसी के लिए भी वर्जित नहीं था। उन्होंने जिस ग्रंथ का संपादन किया वह भी सभी के लिए था। सभी के लिए होने का अर्थ इतना ही नहीं था कि सभी उसका अध्ययन-मनन कर सकते थे। गुरु अर्जुन ने इस ग्रंथ में सभी का सहयोग और सहभाग पैदा किया। इसमें शेख फरीद, और कबीर की वाणी शामिल की गई, नामदेव रविदास और धन्ना की अभिव्यक्तियों को स्थान दिया गया, परमानंद, रामानंद और जयदेव भी इस अभियान में सम्मिलित किये गये। यह एक ऐसा ग्रंथ बना जिसे सभी स्वीकार कर सकते थे, सभी अपना मान सकते थे।

गुरु नानक और उनके परवर्ती गुरुओं ने धार्मिक-सामाजिक स्तर पर न्यायमूलक जीवन-पद्धति का समर्थन तो किया ही, राजनीतिक स्तर पर भी उन्होंनें पहल की। इस देश के लोग अपनी चेतना और स्वाभिमान को खो चुके थे। वे एक ओर तो निरर्थक धार्मिक रूढ़ियों के शिकार थे, दूसरी ओर अपने समय के शासकों को प्रसन्न करने के लिए उनकी भाषा बोलते थे, उनके जैसे वस्त्र पहनते थे, उनका दिया हुआ अन्न ग्रहण

करते थे, उनके जैसा धार्मिक आचरण करने का पाखंड करते थे। ऐसी विसंगति के शिकार एक हिन्दू सरकारी कर्मचारी को फटकारते हुए गुरु नानक ने कहा था–'तुम गऊ ब्राह्मण पर कर लगाते हो और गोबर का सहारा लेकर तर जाना चाहते हो। धोती, तिलक और माला धारण करते हो और धान मलेच्छों का दिया हुआ खाते हो। घर में पूजा करते हो और बाहर अपने शासकों को प्रसन्न करने के लिए कुरान पढ़ते हो। तुम यह सब पाखंड छोड़ क्यों नहीं देते?'

विसंगतियों से भरे हुए ऐसे लोगों पर कटाक्ष करते हुए गुरु नानक ने कहा था–'ये लोग मस्तक पर तिलक लगाते हैं, धोती पहनते हैं परन्तु अपने शासकों की कृपा प्राप्त करने के लिए जनता के साथ कसाई-सा व्यवहार करते हैं। तुर्कों की स्वीकृति पाने के लिए नीले कपड़े पहनते हैं, उसकी सेवा करके रोजी कमाते हैं और घर में पुराण पूजते हैं। अपने चौके में हलाल किया हुआ बकरा पकाते हैं, परन्तु चौके की पवित्रता का ढोंग करते हुए वहां किसी को नहीं आने देते। चौका देकर लकीर तो खींच देते हैं, परन्तु उसमें वे आ बैठते हैं, जो स्वयं बड़े झूठे हैं। उनका शरीर अपवित्र है, वे मलिन कर्म करते हैं, जूठे मन से कुल्ला करते हैं, परन्तु लोगों से कहते हैं हमें मत छुओ, नहीं तो हमारा अन्न भ्रष्ट हो जाएगा।'

मध्ययुगीन भक्ति काव्य का स्वर दीनता, आत्म-निषेध और संसार त्याग की भावना से भरा हुआ है। उसमें अपने परिवेश और समय की विसंगतियों और क्रूरताओं के प्रति कोई गहरी प्रतिक्रिया नहीं व्यक्त की गई है। आम आदमी सोचने लगा था–

कोऊ नृप होइ हमें का हानी

संत अपने आपको राजनीति से दूर रखने में ही अपना महत्व मानते थे। इस दृष्टि से सिख-गुरुओं की अवधारणाएं और प्रतिक्रियाएं अलग ढंग की थीं। अपने समय की शासन-व्यवस्था के प्रति आक्रोश प्रकट करते हुए गुरु नानक ने कहा था–''आजकल के राजा व्याघ्र के समान हिंसक हैं, उनके कर्मचारी कुत्तों के समान लालची हैं। ये लोग जनता को बिना किसी कारण पीड़ित करते हैं। इनके कारिंदे अपने पैरों के नाखूनों से लोगों को जख्मी करते रहते हैं और उनका लहू कुत्तों की तरह चाट जाते हैं। जहां इनके कामों की परख की जाएगी, वहां इनकी नाक काट ली जाएगी।

सुमेरु पर्वत में तप साधना में डूबे हुए सिद्धों को संसार की दशा बतलाते हुए गुरु नानक ने कहा था–'समय छुरी के समान है, शासक वर्ग कसाई बन गया है, धर्म पंख लगाकर उड़ गया है, चारों तरफ झूठ की काली रात छाई हुई है, उसमें सच्चाई का चंद्रमा कहीं दिखाई नहीं देता।'

गुरु नानक ने बाबर के आक्रमण को केवल अपनी आंखों से देखा ही नहीं था, उसे भोगा भी था। मुगल सैनिकों के अत्याचारों को देखकर उनका हृदय कराह उठा था। इस स्थिति का वर्णन करते हुए उन्होंने लिखा था–'जिन स्त्रियों के सिर में सुंदर केश

थे, जिनकी मांग में सिंदूर भरा हुआ था, जालिमों ने उनके केश काट डाले और उनको धूल में इस तरह घसीटा कि उनके गले तक धूल भर गई। जो महलों में निवास करती थीं, अब उन्हें बाहर बैठने की जगह भी नहीं मिलती। विवाहित स्त्रियां जो अपने पतियों के साथ थीं, जो पालकियों में बैठकर आई थीं, बहुमूल्य रत्नों से जड़े पंखे जिनके आसपास झूलते थे, जिन पर लाखों रुपयों की वर्षा होती थी, जो मेवे खाती थीं, सेजों पर रमण करती थीं, अब उनके गले में पड़ी हुई मोतियों की माला टूट गई है। धन और यौवन उनके बैरी हो गए हैं। सिपाही उनकी इज्जत लूटकर चले गए हैं।''

गुरु नानक ने ऐसी करुणाजनक स्थिति से द्रवित होकर परमात्मा से शिकायत की–'हे प्रभु, बाबर के खुरासान को तुम अपना समझते हो और हिन्दुस्तान को डराते हो। तुमने मुगलों को यम बनाकर इस देश में भेज दिया है। चारों ओर लोग त्राहि-त्राहि कर रहे हैं। तुम्हें इन लोगों पर बिल्कुल तरस नहीं आता? हे कर्त्ता, तुम तो सभी प्राणियों के समान रूप से रक्षक होने का दावा करते हो। यदि एक शक्तिशाली दूसरे शक्ति-सम्पन्न शेर कमजोर पशुओं के झुंड पर आक्रमण कर दे तो उनके स्वामी को कुछ तो पुरुषार्थ करना ही चाहिए।'

अपने देश पर विदेशियों द्वारा हुए आक्रमण से विक्षुब्ध होकर ईश्वर के प्रति ऐसी ताड़ना भरी शिकायत सम्पूर्ण भक्ति साहित्य में निश्चय ही अद्वितीय है और अनुपम भी। गुरु नानक ने उन लोगों को क्षमा नहीं किया जिनकी चरित्रहीनता, अकर्मण्यता और ऐशपरस्ती के कारण इस देश की ऐसी दुर्दशा हुई। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा–'इन कुत्तों ने रत्न के समान इस सुंदर देश को बिगाड़कर नष्ट-भ्रष्ट कर दिया है। मरने बाद इनकी कोई खोज-खबर नहीं लेगा।'

परन्तु ऐसा क्यों हुआ? गुरु नानक ने कहा–'यदि ये लोग पहले से चेत जाते तो इन्हें ऐसी सजा क्यों मिलती। यहां के शासक तो रंग-तमाशों में डूबकर अपनी सुरति गंवा बैठे थे। परिणाम यह हुआ कि बाबर की दुहाई चारों ओर फिर गई। मुसलमानों की नमाज का वक्त खत्म हो गया, हिन्दुओं की पूजा जाती रही। चौके के बिना हिन्दू-स्त्रियां अपनी शुचिता किस प्रकार बनाए रखें? जिन्हें कभी राम शब्द भी याद नहीं आया था, अब ये शासक को प्रसन्न करने के लिए खुदा को याद करना चाहते हैं, लेकिन जालिम उन्हें खुदा भी नहीं कहने देते।'

गुरु नानक द्वारा चलाया गया आन्दोलन इस प्रकार की धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक जागरूकता को अपने साथ पूरी तरह जोड़कर आगे बढ़ता है। यह धर्म और न्याय की लड़ाई को किसी विशिष्ट वर्ग तक ही सीमित नहीं रखता, बल्कि उसमें आम आदमी, छोटे आदमी की सक्रिय भागीदारी पैदा करता है। वह लड़ाई सेवा, बन्धुता और बलिदान की भावना को आधार बनाकर ही लड़ी जा सकती थी। इसलिए वह ऊंच-नीच और जात-पांत का भेदभाव समाप्त करके सबको एक पंगत में बैठकर, सबके साथ मिलकर, सबकी सेवा करते हुए भोजन ग्रहण करने का आग्रह करते हैं।

गुरु नानक जानते थे कि यह लड़ाई सरल नहीं है। इस प्रकार का संघर्ष करने वाले व्यक्ति को समाज और शासन दोनों के ही विरोध का सामना करना पड़ता है। उसे डराया जाता है, मृत्यु का भय दिखाया जाता है, उसकी धन-सम्पत्ति नष्ट कर दी जाती है, उसे जेल में डाल दिया जाता है, उसे असह्य कष्ट दिए जाते हैं और उसके प्राण भी ले लिए जाते हैं। गुरु नानक ऐसे संघर्षशील व्यक्ति को संबोधित करते हुए कहते हैं—

जे तऊ प्रम खेलण का चाउ
सिर धर तली गली मेरी आउ।
इत मारग पैर धरीजै
सिर दीजै काणि न कीजै।।

चुनी हुई वाणी

सिरी रागु

1. *मोती त मंदर ऊसरहि रतनी त होहि जड़ाउ।*
कसतूरि कुंगू अगरि चंदनि लीपि आवै चाउ।
मतु देखि भूला बीसरै तेरा चिति न आवै नाउ।। 1।।

हरि बिनु जीऊ जलि बलि जाउ।
मैं आपणा गुरु पूछि देखिआ अवरू नाही थाउ।। 1।। रहाउ।।

धरती त हीरे लाल जड़ती पलधि लाल जड़ाउ।
मोहणी मुखि मणी सोहै करे रंगि पसाउ।।
मतु देखि भूला बीसरै तेरा चिति न आवै नाउ।। 2।।

सिधु होवा सिधि लाई रिधि आखा आउ।
गुपतु परगटु होइ बैसा लोकु राखै भाउ।।
मतु देखि भूला बीसरै तेरा चिति न आवै नाउ।। 3।।

सुलतानु होवा मेलि लसकर तखति राखा पाउ।
हुकमु हासलु करी बैठा नानका सभ वाउ।।
मतु देखि भूला बीसरै तेरा चिति न आवै नाउ।। 4।।

2. *कोटि कोटी मेरी आरजा पवणु पीअणु अपिआउ।*
चंदु सूरजु दुइ गुफै न देखा सुपनै सउण न थाउ।
भी तेरी कीमति ना पवै हउ केवडु आखा नाउ।। 1।।

सारा निरंकारु निज थाइ।
सुणि सुणि आखणु आखणा जे भावै करे तमाइ।। 1।। रहाउ।।

कुसा कुटीआ वार-वार पीसणि पीसा पाइ।
अगी सेती जालीआ भसम सेती रलि जाउ।।
भी तेरी कीमति ना पवै हउ केवडु आखा नाउ।। 2।।

पंखी होइ कै जे भवा सै असमानी जाउ।
नदरी किसै न आवऊ ना किछु पीआ न खाउ।।
भी तेरी कीमति ना पवै हउ केवडु आखा नाउ।। 3।।

नानक कागद लख मणा पडि पडि कीचै भाउ।
मसू तोटि न आवई लेखणि पउणु चलाउ।।
भी तेरी कीमति ना पवै हउ केवडु आखा नाउ।। 4।।

3. लेखै बोलखु बोलणा लेखै खाणा खाउ।
लेखै वाट चलाईआ लेखै सुणि वेखाउ।
लेखै साह लवाई हि पडे कि पूछण जाउ।। 1।।

बाबा माइआ रचना धोहु।
अंधै नामु विसारिआ ना तिसु एह न ओहु।। 1।। रहाउ।।

जीवण मरणा जाइ कै एथै खाजै कालि।
जिथै बहि समझवाइऐ तिथै कोइ न चलिओ नालि।।
रोवणवाले जेतड़े सभि बंनहि पंड परालि।। 2।।

सभु को आखै बहुतु बहुतु घटि न आखै कोइ।
कीमति किनै न पाईआ कहणि न वडा होइ।।
साचा साहबु एक तू होरि जीआ केते लोअ।। 3।।

नीचा अंदरि नीच जाति नीची हू अति नीच।
नानकु तिनकै संगि साथि वडिआं सू किआ रीस।।
जिथै नीच सभालीअनि तिथै नदरि तेरी बखसीस।। 4।।

4. लबु कुता कूडू चूहडा ठगि खाधा मुरदारू।
पर निंदा पर मलु मुखि सुधी अगनि क्रोध चंडालु।।
रस कस आपु सलाहण एक करम मेरे करतार।। 1।।

बाबा बोलीऐ पति होइ।
ऊतम से दरि ऊतम कहिअहि नीच करम बहि रोइ।।1।। रहाउ।।

रसु सुइना रसु रूपा कामणि रसु परमल की वासु।
रसु घोड़े रसु सेजा मंदर रसु मीठा रसु मासु।।
एते रसु सरीर के कै घटि नाम निवासु।।2।।

जितु बोलिए पति पाईऐ सो बोलिआ परवाणु।
फिका बोलि विगुचणा सुणि मूरख मन अजाण।।
जो तिसु भावहि से भले होरि के कहण वखाण।।3।।

तिन मति तिन पति तिन धनु
पलै जिन हिरदै रहिआ समाइ।
तिनका किआ सालाहणा अवर सुआलिउ काइ।।
नानक नदरी बाहरे राचहि दानि न नाइ।।4।।

5. अमुल गलोला कूड का दिता देवणहारि।
मती मरणु विसारिआ खुसी कीती दिन चारि।
सचु मिलिआ तिन सोफीआ राखण कउ दरवारु।।1।।

नानक साचे कउ सचु जाणु।
जितु सेविऐ सुखु पाईऐ तेरी दरगह चलै माणु।।1।। रहाउ।।

सचु सरा गुड बाहरा जिसु विचि सचा नाउ।
सुणहि बखाणहि जेतडे हउ तिन बलिहारै जाउ।।
ता मनु खीवा जाणीऐ जा महली पाए थाउ।।2।।

नाउ नीरू चंगिआईआ सतु परमलु तनि वासु।
ता मुख होवै उजला लख दाती इक दाति।।
दूख तिसै पहि आखीअहि सूख जिसै ही पासि।।3।।

सो किउ मनहु विसारीऐ जा के जीअ पराण।
तिसु विणु सभु अपवितु है जेता पहिनणु खाणु।।
होरि गलां सभि कूडिआ तुधु भावै परवाणु।।4।।

6. जालि मोहु घसि मसु करि मति कागदु करि सारु।
भांउ कलम करि चितु लेखारी गुर पुछि लिखु बीचारु।

लिखु नामु सालाह लिखु लिखु अंत न पारावारु।।1।।
बाबा एहु लेखा लिखि जाणु।
जिथै लेखा मंगीऐ तिथै होइ सचा नीसाणु।।1।। रहाउ।।

जिथै मिलहि वडिआईआ सद खुसीआ सद चाउ।
तिन मुखि टिके निकलहि जिन मनि सचा नाउ।।
करमि मिलै ता पाईऐ नाही गली वाउ दुआउ।।2।।

इकि आवहि इकि जावहि उठि रखीअहि नाव सलार।
इकि उपाए मंगते इकना वडे दरवार।।
अगै गइआ जाणिऐ विणु नावै वेकार।।3।।

मैं तेरै डरु अगला खपि खपि छिजै देह।
नाव जिना सुलतान खान होदे दिठे खेह।।
नानक उठी चलिआ सभि कूडे तुटे नेह।।4।।

7. सभि रस मिठे मंनिऐ सुणिऐ सालोणे।
खट तुरसी मुखि बोलणा मारणा नाद कीए।
छतीह अंमृत भाउ एकु जा कउ नदरि करेइ।।1।।

बाबा होरु खाणा खुसी खुआरु।
जितु खाधै तनु पीडीऐ मन महि चलहि विकार।।1।। रहाउ।।

रता पैनणु मनु रता सुपेदी सतु दानु।
नीली सिआही कदा करणी पहिरणु पैर धिआनु।।
कमरबंदु संतोख का धुन जोबनु तेरा नामु।।2।।

बाबा होरु पैनणु खुसी खुआरु।
जितु पैधै तनु पीडीऐ मन महि चलहि विकार।।1।। रहाउ।।

घोड़े पाखर सुइने साखति बूझणु तेरी वाट।
तरकस तीर कमाण सांग तेगबंद गुण धातु।।
बाजा नेजा पति सिउ परगटु करमु तेरा मेरी जाति।।3।।

बाबा होरु चडना खुसी खुआरु।
जितु चडिऐ तनु पीडीऐ मन महि चलहि विकार।।1।। रहाउ।।

घर मंदर खुसी नाम की नदरि तेरी परवारु।
हुकमु सोई तुधु भावसी होरु आखुणु बहुतु अपारु।।

नानक सचा पातिसाहु पूछि न करे बीचारु।।4।।
बाबा होरु सउणा खुसी खुआरु।
जितु सुतै तनु पीडीऐ मन महि चलहि विकार।।2।। रहाउ।।

8. कुंगू की कांइआ रतना की ललिता।
अगरि वासु तनि सासु।।
अठसठि तीरथ का मुखि टिका।
तितु घटि मति विगासु।।
ओतु मती सालाहणा सचु नामु गुणतासु।।1।।

बाबा होर मति होर होर।
जे सउ वेर कमाईऐ कूडै कूडा जोरु।।1।। रहाउ।।

पूज लगै पीरु आखीऐ सभु मिलै संसारु।
नाउ सदाए आपणा होवै सिधु सुमारु।।
जा पति लेखै ना पवै सभी पूज खुआरु।।2।।

जिन कउ सतिगुरि थापिआ तिन मेटि न सकै कोइ।
ओना अंदिर नामु निधानु है नामो परगटु होइ।।
नाउ पूजीए नाउ मंनीऐ अखंडु सदा सचु सोइ।।3।।

खेहू खेह रलाईऐ ता जीउ केहा होइ।
जलीआ सभि सिआणपा उठी चलिआ रोइ।।
नानक नाम विसारिऐ दरि गइआ किआ होइ।।4।।

9. गुणवंती गुण वीथरै अउगुणवंती झूरि।
जे लोडहि वरु कामणी नह मिलीऐ पिर कूरि।
ना बेडी ना तुलहडा ना पाईऐ पिरु दूरि।।1।।

मेरे ठाकुर पूरै तखति अडोलु।
गुरमुखि पूरा जे करे पाईऐ साचु अतोलु।।1।। रहाउ।।

प्रभु हरिमंदरु सोहणा तिसु महि माणक लाल।
मोती हीरा निरमला कंचन कोट रीसाल।।
बिन पउड़ी गडि किउ चडउ गुर हरि धिआन निहाल।।2।।

गुरु पउडी बेडी गुरु गुरु तुलहा हरि नाउ।
गुरु सरु सागरु बोहिथो गुरु तीरथ दरीआउ।।

जे तिसु भावै ऊजली सतसरि नावणु जाउ।।3।।

पूरो-पूरो आखीऐ पूरै तखति निवास।
पूरै थानि सुहावणै पूरै आस निरास।।
नानक पूरा जे मिलै किउ घाटै गुणतास।।4।।

10. आवहु भैण गलि मिलह अंकि सहेलडीआह।।
मिलि कै करह कहाणीआ संम्रथ कंत कीआह।
साचे साहिब सभि गुण अउगुण सभि असाह।।1।।

करता सभु को तेरै जोरि।
एकु सबदु बीचारीऐ जा तू जा किआ होरि।।1।। रहाउ।।

जाइ पुछहु सोहागणी तुसी राविआ किनी गुणी।
सहजि संतोखि सीगारीआ मिठा बोलणी।।
पिरु रीसालू ता मिलै जा गुर का सबद सुणी।।2।।

केतीआ तेरीआ कुदरती केवड तेरी दाति।
केते तेरे जीअ जंत सिफति करहि दिन राति।।
केते तेरे रूप रंग केते जाति अजाति।।3।।

सचु मिलै सचु ऊपजै सच महि साचि समाइ।
सुरति होवै पति ऊगवै गुरबचनी भउ खाइ।।
नानक सचा पातिसाहु आपे लए मिलाइ।।4।।

11. भली सरी जि उबरी हउमै मुई घराहु।
दूत लगे फिरि चाकरी सतिगुर का वेसाहु।
कलप तिआगी बादि है सचा वेपरवाहु।।1।।

मन रे सचु मिलै भउ जाइ।
भै बिनु निरभउ किउ थीऐ गुरमुखि सबदि समाइ।।1।। रहाउ।।

केता आखणु आखीऐ आखणि तोटि न होइ।
मंगण वाले केतडे दाता एको सोइ।।
जिसके जीअ पराण हहि मनि बसिऐ सुखे होइ।।2।।

जगु सुपना बाजी बनी खिन महि खेलु खेलाइ।
संजोगी मिलि एक से विजोगी उठि जाइ।।

जो तिसु भाणा सो थीऐ अवरु न करणा जाइ।।3।।

गुरमुखि वसतु वेसाहीऐ सचु वखरु सचु रासि।
जिनि सचु वंणजिआ गुर पूरे सावासि।।
नानक वसतु पछाणसी सचु सउदा जिसु पासि।।4।।

12. धातु मिलै फुनि धतु कउ सिफती सिफति समाइ।
लालु गुलालु गहबरा सचा रंगु चडाउ।
सचु मिलै संतोखिआ हरि जपि एकै भाइ।।1।।

भाई रे संत जना की रेणु।
संत सभा गुरु पाईऐ मुकति पदारथु घेणु।।1।। रहाउ।।

ऊचउ थानु सुहावणा ऊपरि महलु मुरारि।
सचु करणी दे पाईऐ दरु घरु महलु पिआरि।।
गुरमुखि मनु समझाईऐ आतम रामु बीचारि।।2।।

त्रिबिधि करम कमाईअहि आस अंदेसा होइ।
किउ गुर बिनु त्रिकुटी छुटसी सहजि मिलिऐ सुखे होइ।।
निजघरि महलु पछाणीऐ नदरि करे मलु धोइ।।3।।

बिनु गुर मैलु न उतरै बिनु हरि किउ घर वासु।
एको सबदु बीचरीऐ अवर तिआगै आस।।
नानक देखि दिखाईऐ सद बलिहारै जासु।।4।।

13. धृगु जीवणु दोहागणी मुठी दूजै भाइ।
कलर केरी कंध जिउ अहिनिसि किरि ढहि पाइ।
बिनु सबदै सुखु ना थीऐ पिर बिनु दुखु न जाइ।।1।।

मुंधे पिर बिनु किआ सीगारु।
दरिघरि ढोई ना लहै दरगह झूठु खुआरु।।1।। रहाउ।।

आपि सुजाणु न भुलई सचा वड किरसाणु।
पहिला धरती साजि कै सचु नामु दे दाणु।।
नउ निधि उपजै नामु एकु करमि पवै नीसाणु।।2।।

गुर कउ जाणि न जाणई किआ तिसु चजु अचारु।
अंधुलै नामु विसारिआ मनमुखि अंधु सुबारु।।

आवणु जाणु न चुकई मरि जनमै होइ खुआरु।।3।।

चंदनु मोल अणाइआ कुंगू मांगि संघूरु।
चोआ चंदन बहु घणा पाना नालि कपूरु।।
जे धन कंति न भावई त सभि अडंबर कुडु।।4।।

सभि रस भोगण वादि हरि सभि सीगार विकार।
जब लगु सबदि न भेदीऐ किउ सोहै गुरदुआरि।।
नानक धनु सुहागणी जिन सहि नालि पिआरु।।5।।

14. *सुंञी देह डरावणी जा जीउ विचहु जाइ।*
भाहि बलंदी विझवी धूउ न निकसिउ काइ।
पंचे रुंने दुखि भरे बिनसै दूजै भाइ।।1।।

मूड़े रामु जपहु गुण सारि।
हउमै ममता मोहणी सभ मुठी अहंकारि।।1।। रहाउ।।

जिनी नामु विसारिआ दूजी कारै लगि।
दुविधा लागे पचि मुए अंतरि तृसना अगि।।
गुरि राखे से उबरे होरि मुठी धंधै ठगि।।2।।

मुई परीति पिआरु गइआ मुआ वैरु विरोधु।
धंधा थका हउ मुई ममता माइआ क्रोधु।।
करमि मिलै सचु पाईऐ गुरमुखि सदा निरोधु।।3।।

सची कारै सचु मिलै गुरमति पलै पाइ।
सो नरु जमै ना मरै ना आवै ना जाइ।।
नानक दरि परधानु सो दरगहि पैधा जाइ।।4।।

15. *तनु जलि बलि माटी भइआ मनु माइआ मोहि मनूरु।*
अउगुण फिरि लागू भए कूरि बजावै तूरु।।
बिनु सबदै भरमाईऐ दुविधा डोबे पूरु।।1।।

मन रे सबदि तरहु चितु लाइ।
जिनि गुरमुखि नामु न बूझिआ मरि जनमै आवै जाइ।।1।। रहाउ।।

तनु सूचा सो आखिऐ जिसु महि साचा नाउ।
भै सचि राती देहुरी जिहवा सचु सुआउ।।

सची नदरि नीहालीऐ बहुडि न पावै ताउ।।2।।

साचे ते पवना भइआ पवनै ते जलु होइ।
जल ते त्रिभुवणु साजिआ घटि-घटि जोति समोइ।।
निरमलु मैला ना थीऐ सबदि रते पति होइ।।3।।

इहु मनु साचि संतोखिआ नदरि करे तिसु माहि।
पंच भूत सचि भै रते जोति सची मन माहि।।
नानक अउगुण वीसरे गुरि राखे पति ताहि।।4।।

16. नानक वेडी सच की तरीऐ गुर वीचारि।
इकि आवहि इकि जावही पूरि भरे अहंकारि।
मनहठि मती बूडीऐ गुरुमुखि सचु सु तारि।।1।।

गुर बिनु किउ तरीऐ सुखु होइ।
जिउ भावै तिउ राखु तू मै अवरु न दूजा कोइ।।1।। रहाउ।।

आगै देखउ डउ जलै पाछै हरिओ अंगूरु।
जिस ते उपजै तिस ते बिनसै घटि घटि सचु भरपूरि।।
आपे मेलि मिलावही साचै महलि हदूरि।।2।।

साहि साहि तुझु संमला कदे न विसारेउ।
जिउ जिउ साहिबु मनि बसै गुरमुखि अमृत पेउ।।
मनु तनु तेरा तू धणी गरबु निवारि समेउ।।3।।

जिनि एहु जगतु उपाइआ त्रिभुवणु करि आकारु।
गुरमुखि चानणु जाणीऐ मनमुखि मुगधु गुबारु।।
घटि घटि जोति निरंतरी बूझै गुरमति सारु।।4।।

गुरमुखि जिनही जाणिआ तिन कीचै साबासि।
सचे सेती रलि मिले सचे गुण परगासि।।
नानक नाम संतोखिआ जीउ पिंड प्रभ पासि।।5।।

17. सुणि मन मित्र पिआरिआ मिलु बेला है एह।
जब लगु जोबनि सासु है तब लगु इहु तनु देह।
विनु गुण कामि न आवई ढहि ढेरी तनु खेह।।1।।

मेरे मन लै लाहा घरि जाहि।

गुरमुखि नामु सलाहीऐ हउमै निवरी भाहि।।1।। रहाउ।।

सुणि सुणि गंढणु गंढीऐ लिखि पडि बुझहि भारु।
तृसना अहिनिसि अगली हउमै रोगु विकारु।।
ओहु वेपरवाहु अतोलवा गुरमति कीमति सारु।।2।।

लख सिआणप जे करी लख सिउ प्रीति मिलापु।
विनु संगति साध न ध्रापिआ बिनु नावै दूख संतापु।।
हरि जपि जीअरे छुटीऐ गुरमुखि चीनै आपु।।3।।

तनु मनु गुर पहि वेचिआ मनु दीआ सिरु नालि।
त्रिभुवण खोजि ढंढोलिआ गुरमुखि खोजि निहालि।।
सतगुरि मेल मिलाइआ नानक सो प्रभु नालि।।4।।

18. मरणै की चिंता नहीं जीवण की नहीं आस।
तू सरव जीआ प्रतिपालही लेखै सास गिरास।
अंतरि गुरमुखि तू वसहि जिउ भावै तिउ निरजासि।।1।।

जीअरे राम जपत मनु मानु।
अंतरि लागी जलि बुझी पाइआ गुरमुखि गिआनु।।1।। रहाउ।।

अन्तर की गति जाणीऐ गुर मिलीऐ संक उतारि।
मुइआ जितु घरि जाईऐ तितु जीवदिआ मरु मारि।।
अनहद सबद सुहावणे पाईऐ गुर वीचारि।।2।।

अनहद वाणी पाईऐ तह हउमै होइ बिनासु।
सतगुरु सेवे आपणा हउ सद कुरवाणै तासु।।
खडि दरगह पैनाईऐ मुखि हरिनाम निवासु।।3।।

जह देखा तह रवि रहे सिव सकती का मेलु।
त्रिहु गुण बंधी देहुरी जो आइआ जगि सो खेलु।।
विजोगी दुखि बिछुडे मनमुखि लहहि न मेलु।।4।।

मनु बैरागी घरि बसै सच भै राता होइ।
गिआन महारसु भोगवै बाहुड़ि भूख न होइ।।
नानक इहु मनु मारि मिलु भी फिरि दुखु न होइ।।5।।

19. एहु मनो मूरख लोभीआ लोभे लगा लोभानु।

सबदि न भीजै साकता दुरमति आवनु जानु।
साधू सतगुरु जे मिलै ता पाईऐ गुणी निधानु।।1।।
मन रे हउमै छोडि गुमानु।
हरिगुरु सरवरु सेवि तू पावहि दरगह मानु।।1।। रहाउ।।

रामनामु जपि दिनसु राति गुरमुखि हरि धनु जानु।
सभि सुख हरि रस भोगणे संत सभा मिलि गिआनु।।
निति अहिनिसि हरि प्रभु सेविआ सतगुरि दीआ नामु।।2।।

कूकर कुडु कमाईऐ गुर निंदा पचै पचानु।
भरमे भूला दुखु घणो जमु मारि करै खुलहानु।।
मनमुखि सुखु न पाईऐ गुरमुखि सुखु सुभानु।।3।।

एथै धंधु पिटाईऐ सचु लिखत परवानु।
हरि सजणु गुरु सेवदा गुर करणी परधानु।।
नानक नामु न वीसरै करमि सचै नीसाणु।।4।।

20. इकु तिलु पिआरा वीसरै रोगु वडा मन माहि।
किउ दरगह पति पाईऐ जा हरि न वसै मन माहि।
गुरि मिलिऐ सुखु पाईऐ अगनि मरै गुण माहि।।1।।

मन रे अहिनिसि हरिगुण सारि।
जिन खिनु पलु नामु न वीसरै ते जन विरले संसारि।।1।। रहाउ।।

जोती जोति मिलाईऐ सुरती सुरति संजोगु।
हिंसा हउमै गतु गए नाही सहसा सोगु।।
गुरमुखि जिसु मनि हरि वसै तिसु मेले गुरु संजोगु।।2।।

काइआ कामणि जे करी भोगे भोगणहारु।
तिसु सिउ नेह न कीजई जो दीसै चलणहारु।।
गुरमुखि रवहि सोहागणी सो प्रभु सेज भतारु।।3।।

चारे अगनि निवारि मरु गुरमुखि हरि जलु पाइ।
अंतरि कमलु प्रगासिआ अमृतु भरिआ अघाइ।।
नानक सतगुरु मीतु करि सचु पावहि दरगह जाइ।।4।।

21. हरि हरि जपहु पिआरिआ गुरमति ले हरि बोली।

मनु सचु कसवटी लाईऐ तुलीऐ पूरै तोलि।
कीमती किनै न पाईऐ रिद माणक मोलि अमोलि।।1।।
भाई रे हरि हीरा गुर माहि।
सतसंगति सतगुरु पाईऐ अहिनिसि सबद सलाहि।।1।। रहाउ।।

सचु वखरु धनु रासि लै पाईऐ गुर परगासि।
जिउ अगनि मरै जलि पाईऐ तिउ तृसना दासनिदास।।
जम जंदारु न लगई इउ भउजलु तरै तरासि।।2।।

गुरमुखि कुडु न भावई सचि रते सचि भाइ।
साकत सचु न भावई कूड़ै कूड़ी पाइ।।
सचि रते गुरि मेलिऐ सचे सचि समाइ।।3।।

मन महि माणकु लालु नामु रतनु पदारथु हीरु।
सचु वखरु धनु नामु है घटि घटि गहिर गंभीरु।।
नानक गुरमुखि पाईऐ दइआ करे हरि हीरु।।4।।

22. भरमै भाहि न विभवै जे भवै दिसंतर देसु।
अंतरि मैलु न उतरै ध्रिगु जीवणु ध्रगु वेसु।
होरु कितै भगति न होवई विनु सतगुर के उपदेस।।1।।

मन रे गुरमुखि अगिनि निवारि।
गुर का कहिआ मनि वसै हउमै तृसना मारि।।1।। रहाउ।।

मनु माणकु निरमोलु है रामनामि पति पाइ।
मिलि सतसंगति हरि पाईऐ गुरमुखि हरि लिव लाइ।।
आपु गइआ सुखु पाइआ मिलि सललै सलल समाइ।।2।।

जिनि हरिहरि नामु न चेतिओ सु अउगुणि आवै जाइ।
जिसु सतगुरु पुरखु न मेटिओ सु भउजल पचै पचाइ।।
इहु माणकु जीउ निरमोलु है इउ कउडी बदले जाइ।।3।।

जिंना सतगुरु रसि मिलै से पूरे पुरख सुजाणु।
गुर मिलि भउजलु लंघीऐ दरगह पति परवाणु।।
नानक ते मुख उजले धुनि उपजै सबदु नीसाणु।।4।।

23. वणजु करहु वणजारिहो वखरु लेहु समालि।
तैसी वसतु विसाहीऐ जैसी निबहै नालि।।

अगै साहु सुजाणु है लैसी वसतु समालि।।1।।

भाई रे रामु कहहु चितु लाइ।
हरिजसु वखरु लै चलहु सहु देखै पतीआइ।।1।। रहाउ।।

जिना रासि न सचु है किउ तिना सुखु होइ।
खोटै वणजि वणंजिऐ मनु तनु खोटा होइ।।
फाही फाथे मिरग जिउ दूखु घणो नित रोइ।।2।।

खोटे पोतै न पवहि तिन हरिगुर दरसु न होइ।
खोटे जाति न पति है खोटि न सीझसि कोइ।।
खोटे खोटु कमावणा आइ गइआ पति खोइ।।3।।

नानक मनु समझाईऐ गुर कै सबदि सालाह।
रामनाम रंगि रतिआ भारू न भरमु तिनाह।।
हरि जपि लाहा अगला निरभउ हरि मन माह।4।।

24. धनु जोबनु अरु फुलडा नाठीअडे दिन चारि।
पबणि केरे पत जिउ ढलि ढुलि जुंमणहार।।1।।

रंगु माणि लै पिआरिआ जा जोबनु नउहुला।
दिन थोडडे थके भइआ पुराणा चोला।।1।। रहाउ।।

सजण मेरे रंगुले जाइ सुते जीराणि।
हंभी वंजा डुमणी रोवा झीणी बाणि।।2।।
की न सुणेही गोरीए आवण कन्नी सोइ।
लगी आवहि साहुरै नित न पेईआ होइ।।3।।

नानक सुती पेईऐ जाणु विरती संनि।
गुणा गवाई गंठडी अवगुण चली बंनि।।4।।

25. आपे रसीआ आपि रसु आपे रावणहारु।
आपे होवै चोलड़ा आपे सेज भतारु।।1।।
रंगि रता मेरा साहिबु रवि रहिआ भरपूरि।।1।। रहाउ।।

आपे माछी मछुली आपे पाणी जालु।
आपे जाल मणकड़ा आपे अंदरि लालु।।2।।

आपे बहुबिधि रंगुला सखीए मेरा लालु।

नित रवै सोहागणी देखु हमारा हालु।।3।।

प्रणवै नानक वेनती तू सरवरु तू हंसु।।
कउलु तू है कवीआ तू है आपे वेखि विगसु।।4।।

वार माझ की तथा सलोक

गुरु दाता गुरु हिवै घरु दीपकु तिह लोइ।
अमर पदारथु नानका मनि मानिऐ सुखु होइ।।1।।

पहिलै पिआरि लगा थण दुधि। दूजै माइ बाप की सुधि।।
तीजै भया भाभी बेब। चउथै पिआरि उपंनी खेड।।
पंजवै खाण पीअण की धातु। छिवै कामु न पुछै जाति।।
सतवै संजि कीआ घर वासु। अठवै क्रोधु होवा तनु नासु।।
नावै घउले उभे साह। दसवै दधा होवा सुआह।।
गए सिगीत पुकारी धाह। उडिआ हंसु दसाए राह।।
आइआ गइआ मुइआ नाउ। पिछै पतलि सदिहु काव।।
नानक मनमुखि अंधु पिआरु।बाझु गुरु डूबा संसारु।।2।।

दस बालतणि बीस रवणि तीसा का सुंदरु कहावै।
चालीसी पुरु होइ पचासी पगु खिसै सठी के बोढेपा आवै।
सतरि का मतिहीणु असीहां का विउहार न पावै।
नवै का सिहजासणी मूलि न जाणै अपबलु।।
ढंढो लिमु ढूढिमु डिठु मै नानक जगु धूए का धवलहरु।।3।।

जीउ पाइ तनु साजिआ रखिआ बणत बणाइ।
अखी देखै जिहवा बोलै कंनी सुरति समाइ।।
पैरी चलै हथी करणा दिता पैनै खाइ।
जिनि रचि रचिआ तिसहि न जाणै अंधा अंधु कमाइ।।

जा भंजै ता ठीकरु होवै घाड़त घड़ी न जाइ।
नानक गुरु बिनु नाहि पति पति विणु पारि न पाइ।।4।।

सुइने कै परबति गुफा करी कै पाणी पइआलि।
कै विचि धरती कै आकासी उरधि रहा सिरि भारि।
पुरु करि काइआ कपडु पहिरा धोवा सदा कारि।।
वगा रता पीअला काला बेदा करी पुकार।
होइ कुचीलु रहा मलु धारी दुरमति मति विकार।
ना हउ नाम मै ना हउ होवा नानक सबदु वीचारि।।5।।

वसत्र पखलि पखाले काइआ आपे संजमि होवै।
अंतरि मैलु लगी नही जाणै बाहरहु मलि मलि धोवै।।
अंधा भूल पइआ जम जाले।
वसतु पराई अपुनी करि जानै हउमै विचि दुखु घाले।।
नानक गुरमुखि हउमै तुटै ता हरि हरि नामु धिआवै।
नामु जपे नामो आराधे नामे सुखि समावै।।6।।

कूड़ु बोलि मुरदारु खाइ। अवरी नो समझावणि जाइ।।
मुठा आपि मुहाए साथै। नानक ऐसा आगू जापै।।7।।

जे रतु लगै कपड़ै जामा होइ पलीतु।
जो रतु पीवहि माणसा तिन किउ निरमल चीतु।।
नानक नाउ खुदाइ का दिलि हछ मुखि लेहु।
अवरि दिवाजे दुनी के झूठे अमल करेहु।।8।।

जा हउ नाही ता किआ आखा किहु नाही किआ होआ।
कीता करणा कहिआ कथना भरिआ भरि भरि धोवां।
आपि न बुझा लोक बुझाई ऐसा आगू होवां।
नानक अंधा होइ कै दसे राहै सभसु मुहाए साथै।
अगै गइआ मुहे मुहि पाहि सु ऐसा आगू जापै।।9।।

मिहर मसीति सिदकु मुसला हकु हलालु कुराणु।
सरम सुंनति सीलु रोजा होहु मुसलमाणु।।
करणी काबा सचु पीरु कलमा करम निवाज।
तसबी सा तिसु भावसी नानक रखै लाज।।10।।

हकु पराइआ नानका उसु सूअर उस गाइ।

गुरु पीरु हामा ता भरे जा मुरदारु न खाइ।।
गली भिसति न जाईऐ छुटै सचु कमाइ।
मारण पाहि हराम महि होइ हलालु न जाइ।।
नानक गली कूडीई कुडो पलै पाइ।।11।।

पंजि निवाजा वखत पंजि पंजा पंजे नाउ।
पहिला सचु हलाल दुइ तीजा खैर खुदाइ।।
चउथी नीअति रासि मनु पंजवी सिफति सनाइ।
करणी कलमा आखि कै ता मुसलमाणु सदाइ।
नानक जेते कूडिआर कूडै कूडी पाइ।।12।।

मुसलमान कहावणु मुसकलु जा होइ ता मुसलमाणु कहावै।
अवलि अउलि दीनु करि मिठा मसकलमाना मालु मुसावै।।
होइ मुसलिमु दीन मुहाणै मरण जीवण का भरमु चुकावै।
रब की रजाइ मंने सिर उपरि करता मंने आपु गवावै।।
तउ नानक सरब जीआ मिहरंमति होइ त मुसलमाण कहावै।।13।।

नदीआ होवहि धेणवा सुंम होवहि दुधु घीउ।
सगली धरती सकर होवै खुसी करे नित जीउ।।
परबतु सुइना रूपा होवै हीरे लाल जड़ाउ।।
भी तूं है सालाहणा आखण लहै न चाउ।।14।।

भार अठारह मेवा होवै गरुडा होइ सुआउ।
चंद्र सूरजु दुइ फिरदे रखीअहि निहचलु होवै थाउ।।
भी तूं है सालाहणा आखण लहै न चाउ।।15।।

जे देहै दुखु लाईऐ पाप गरह दुइ राहु।
रतु पीणे राजे सिरै उपरि रखीअहि एवै जापै भाउ।।
भी तूं है सालाहणा आखण लहै न चाउ।।16।।

अगी पाला कपडु होवै खाणा होवै वाउ।
सुरगै दीआ मोहणीआ इसतरीआ होवनि नानक सभो जाउ।।
भी तूं है सालाहणा आखण लहै न चाउ।।17।।

सो जीविआ जिसु मनि वसिआ सोइ।
नानक अवरु न जीवै कोइ।।
जे जीवै पति लथी जाइ।

सभु हरामु जेता किछु खाइ।।
राजि रंगु मालि रंगु। रंगि रता नचै नंगु।।
नानक ठगिआ मुठा जाइ।
विणु नावै पति गइआ गवाइ।।18।।

किआ खाधै किआ पैधै होइ। जा मनि नाही सचा सोइ।।
किआ मेवा किआ घिउ गुडु मिठा किआ मैदा किआ मासु।
किआ कपडु किआ सेज सुखाली कीजहि भोग बिलास।।
किआ लसकर किआ नेब खवासी आवै महली वासु।
नानक सचे नाम विणु सभ टोल विणासु।।19।।

जा पका ता काटिआ रही सु पलरि वाडि।
सणु की सारा चिथिआ कणु लइआ तनु झाडि।।
दुइ पुड चकी जोडि कै पीसण आइ बहिठु।
जोदरि रहे सु उबरे नानक अजब डिठु।।20।।

वेखु जि मिठा कटिआ कटि कुटि बधा पाइ।
खुंढा अंदरि रखि कै देनि सु मल सजाइ।।
रसु कसु टटरि पाईऐ तपै तै विललाइ।
भी सो फोगु समालीऐ दिचै आगि जालाइ।।
नानक मिठै पतरीऐ वेखहु लोका आइ।।21।।

मछी तारु किआ करे पंखी किआ आकासु।
पथर पाला किआ करे खुसरे किआ घर वासु।।
कुत्ते चंदनु लाइऐ भी सो कुती धातु।
बोला जे समझाईऐ पडीअहि सिमृति पाठ।।
अंधा चानणि रखीऐ दीवे बलहि पचासु।
चउणे सुइना पाईऐ चुणि चुणि खावै घासु।।
लोहा मारणि पाईऐ ढहै न होइ कपासु।
नानक मूरखि एहि गुण बोले सदा विणासु।।22।।

कैहा कंचन तुटै सारु। अगनी गंढु पाए लोहरु।।
गोरी सेती तुटै भतारु। पुत्ती गंढु पवै संसारि।।
राजा मंगै दितै गंढु पाइ। भुखिआ गंढु पवै जा खाइ।।
कांल्हा गंढु नदीआ मीह झोल। गंढु परीती मिठे बोल।।
बेदा गंढु बोले सचु कोइ। मुइआ गंढु नेकी सतु होइ।।

एतु गंढि वरतै संसारु। मूरख गंढु पवै मुहि मार।।
नानकु आखै एहु बीचारु। सिफती गंढु पवै मुहि मार।।
नानकु आखै एहु बीचारु। सिफती गंढु पवै दरबारि।।23।।

हम जेर जिमी दुनीआ पीरा मसाइका राइआ।
मे रवदि बादिसाहा अफजू खुदाइ।।
एक तूही एक तुही।।24।।

न देव दानवा नरा। न सिध साधिका धरा।।
असति एकु दिगरि कुई। एक तुई एक तुई।।25।।

न दादे दिहंद आदमी। न सपत जेर जिमी।।
अस्रर्ति एक दिगरि कुई। एक तुई एक तुई।।26।।

न सूर ससि मंडलो। न सपत दीप नह जलो।।
अंन पउणु थिरु न कुई। एक तुई एक तुई।।27।।

न रिजकु दसत आ कसे। हमारा एकु आस वसे।।
असति एकु दिगरि कुई। एक तुई एक तुई।।28।।

परंदए न गिराह जर। दरखत आब आस कर।।
दिहंद सुई। एक तुई एक तुई।।29।।

नानक लिलारि लिखिआ सोइ। मेटि नं साकै कोइ।।
कला धरै हिरै सुइ। एक तुई एक तुई।।30।।

सीहा बाजा चरगा कुहीआ एना खवाले घाह।
घाहु खानि तिना मासु खवाले एहि चलाए राह।।
नदीआ विचि टिबे देखाले थली करे असगाह।
कीडा थापि देइ पातिसाही लसकर करे सुआह।।

जेते जीअ जीवहि लै साहा जीवाले ता कि असाह।
नानक जिउ जिउ सचे भावै तिउ तिउ देइ गिराह।।31।।

इकि मासहारी इकि तृणु खाहि।
इकना छतीह अमृत पाहि।
इकि मिटीआ महि मिटीआ खाहि।
इकि पउणु सुमारि पउण सुमारि।।

इकि निरंकारी नाम आधारि।।
जीवै दाता मरै न कोइ। नानक मुठे जाहि नाही मनि सोइ।। 32 ।।

तुधु भावैता वावहि गावहि तुधु भावै जलि नावहि।
जा तुधु भावहि ता करहि विभूता सिगी नादु वजावहि।।
जा तुधु भावहि ता पडहि कतेवा भुला सेख कहावहि।
जा तुधु भावहि ता होवहि राजे रस कस बहुतु कमावहि
जा तुधु भावहि तेग वगावहि सिर मुंडी कटि जावहि।
जा तुधु भावहि जाहि दिसंतर सुणि गला धरि आवहि।
जा तुधु भावहि नाइ रचावहि तुधु भाणे तूं भावहि।।
नानकु एक कहै बेनती होरि सगले कूडु कमावहि।। 33।।

जा तूं वडा सभि वडिआईआ चंगै चंगा होई।
जा तूं सचा ता सभु को सचा कूडा कोइ न कोई।।
आखणु वेखणु बोलणु चलणु जीवणु मरणा धातु।
हुकमु साजि हुकमै विचि रखै नानक सचा आपि।।34।।

कलि काते राजे कासाई धरमु पंखु करि उडरिआ।
कूडु अमावस सचु चंद्रमा दीसै नाही कह चडिआ।
हउ भालि विंकुनी होई।
आधेरै राहु न कोई।।
विचि हउमै करि दुखु रोई।
कहु नानक किनि बिधि गति होई।।35।।

सबाही सालाह जिनी धिआइआ इकमनि।
सेइ पूरे साह वखतै ऊपरि लडि मुए।।

दूजै बहुते राह मन कीआ मती खिडीआ।
बहुतु पए असगाह गोते खाहि न निकलहि।।
तीजै मुहि गिराह भुख तिखा दुइ भउकीआ।
खाधा होइ सुआह भी खाणे सिउ दोसती।।
चउथै आई ऊंघ अखी मीटि पवारि गइआ।
भी उठि रचिओनु वादु सै वरिहा की पिड बधी।।
सभे वेला वखत सभि जे अठी भउ होइ।
नानक साहिबु मनि वसै सचा नावणु होइ।।36।।

•

पहिरा अगनि हिवै घरु बाधा भोजनु सारु कराई।
सगलै दूख पाणी करि पीवा धरती हांक चलाई।।
धरि ताराजी अंबरु तोली पिछै टंकु चडाई।
एवडु वधा मावा नाही सभसै नथि चलाई।।
एता ताणु होवै मन अंदरि करी भी आखि कराई।
जेवडु साहिबु तेवडु दाती दे दे करे रजाई।।
नानक नदरि करे जिसु उपरि सचि नामि वडिआई।।37।।

नानक गुरु संतोखु रुखु धरमु फुलु फलु गिआनु।
रसि रसिआ हरिआ सदा पकै करमि घिआनि।।
पति के साद खादा लहै दाना कै सिरि दानु।।38।।

सुइने का बिरखुपत परवाला फुल जवेहर लाल।
तितु फल रतन लगहि मुखि भाखित हिरदै रिदै निहालु।।
नानक करमु होवै मुखि मसतकि लिखिआ होवै लेखु।
अठसठि तीरथ गुर की चरणी पूजे सदा विसेखु।।
हंसु हेतु लोभु कोपु चारे नदीआ अगि।
पवहि दझहि नानका तरीऐ करमी लगि।।39।।

तुमी तुमा विसु अकु धतूरा निमु फलु।
मनि मुखि वसहि तिसु जिसु तूं चिति न आवहि।।
नानक कहिऐ हिसु हंढनि करमा बाहरे।।40।।

मति पंखेरु किरतु साथि कब उतम कब नीच।
कब चंदनि कब अकि डालि कब उची परीति।।
नानक हुकमि चलाईऐ साहिब लगी रीति।।41।।

मारु मीहि न तृपतिआ अगी लहै न भुख।
राजा राजि न तृपतिआ साइर भरे कि सुक।।
नानक सचे नाम की केती पुछा पुछ।।42।।

खतिअहु जमे खते करनि त खतिआ विचि पाहि।
धोते मूलि न उतरहि जे सउ धोवण पाहि।।
नानक बखसे बखसीअहि नाहि त पाही पाहि।।43।।

नानक बोलणु झखणा दुख छडि मंगीअहि सुख।
सुखु दुखु दुइ दरि कपड़े पहिरहि जाइ मनुख।।

जिथै बोलणि हारीऐ तिथै चंगी चुप।।44।।

सिरु खोहाइ पीअहि मलवाणी जूठा मंगि मंगि खाही।
फोलि फदीहति मुहि लैनि भडासा पाणी देखि सगाही।।
भेडा वागी सिरु खोहाइनि भरीआनि हथ सुआही।
माऊ पीऊ किरतु गवाइनि टबर रोवनि धाही।।
ओना पिंडु न पतलि किरिआ न दीवा मुए किथाउ पाही।
अठसठि तीरथ देनि न ढोई ब्रह्मण अन्नु न खाही।।
सदा कुचील रहिर दिन राती मथै टिके नाही।
झुंडी पाइ बहनि निति मरणै दडि दीवाणि न जाही।
लकी कासे हथी फुमण अगो पिछी जाही।।
न ओइ जोगी ना ओइ जंगम ना ओइ काजी मुला।
दयि विगोए फिरहि विगुते फिटा वतै गला।।
जीआ मारि जीवाले सोई अवरु न कोई रखै।
दानहु तै इसनानहु वंजे भसु पई सिरि खुथै।।
पाणी विचहु रतन उंपने मेरु कीआ माघाणी।
अठसठि तीरथ देवी थापे पुरबी लगै बाणी।।
नाइ निवाजा नातै पूजा नावनि सदा सुजाणी।
मुइआ जीवदिआ गति होवै जां सिर पाईऐ पाणी।।

नानक सिर खुथे सैतानी एना गल न भाणी।
वुलै होइऐ होइ बिलावलु जीआ जुगति समाणी।।
वुठै अन्नु कमादु कपाहा सभसै पडदा होवै।
वुठै घाहु चरहि निति सुरही साधन दही विलोवै।।
तितु घिइ होम जग सद पूजा पइऐ कारजु सोहै।
गुरु संमुदु नदी सभि सिखी नातै जितु वडिआई।
नानक जे सिर खुथे नावनि नाही ता सत चटे सिरि छाई।।45।।

आपि वुझाए सोई बूझै।
जिसु आपि सुझाए तिसु सभु किछु सूझै।
कहि कहि कथना माइआ लूझै।।
हुकमी सगल करे आकार।
आपे जाणै सरब वीचार।
अखर नानक आखिओ आपि।
लहै भाराति होवै जिसु दाति।।46।।

रागु गउडी गुआरेरी

सबद

1. *भउ मुचु भारा वडा तोलु। मनमति हउली बोले बोलु।*
सिरि धरि चलीऐ सहिऐ भारु। नदरी करमी गुरु वीचारु।।1।।
भै बिनु कोइ न लंघसि पारि। भै भउराखिआ भाइ सवारि।।1।। रहाउ।।

भै तनि अगनि भखै भै नालि। भै भउ घडीऐ सबदि सवारि।
भै बिनु घाडत कचुनिकचु। अंधा सचा अंधी सट।।2।।

बुधी वाजी उपजै चाउ। सहस सिआणप पवै न ताउ।
नानक मनमुखि वोलणु वाउ। अंधा अखरु वाउ दुआउ।।3।।

2. *डरि घरु घरि डरु डरि डरु जाइ।*
सो डरु केहा जितु डरि डरु पाइ।
तुधु बिनु दूजी नाही जाइ।
जो किछु वरतै सभ तेरी रजाइ।।1।।
डरीऐ जे डरु होवै होरु। डरि डरि डरणा मन का सोरु।।1।। रहाउ।।

न जीउ मरै न डूबै तरे। जिनि किछु कीआ सो बिछु करै।।
हुकमे आवै हुकमे जाइ। आगै पाछै हुकमि समाइ।।2।।

हंसु हेतु आसा असमानु। तिसु विचु भूख बहुतु नैसानु।
भउ खाणा पीणा आधारु। विणु खाधे मरि होहि गवार।।3।।

जिसका कोई कोई कोइ कोइ। सभु को तेरा तूं सभना का सोइ।।
जा के जीअ जंत धनु मालु। नानक आखणु विखमु बीचारु।।4।।

3. माता मति पिता संतोखु। सतु भाई करि एहु विसेखु।।1।।
करणा है किछु कहणु न जाइ। तउ कुदरति कीमति नहीं पाइ।।1।। रहाउ।।

सरम सुरति दुइ ससुर भए। करणी कामणि करि मत लए।।2।।
साहा संजोगु वीआहु विजोगु। सचु संतति कहु नानक जोगु।।3।।

4. पउणै पाणी अगनी का मेलु। चंचल चपल बुधि का खेलु।।
नउ दरवाजे दसवा दुआरु। बुझु रे गिआनी एहु बीचारु।।1।।
कथता बकता सुनता सोई। आपु बीचारे सु गिआनी होई।।1।। रहाउ।।

देही माटी बोलै पउणु। बुझु रे गिआनी मुआ है कउणु।।
मूई सुरति बादु अहंकारु। ओहु न मूआ जो देखणहारु।।2।।

जै कारणि तटि तीरथ जाही। रतन पदारथ घट ही माही।।
पडि पडि पंडितु बादु वखाणै। भीतरि होदी वसतु न जाणै।।3।।

हउ न मूआ मेरी मुई बलाइ। ओहु न मूआ जो रहिआ समाइ।।
कहु नानक गुरि ब्रह्मु दिखाइआ। मरता जाता नदरि न आइआ।4।।

गउडी दखणी

5. सुणि सुणि बूझै मानै नाउ। ता कै सद बलिहारै जाउ।।
आपि भुलाए ठउर न ठाउ। तूं समझावहि मेलि मिलाउ।।1।।
नामु मिलै चलै मैं नालि। बिनु नावै बाधी सभ कालि।।1।। रहाउ।।

खेती वणजु नावै की ओट। पापु पुंनु बीज की पोट।।
कामु क्रोधु जीअ महि चोट। नामु विसारि चले मनि खोट।।2।।

साचे गुर की साची सीख। तनु मनु सीतलु साचु परीख।।
जल पुराइनि रस कमल परीख। सबदि रते मीठे रस ईख।।3।।

हुकमि संजोगी गडि दस दुआर। पंच वसहि मिलि जोति अपार।।
आपि तुलै आपे वणजार। नानक नामि सवारणहार।4।।

6. जातो जाइ कहा ते आवै। कह उपजै कह जाइ समावै।।

किउ बाधिओ किउ मुकती पावै। किउ अबिनासी सहजि समावै।।1।।
नामु रिदै अमृतु मुखि नामु। नरहर नामु नरहर निहकामु।।1।। रहाउ।।

सहजे आवै सहजे जाइ। मन ते उपजै मन माहि समाइ।
गुरमुखि मुकती बंधु न पाइ। सबदु बीचारि छुटै हीरनाइ।।2।।

तरवर पंखी बहु निसि वासु। सुख दुखीआ मनि मोह विणासु।
साझ बिहाग तकहि आगासु। दहदिसि धावहि करम लिखआसु।।3।।

नामु संजोगी गोइलि थाटु। काम क्रोध फूटै विखु माटु।।
विनु वखर सूनी घरु हाटु। गुर मिलि खोले बजर कपाट।।4।।

साधु मिलै पूरब संजोग। सचि रहसे पूरे हरि लोग।।
मनु तनु दे लै सहजि सुभाइ। नानक तिन कै लागउ पाइ।।5।।

7. कामु क्रोधु माइआ महि चीतु। झूठ विकारि जागै हित चीतु।।
पूंजी पाप लोभ की कीतु। तरु तारी मनि नामु सुचीतु।।1।।
वाहु वाहु साचे मैं तेरी टेक। हउ पापी तूं निरमलु एक।।1।। रहाउ।।

अगनि पाणी बोलै भड वाउ। जिहवा इंद्री एकु सुआउ।
दिसटि विकारी नाहीं भउ भाउ। आपु मारे ता पाए नाउ।।2।।

सबदि मरै फिरि मरणु न होइ। बिनु मूए किउ पूरा होइ।।
परपंचि विआपि रहिआ मनु दोइ। थिरु नाराइणु करे सु होइ।।3।।

बोहिथि चडउ जा आवै वारु। ठाके बोहिथ दरगह मार।।
सचु सालाही धुन गुर दुआरु। नानक दरि घरि एकंकारु।।4।।

8. उलटिओ कमलु ब्रहु बीचारि। अमृत धार गगनि दस दुआरि।।
त्रिभुवण बेधिआ आपि मुरारि।।1।।
रे मन मेरे भरमु न कीजै। मनि मानिऐ अमृंत रसु पीजै।।1।। रहाउ।।

जनमु जीति मरणि मनु मानिआ। आपि मुआ मनु मन ते जानिआ।।
नजरि भई घरु घर ते जानिआ।।2।।

जतु सतु तीरथु भजनु नामि। अधिक बिथारु करउ किसु कामि।।
नर नाराइण अंतरजामि।।3।।

आन मनउ तउ पर घर जाउ। किसु जाचउ नाही को थाउ।।

नानक गुरमति सहेजि समाउ।।4।।

9. सतिगुरु मिलै सु मरणु दिखाए। मरण रहण रसु अंतरि भाए।।
गरबु निवारि गगनुपरु पाए।।11।।
मरणु लिखाइ आए नहीं रहणा। हरि जपि जापि रहणु हरि सरणा।।1।। रहाउ।।

सतिगुरु मिलै त दुविधा भागै। कमलु बिगासि मनु हरि प्रभ लागै।
जीवतु मरै महा रसु आगै।।2।।

सतिगुरि मिलिऐ सच संजमि सूचा। गुर की पउडी ऊचो ऊचा।।
करमि मिलै जम का भउ मूचा।।3।।

गुरि मिलिऐ मिलि अंकि समाइआ।
करि किरपा घरु महलु दिखाइआ।।
नानक हउमै मारि मिलाइआ।।4।।

10. किरतु पइआ नह मेटै कोइ। किआ जाणा किआ आगै होइ।।
जो तिसु भाणा सोई हूआ। अवरु न करणै वाला दूआ।।1।।
ना जाणा करम केवड तेरी दाति। करमु धरमु तेरे नाम की जाति।।1।। रहाउ।।

तू एवडु दाता देवणहारु। तोटि नाही तुधु भगति भंडार।।
कीआ गरबु न आवै रासि। जीउ पिंड सभु तेरै पासि।।2।।

तू मारि जीवालहि बखसि मिलाइ। जिउ भावी तिउ नामु जपाइ।।
तू दाना बीना साचा सिरि मेरै। गुरमति दे भरोसै तेरै।3।।

तन महि मैलु नाही मनु राता। गुर बचनी सचु सबदि पछाता।।
तेरा ताणु नामु की वडिआई। नानक रहणा भगति सरणाई।।4।।

11. जिनि अकथु कहाइआ अपिओ पिआइआ अनभै विसरे नामि समाइआ।।1।।
किआ डरीए डरु डरहि समाना। पूरे गुर कै सबदि पछाना।।1।। रहाउ।।

जिसु नर रामु रिदै हरि रासि। सहजि सुभाइ मिले साबासि।।2।।

जाहि सवारै साझ बिआल। इत उत मनमुख बाधे काल।।3।।
अहिनिसि रामु रिदै से पूरे। नानक राम मिले भ्रम दूरे।।4।।

12. जनमि मरै त्रै गुण हितकारु। चारे बेद कथहि आकारु।।
तीनि अवसथा कहहि वखिआनु। तुरीआवसथा सतिगुर ते हरि जानु।।1।।

राम भगति गुर सेवा तरणा। बाहुडि जनमु न होइहै मरणा।।1।। रहाउ।।

चारि पदारथ कहै सभु कोई। सिंमृति सासत पंडित मुखि सोई।।
बिनु गुर अरथु बीचारु न पाइआ। मुकति पदारथु भगति हरि पाइआ।।2।।

जा कै हिरदै वसिआ हरि सोइ। गुरमुखि भगति परापति होई।।
हरि की भगति मुकति आनंदु। गुरमति पाए परमानंदु।।3।।

जिनि पाइआ गुरि देखि दिखाइआ। आसा माहि निरासु बुझाइआ।।
दीनानाथु सरब सुखदाता। नानक हरि चरणी मनु राता।।4।।

13. अंमृत काइआ रहै सुखाली बाजी इहु संसारो।
लबु लोभु मूचु कूडु कमावहि बहुतु उठावहि भारो।।
तू काइआ मै रुलदी देखी जिउ धर उपरि छारो।।1।।

सुणि सुणि सिख हमारी।
सुकृत कीता रहसी मेरे जीअडे बहुडि न आवै वारी।।1।। रहाउ।।

हउ तुधु आखा मेरी काइआ तूं सुणि सिख हमारी।
निंदा चिंदा करहि पराई झूठी लाइतबारी।।
बेलि पराई जोहहि जीअडे करहि चोरी बुरिआरी।।
हंसु चलिआ तूं पिछै रहीअडि छुटडि होईअहि नारी।।2।।

तूं काइआ रहीअहि सुपनतंरि तुधु किआ करम कमाइआ।
करि चोरी मै जो किछु लीआ ता मनि भला भाइआ।।
हलति न सोभा पलति न ढोई अहिला जनमु गवाइआ।।3।।
हउ खरी दुहेली होई बाबा नानक मेरी बात न पुछै कोई।।1।। रहाउ।।

ताजी तेरकी सुइना रूपा कपड केरे भारा।
किस ही नालि न चले नानक झडि झडि पए गवारा।।
कूजा मेवा मै सभ किछु चाखिआ इकु अंमृत नामु तुमारा।।4।।

दे दे नीव दीवाल उसारी भसमंदर की ढेरी।
संचे संचि न देई किसही अंधु जाणै सभ मेरी।।
सोइन लंका सोइन माडी सपै किसै ना केरी।।5।।
सुणि मूरख मन अजाणा। होगु तिसै का भाणा।।1।। रहाउ।।

साहु हमारा ठाकुरु भारा हम तिस के वणजारे।

जीउ पिंडु सभ रासि तिसै की मारि आपे जीवाले।।1।।

14. अवरि पंच हम एक जना किउ राखउ घर बारु मना।
मारहि लूटहि नीत नीत किसु आगै करी पुकार जना।।1।।
स्रीराम नामा उचरु मना। आगै जमदलु बिखमु घना।।1।। रहाउ।।

उसारि मडोली राखै दुआरा भीतरि बैठी साधना।।
अंमृत केल करे नित कामणि अवरि लुटेनि सु पंचजना।।2।।

ढाहि मडोली लूटिआ देहुरा साधन पकड़ी एक जना।
जम डंडा गलि संगलु पडिआ भागि गए से पंच जना।।3।।

कामणि लोडै सुइना रूपा मित्र लुडेनि सु खाधाता।
नानक पाप करे तिन कारणि जासी जमपुरि बाधाता।।4।।

15. मुंद्रा ते घट भीतरि मुंद्रा कांइआ कीजै खिंथाता।
पंच चेले वस कीजहि रावल इकु मनु कीजै डंडाता।।1।।
जोग जुगति इव पावसिता।
एकु सबदु दूजा होरु नासति कंद मूलि मनु लावसिता।।1।। रहाउ।।

मूंडि मुंडाइऐ जे गुरु पाईऐ हम गुरु कीनी गंगाता।
त्रिभवण तारणहारु सुआमी एकु न चेतसि अंधाता।।2।।

करि पटंबु गली मनु लावसि संसा मूलि न जावसिता।
एकसु चरणी जे चितु लावहि लबि लोभि की धावसिता।।3।।
जपसि निरंजनु रचसि मना। काहे बोलहि जोगी कपटु घना।।1।। रहाउ।।

काइआ कमली हंसु इआणा मेरी मेरी करत बिहाणीता।
प्रणवति नानकु नागी दाझै फिरि पाछै पछुताणीता।।1।।

16. अउखध मंत्र मूलु मन एकै जे करि छ्ड़ु चितु कीजै रे।
जनम जनम के पाप करम के काटन हारा लीजै रे।।1।।

मन एको साहिबु भाई रे।
तेरे तीनि गुणा संसारि समावहि अलखु न लखणा जाई रे।।1।। रहाउ।।

सकर खंडु माइआ तनि मीठी हम तउ पंड उचाई रे।
राति अनेरी सूझसि नाही लजु टूकसि मूसा भाई रे।।2।।

मनमुखि करहि तेता दुखु लागै गुरमुखि मिलै वडाई रे।
जो तिनि कीआ सोई होवा किरतु न मेटिआ जाई रे।।3।।
सुभर भरे न होवहि ऊणे जो राते रंगु लाई रे।
तिनकी पंक होवै जे नानकु तउ मूडा किछु पाई रे।।4।।

17. कत की माई बापु कत केरा किदू थावउ हम आए।
अगनि बिब जल भीतरि निपजे काहे कंमि उपाए।।1।।
मेरे साहिबा कउणु जाणै गुण तेरे। कहे न जानी अउगुण मेरे।।1।। रहाउ।।

केते रुख बिरख हम चीने केते पसू उपाए।
केते नाग कुली महि आए केते पंख उडाए।।2।।

हट पटण बिज मंदर भंनै करि चोरी घरि आवै।
अगहु देखै पिछहु देखै तुझ ते कहा छुपावै।।3।।

तट तीरथ हम नव खंड देखे हट पटण बाजारा।
लै कै तकडी तोलणि लागा घट ही महि बणजारा।।4।।

जेता समुंदु सागरु नीरि भरिआ तेते अउगण हमारे।
दइआ करहु किछु मिहर उपावहु डुबदे पथर तारे।।5।।

जीअडा अगनि बराबर तपै भीतरि वगै काती।
प्रणवति नानकु हुकमु पछाणै सुख होवै दिनु राती।।6।।

18. रैणि गवाई सोइ कै दिवसु गवाइआ खाइ।
हीरे जैसा जनमु है कउडी बदले जाइ।।1।।

नामु न जानिआ राम का। मूडे फिरि पाछै पछताहि रे।।1।। रहाउ।।

अनता धनु धरणी धरे अनत न चाहिआ जाइ।
अनत कउ चाहन जो गए से आए अनत गवाइ।।2।।

आपण लीआ जे मिलै ता सभु को भागठु होइ।
करमा उपरि निबडै जे लोचै सभु कोइ।।3।।

नानक करणा जिनि कीआ सोई सार करेइ।
हुकमु न जापी खसम का किसै वडाई देइ।।4।।

19. हरणी होवा बनि बसा कंद मूल चुणि खाउ।
गुर परसादी मेरा सहु मिलै वारि वारि हउ जाउ जीउ।।1।।

मै बनजारनि राम की। तेरा नामु वखरु वापारु जी।।1।। रहाउ।।
कोकिल होवा अंबि बसा सहजि सबद बीचारु।
सहजि सुभाइ मेरा सहु मिलै दरसनि रूपि अपारु।।2।।

मछुली होवा जलि वसा जीअ जंत सभि सारि।
उरवारि पारि मेरा सहु वसै हउ मिलउगी बाह पसारि।।3।।

नागनि होवा धर वसा सबदु वसै भउ जाइ।
नानक सदा सोहागणी जिन जोती जोति समाइ।।4।।

रागु आसा

सोदरु तेरा केहा सो घरु केहा जितु बहि सरब सम्हालै।
वाजे तेरे नाद अनेक असंखा केते तेरे वावणहारे।।
केते तेरे राग परी सिउ कहीअहि केते तेरे गावणहारे।
गावन्हि तुध नो पउणु पाणी बैसंतरु गावै राजा धरम दुआरे।।
गावन्हि तुध नो चितगुपतु लिखि जाणनि लिखि लिखि धरमु वीचारे।
गावन्हि तुध नो ईसरु ब्रह्मा देवी सोहनि तेरे सदा सवारे।।
गावन्हि तुध नो इंद्र इंद्रासणि बैठे देवतिआ दरि नाले।
गावन्हि तुध नो सिध समाधी अंदरि गावन्हि तुध नो साध वीचारे।
गावन्हि तुध नो जती सती संतोखी गावनि तुध नो वीर करारे।
गावन्हि तुध नो पंडित पडे रखीसुर जुगु जुगु बेदा नाले।।
गावन्हि तुध नो मोहणीआ मनु मोहनि सुरगु मछु पइआले।
गावन्हि तुध नो रतन उपाए तेरे जेते अठसठि तीरथ नाले।।
गावन्हि तुध नो जोध महाबल सूरा गावन्हि तुध नो खाणी चारे।
गावनि तुध नो खंड मंडल ब्रह्मंडा करि करि रखे तेरे धारे।।
सेई तुध नो गावनि जो तुधु भावन्हि रते तेरे भगत रसाले।।
होरु केते तुध नो गावनि से मै चिति न आवनि नानकु किआ वीचारे।।
सोई सोई सदा सचु साहिबु साचा साची नाई।
है भी होसी जाइ न जासी रचना जिनि रचाई।।
रंगी रंगी भाती जिनसी माइआ जिनि उपाई।
करि करि देखै कीता आपणा जिउ तिस दी वडिआई।।
जो तिसु भावै सोइ करसी फिरि हुकमु न करणा जाई।
सो पातिसाहु साहा पति साहिबु नानक रहणु रजाई।।1।।1।।

सुणि वडा आखै सभ कोई। केवडु वडा डीठा होई।।
कीमति पाइ न कहिआ जाइ। कहणै वाले तेरे रहे समाइ।।1।।

वडे मेरे साहिबा गहिर गंभीरा गुणी गहीरा।
कोई न जाणै तेरा केता केवडु चीरा।।1।। रहाउ।।

सभि सुरती मिलि सुरति कमाई। सभी कीमति मिलि कीमति पाई।।
गिआनी धिआनी गुर गुरहाई। कहणु न जाई तेरी तिलु वडिआई।।2।।

सभि सत सभि तप सभि चंगिआईआं। सिधा पुरखा कीआ वडिआईआं।
तुधु विणु सिधी किनै न पाईआ। करमि मिलै नाही ठाकि रहाईआ।।3।।

आखण वाला किआ बेचारा। सिफती भरे तेरे भंडारा।।
जिसु तूं देहि तिसै किआ चारा। नानक सचु सवारणहारा।।4।।1।।

आखा जीवा विसरै मरि जाउ। आखणि अउखा सचा नाउ।।
साचे नाम की लागै भूख। तितु भूखै खाइ चलीअहि दूख।।1।।
सो किउ विसरै मेरी माइ। साचा साहिबु साचै नाइ।।1।। रहाउ।।

साचे नाम की तिलु वडिआई। आखि थके कीमति नहीं पाई।।
जे सभि मिलि कै आखण पाहि। वडा न होवै घाटि न जाइ।।2।।

ना ओहु मरै न होवै सोगु। देंदा रहै न चूकै भागु।।
गुणु एहो होरु नाही कोइ। न को होआ न को होइ।।3।।

जेवडु आपि तेवड तेरी दाति। जिनि दिनु करि कै कीति राति।
खसमु विसारहि ते कमजाति। नानक नावै बाझु सनाति।।4।।2।।

जे दरि मांगतु कूक करे महली खसमु सुणे।
भावै धीरक भावै धके एक वडाइ देइ।।1।।
जाणहु जोति न पूछहु जाती आगै जाति न हे।।1।। रहाउ।।

आपि कराए आपि करेइ। आपि उलाम्हे चिति धरेइ।।
जा तूं करणहारु करतारु। किआ मुहताजी किआ संसारु।।2।।

आपि उपाए आपे देइ। आपे दुरमति मनहि करेइ।।
गुर परसादि वसै मनि आइ। दुखु अन्हेरा विचहु जाइ।।3।।

साचु पिआरा आपि करेइ। अवरी कउ साचु न देइ।।

जि किसै देइ वखाणै नानकु आगै पूछ न लेइ।।4।।3।।
ताल मदीरे घट के घाट। दोलक दुनीआ वाजहि वाज।
नारदु नाचै कलि का भाउ। जती सती कह राखहि पाउ।।1।।
नानक नाम विटहु कुरबाणु। अंधी दुनीआ साहिबु जाणु।।1।। रहाउ।।

गुरु पासहु फिरि चेला खाइ। तामि परीति वसै घरि आइ।।
जे सउ वर्हिआ जीवणु खाणु। खसम पछाणै सो दिनु परवाणु।।2।।

दरसनि देखिऐ दइआ न होइ। लए दिते बिनु रहै न कोइ।।
राजा निआउ करे हथि होइ। कहै खुदाइ न मानै कोइ।।3।।

माणस मूरति नानकु नामु। करणी कुता दरि फुरमानु।।
गुर परसादि जाणै मिहमानु। ता किछु दरगह पावै मानु।।4।।4।।

जेता सबदु सुरति धुनि तेती जेता रूपु काइआ तेरी।
तूं आपे रसना आपे बसना अवरु न दूजा कहउ माई।।1।।
साहिबु मेरा एको है। एको है भाई एको है।।1।। रहाउ।।

आपे मारे आपे छोडै आपे लेवै देइ।
आपे वेखै अपे विगसै आपे नदरि करेइ।

जो किछु करणा सो करि रहिआ अवरु न करणा जाई।
जैसा वरतै तैसो कहीऐ सभ तेरी वडिआई।।3।।

कलि कलवाली माइआ मदु मीठा मनु मतवाला पीवतु रहै।
आपे रूप करे वहु भांती नानक बपुडा एव कहै।।4।।5।।

वाजा मति पखाउज भाउ। होइ अनंदु सदा मनि चाउ।।
एहा भगति एहो तप ताउ। इतु रंग नाचहु रखि रखि पाउ।।1।।
पूरे ताल जाणै सालाह। होरु नचणा खुसीआ मन माह।।1।। रहाउ।।

संतु संतोखु वजहि दुइ ताल। पैरी वाजा सदा निहाल।।
रागु नादु नही दूजा भाउ। इतु रंगि नाचहु रखि रखि पाउ।।2।।

भउ फेरी होवै मन चीति। बहदिआ उठदिआ नीता नीति।।
लेटणि लेटि जाणै तनु सुआहु। इतु रंगि नाचउ रखि रखि पाउ।।3।।
सिख सभा दीखिआ का भाउ। गुरमुखि सुणणा साचा नाउ।।
नानक आखणु वेरा वेर। इतु रंगि नाचहु रखि रखि पैर।।4।।6।।

पउणु उपाइ धरी सभ धरती जल अगनी का बंधु कीआ।
अंधुलै दहसिरि मूंड कटाइआ रावणु मारि किआ वडा भइआ।।1।।
किआ उपमा तेरी आखी जाइ। तूं सरबे पूरि रहिआ लिव लाइ।।1।। रहाउ।।

जीअ उपाइ जुगति हथि कीनी काली नाथि किआ वडा भइआ।
किसु तूं पुरखु जोरु कउणु कहीऐ सरब निरंतरि रवि रहिआ।।2।।

नालि कुटंबु साथि वरदाता ब्रह्मा भालण सृसटि गइआ।
आगै अंतु न पाइओ ताका कंसु छेदि किआ वडा भइआ।।3।।

रतन उपाइ धरे खीरु मथिआ होरि भखलाए जि असी कीआ।
कहै नानकु छपै किउ छपिआ एकी एकी वंडि दीआ।।4।।7।।

करम करतूती वेलि विसथारी रामनामु फलु हूआ।
तिसु रूपु न रेख अनाहदु वाजै सबदु निरंजनि कीआ।।1।।
करे वखिआणु जाणै जे कोई। अंमृतु पीवै सोई।।1।। रहाउ।।

जिन्ह पीआ से मसत भए है तूटे बंधन फाहे।
जोती जोति समाणी भीतरि ता छोडे माइआ के लाहे।।2।।

सरब जोति रूपु तेरा देखिआ सगल भवन तेरी माइआ।
रारै रूपि निरालमु बैठा नदरि करे विचि छाइआ।।3।।

बीणा सबदु बजावै जोगी दरसनि रूपि अपारा।
सबदि अनाहदि सोसहु राता नानकु कहै विचारा।।4।।8।।

मै गुण गला के सिरि भार। गली गला सिरजणहार।।
खाणा पीणा हसणा बादि। जबु लगु रिदै न आवहि यादि।।1।।
तउ परवाह केही किआ कीजै। जनमि जनमि किछु लीजी लीजै।।1।। रहाउ।।

मन की मति मतागलु मता। जो किछु बोलिए सभु खतो खता।।
किआ मुहु लै कीचै अरदासि। पापु पुंनु दुइ साखि पासि।।2।।

जैसा तूं करहि तैसा को होइ। तुझ बिनु दूजा नाही कोइ।।
जेही तूं मति देहि तेही को पावै। तुधु आपै भावै तिवै चलावै।।3।।

राग रतन परीआ परवार। तिसु विचि उपजै अंमृत सारु।।
नानक करते का इहु धनु माल। जे को बूझै एहु बीचारु।।4।।9।।

दुध बिनु धेनु पंख बिनु पंखी जल बिनु उतभुज कामि नाही।
किआ सुलतानु सलाम विहूणा अंधी कोठी तेरा नामु नाही।।1।।
की विसरहि दुखु बहुता लागै। दुखु लागै तूं विसरु नाही।।1।। रहाउ।।

अखी अंधु जीभ रसु नाही कंनी पवणु न वाजै।
चरणी चलै पजूता आगै विणु सेवा फल लागै।।2।।

अखर बिरख बाग भुइ चोखी सिंचित भाउ करेही।
सभना फलु लागै नामु एको बिनु करमा कैसे लेही।।3।।

जेते जीअ तेते सभि तेरे विणु सेवा फलु किसै नाही।
दुखु सुखु भाणा तेरा होवै विणु नावै जीउ रहै नाही।।4।।

मति विचु मरणु जीवणु होरु कैसा जा जीवां तां जुगति नाही।
कहै नानकु जीवाले जीआ जह भावै तह राखु तुही।।5।।19।।

काइआ ब्रह्मा मनु है धोती। गिहानु जनेऊ धिआनु कुसपाती।
हरि नामा जसु जाचउ नाउ। गुर परसादि ब्रह्मि समाउ।।1।।
पांडे ऐसा ब्रह्म बीचारु। नामे सुचि नामो पडउ नामे चजु आचारु।।1।। रहाउ।।

बाहरि जनेऊ जिचरु जाति है नालि। धोती टिका नामु समालि।
एथै ओथै निबही नालि। विणु नावै होरि करम न भालि।।2।।

पूजा प्रेम माइआ परजालि। एको वेखहु अवरु न भालि।।
चीन्है ततु गगन दस दुआर। हरि मुखि पाठ पडै बीचार।।3।।

भोजन भाउ भरमु भउ भागै। पाहरुअरा छबि चोरु न लागै।।
तिलकु लिलाटि जाणै प्रभु एकु। बूझै ब्रह्मु अंतरि बिबेकु।।4।।

आचारी नही जीतिआ जाइ। पाठ पड़ै नही कीमति पाइ।।
असटदसी चहु भेदु न पाइआ। नानक सतिगुरि ब्रह्मु दिखाइआ।।5।।20।।

विदिआ वीचारी तां परउपकारी। जां पंच रासी तां तीरथ वासी।।1।।
घुंघरू वाजै जे मनु लागै। तउ जमु कहा करे मो सिउ आगै।।1।। रहाउ।।

आस निरासी तउ संनिआसी। जां जतु जोगी तां काइआ भोगी।।2।।
दइआ दिगंबरु देह बीचारी। आपि मरै अवरा नह मारी।।3।।
एकु तू होरि वेस बहुतेरे। नानकु जाणै चीज न तेरे।।4।।25।।

पेवकडै धन खरी इआणी। तिसु सह की मै सार न जाणी।।1।।
सहु मेरा एकु दूजा नहीं कोई। नदरि करे मेलावा होई।।1।।रहाउ।।

साहुरडै धन साचु पछाणिआ। सहजि सुभाइ अपणा पिरु जाणिआ।।2।।
गुरपरसादो ऐसी मति आवै। तां कामणि कंतै मनि भावै।।3।।
कहतु नानकु भै भाव का करे सीगारु। सद ही सेजै रवै भतारु।।4।।27।।

छिअ घर छिअ गुर उपदेस। गुर गुरु एको वेस अनेक।।1।।
जै घरि करते कीरति होइ। सोघरु राखु वडाई तोहि।।1।।रहाउ।।

विसुए चसिआ घडीआ पहरा थिती वारी माहु भइआ।
सूरज एको रुति अनेक। नानक करते के केते वेस।।2।।30।।

लख लसकर लख वाजे नेजे लख उठि करहि सलामु।
लखा उपरि फुरमाइसि तेरी लख उठि राखहि मानु।।
जां पति लेखै ना पवै तां सभि निराफल काम।।1।।
हरि के नाम बिना जगु धंधा।
जे वहुता समझाईऐ भोला भी सो अंधो अंधा।।1।।रहाउ।।

लख खटीअहि लख संजीअहि खाजहि लख आवहि लख जाहि।
जां पति लेखै ना पवै तां जीअ किथै फिरि पाहि।।2।।

लख सासत समझावणी लख पंडित पडहि पुराण।
जां पति लेखै ना पवै तां सभे कुपरवाण।।3।।

सच नामि पति उपजै करमि नामु करतारु।
अहिनिसि हिरदै जे बसै नानक नदरी पारु।।4।।1।।31।।

दीवा मेरा एकु नामु दुखु विचि पाइआ तेलु।
उनि चानणि ओहु सोखिआ चूका जम सिउ मेलु।।1।।

लोका मत को फकडि पाइ।
लख मडिआ करि एकठे एक रती ले भाहि।।1।।रहाउ।।

पिंडु पतलि मेरी केसउ किरिआ सचु नामु करतारु।
एथै ओथै आगै पाछै एहु मेरा आधारु।।2।।

गंग बनारसि सिफति तुमारी नावै आतम राउ।

सचा नावणु तां थीऐ जां अहिनिसि लागै भाउ।।3।।
इक लोकी होरु छमिछरी ब्राह्मणु वटि पिंडु खाइ।
नानक पिंडु बखसीस का कबहु निखूटसि नाहि।।4।।2।।32।।

भीतरि पंच गुपत मनि वासे। थिरु न रहि जैसे भवहि उदासे।।1।।
मनु मेरा दइआल सेती थिरु न रहै।
लोभी कपटी पापी पाखंडी माइआ अधिक लगै।।1।। रहाउ।।

फूल माला गलि पहिरउगी हारो।
मिलैगा प्रीतमु तब करउगी सीगारो।।2।।

पंच सखी हम एकु भतारो। पेडि लगी है जीअडा चालणहारो।।3।।
पंच सखी मिलि रुदनु करेहा। साहु पजूता प्रवणति नानक लेखा देहा।।4।।34।।

मनु मोती जे गहणा होवै पउणु होवै सूतधारी।
खिमा सीगारु कामणि तनि पहिरै रावै लाल पिआरी।।1।।
लाल बहु गुणि कामणि मोही। तेरे गुण होहि न अवरी।।1।। रहाउ।।

हरि हरि हारु कंठि ले पहिरै दामोदरु दंतु लेई।
करि करि करता कंगन पहिरै इन बिधि चितु धरेई।।2।।

मधुसूदनु कर मुंदरी पहिरै परमेसरु पटु लेई।
धीरजु धडी बंधावै कामणि स्त्री रंगु सुरमा देई।।3।।

मन मंदिर जे दीपकु जाले काइआ सेज करेई।
गिआन राउ जब सेजै आवै त नानक भोगु करेई।।4।।1।।35।।

गुर का सबदु मनै महि मुद्रां खिंथा खिमा हढावउ।
जो किछु करै भला करि मानउ सहज जोग निधि पावउ।।1।।

बाबा जुगता जीउ जुगह जुग जोगी परम तंत महि जोगं।
अंमृतु नामु निरंजनु पाइआ गिआन काइआ रस भोगं।।1।। रहाउ।।

सिव नगरी महि आसणि बैसउ कलप तिआगी बादं।
सिडी सबदु सदा धुनि सोहै अहिनिसि पूरै नादं।।2।।

पतु वीचारु गिआन मति डंडा वरतमान बिभूतं।
हरि कीरति रहरासि हमारी गुरमुखि पंथु अतीतं।।3।।

सगली जोति हमारी संमिआ नाना वरन अनेकं।
कहु नानक सुणि भरथरि जोगी पारब्रह्म लिव एकं।।4।।3।।37।।
गुड करि गिआनु धिआनु करि धावै करि करणी कसु पाईऐ।
भाठी भवनु प्रेम का पोचा इतु रसि अमिउ चुआईऐ।।1।।

बाबा मनु मतवारो नाम रसु पीवै सहज रंग रचि रहिआ।
अहिनिसि बनी प्रेम लिव लागी सबदु अनाहद गहिआ।।1।। रहाउ।।

पूरा साचु पिआला सहजे तिसहि पिआए जा कउ नदरि करे।
अंमृतु का वापारी होवै किआ मदि छूछै भाउ धरे।।2।।

गुर की साखी अंमृतु बाणी पीवत ही परवाणु भइआ।
दर दरसन का प्रीतमुद होवै मुकति बैकुंठै करै किआ।।3।।

सिफती रता सद बैरागी जूऐ जनमु न हारै।
कहु नानक सुणि भरथरि जोगी खीवा अंमृत धारै।।4।।4।।38।।

खुरासान खसमाना कीआ हिंदुसतानु डराइआ।
आपै दोसु न देई करता जमु करि मुगलु चडाइआ।।
एती मार पई करलाणै तै की दरदु न आइआ।।1।।
करता तू सभना का सोई।
जे सकता सकते कउ मारे ता मनि रोसु न होई।।1।। रहाउ।।

सकता सीहु मारे पै वगै खसमै सा पुरसाई।
रतन विगाडि विगोए कुतीं मुइआ सार न काई।
आपे जोडि विछोडे आपे वेखु तेरी वडिआई।।2।।

जे को नाउ धराए वडा साद करे मनि भाणे।
खसमै नदरी कीडा आवै जेते चुगै दाणे।।
मरि मरि जीवै ता किछु पाए नानक नामु वखाणे।।3।।5।।39।।

असटपदी

जिन सिरि सोहनि पटीआ मांगी पाइ संधूर।
से सिर काती मुंनीअन्हि गल विचि आवै धूड़ि।
महला अंदरि होदीआ हुणि बहणि न मिलन्हि हदूरि।।1।।
आदेसु बाबा आदेसु।।

आदि पुरख तेरा अंतु न पाइआ करि करि देखहि वेस।।1।। रहाउ।।

जदहु सीआ वीआहीआ लाड़े सोहनि पासि।
हीडोली चडि आईआ दंद खंड कीते रासि।।
उपरहु पाणी वारीऐ झले झिमकनि पासि।।2।।

इकु लखु लहन्हि बहिठीआ लखु लहन्हि खडीआ।
गरी छुहारे खांदीआ माणन्हि सेजड़ीआ।।
तिन्ह गलि सिलका पाईआ तुटन्हि मोतसरीआ।।3।।

धनु जोबनु दुइ वैरी होए जिन्ही रखे रंगु लाइ।
दूता नो फुरमाइआ लै चलै पति गवाइ।।
जे तिसु भावै दे वडिआई जे भावै देइ सजाइ।।4।।

अगो दे जे चेतीऐ तां काइतु मिलै सजाइ।
साहां सुरति गवाईआ रंगि तमासै चाइ।।
बाबरवाणी फिरि गई कुइरु न रोटी खाइ।।5।।

इकता वखत खुआईअहि इकन्हा पूजा जाइ।
चउके विणु हिंदवाणीआ किउ टिके कढहि नाइ।।
रामु न कबहू चेतिओ हुणि कहणि न मिलै खुदाइ।।6।।

इकि धरि आवहि आपणै इकि मिलि पुछहि सुख।
इकन्हा एहा लिखिआ बहि बहि रोवहि दुख।।
जो तिसु भावै सो थीऐ नानक किआ मानुख।।7।।11।।

कहा सु खेल तबेला घोडे कहा भेरी सहनाई।
कहा सु तेगबंद गाडेरडि कहा सु लाल कहवाइ।।
कहा सु आरसीआ मुंह बंके ऐथै दिसहि नाही।।1।।

इहु जगु तेरा तू गोसाई।
एक घड़ी महि थापि उथापे जरु वंडि देवै भाई।।1।। रहाउ।।

कहा सु घर दर मंडप महला कहां सु बंक सराई।

कहा सु सेज सुखाली कामणि जिसु देखि नींद न पाई।
कहा सु पान तंबोली हरमा होईआ छाई माई।।2।।

इसु जरि कारणि घणी विगुती इनि जर घणी खुआई।
पापा बाझहु होवै नाही मुइआ साथि न जाई।।
जिस नो आपि खुआए करता खुसि लए चंगिआई।।3।।
कोटी हू पीर वरजि रहाए जा मीरु सुणिआ धाइआ।
थान मुकाम जले बिज मंदर मुछि मुछि कुइर रुलाइआ।।
कोई मुगलु न होआ अंधा किनै न परचा लाइआ।।4।।

मुगल पठाणा भई लडाई रण महि तेग वगाई।
ओन्ही तुपक ताणि चलाई ओन्ही हसति चिडाई।।
जिन्ह की चीरी दरगह फाटी तिन्हा मरणा भाई।।5।।

इक हिंदवाणी अवर तुरकाणी भटिआणी ठकुराणी।
इकन्हा पेरण सिर खुर पाटे इकन्हा वासु मसाणी।।
जिन्ह के बंके घरी न आइआ तिन्ह किउ रैणि विहाणी ।।6।।

आपे करे कराए करता किस नो आखि सुणाईऐ।।
दुखु सुखु तेरै भाणै होवै किसथै जाइ रुआईऐ।
हुकमी हुकमि चलाए विगसै नानक लिखिआ पाईऐ।।7।।12।।

रागु गूजरी
सबद

तेरा नामु करी चनणाठीआ जे मनु उरसा होइ।
करणी कुंगू जे रलै घट अंतरि पूजा होइ।।1।।
पूजा कीचै नामु धिआईऐ बिनु नावै पूज न होइ।।1।। रहाउ।।

बाहरि देव पखालीअहि जे मनु धोवै कोइ।
जूठि लहै जीउ माजीऐ मोख पइआणा होइ।।2।।

पसू मिलहि चंगिआईआ खड़ खावहि अंमृतु देहि।
नाम विहूणे आदमी धृगु जीवण करम करेहि।।3।।

नेड़ा है दूरि न जाणिअहु नित सारे सम्हाले।
जो देवै सो खावणा कहु नानक साचा हे।।4।।1।।

नाभि कमल ते ब्रह्म उपजे बेद पड़हि मुखि कंठि सवारि।
ता को अंतु ना जाई लखणा आवत जावत रहै गुबारि।।1।।
प्रीतम किउ बिसरहि मेरे प्राणाअधार।
जाकी भगति करहि जन पूरे मुनि जन सेवहि गुर वीचारि।।1।। रहाउ।।

रवि ससि दीपक जाके त्रिभवणि एका जोति मुरारि।
गुरमुखि होइ सु अहिनिसि निरमलु मनमुखि रैणि अंधारि।।2।।

सिध समाधि करहि नित झगरा दुहु लोचन किआ हेरै।
अंतरि जोति सबदु धुनि जागै सतिगुरु झगरु निबेरै।।3।।

सुरि नर नाथ बेअंत अजोनी साचै महलि अपारा।
नानक सहजि मिले जगजीवन नदरि करहु निसतारा।।4।।2।।

एक नगरी पंच चोर बसीअले बरजत चोरी धावै।
त्रिहदस माल रखे जो नानक मोख मुकति सो पावै।।1।।
चेतहु बासदेउ बनवाली। रामु रिदै जपमाली।।1।। रहाउ।।

उरध मूल जिसु साख तलाहा चारि बेदु जितु लागे।।
सहज भाइ जाइ ते नानक पारब्रह्म लिव जागे।।2।।

पारजातु घरि आगनि मेरे पुहप पत्र ततु डाला।
सरब जोति निरंजन संभू छोडहु बहुतु जंजाला।।3।।

सुणि सिखवंते नानकु बिनवै छोडहु माइआ जाला।
मनि बीचारि एक लिव लागी पुनरपि जनमु न काला।।4।।

कामु क्रोधु अहंकारु तजीअले लोभु मोहु तिस माइआ।
मनि ततु अविगतु धिआइआ गुर परसादी पाइआ।।6।।

गिआनु धिआनु सभ दाति कथीअले सेत बरन सभि दूता।
ब्रह्म कमल मधु तासु रसादं जगत नाही सूता।।7।।

महा गंभीर पत्र पाताला नानक सरब जु आइआ।
उपदेस गुरु मम पुनहि न गरभं बिखु तजि अंमृतु पीआइआ।।8।।1।।

रागु वडहंसु

गुणवंती सहु राविआ निरगुणि कूके काइ।
जे गुणवंती थी रहै ता भी सहु रावण जाइ।।1।।

मेरा कंतु रीसालू की धन अवरा रावे जी।।1।। रहाउ।।

करणी कामण जे थीऐ जे मनु धागा होइ।
माणकु मुलि न पाईऐ लीजै चिति परोइ।।2।।

राहु दसाई न जुलां आखां अंमड़ीआसु।
तै सह नालि अकूअणा किउ थीवै घरवासु।।3।।

नानक एको बाहरा दूजा नाही कोइ।
तै सही लगी जे रहै भी सहु रावै सोइ।।4।।2।।

मोरी रुणझुण लाइआ भैणे सावणु आइआ।
तेरे मुंध कटारे जेवडा तिनि लोभी लोभ लोभाइआ।।

तेरे दरसन विटहु खंनीऐ वंजा तेरे नाम विटहु कुरबाणो।
जा तू ता मै माणु कीआ है तुधु बिनु केहा मेरा माणो।।

चूड़ा भनु पलंघ सिउ मुंधे सणु बाही सणु बाहा।
एते वेस करेदीए मुंधे सहु रातो अवराहा।।

ना मनीआरु न चूड़ीआ ना से वंगुड़ीआहा।।
जो सह कंठि न लगीआ जलनु सि वाहड़ीअहा।

सभि सहीआ सहु रावणि गईआ हउ दाधी कै दरि जावा।
अंमाली हउ खरी सुचजी तै सहि एकि भावा।।

माठि गुंदाई पटीआ भरीऐ मांग संधूरे।
अगै गई न मंनीआ मरउ विसूरि विसूरे।।

मै रोवंदी सभु जगु रुना रुंनडे वणहु पंखेरु।
इकु न रुना मेरे तनका बिरहा जिनि हउ पिरउ विछोरु।।

सुपनै आइआ भी गइआ मै जलु भरिआ रोइ।
आइ न सका तुझ कनि पिआरे भेजि न सका कोइ।।

आउ सभागी नीदड़ीए मतु सहु देखा सोइ।
तै साहिब की बात जि आखै कहु नानक किआ दीजै।।

सीसु वढे करि बैसणु दीजै विणु सिर सेव करीजै।।
कीउ न मरीजै जीअड़ा न दीजै जा सहु भइआ विडाणा।।1।।3।।

आवहु मिलहु सहेली हो सचडा नामु लएहां।
रोवह बिरहा तनका आपणा साहिबु सम्हालेहां।।

साहिबु सम्हालिह पंथु निहालिह असा भि ओथै जाणा।
जिस का कीआ तिन ही लीआ होआ तिसै का भाणा।।

जो तिनि करि पाइआ सु आगै आइआ असी कि हुकमु करेहा।
आवहु मिलहु सहेली हो सचडा नामु लएहा।।1।।

मरणु न मंदा लोका आखीऐ जे मरि जाणै ऐसा कोइ।
सेविहु साहिबु संम्रथु आपणा पंथु सुहेला आगै होइ।।

पंथि सुहेलै जावहु तां फलु पावहु आगै मिलै वडाई।
भेटै सिउ जावहु सचि समावहु तां पति लेखै पाई।।

महली जाइ पावहु खसमै भावहु रंग सिउ रलीआ माणै।
मरणु न मंदा लोका आखीऐ जे कोई मरि जाणै।।2।।

मरणु मुणसा सूरिआ हकु है जो होइ मरनि परवाणो।
सूरे सेई आगै आखीअहि दरगह पावहि साची माणो।।

दरगह माणु पावहि पति सिउ जावहि आगै दूखु न लागै।
करि एकु धिआवहि तां फलु पावहि जितु सेविऐ भउ भागै।।

ऊचा नही कहणा मन महि रहणा आपे जाणै जाणो।
मरणु मुणसां सूरिआ हकु है जो होइ मरहि परवाणो।।3।।

नानक किसनो बाबा रोईऐ बाजी है इहु संसारे।
कीता वेखै साहिबु आपणा कुदरति करे बीचारो।।

कुदरति बीचारे धारण धारे जिनि कीआ सो जाणै।
आपे वेखै आपे बूझै आपे हुकमु पछाणै।।

जिनि किछु कीआ सोई जाणै ताका रूपु अपारो।
नानक किसनो बाबा रोईऐ बाजी है इहु संसारो।।4।।2।।

रागु सोरठि

मनु हाली किरसाणी करणी सरमे पाणी तनु खेतु।
नामु वीजु संतोखु सुहागा रखु गरीबी वेसु।।
भाउ करम करि जंमसी से घर भागठ देखु।।1।।

बाबा माइआ साथि न होइ।
इन माइआ जगु मोहिआ विरला बूझै कोइ।। रहाउ।।

हाणु हटु करि आरजा सचु नामु करि वथु।
सुरति सोच करि भांडसाल तिसु विचि तिसनो रखु।।
वणजारिआ सिउ वणजु करि लै लाहा मन हसु।।2।।

सुणि सासत सउदागरी सतु थोडे लै चलु।
खरचु बंनु चंगिआईआ मतु मन जाणहि कलु।।
निरंकार कै देसि जाहि ता सुखि लहहि महलु।।3।।

लाइ चितु करि चाकरी मंनि नामु करि कंमु।
बंनु बदीआ करि धावणी ताको आखै धंनु।।
नानक वेखै नदरि करि चडै चवगण वंनु।।4।।2।।

हउ पापी पतितु परम पाखंडी तूं निरमलु निरंकारी।
अंमृत चाखि परम रसि राते ठाकुर सरणि तुमारी।।1।।

करता तू मै माणि निमाणे।
माणु महतु नामु धनु पलै साचै सबदि समाणे।। रहाउ।।

तू पूरा हम ऊरे होछे तू गउरा हम हउरे।
तुझ ही मन राते अहिनिसि पर भाते हरि रसना जपि मन रे।।2।।

तुम साचे हम तुम ही राचे सबदि भेदि फुनि साचे।
अहिनिसि नामि रते से सूचे मरि जनमे से काचे।।3।।

अवरु न दीसै किसु सालाही तिसहि सरीकु न कोई।
प्रणवति नानकु दासनिदासा गुरमति जानिआ सोई।।4।।5।।

अलख अपार अगंम अगोचर ना तिसु कालु न करमा।
जाति अजाति अजोनी संभउ ना तिसु भाउ न भरमा।।1।।

साचे सचिआर विटहु कुरबाणु।
ना तिसु रूप वरनु नही रेखिआ साचै सबदि नीसाणु।।रहाउ।।

ना तिसु मात पिता सुत बंधप ना सितु कामु न नारी।
अकुल निरंजन अपरंपरपरु सगली जोति तुमारी।।2।।

घट घट अंतरि ब्रह्मु लुकाइआ घटि घटि जोति सबाई।
वजर कपाट मुकते गुरमती निरभै ताड़ी लाई।।3।।

जंत उपाइ कालु सिरि जंता वसगति जुगति सबाई।
सतिगुरु सेवि पदारथु पावहि छूटहि सबदु कमाई।।4।।

सूचै भाडे साचु समावै विरलै सूचाचारी।
तंतै कउ परमतंतु मिलाइआ नानक सरणि तुमारी।।5।।6।।

आसा मनसा बंधनी भाई करम धरम बंधकारी।
पाप पुंनि जगु जाइआ भाई बिनसै नामु विसारी।।
इह माइआ जगि मोहणी भाई करम सभे वेकारी।।1।।

सुणि पंडित करमाकारी।
जितु करमि सुखु ऊपजै भाई सु आतम ततु वीचारी।। रहाउ।।

सासतु बेदु बकै खडो भाई करम करहु संसारी।
पाखंडि मैलु न चूकई भाई अंतरि मैलु विकारी।।
इन बिधि डूबी माकुरी भाई ऊंडी सिर कै भारी।।2।।

दुरमति घणी विगूती भाई दूजै भाइ खुआई।
बिनु सतिगुर नामु न पाईऐ भाई बिनु नामै भरमु न जाई।।
सतिगुरु सेवे ता सुखु पाए भाई आवणु जाणु रहाई।।3।।

साचु सहजु गुर ते ऊपजै भाई मनु निरमलु साचि समाई।
गुरु सेवे सो बूझै भाई गुर बिनु मगु न पाई।।
जिसु अंतरि लोभु कि करम कमावै भाई कूड़ु बोलि बिखु खाई।।4।।

पंडित दही विलोईऐ भाई विचहु निकलै तथु।
जलु मथीऐ जलु देखीऐ भाई इहु जगु एहा वथु।।
गुर बिनु भरमि विगूचीऐ भाई घटि घटि देउ अलखु।5।।

इहु जगु तागो सूत को भाई दहदिसि बाधो माइ।
बिनु गुर गाठि न छूटई भाई थाके करम कमाइ।।
इहु जगु भरमि भुलाइआ भाई कहणा किछू न जाइ।।6।।

गुर मिलिऐ भउ मनि वसै भाई भै मरणा सचु लेखु।
भजनु दानु चंगिआईआ भाई दरगह नामु विसेखु।।
गुरु अंकसु जिनि नामु दडाइआ भाई मनि वसिआ चूका भेखु।।7।।

इहु तनु हाटु सराफ को भाई वखरु नामु अपारु।
इहु वखरु वापारी सो छडै भाई गुर सबदि करे वीचारु।।
धनु वापारी नानका भाई मेलि करे वापारु।।8।।2।।

रागु धनासरी

हम आदमी हां इक दमी मुहलति मुहतु न जाणा।
नानक बिनवै तिसै सरेवहु जाके ज़ीअ पराणा।।1।।

अंधे जीवना वीचारि देखि केते के दिना।।1।। रहाउ।।

सासु मासु सभु जीअ तुमारा तूं मै खरा पिआरा।
नानकु साइरु एव कहतु है सचे परवदगारा।।2।।

जे तू किसै न देही मेरे साहिबा किआ को कढै गहणा।
नानकु बिनवै सो किछु पाईऐ पुरबि लिखे का लहणा।।3।।

नामु खसम का चिति न कीआ कपटी कपटु कमाणा।
जम दुआरि जा पकडि चलाइआ ता चलदा पछुताणा।।4।।

जब लगु दुनीआ रहीऐ नानक किछु सुणीऐ किछु कहीऐ।
भालि रहे हम रहणु न पाइआ जीवतिआ मरि रहीऐ।।5।।2।।

चोरु सलाहे चितु न भीजै। जे बदी करे ता तसू न छीजै।।
चोर की हामा भरे न कोइ। चोरु कीआ चंगा किउ होइ।।1।।

सुणि मन अंधे कुते कूडिआर। बिनु बोले बूझीऐ सचिआर।।1।। रहाउ।।

चोरु सुआलिउ चोरु सिआणा खोटे का घुलु एकु दुगाणा।।
जे साथि रखीऐ दीजै रलाइ। जा परखीऐ खोटा होइ जाइ।।2।।

जैसा करै सु तैसा पावै। आपि बीजि आपे ही खावै।।
जे वडिआईआ आपे खाइ। जेही सुरति तेहै राहि जाइ।।3।।

सउ कूडिआ कूडु कबाडु। भावै सभु आखउ संसारु।।
तुधु भावै अधी परवाणु। नानक जाणै जाणु सुजाणु।।4।।4।।6।।

काइआ कागदु मनु परवाणा। सिर के लेख न पडै इआणा।।
दरगह घड़ीअहि तीने लेख। खोटा कांमि न आवै वेखु।।1।।

नानक जे विच रूपा होइ। खरा खरा आखै सभु कोइ।। रहाउ।।

कादी कूडु वोलि मलु खाइ। ब्राह्मणु नावै जीवा घाइ।।
जोगी जुगति न जाणै अंधु। तीने ओजाडे का बंधु।।2।।

गुरु सागरु रतनी भरपूरे। अंमृतु संत चुगहि नही दूरे।।
हरि रसु चोग चुगहि प्रभ भावै। सरवर महि हंसु प्रानपति पावै।।1।।

किआ बगु बपुडा छपुडी नाइ। कीचडि डूबै मैलु न जाइ।।1।। रहाउ।।

रखि रखि चरन धरे वीचारी। दुबिधा छोडि भए निरंकारी।।
मुकति पदारथु हरि रसु चाखे। आवण जाण रहे गुरि रखे।।2।।

सरवर हंसा छोडि न जाइ। प्रेम भगति करि सहजि समाइ।।
सरवर महि हंसु हंस महि सागरु। अकथ कथा गुर वचनी आदरु।।3।।

सुंन मंडल इकु जोगी वैसे। नारि न पुरखु कहहु कोऊ कैसे।।
तृभवण जोति रहे लिव लाई। सुरि नर नाथ सचे सरणाई।।4।।

आनंद मूलु अनाथ अधारी। गुरमुखि भगति सहजि वीचारी।।
भगतिवछल भै काटणहारे। हउमै मारि मिले पगु धारे।।5।।

अनिक जतन करि कालु संताए। मरणु लिखाइ मंडल महि आए।।
जनमु पदारथु दुबिधा खोवै। आपु न चीनसि भ्रमि भ्रमि रोवै।।6।।

कहतउ पडतउ सुणतउ एक। धीरज धरमु धरणीधर टेक।।
जतु सतु संजमु रिदै समाए। चउथे पद कउ जे मनु पतीआए।।7।।

साचे निरमल मैलु न लागै। गुर कै सबदि भरम भउ भागै।।
सूरति मूरति आदि अनूपु। नानक जाचै साचु सकपु।।8।।1।।

आरती

गगन भै थालु रवि चंदु दीपक बने तारिका मंडल जनक मोती।।
धूपु मल आन लो पवणु चवरो करे सगल बनराइ फुलत जोती।।1।।

कैसी आरती होइ भवखंडना तेरी आरती।।
अनहता सबद वाजंत भेरी।।राहाउ।।
सहस तव नैन नन नैन है तोहि कउ सहस मूरति नना एक तोही।।
सहस पद बिमल नन एक पद गंध बिनु सहस तव गंध इ चलत मोही।।2।।

सभ महि जोति जोति है सोइ।।
गुरसाखी जोति परगटु होइ।।
जो तिसु भवै सु आरती होइ।।3।।

हरि चरण कमल मकरंद लोभित मनो अनदिनो मोहि आही पिआसा।।
कृपा जलु देहि नानक सारिंग कउ होइ जा ते तेरै नाभि वासा।।4।।

रागु तिलंग

यक अरज गुफतम पेसि तो दर गोस कुन करतार।
हका कबीर करीम तू बेऐब परवदगार।।1।।

दुनीआ मुकामे फानी तहकीक दिल दानी।
मम सर मूइ अजाराईल गिरफतह दिल हेचि न दानी।।1।। रहाउ।।

जन पिसर पदर बिरादरां कस नेस दसंतगीर।
आखिर बिअफतम कस न दारद च सवद तकबीर।। 2।।

सब रोज गसतम दर हवा करदेम बदी खिआल।
गाहे न नेकी कार करदम मम ई चिनि अहवाल।। 3।।

बदबखत हम चु बखील गाफिल बेनजर बेवाक।
नानक बुगोयद जनु तुरा तेरे चाकारां पाखाक।। 4।।

इआनडीए मानडा काइ करेहि।
आपनडै घरि हरि रंगो की न माणेहि।।
सहु नेड़ै धन कंमलीए बाहरु किआ ढूढेहि।।
भै कीआ देहि सलाईआ नैणी भाव का करि सीगारो।।
ता सोहागणि जाणीऐ लागी जा सहु धरे पिआरो।। 1।।

इआणी बाली किआ करे जा धन कंत न आवै।
करण पलाह करे बहुतेरे सा धुन महलु न पावै।।
विणु करमा किछु पाईऐ नाही जे बहुतेरा धावै।।
लब लोभ अहंकार की माती माइआ माहि समाणी।।
इनी बाती सहु पाईऐ नाही भई कामणि इआणी।। 2।।

जाइ पुछहु सोहागणी वाहै किनी बाती सहु पाईऐ।
जो किछु करे सो भला करि मानीऐ हिकमति हुकमु चुकाईऐ।।
जाकै प्रेमि पदारथु पाईऐ तउ चरणी चितु लाईऐ।।
सहु कहै सा कीजै तनु मनो दीजै ऐसा परमलु लाईऐ।।
एव कहहि सोहागणी भैणे इनी बाती सहु पाईऐ।।3।।

आपु गवाईऐ ता सहु पाईऐ अउरु कैसी चतुराई।
सहु नदीर करि देखै सो दिनु लेखै कामणि नउनिधि पाई।।
आपणै कंत पिआरी सा सोहागणि नानक सा सभराई।।
ऐसै रंगि राती सहज की माती अहिनिसि भाइ समाणी।।
सुंदरि साइ सरूप बिचखणि कहीऐ सा सिआणी।।4।।2।।4।।

जैसी मै आवै खसम की बाणी तैसड़ा करी गिआनु वे लालो।
पाप की जंज लै काबलहु धाइआ जोरी मंगै दानु वे लालो।।
सरमु धरमु दुइ छपि खलोए कूड़ु फिरै परधानु वे लालो।
काजीआ बामणा की गलि थकी अगदु पडै सैतानु वे लालो।।
मुसलमानीआ पड़हि कतेबा कसट महि करहि खुदाइ वे लालो।।
जाति सनाती होरि हिंदवाणीआ एहि भी लेख लाइ वे लालो।।
खून के सोहिले गावीअहि नानकु रतु का कुंगू पाइ वे लालो।।1।।

साहिब के गुण नानकु गावै मास पुरी विचि आखु मसोला।
जिनि उपाई रंगि रवाई बैठा वेखै वखि इकेला।।
सचा सो साहिबु सचु तपावसु सचडा निआउ करेगु मसोला।
काइआ कपड़ु टुकु टुकु होसी हिंदुसतान समालसी बोला।।
आवनि अठतरै जानि सतानवै होरु भी उठसी मरद का चेला।
सच की बाणी नानकु आखै सुणाइसी सच की बेला।।2।।3।5।।

रागु सूही

अंतरि वसै न बाहरि जाइ। अंमृतु छोडि काहे बिखु खाइ।।1।।
ऐसा गिआनु जपहु मन मेरे। होवहु चाकर साचे केरे।।1।। रहाउ।।
गिआनु धिआनु सभु कोई रवै। बांधनि बांधिआ सभु जगु भवै।।2।।
सेवा करे सु चाकरु होइ। जलि थलि महीअलि रवि रहिआ सोइ।।3।।
हम नही चंगे बुरा नही कोइ। प्रणवति नानकु तारे सोइ।।4।।1।।2।।

उजलु कैहा चिलकणा घोटिम कालडी मसु।
धोतिआ जूठि न उतरै जे सउ धोवा तिसु।।1।।

सजण सेई नालि मै चलदिआ नालि चलन्हि।
जिथै लेखा मंगीऐ तिथै खडे दसंन।।1।। रहाउ।।

कोठे मंडप माड़ीआ पासहु चितवीआहा।
ढठीआ कंमि न आवन्ही विचहु सखणीआहा।।2।।

बगा बगे कपडे तीरथ मंझि वसंन्हि।
घुटि घुटि जीआ खावणे बगे ना कहीअन्हि।।3।।

सिंमल रुखु सरीरु मै मै जन देखि भुलंन्हि।
से फल कंमि न आवन्ही ते गुण मै तनि हंन्हि।।4।।

अंधुलै भारु उठाइआ डूगर पाट बहुतु।
अखी लोड़ी ना लहा हउ चड़ि लंघा कितु।।5।।

चाकरीआ चंगिआईआ अवर सिआणप कितु।
नानक नामु समालि तू बधा छुटहि जितु।।6।।1।।3।।

जोगु न खिंथा जोगु न डडै जोगु न भसम चड़ाईऐ।
जोगु न मुंदी मूंडि मुडाइऐ जोगु न सिगी वाईऐ।
अंजन माहि निरंजनि रहीऐ जोग जुगति इव पाईऐ।।1।।

गली जोगु न होई।
एक दसटि करि समसरि जाणै जोगी कहीऐ सोई।।1।। रहाउ।।

जोगु न बाहरि मड़ी मसाणी जोगु न ताड़ी लाईऐ।
जोगु न देसि दिसंतरि भविऐ जोगु न तीरथि नाईऐ।।
अंजन माहि निरंजन रहीऐ जोग जुगति इव पाईऐ।।2।।

सतिगुरु भेटै ता सहसा तुटै धावतु वरजि रहाईऐ।
निझरु झरै सहज धुनि लागै घर ही परचा पाईऐ।।
अंजन माहि निरंजनि रहीऐ जोग जुगति इव पाईऐ।।4।।1।।8।।

कउणु तराजी कवणु तुला तेरा कवणु सराफु बुलावा।
कउणु गुरु कै पहि दीखिआ लेवा कै पहि मेलु करावा।।1।।

मेरे लाल जीउ तेरा अंसु न जाणा।
तूं जलि थलि महीअलि भरिपुरि लीणा तूं आपे सरब समाणा।।1।। रहाउ।।

मनु ताराजी चितु तुला तेरी सेव सराफु कमावा।
घट ही भीतरि सो सहु तोली इन बिधि चितु रहावा।।2।।

आपे कंडा तोलु तराजी आपे तोलणहारा।
आपे देखै आपे बूझै आपे है बणजारा।।3।।

अंधुला नीच जाति परदेसी खिनु आवै तिलु जावै।
ता की संगति नानकु रहदा किउ करि मूड़ा पावै।।4।।2।।9।।

असटपदीआं

सभि अवगण मै गुणु नही कोई। किउकरि कंत मिलावा होई।।1।।

ना मै रूपु न वंके नैणा। ना कुल ढंगु न मीठे बैणा।।1।। रहाउ।।

सहजि सीगार कामणि करि आवै। ता सोहागणि जा कंतै भावै।।2।।

ना तिसु रूपु न रेखिआ काई। अंति न साहिबु सिमरिआ जाई।।3।।

सुरति मति नाही चतुराई। करि किरपा प्रभ लावहु पाई।।4।।

खरी सिआणी कंत न भाणी। माइआ लागी भरमि भुलाणी।।5।।

हउमै जाई ता कंत समाई। तउ कामणि पिआरे नव निधि पाई।।6।।

अनिक जनम विछुरत दुखु पाइआ। करु गहि लेहु प्रीतम प्रभ राइआ।।7।।
भणति नानक सहु है भी होसी। जै भावै पिआरा तै रावेसी।।8।।1।।

मंञु कुचजी अंमावणि डोमड़े हउ किउ सहु रावणि जाउ जीउ।
इकदू इकि चड़दीआ कउणु जाणै मेरा नाउ जीउ।।
जिन्ही सखी सहु राविआ से अंबी छावड़ीएहि जीउ।
से गुण मंञु न आवनी हउ कै जी दोस धरेउ जीउ।।
किआ गुण तेरे विथरा हउ किआ किआ घिना तेरा नाउ जीउ।
इकतु टोलि न अंबड़ा हउ सद कुरबाणै तेरै जाउ जीउ।।
सुइना रूपा रंगुला मोती त माणिकु जीउ।

से वसतू सहि दितीआ मै तिन्ह सिउ लाइआ चितु जीउ।।
मंदर मिटी सदड़े पथर कीते रासि जीउ।
हउ एनी टोली भुलीअसु तिसु कंत न बैठी पासि जीउ।।
अंबरि कूंजा कुरलीआ बग बहिठै आइ जीउ।
सा धन चली साहुरै किआ मुहु देसी अनै जाइ जीउ।।
सुती सुती झालु थीआ भुली वाटडीआसु जीउ।
तै सह नालहु मुतीअसु दुखा कूं धरीआसु जीउ।।
तुधु गुण मै सभि अवगणा इक नानक की अरदासि जीउ।
सभि राती सोहागणी मै डोहागणि काई राति जीउ।।1।।

जा तू ता मै सभु को तू साहिबु मेरी रासि जीउ।
तुधु अंतरि हउ सुखि वसा तूं अंतरि साबासि जीउ।।
भाणै तखति वडाईआ भाणै भीख उदासि जीउ।
भाणै थल सिरि सरु वहै कमलु फुलै आकासि जीउ।।
भाणै भव जलु लंघीऐ भाणै मंझि भरीआसि जीउ।
भाणै सा सहु रंगुला सिफति रता गुणतासि जीउ।।
भाणै सहु भीहावला हउ आवणि जाणि मुईअसि जीउ।
तू सहु अगमु अतोलवा हउ कहि कहि ढहि पईअसि जीउ।।
किआ मागउ किआ कहि सुणी मै दरसन भूख पिआसि जीउ।
गुर सबदी सहु पाइआ सचु नानक की अरदासि जीउ।।2।।

हम घरि साजन आए। साचै मेलि मिलाए।।
सहजि मिलाए हरि मनि भाए पंच मिले सुखु पाइआ।
साई वसतु परापति होई जिसु सेती मनु लाइआ।।
अनदिनु मेलु भइआ मनु मानिआ घर मंदर सोहाए।
पंच सबद धुनि अनहद बाजे हम घरि साजन आए।।1।।

आवहु मीत पिआरे। मंगल गावहु नारे।।
सचु मंगलु गावहु ता प्रभु भावहु सोहिलड़ा जुग चारे।
अपनै घरि आइआ थानि सुहाइआ कारज सबदि सवारे।।
गिआन महा रसु नेत्री अंजनु त्रिभवण रूपु दिखाइआ।
सखी मिलहु रसि मंगलु गावहु हम घरि साजनु आइआ।।2।।

मनु तनु अंमृति भिंना। अंतरि प्रेमु रतंना।।
अंतरि रतनु पदारथु मेरै परम ततु वीचारो।

जंत भेख तू सफलिओ दाता सिरि सिरि देवणहारो।।
तू जानु गिआनी अंतरजामी आपे कारणु कीना।
सुनहु सखी मनु मोहनि मोहिआ तनु मनु अंमृति भीना।।3।।
आतम रामु संसारा। साचा खेलु तुम्हारा।।

सचु खेलु तुम्हारा अगम अपारा तुधु बिनु कउणु बुझाए।
सिध साधिक सिआणे केते तुझ बिनु कवणु कहाए।।
कालु बिकालु भए देवाने मनु राखिआ गुरि ठाए।
नानक अवगण सबदि जलाए गुण संगमि प्रभु पाए।।4।।1।।2।।

वार सूही

जिनी न पाइओ प्रेम रसु कंत न पाइओ साउ।
सुंजे घर का पाहुणा जिउ आइआ तिउ जाउ।।16।।

सउ ओलाम्हे दिनै के राती मिलनि सहंस।
सिफति सलाहणु छडि कै करंगी लगा हंसु।।
फिटु इवेहा जीविआ जितु खाइ बधाइआ पेटु।
नानक सचे नाम विणु सभो दुसमन हेतु।।17।।

दीवा बलै अंधेरा जाइ।
बेद पाठ मति पापा खाइ।।
उगवै सुरुजु न जापै चंदु।
जह गिआन प्रगासु अगिआनु मिटंतु।।
बेद पाठ संसार की कार।
पढि पढि पंडित करहि वीचार।।
बिनु बूझे सभ होइ खुआर।
नानक गुरमुखि उतरसि पार।।18।।

सबदै सादु न आइओ नामि न लगो पिआरु।
रसना फिका बोलणा नित नित होइ खुआरु।
नानक पइऐ किरति कमावणा कोइन मेटणहारु।।19।।

रागु बिलावलु

मनु मंदरु तनु वेस कलंदरु घट ही तीरथि नावा।
एकु सबदु मेरै प्रानि बसतु है बाहुड़ि जनमि न आवा।।1।।

मनु बेधिआ दइआल सेती मेरी माई। कउणु जाणै पीर पराई।।
हम नाही चिंत पराई।।1।। रहाउ।।

अगम अगोचर अलख चिंता करहु हमारी।
जलि थलि महीअलि भरिपुरि लीणा घटि घटि जोति तुम्हारी।। 2 ।।

सिख मति सभ बुधि तुम्हारी मंदरि छावा तेरे।
तुझ बिनु अवरु न जाणा मेरे साहिबा गुण गावा नित तेरे।। 3 ।।

जीअ जंत सभि तुम्हारी सरब चिंत तुधु पासे।
जो तुधु भावै सोई चंगा इक नानक की अरदासे।। 4 ।।2 ।।

एकम एंकाकारु। अमरु अजोनो जाति न जाला।।
अगम अगोचरु रूपु न रेखिआ। खोजत खोजत घटि घटि देखिआ।।
जो देखि दिखावै तिस कउ बलि जाई। गुरपरसादि परमपदु पाई।। 1 ।।

किआ जपु जापउ बिनु जगदीसै। गुर कै सबदि महलु घरु दीसै।।1 ।। रहाउ।।

दूजै भाइ लगे पछुताणे। जम दरि बाधे आवण जाणे।।
किआ लै आवहि किआ ले जाहि। सिरि जमु कालु सि चोटा खाहि।।
बिनु गुर सबद न छूटसि कोइ। पाखंडि कीन्है मुकति न होइ।।2 ।।

आपे सचु कीआ कर जोडि। अंडज फोडि जोडि विछोडि।।
धरति अकासु कीए वैसण कउ थाउ। राति दिनंतु कीए भउ भाउ।।
जिनि कीए करि वेखणहारा। अवरु न दूजा सिरजणहारा।। 3 ।।
तृतीआ ब्रह्मा बिसनु महेसा। देवी देव उपाए वेसा।।
जोती जाती गणत न आवै। जिनि साजी सो कीमति पावै।।
कीमति पाइ रहिआ भरपूरि। किसु नेड़ै किसु आखा दूरि।। 4 ।।

चउथि उपाए चारे वेदा। खाणी चारे बाणी भेदा।।
असट दसा खटु तीनि उपाए। सो बूझै जिसु आपि बुझाए।।
तीनि समावै चउथै वासा। प्रणवति नानक हम ताके दासा।।5।।

पंचमी पंच भूत बेताला। आपि अगोचरु पुरखु निराला।।
इकि भ्रमि भूले मोह पिआसे। इकि रसु चाखि सबदि तृपतासे।।
इकि रंगि राते इकि मरि धूरि। इकि दरि घरि साचै देखि हदूरि।।6।।

झूठे कउ नाही पति नाउ। कबहु न सूचा काला काउ।।
पिंजरि पंखी बंधिआ कोइ। छेरी भरमै मुकति न होइ।।
तउ छूटै जा ख़समु छडाए। गुरमति मेले भगति द्रिड़ाए।।7।।

खसटी खटु दरसन प्रभ साजे। अनहद सबदु निराला बाजे।।
जे प्रभ भावै ता महलि बुलावै। सबदे भेदे तउ पति पावै।
करि करि वेस खपहि जलि जावहि। साचै साचै साचि समावहि।।8।।

सपतमी सतु संतोख सरीरि। सात समुद भरे निरमल नीरि।।
भजनु सीलु सचु रिदै वीचारि। गुर कै सबदि पावै सभि पारि।।
मनि साचा मुखि साचउ भाइ। सचु नीसाणै ठाक न पाइ।।9।।

असटमी असट सिधि बुधि साधै। सचु निहकेवलु करमि अराधै।।
पउणु पाणी अगनी बिसराउ। तही निरंजनु साचो नाउ।।
तिसु महि मनूआ रहिआ लिव लाइ। प्रणवति नानकु, कालु न खाइ।।10।।

नाउ नउमी नवे नाथ नव खंडा। घटि घटि नाथु महा बलवंडा।।
आई पूता इहु जगु सारा। प्रभ आदेसु आदि रखवारा।।

आदि जुगादी है भी होगु। ओहु अपरंपरु करणै जोगु।।11।।

दसमी नामु दानु इसनानु। अनदिनु भजनु सचा गुण गिआनु।।
सचि मैलु न लागै भ्रम भउ भागै। बिलमु न तूटसि काचै तागै।।
जिउ तागा जगु एवै जाणहु। असथिरु चीतु साचि रंगु माणहु।।12।।

एकादसी इकु रिदै वसावै। हिंसा ममता मोहु चुकावै।।
फलु पावै व्रतु आतम चीनै। पाखंडि राचि ततु नही बीनै।।
निरमलु निराहार निहकेवलु। सूचै साचे ना लागै मलु।।13।।

जह देखउ तह एको एका। होरि जीअ उपाए वेको वेका।।
फलोहार कीए फलु जाइ। रस कस खाए सादु गवाइ।।
कूडै लालचि लपटै लपटाइ। छूटै गुरमुखि साचु कमाइ।।14।।

दुआदसि मुद्रा मनु अउधूता। अहिनिसि जागहि कबहि न सूता।।
जागतु जागि रहै लिव लाइ। गुर परचै तिसु कालु न खाइ।।
अतीत भए मारे बैराई। प्रणवति नानक तह लिव लाई।।15।।

दुआदसी दइआ दानु करि जाणै। बाहरि जातो भीतरि आणै।।
बरती बरत रहै निहकाम। अजपा जापु जपै मुखि नाम।।
तीनि भवण महि एको जाणै। सभि सुचि संजुम साचु पछाणै।।16।।

तेरसि तरवर समुद कनारै। अंमृतु मूलु सिखरि लिव तारै।।
डर डरि मरै न बूडै कोइ। निडरु बूडि मरै पति खोइ।।
डर महि घरु घर महि डरु जाणै। तखति निवासु सचु मनि भाणै।।17।।

चउदसि चउथे था वहि लहि पावै। राजस तामस सत काल समावै।।
ससीअर कै घरि सुरु समावै। जोग जुगति की कीमति पावै।।
चउदसि भवन पाताल समाए। खंड ब्रह्मंड रहिआ लिव लाए।।18।।

अमावसिआ चंदु गुपतु गैणारि। बुझहु गिआनी सबदु वीचारि।।
ससीअरु गगनि जोति तिहु लोई। करि करि वेखै करता सोई।।
गुर दे दीसै सो तिस ही माहि। मनमुखि भूले आवहि जाहि।।19।।

घरु दरु थापि थिरु थानि सुहावै। आपु पछाणै जा सतिगुरु पावै।।
जह आसा तह बिनसि विनासा। फुटै खपरु दुबिधा मनसा।।
ममता जाल ते रहै उदासा प्रणवति नानक हम ताके दासा।।20।।1।।

रागु रामकली

कोई पड़ता सहसाकिरता कोई पड़ै पुराना।
कोई नामु जपै जपमाली लागै तिसै धिआना।।
अवही कवही किछू न जाना तेरा एको नामु पछाना।।1।।

न जाणा हरे मेरी कवन गते।
हम मूरख अगिआन सरनि प्रभ तेरी।।
करि किरपा राखहु मेरी लाज पते।।1।।रहाउ।।

कबहू जीअड़ा उभि चड़तु है कबहू जाइ पइआले।
लोभी जीअड़ा थिरु न रहतु है चारे कुंडा भाले।।2।।

मरणु लिखाइ मंडल महि आए जीवणु साजहि माई।
एकि चले हम देखह सुआमी भाहि बलंती आई।।3।।

न किसी का मीतु न किसी का भाई न किसै बापु न माई।
प्रणवति नानक जे तू देवहि अंते होइ सखाई।।4।।1।।

सरब जोति तेरी पसरि रही।
जह जह देखा तह नरहरी।।1।।

जीवन तलब निवारि सुआमी।
अंध कूपि माइआ मनु गाडिआ किउकरि उतरउ पारि सुआमी।।1।।रहाउ।।

जह भीतरि घटि भीतरि वसिआ बाहरि काहे नाही।
तिन की सार करे नित साहिबु सदा चिंत मन माही।।2।।

आपे नेड़ै आपे दूरि। आपे सरब रहिआ भरपूरि।
सतगुरु मिलै अंधेरा जाइ। जह देखा तह रहिआ समाइ।।3।।

अंतरि सहसा बाहरि माइआ नैणी लागसि बाणी।
प्रणवति नानक दासनिदासा परतापहिगा प्राणी।।4।।2।।

सुरति सबदु साखी मेरी सिगी बाजै लोकु सुणे।
पतु झोली मंगण कै ताई भीखिआ नामु पड़े।।1।।
बाबा गोरखु जागै।
गोरखु सो जिनि गोइ उठाली करते बार न लागै।।1।। रहाउ।।

प्राणी प्राण पवणि बंधि राखे चंदु सूरजु मुखि दीए।
मरण जीवण कउ धरती दीनी एते गुण विसरे।।2।।

सिध साधिक अरु जोगी जंगम पीर पुरस बहुतेरे।
जे तिन मिला त कीरति आखा ता मनु सेव करे।।3।।

कागद लूणु रहै घृत संगे पाणी कमलु रहै।
ऐसे भगत मिलहि जन नानक तिन जमु किआ करे।।4।।4।।

सुणि माछिंद्रा नानकु बोलै। वसगति पंच करे नह डोलै।
ऐसी जुगति जोग कउ पाले। आपि तरै सगले कुल तारे।।1।।
सो अउधूत ऐसी मति पावै। अहिनिसि सुंन समाधि समावै।।1।। रहाउ।।

भिखिआ भाइ भगति भै चलै। होवै सु तृपति संतोखि अमुलै।।
धिआन रूपि होइ आसणु पावै। सचि नामि ताडी चितु लावै।।2।।

नानकु बोलै अंमृत वाणी। सुणि माछिंद्रा अउधू नीसाणी।
आसा माहि निरासु वलाए। निहचउ नानक करते पाए।।3।।

प्रणवति नानकु अगमु सुणाए। गुर चेले की संधि मिलाए।
दीखिआ दारु भोजनु खाइ। छिअ दरसन की सोझी पाइ।।4।।5।।

सागर महि बूंद बूंद महि सागरु कवणु बुझै बिधि जाणै।
उतभुज चलत आपि करि चीनै आपे ततु पछाणै।।1।।
ऐसा गिआनु वीचारै कोई। तिसते मुकति परमगति होई।।1।। रहाउ।।

दिन महि रैणि रैणि महि दिनीअरु उसन सीत विधि सोई।
ताकी गति मिति अवरु न जाणै गुर बिनु समझ न होई।।2।।

पुरख महि नारि नारि महि पुरखा बुझहु ब्रह्म गिआनी।
धुनि महि धिआनु धिआन महि जानिआ गुरमुखि अकथ कहानी।।3।।

मन महि जोति जोति महि मनूआ पंच मिले गुर भाई।
नानक तिन कै सदि बलिहारी जिन एक सबदि लिव लाई।।4।।9।।

छादन भोजनु मागतु भागै। खुधिआ दुसट जलै दुखु आगै।।
गुरमति नही लीनी दुरमति पति खोई। गुरमति भगति पावै जन कोई।।1।।
जोगी जुगति सहज घरि वासै।
एक दृसटि एको करि देखिआ भीखिआ भाइ सबदि तृपतासै।।1।। रहाउ।।

पंच बैल गडीआ देह धारी रामकला निबहै पति सारी।
धर तूटी गाडी सिर भारि। लकरी बिखरि जरी मंझ भारि।। 2।।

गुर का सबदु वीचारि जोगी। दुखु सुखु सम करणा सोग बिओगी।
भुगति नामु गुर सबदि वीचारी। असथिरु कंधु जपै निरंकारी।। 3।।

सहज जगोटा बंधन ते छूटा। कामु क्रोधु गुर सबदी लूटा।।
मन महि मुंद्रा हरि गुर सरणा। नानक राम भगति जन तरणा।। 4।। 11।।

असटपदीआं

जगु परबोधहि मड़ी बधावहि। आसणु तिआगी काहे सचु पावहि।।
ममता मोहु कामणि हितकारी। ना अउधूती ना संसारी।। 1।।
जोगी बैसि रहहु दुबिधा दुखु भागै।
घरि घरि मागत लाज न लागै।। 1।। रहाउ।।

गावहि गीत न चीनहि आपु। किउ लागी निवरै परतापु।।
गुर कै सबदि रचै मन भाइ। भिखिआ सहज वीचारी खाइ।। 2।।

भसम चडाइ करहि पाखंड। माइआ मोहु सहहि जम डंडु।।
फूटै खापरु भीख न भाइ। बंधनि बाधिआं आवै जाइ।। 3।।

बिंदु न राखहि जती कहावहि। माई मागत त्रै लोभावहि।।
निरदइआ नही जोति उजाला। बूडत बूडे सरब जंजाला।। 4।।

भेख करहि खिंथा बहु बटूआ। झूठो खेलु खेलै बहु नटूआ।।
अंतरि अगनि चिंता बहु जारे। विणु करमा कैसे उतरसि पारे।। 5।।

मुंद्रा फटक बनाई कानि। मुकति नही विदिआ बिगिआनि।।
जिहवा इंद्री सादि लोभाना। पसू भए नही मिटै नीसाना।। 6।।

त्रिविधि लोग त्रिविधि जोगा। सबदु वीचारै चूकसि सोगा।।
ऊजल साचु सु सबदु होइ। जोगी जुगति वीचारे सोइ।। 7।।

तुझ पहि नउनिधि तू करणै जोगु। थापि उथापे करे सु होगु।।
जतु सतु संजमु सचु सु चीतु। नानक जोगी त्रिभवण मीतु।। 8।। 2।।

खुट मुट देही मनु बैरागी। सुरति सबदु धुनि अंतरि जागी।
वाजे अनहदु मेरा मनी लीणा। गुरबचनी सचि नामि पतीणा।। 1।।
प्राणी राम भगति सुखु पाईऐ।
गुरमुखि हरि हरि मीठा लागै हरि हरि नामि समाईऐ।। 1 ।। रहाउ।।

माइआ मोहु विवरजि समाए। सति गुरु भेटै मेलि मिलाए।।
नामु रतनु निरमोलकु हीरा। निरमल नामु रिदै हरि सोहि।। 3।।

सबदु बीचारि भए निरंकारी। गुरमति जागे दुरमति परहारी।।
अनदिनु जागि रहे लिव लाई। जीवन मुकति गति अंतरि पाई।। 4।।

अलिपत गुफा महि रहहि निरारे। तसकर पंच सबदि संघारे।।
परघर जाइ न मनु डोलाए। सहज निरंतरि रहउ समाए।। 5।।

गुरमुखि जागि रहे अउधूता। सद बैरागी ततु परोता।।
जगु सूता मरि आवै जाइ। बिनु गुर सबद न सोझी पाइ।। 6।।

अनहद सबदु वजै दिनु राती। अविगत की गति गुरमुखि जाती।।
तउ जानी जा सबदि पछानी। एको रवि रहिआ निरवानी।।7।।

सुन समाधि सहज मनु राता। तज हउ लोभा एको जाता।।
गुर चेले अपना मनु मानिआ। नानक दूजा मेटि समानिआ।।8।।3 ।।

ओअंकारि ब्रह्मा उतपति। ओअंकारु कीआ जिनि चिति।।
ओअंकारि सैल जुग भए। ओअंकारि बेद निरमए।।
ओअंकारि सबदि उधरे। ओअंकारि गुरमुखि तरे।।
ओनम अखर सुणहु बीचारु। ओनम अखरु त्रिभवण सारु।। 1।।

सुणि पाडे किआ लिखहु जंजाला।
लिखु राग नाम गुरमुखि गोपाला।। 1।। रहाउ।।

ससै सभु जगु सहजि उपाइआ तीन भवन इक जोती।
गुरमुखि वसतु परापति होवै चुणि लै माणक मोती।।
समझै सूझै पड़ि पड़ि बूझै अंति निरंतरि साचा।
गुरमुखि देखै साचु समाले बिनु साचे जगु काचा।।2।।

धधै धरमु धरे धरमापुरि गुणकारी मनु धीरा।
धधै धूलि पडे मुखि मसतकि कंचन भए मनूरा।।

धनु धरणीधरु आपि अजोनी तोलि बोलि सचु पूरा।
करते की मिति करता जाणै के जाणै गुरु सूरा।। 3।।

गिआनु गवाइआ दूजा भाइआ गरबि गले बिखु खाइआ।
गुर रसु गीत बाद नहीं भावै सुणीऐ गहिर गंभीरु गवाइआ।।
गुरि सचु कहिआ अंमृतु लहिआ मनि तनि साचु सुखाइआ।
आपे गुरमुखि आपे देवै आपे अंमृतु पीआइआ।। 4।।

एको एकु कहै सभु कोई हउमै गरबु बिआपै।
अंतरि बाहरि एकु पछाणै इउ घरु महलु सिआपै।।
प्रभु नेड़ै हरि दूरि न जाणहु एको स्रसटि सबाई।
एकंकारु अवरु नही दूजा नानक एक समाई।। 5।।

इसु करते कउ किउ गहि राखहु अफरिओ तुलिओ न जाई।
माइआ के देवाने प्राणी झूठि ठगउरी पाई।।
लबि लोभि मुहताजि विगूते इब तब फिरि पछुताई।
एकु सरेवै ता गति मिति पावै आवणु जाणु रहाई।। 6।।

एकु अचारु रंगु इकु रूपु। पउण पाणी अगनी असरूपु।।
एको भवरु भवै तिहु लोइ। एको बूझै सूझै पति होइ।।
गिआनु धिआनु ले समसरि रहै। गुरमुखि एकु विरला को लहै।।
जिसनो देइ किरपा ते सुखु पाए। गुरु दुहारै आखि सुणाए।।7।।

ऊरम धूरम जोति उजाला। तीनि भवण महि गुर गोपाला।।
ऊगविआ असरुपु दिखावै। करि किरपा अपुनै घरि आवै।।
ऊनवि बरस नीझर धारा। ऊतम सबदि सवारणहारा।।
इसु एके का जाणै भेउ। आपे करता आपे देउ।। 8।।

उगवै सूरु असुर संहारै। ऊचउ देखि सबदि वीचारै।।
ऊपरि आदि अंति तिहु लोइ। आपे करै कथै सुखै सोइ।।
ओहु बिधाता मनु तनु देइ। ओहु बिधाता मनि मुखि सोइ।।
प्रभु जग जीवनु अवरु न कोइ। नानक नाम रते पति होइ।।9।।

राजन राम रवै हितकारि। रण महि लूझै मनूआ मारि।।

राति दिनंति रहै रंगि राता। तीनि भवन जुग चारे जाता।।
जिनि जाता सो तिसही जेहा। अति निरमाइलु सीझसि देहा।।
रहसी रामु रिदै इक भाइ। अतरि सबदु साचि लिव लाइ।।10।।

रोसु न कीजै अंमृतु पीजै रहणु नही संसारे।
राजे राइ रंक नही रहणा आइ जाइ जुग चारे।।
रहण कहण ते रहै न कोई किसु पहि करउ बिनती।
एकु सबदु रामनाम निरोधरु गुरु देवै पति मती।।11।।

लाल मरंती मरि गई घूंघटु खोलि चली।
सासु दिवानी बावरी सिर ते संक टली।।
प्रेमि बुलाई रली सिउ मन महि सबदु अनंदु।
लालि रती लाली भई गुरमुखि भई निचिंदु।। 12।।

लाला नामु रतनु जपि सारु। लबु लोभु बुरा अहंकारु।।
लाड़ी चाड़ी लाइतबारु। मनमुखु अंध मुगध गवार।।
लाहे कारण आइआ जगि। होइ मजूरु गइआ ठगाइ ठगि।
लाहा नामु पूंजी वेसाहु। नानक सची पति सचा पातिसाहु।। 13।।

आइ विगूता जगु जम पंथु। आई न मेटणु को समरथु।।
आथि सैल नीच घरि होइ। आथि देखि निवै जिसु दोइ।।
आथि होइ ता मुगधु सिआना। भगति बिहूना जगु बउराना।।
सभ महि वरते एको सोइ। जिस नो किरपा करे तिसु परगटु होइ।। 14।।

जुगि जुगि थापि सदा निरवैरु। जनमि मरणि नहीं धंधा धैरु।।
जो दीसै सो आपे आपि। आपि उपाइ आपे घट थापि।।
आपि अगोचरु धंधै लोई। जोग जुगति जगजीवनु सोई।।
करि आचारु सचु सुख होई। नाम विहूणा मुकति किव होई।। 15।।

विणु नावै वेरोधु सरीर। किउ न मिलहि काटहि मन पीर।।
वाट वटाऊ आवै जाइ। किआ ले आइआ किआ लै पाइ।।
विणु नावै तोटा सभ थाइ। लाहा मिलै जा देइ बुझाइ।।
वणजु वापारु वणजै वापारी। विणु नावै कैसी पति सारी।। 16।।

गुण वीचारे गिआनी सोइ। गुण महि गिआनु परापति होइ।।
गुणदाता बिरला संसारि। साची करणी गुर वीचारि।।
अगम अगोचरु कीमति नही पाइ। ता मिलीऐ जा लए मिलाइ।।
गुणवंती गुण सारे नीत। नानक गुरमति मिलीऐ मीत।। 17।।

कामु क्रोधु काइआ कउ गालै। जिउ कंचन सोहागा ढालै।।
कसि कसवटी सहै सु ताउ। नदरि सराफ वंनीस चड़ाउ।।
जगत पसू अहं कालु कसाई। करि करतै करणी करि पाई।।
जिनि कीती तिनि कीमति पाई। होर किआ कहीऐ किछु कहणु न जाई।। 18।।

खोजत खोजत अंमृतु पीआ। खिमा गही मन सतिगुरि दीआ।।
खरा खरा आखै सभु कोइ। खरा रतनु जुग चारे होइ।।
खात पीअंत मूए नहीं जानिआ। खिन महि मूए जा सबदु पछानिआ।।
असथिरु चीतु मरनि मनु मानिआ। गुर किरपा ते नामु पछानिआ।। 19।।

गगन गंभीरु गगनंतरि वासु। गुण गावै सुख सहजि निवासु।।
गइआ न आवै आइ न जाइ। गुर परसादि रहै लिव लाइ।।
गगनु अगमु अनाथु अजोनी। असथिक चीत समाधि सगोनी।।
हरि नामु चेति फिरि पवहि न जूनी। गुरमति सारु होर नाम बिहूनी।। 20।।

घर दर फिरि थाकी बहुतेरे। जाति असंख अंत नही मेरे।।
केते मात पिता सुत धीआ। केते गुर चेले फुनि हूआ।।
काचे गुर ते मुकति न हूआ।।
केती नारि वरु एकु समालि। गुरमुखि मरणु जीवणु प्रभ नालि।।
दहदिसि ढूढि घरै महि पाइआ। मेलु भइआ सतिगुरु मिलाइआ।। 21।।

गुरमुखि गावै गुरमुखि बोलै। गुरमुखि तोलि तोलावै तोलै।।
गुरमुखि आवै जाइ निसंगु। परहरि मैलु जलाइ कलंकु।।
गुरमुखि नाद बेद बीचारु । गुरमुखि मजनु चजु अचारु।।
गुरमुखि सबदु अंमृतु है सारु। नानक गुरमुखि पावै पारु।।22।।

चंचलु चीतु न रहई ठाई। चोरी मिरगु अंगूरी खाइ।।
चरन कमल उरधारे चीत। चिरु जीवनु चेतनु नित नीत।।
चिंतत ही दीसै सभु कोइ। चेतहि एकु तही सुखु सहोइ।।

चिति वसै राचै हरि नाइ। मुकति भइआ पति सिउ घरि जाइ।।23।।

छीजै देह खुलै इकि गंढि। छेआनित देखहु जगि हंढि।।
धूप छाव जे सम करि जाणै। बंधन काटि मुकति घरि आणै।।
छाइया छूटी जगतु भुलाना। लिखिआ किरतु धुरे परवाना।।
छीजै जोवनु जरुआ सिरि कालु। काइआ छीजै भई सिवालु।।24।।

जापे आपि प्रभु तिहु लोइ। जुगि जुगि दाता अवरु न कोइ।।
जिउ भावै तिउ रखहि राखु। जसु जाचउ देवै पति साखु।।
जागतु जागि रहा तुधु भावा। जा तू मेलहि ता तुझै समावा।।
जै जैकारु जपउ जगदीस। गुरमति मिलीऐ बीस इकीस।।25।।

झखि बोलणु किआ जग सिउ वादु। झूरि मरै देखै परमादु।।
जनमि मूए नही जीवण आसा। आइ चले भए आस निरासा।।
झुरि झुरि झखि माटी रलि जाइ। कालु न चापै हरि गुन गाइ।।
पाई नवनिधि हरि कै नाइ। आपे देवै सहजि सुभाइ।।26।।

जिआनो बोलै आपे बूझै। आपे समझै आपे सूझै।।
गुर का कहिआ अंकि समावै। निरमल सूचे साचो भावै।।
गुर सागरु रतनी नही तोट। लाल पदारथ साचु अखोट।।
गुरि कहिआ सा कार कमावहु। गुर की करणी काहे धावहु।।
नानक गुरमति साचि समावहु।।27।।

टूटै नेहु कि बोलहि सही। टूटै बाह दुहू दिसि गही।।
टूटि परीति गई बुर बोलि। दुरमति परहरि छाडी ढोलि।।
टूटै गंठि पडै वीचारि। गुर सबदी घरि कारजु सारि।।
लाहा साचु न आवै तोटा। त्रिभवण ठाकुरु प्रीतमु मोटा।।28।।

ठाकहुं मनूआ राखहु ठाइ। ठहकि मुई अवगुणि पछुताइ।।
ठाकुरु एकु सबाई नारि। बहुते वेस करे कूड़िआरि।।
पर घर जाती ठाकि रहाई। महलि बुलाई ठाक न पाई।।
सबदि सवारी साचि पिआरी। साई सोहागणि ठाकुरि धारी।।29।।

डोलत डोलता हे सखी फाटे चीर सीगार।

डाहपणि तनि सुखु नही बिनु डर बिणठी डार।।
डरपि मुई घरि आपणै डीठी कंति सुजाणि।
डरु राखिआ गुरि आपणै निरभउ नामु वखाणि।।
डूगरि वासु तिखा घणी जब देखा नही दूरि।
तिखा निवारी सबदु मंनि अंमृतु पीआ भरपूरि।।
देहि देहि आखै सभु कोई जै भावै ते देइ।
गुरु दुआरै देवसी तिखा निवारै सोइ।।30।।

ढंढोलत ढूढत हउ फिरी ढहि ढहि पवनि करार।
भारे ढहते ढहि पए हउले निकसे पारि।।
अमर अजाची हरि मिले तिनकै हउ बलि जाउ।
तिन की धूडि अधुलीऐ संगति मेलि मिलाउ।।
मनु दीआ गुरि आवणै पाइआ निरमल नाउ।
जिनि नामु दीआ तिसु सेवसा तिसु बलिहारै जाउ।।
जो उसारे सो ढाहसी तिसु बिनु अवरु न कोइ।
गुर परसादी तिसु सम्हला ता तनि दूखु न होइ।।31।।

णा को मेरा किसु गही णा को होआ न होगु।
आवणि जाणि विगुचीऐ दुबिधा विआपै रोगु।।
णाम विहूणे आदमी कलर कंध गिरंति।
विणु नावै किउ छूटीऐ जाइ रसातलि अंति।।
गणत गणावै अखरी अगणतु साचा सोइ।
अगिआनी मतिहीणु है गुर बिनु गिआनु न होइ।।
तूटी तंतु रबाब की वाजै नही विजोगि।
विछुडिआ मेलै प्रभू नानक करि संजोग।।32।।

तरवरु काइआ पंखि मनु तरवरि पंखी पंच।
ततु चुगहि मिलि एक से तिन कउ फास न रंच।।
उडहि त बेगुले बेगुले ताकहि चोग घणी।
पंख तुटे फाही पडी अवगुणि भीड बणी।।
बिनु साचे किउ छूटीऐ हरि गुण करमि मणी।।
आपि छडाए छूटाऐ वडा आपि धणी।।
गुरपरसादी छूटीऐ किरपा आपि करेइ।
अपणै हाथि वडाईआ जै भावै तै देइ।।33।।

थर थर कंपै जीअडा थान विहूणा होइ।
थानि मानि सचु एकु है काजु न फीटै कोइ।।
थिरु नाराइणु थिरु गुरु थिरु साचा वीचारु।
सुरि नर नाथह नाथु तू निधारा आधारु।।
सरबे थान थनंतरी तू दाता दातारु।
जह देखा तह एक तू अंतू ना पारावारु।।
थान थनंतरि रवि रहिआ गुर सबदी वीचारि।।
अणमंगिआ दानु देवसी वडा अगम अपारु।।34।।

दइआ दानु दइआलु तू करि करि देखणहारु।
दइआ करहि प्रभ मेलि लैहि खिन महि ढाहि उसारि।।
दाना तू बीना तुही दाना कै सिरि दानु।
दालद भंजन दुखदलण गुरमुखि गिआनु धिआनु।।35।।

धनि गईऐ बहि झूरीऐ धन महि चीतु गवार।
धनु विरली सचु संचिआ निरमलु नामु पिआरि।।
धनु गइआ ता जाण देहि जे राचहि रंगि एक।
मनु दीजै सिरु सउपीऐ भी करते की टेक।।
धंधा धावत रहि गए मन महि सबदु अनंदु।
दुरजन ते साजन भए भेटे गुर गोविंद।।
बनु बनु फिरती ढूढती बसतु रही घरि बारि।
सतिगुरि मेली मिलि रही जनम मरण दुखु निवारि।।36।।

नाना करत न छूटीऐ विणु गुण जमपुरि जाहि।
ना तिसु एहु न ओहु है अवगुणि फिरि पछुताहि।।
ना तिसु एहु गिआनु न धिआनु है ना तिसु धरमु धिआनु।
विणु नावै निरभउ कहा किआ जाणा अभिमानु।।
थाकि रही किव अपडा हाथ नही ना पारु।
ना साजन से रंगुले किसु पही करी पुकार।।
नानक प्रिउ प्रिउ जे करी मेले मेलणहारु।।
जिनि विछोडी सो मेलसी गुर कै हेति अपारि।।37।।

पापु बुरा पापी कउ पिआरा। पापि लदे पापे पासारा।।

परहरि पापु पछाणै आपु। ना तिसु सोगु विजोगु संतापु।।
नरकि पंडतउ किउ रहै किउ बंचै जम कालु।
किउ आवण जाणा वीसरै झूठु बुरा खै कालु।।
मनु जंजाली वेडिआ भी जंजाला माहि।
विणु नावै किउ छूटीऐ पापे पचहि पचाहि।।38।।

फिरि फिरि फाही फासै कऊआ। फिरि पछुताना अब किआ हूआ।।
फाथा चोग चुगै नही बूझै। सतगुरु मिलै त आखी सूझै।।
जिउ मछुली फाथी जम जालि। विणु गुर दाते मुकति न भालि।।
फिरि फिरि आवै फिरि फिरि जाइ। इक रंगि रचै रहै लिव लाइ।।
इव छूटै फिरि फास न पाइ।।39।।

बीरा बीरा करि रही बीर भए बैराई।
बीर चलै घरि आपणै बहिण बिरहि जलि जाइ।।
बाबुल कै घरि बेटडी बाली बालै नेहि।
जे लोडहि वरु कामणी सतिगुरु सेवहि तेहि।।
बिरलो गिआनी बूझणउ सतिगुरु साचि मिलेइ।
ठाकुर हाथि वडाईआ जै भावै तै देइ।।
बाणी बिरलउ बीचारसी जे को गुरमुखि होइ।
इह बाणी महापुरख की निज घरि वासा होइ।।40।।

भनि भनि घडीऐ घडि घडि भंजै ढाहि उसारै उसरे ढाहै।
सर भरि सोखै भी भरि पोखै समरथ वेपरवाहै।।
भरमि भुलाने भए दिवाने विणु भागा किआ पाईऐ।
गुरमुखि गिआनु डोरी प्रभि पकड़ी जिन खिंचै तिन जाईऐ।।
हरि गुण गाइ सदा रंगि राते बहुडि न पछोताईऐ।
भभै भालहि गुरमुखि बूझहि ता निज घरि वासा पाईऐ।।
भभै भउजलु मारगु बिखडा आस निरासा तरीऐ।
गुर परसादी आपो चीन्है जीवतिआ इव मरीऐ।।41।।

माइआ माइआ करि मुए माइआ किसै न साथि।
हंसु चलै उठि डुमणो माइआ भूली आथि।।
मनु झूठा जमि जोहिआ अवगुण चलहि नालि।
मन महि मनु उलटो मरै जे गुण होवहि नालि।।

मेरी मेरी करि मुए विणु नावै दुखु भालि।।
गड मंदर महला कहा जिउ बाजी दीबाणु।
नानक सचे नाम विणु झूठा आवण जाणु।।
आपे चतरु सरुपु है आपे जाणु सुजाणु।।42।।

जो आवहि से जाहि फुनि आइ गए पछुताहि।
लख चउरासीह मेदनी घटै न बधै उताहि।
से जन उबरे जिन हरि भाइआ।
धंधा मुआ विगूती माइआ।
जो दीसै सो चालसी किस कउ मीतु करेउ।
जीउ समपउ आपणा तनु मनु आगै देउ।।
असथिरु करता तू धणी तिसही की मै ओट।
गुण की मारी हउ मुई सबदि रती मनि चोट।।43।।

राणा राउ न को रहै रंगु न तुंगु फकीरु।
वारी आपो आपणी कोइ न बंधै धीर।।
राहु बुरा भीहावला सर डूगर असगाह।
मै तनि अवगण झुरि मुई विणु गुण किउ घरि जाह।।
गुणीआ गुण ले प्रभु मिले किउ तिन मिलउ पिआरि।।
तिन ही जैसी थी रहां जपि जपि रिदै मुरारि।।
अवगुणी भरपूरि है गुण भी वसहि नालि।
विणु सतगुर गुण न जापनी जिचरु सबदि न करे बीचारु।।44।।

लसकरीआ घर संभले आहे वजहु लिखाइ।
कार कमावहि सिरि धणी लाहा पलै पाइ।।
लबु लोभु बुरिआईआ छोडे मनहु विसारि।
गडि दोही पातिसाह की कदे न आवै हारि।।
चाकरु कहीऐ खसम का सउहे उतर देइ।
वजहु गवाए आपणा तखति न बैसहि सेइ।।
प्रीतम हथि वडिआईआ जै भावै तै देइ।
आपि करे किसु आखीऐ अवरु न कोइ करेइ।।45।।

बीजहु सूझै को नही बहै दूलीचा पाइ।
नरक निवारणु नरह नरु साचउ साचै नाइ।।

वणु तृणु ढूढत फिरि रही मन महि करउ वीचारु।
लाल रतन बहु माणकी सतिगुर हाथि भंडारु।।
ऊतमु होवा प्रभु मिलै इक मनि एकै भाइ।
नानक प्रीतम रसि मिले लाहा लै परथाइ।।
रचना राचि जिनि रची जिनि सिरिआ आकारु।
गुरमुखि बेअंतु धिआईऐ अंतु न पारावारु।।46।।

डाडै रुडा हरि जीउ सोई।
तिसु बिनु राजा अवरु न कोई।।
डडै गारुड तुम सुणहु हरि वसै मन माहि।
गुर परसादी हरि पाईऐ मतु को भरमि भुलाहि।।
सो साहु साचा जिसु हरि धुन रासि।
गुरमुखि पूरा तिसु साबासि।।
रुडी बाणी हरि पाइआ गुर सबदी वीचारि।
आपु गइआ दुखु कटिआ हरि वरु पाइआ नारि।।47।।

सुइना रूपा संचीऐ धनु काचा बिखु छारु।
साहु सदाए संचि धनु दुबिधा होइ खुआरु।।
सचिआरि सचु संचिआ साचउ नामु अमोलु।
हरि निरमाइलु ऊजलो पति साची सचु बोलु।।
साजनु मीतु सुजाणु तू तू सरवरु तू हंसु।
साचउ ठाकुर मनि वसै हउ बलिहारी तिसु।।
माइआ ममता मोहणी जिनि कीति सो जाणु।
बिखिआ अंमृतु एकु है बूझै पुरखु सुजाणु।।48।।

खिमा विहूणे खपि गए खूहणि लख असंख।
गणत न आवै किउ गणी खपि खपि मुए बिसंख।।
खसमु पछाणै आपणा खूलै बंधु न पाइ।
सबदि महली खरा तू खिमा सचु सुख भाइ।।
खरचु खरा धनु धिआनु तू आपे वसहि सरीरि।
मनि तनि मुखि जापै सदा गुण अंतरि मनि धरि।।
हउमै खपै खपाइसी बीजउ वथु विकारु।
जंत उपाइ विचि पाईअनु करता अलगु अपार।।49।।

सृसटे भेउ न जाणै कोइ। सृसटा करै सु निहचउ होइ।।
सपै कउ ईसरु धिआईऐ। सपै पुरबि लिखे की पाईऐ।।
सपै कारणि चाकर चोर। सपै साथि न चालै होर।।
बिनु साचे नही दरगह मानु। हरि रसु पीवै छुटै निदानि।।50।।

हेरत हेरत हे सखी होइ रही हैरानु।
हउ हउ करती मै मुई सबदि रवै मनि गिआनु।।
हार डोर कंकन घणे करि थाकी सीगारु।
मिलि प्रीतम सुखु पाइआ सगल गुणा गलि हारु।।
नानक गुरमुखि पाईऐ हरि सिउ प्रीति पिआरु।
हरि बिनु किनि सुखु पाइआ देखहु मनि वीचारि।।
हरि पडणा हरि बूझणा हरि सिउ रखहु पिआरु।
हरि जपीऐ हरि धिआईऐ हरि का नामु अधारु।।51।।

लेखु न मिटई हे सखी जा लिखिआ करतारि।
आपे कारणु जिनि कीआ करि किरपा पगु धारि।।
करते हथि वडिआईआ बूझहु गुर वीचारि।
लिखिआ फेरि न सकीऐ जिउ भावी तिउ सारि।।
नदरि तेरी सुखु पाइआ नानक सबदु वीचारि।
मनमुख भूले पचि मुए उबरे गुर वीचारि।।
जि पुरखु नदरि न आवई तिस का किआ क्ररि कहिआ जाइ।
बलिहारी गुर आपणे जिनि हिरदै दिता दिखाइ।।52।।

पाधा पडिआ आखीऐ बिदिआ बिचरै सहजि सुभाइ।
बिदिआ सोधै ततु लहै राम नाम लिव लाइ।।
मनमुख बिदिआ बिकदा बिखु खटे बिखु खाइ।
मूरख सबदु न चीनई सूझ बूझ नह काइ।।53।।

पाधा गुरमुखि आखीऐ चाटडिआ मति देइ।
नामु समालहु नामु संगरहु लाहा जग महि लेइ।।
सची पटी सचु मनि पडीऐ सबदु सु सारु।
नानक सो पडिआ सो पंडितु बीना जिसु राम नामु गलि हारु।।58।।

रागु मारू

करणी कागदु मनु मसवाणी बुरा भला दुइ लेख पए।
जिउ जिउ किरतु चलाए तिउ चलीऐ तउ गुण नाही अंतु हरे।।1।।

चित चेतसि की नही बावरिआ।
हरि बिसरत तेरे गुण गलिआ।।1।। रहाउ।।

जाली रैनि जालु दिनु हूआ जेती घडी फाही तेती।
रसि रसि चोग चुगहि नित फासहि छूटसि मूडे कवन गुणी।।2।।

काइआ आरणु मनु विचि लोहा पंच अगनि तितु लागि रही।
कोइले पाप पडे तिसु ऊपरि मनु जलिआ संनी चिंत भई।।3।।

भइआ मनूरु कंचनु फिरि होवै जे गुरु मिल तिनेहा।
एकु नामु अंमृतु ओहु देवै तउ नानक तृसटसि देहा।।4।।3।।

कोई आखै भूतना कोई कहै बेताला।
कोई आखै आदमी नानकु बेचारा।।1।।

भइआ दिवाना साह का नानकु बउराना।
हउ हरि बिनु अवरु न जाना।।1।।रहाउ।।

तउ देवाना जाणीऐ जा भै देवाना होइ।

एकी साहिब बाहरा दूजा अवरु न जाणै कोइ।।2।।

तउ देवाना जाणीऐ जा एका कार कमाइ।
हुकमु पछाणै खसम का दूजी अवर सिआणप काइ।।3।।

तउ देवाना जाणीऐ जा साहिब धरे पिआरु।
मंदा जाणै आप कउ अवरु भला संसारु।।4।।7।।

सूर सरु सोसि लै सोम सरु पोखि लै जुगति करि मरतु सु सनबंधु कीजै।
मीन की चपल सिउ जुगति मनु राखीऐ उडै नह हंसु नह कंधु छीजै।।1।।

मूडे काइचे भरमि भुला। नह चीनिआ परमानंदु बैरागी।।1।। रहाउ।।

अजर गहु जारि लै अमर गहु मारि लै भ्राति तजि छोडि तउ अपिउ पीजै।
मीन की चपल सिउ जुगति मनु राखीऐ उडै नह हंसु नह कंधु छीजै।।2।।

भणति नानकु जनो रवै जे हरि मनो मन पवन सिउ अंमृतु पीजै।
मीन की चपल सिउ जुगति मनु राखीऐ उडै नह हंसु नह कंधु छीजै।।3।।9।।

असटपदीआं

मात पिता संजोगि उपाए रकतु बिंदु मिलि पिंडु करे।
अंतरि गरभ उरधि लिव लागी सो प्रभु सारे दाति करे।।1।।

संसारु भवजलु किउ तरै।
गुरमुखि नामु निरंजनु पाईऐ अफरिओ भारु टरै।।1।। रहाउ।।

ते गुण विसरि गए अपराधी मै बउरा किआ करउ हरे।
तू दाता दइआलु सभै सिरि अहिनिसि दाति समारि करे।।2।।

चारि पदारथ लै जगि जनमिआ सिव सकती घरि वासु धरे।
लागी भूख माइआ मगु जोहै मुकति पदारथु मोहि खरे।।3।।

करण पलाव करे नही पावै इत उत ढूढत थाकि परे।

कामि क्रोधि अहंकारि विआपे कूड़ कुटंब सिउ प्रीति करे।।4।।

खावै भोगै सुणि सुणि देखै पहिरि दिखावै काल धरे।।
बिनु गुर सबद न आपु पछाणै बिनु हरि नाम न काल टरे।।5।।

जेता मोह हउमै करि भूले मेरी मेरी करते छीनि खरे।
तनु धनु बिनसै सहसै सहसा फिरि पछुतावै मुखि धूरि परे।।6।।

बिरधि भइआ जोबनु तनु खिसिआ कफु कंठु बिरुधो नैनहु नीर ढरे।
चरण रहे कर कंपण लागे साकत रामु न रिदै हरे।।7।।

सुरति गई काली हू धउले किसै न भावै रखिओ घरे।
बिसरत नाम ऐसे दोख लागहि जमु मारि समारे नरकि खरे।।8।।

पूरब जनम को लेखु न मिटाई जनमि मरै का कउ दोसु धरे।
बिनु गुर बादि जीवणु होरु मरणा बिनु गुर सबदे जनमु जरे।।9।।

खुसी खुआर भए रस भोगण फोकट करम विकार करे।
नामु विसारि लोभि मूलु खोइओ सिरि धरमराइ का डंडु परे।।10।।

गुरमुखि राम नाम गुण गावहि जा कउ हरि प्रभु नदरि करे।
ते निरमल पुरख अपरंपर पूरे ते जग महि गुर गोविंद हरे।।11।।

हरि सिमरहु गुर वचन समारहु संगति हरि जन भाउ करे।
हरि जन गुरु परधानु दुआरै नानक तिन जन की रेणु हरे।।12।।8।।

ना जाणा मूरखु है कोई ना जाणा सिआणा।
सदा साहिब कै रंगे राता अनदिनु नामु वखाणा।।1।।

बाबा मूरखु हा नावै बलि जाउ।
तू करता तू दाना बीना तेरै नामि तराउ।।1।।

मूरखु सिआणा एकु है एकु जोति दुइ नाउ।
मूरखा सिरि मूरखु है जि मंने नाहि नाउ।।2।।

गुरदुआरै नाउ पाईऐ बिनु सतिगुर पलै न पाइ।
सतिगुर कै भाणै मनि वसै ता अहिनिसि रहै लिव लाइ।।3।।

राजं रंगं रूपं मालं जोबनु ते जूआरी।
हुकमी बाधे पासै खेलहि चउपडि एका सारी।।4।।

जगि चतुरु सिआणा भरमि भुलाणा नाउ पंडित पडहि गावारी।
नाउ विसारहि बेदु समालहि बिखु भूले लेखारी।।5।।

कलर खेती तरवर कंठे बागा पहिरहि कजलु झरै।
एहु संसारु तिसै की कोठी जो पैसे सो गरबि जरै।।6।।

रयति राजे कहा सबाए दुहु अंतरि सो जासी।
कहत नानकु गुर सचे की पउडी रहसी अलखु निवासी।।7।।3।।11।।

असुर संघारण रामु हमारा। घटि घटि रमईआ रामु पिआरा।।
नाले अलखु न लखीऐ मूले गुरमुखि लिखु वीचारा हे।।1।।

गुरमुखि साधू सरणि तुमारी। करि किरपा प्रभि पारि उतारी।।
अगनि पाणी सागरु अति गहरा गुरु सतिगुरु पारि उतारा हे।।2।।

मनमुख अंधूले सोझी नाही। आवहि जाहि मरहि मरि जाही।।
पूरबि लिखिआ लेखु न मिटई जमदरि अंधु खुआरा हे।।3।।

इकि आवहि जावहि घरि वासु न पावहि। किरतके बाधे पाप कमावहि।।
अंधुले सोझी बूझ न कोई लोभु बुरा अहंकारा हे।।4।।

पिर बिनु किआ तिसु धन सीगारा। पर पिर राती खसमु विसारा।।
जिउ बेसुआ पूत बापु को कहीऐ तिउ फोकट कार विकारा हे।।5।।

प्रेत पिंजरउ महि दूख घनेरे। नरकि पचहि अगिआन अंधेरे।।
धरमराइ की बाकी लीजै जिनि हरि का नामु विसारा हे।।6।।

सूरजु तपै अगनि बिखु झाला। अपतु पसु मनमुखु बेताला।।
आसा मनसा कूड़ु कमावहि रोगु बुरा बुरिआरा हे।।7।।

मसतकि भारु कलर सिरि भारा। किउकरि भवजलु लंघसि पारा।।
सतिगुरु बोहिथु आदि जुगादी राम नामि निसतारा हे।।8।।

पुत्र कलत्र जगि हेतु पिआरा। माइआ मोहु पसरिआ पासारा।।
जम के फाहे सति गुरि तोडे गुरमुखि ततु बीचारा हे।।9।।

कूडि मुठी चालै बहु राही। मनमुखु दाझै पडि पडि भाही।।
अंमृतु नामु गुरु वड दाणा नामु जपहु सुखसारा हे।।10।।

सतिगुरु तुठा सचु द्रिड़ाए। सभि दुख मेटे मारगि पाए।।
कंडा पाइ न गडई मूले जिसु सतिगुर राखणहारा हे।।11।।

खेहू खेह रलै तनु छीजै। मनमुखु पाथरु सैलु न भीजै।।
करण पलाव करे बहुतेरे नरकि सुरगि अवतारा हे।।12।।

माइआ बिखु भुइअंगम नाले। इनि दुबिधा घर बहुते गाले।।
सतिगुरु बाझहु प्रीति न उपजै भगति रते पतीआरा हे।।13।।

साकत माइआ कउ बहु धावहि। नामु बिसारि कहा सुखु पावहि।।
त्रिहुगुण अंतरि खपहि खपावहि नाही पारि उतारा हे।।14।।

कूकर सूकर कहीअहि कूडिआरा। भउकि मरहि भउ भउ भउ हारा।।
मनि तनि झूठे कूड़ु कमावहि दुरमति दरगह हारा हे।।15।।

सतिगुरु मिलै त मनूआ टेकै। राम नामु दे सरणि परेकै।।
हरि धनु नामु अमोलकु देवै हरि जसु दरगह पिआरा हे।।16।।

राम नामु साधु सरणाई। सतिगुर वचनी गति मिति पाई।।
नानक हरि जपि हरि मन मेरे हरि मेले मेलणहारा हे।।17।।3।।9।।

काइआ नगरु नगर गड अंदरि। साचा वासा पुरि गगनंदरि।।

असथिरु थानु सदा निरमाइलु आपे आपु उपाइदा।।1।।

अंदरि कोट छजे हट नाले। आपे लेवै वसतु समाले।।
वजर कपाट जडे जडि जाणै गुर सवदी खोलाइदा।।2।।

भीतरि कोट गुफा घर जाई। नउ धर थापे हुकमि रजाई।।
दसवै पुरखु अलेखु अपारी आपे अलखु लखाइदा।।3।।

पउण पाणी अगनि इक वासा। आपे कीतो खेलु तमासा।।
वलदी जलि निवरै किरपा ते आपे जलनिधि पाइदा।।4।।

धरति उपाइ धरी धरमसाला। उतपति परलउ आपि निराला।।
पवणै खेलु कीआ सभा थाई कला खिंचि ढाहाइदा।।5।।

भार अठारह मालणि तेरी। चउरु ढुलै पवणै लै फेरी।।
चंदु सूरजु दुइ दीपक राखे ससि घरि सुरु समाइदा।।6।।

पंखी पंच उडरि नही धावहि। सफलिओ बिरखु अंमृतु फलु पावहि।।
गुरमुखि सहजि रवै गुण गावै हरि रसु चोग चुगाइदा।।7।।

झिलिमिल झिलकै चंदु न तारा। सूरज किरणि न बिजुलि गैणारा।।
अकथी कथउ चिहनु नही काई पूरि रहिआ मनि भाइदा।।8।।

पसरी किरणि जोति उजिआला। करि करि देखै आपि दइआला।।
अनहदु रुणझुणकारु सदा धुनि निरभउ कै घरि वाइदा।।9।।

अनहदु वाजै भ्रमु भउ भाजै। सगल विआपि रहिआ प्रभु छाजै।।
सभ तेरी तू गुरमुखि जाता दरि सोहै गुण गाइदा।।10।।

आदि निरंजनु निरमलु सोई। अवरु न जाणा दूजा कोई।
एंककारु वसै मनि भावै हउमै गरबु गवाइदा।।11।।

अंमृतु पीआ सतिगुरि दीआ। अवरु न जाणा दूआ तीआ।।
एको एकु सु अपरपरंपरु परखि खजानै पाइदा।।12।।

गिआनु धिआनु सचु गहिर गंभीरा। कोइ न जाणै तेरा चीरा।।
जेती है तेती तुधु जाचै करमि मिलै सो पाइदा।।13।।

करमु धरमु सचु हाथि तुमारै। वेपरवाहु अखुट भंडारै।।
तू दइआलु किरपालु सदा प्रभु आपे मेलि मिलाइदा।।14।।

आपे देखि दिखावै आपे। आपे थापि उथापे आपे।।
आपे जोडि विछोडे करता आपे मारि जीवाइदा।।15।।

जेती है तेती तुधु अंदरि। देखहि आपि बैसि बिजमंदरि।।
नानकु साचु कहै बेनंती हरि दरसनि सुखु पाइदा।।16।।1।।13।।

अरबद नरबद धुंधूकारा। धरणि न गगना हुकमु अपारा।।
ना दिनु रैनि न चंदु न सूरजु सुंन समाधि लगाइदा।।1।।

खाणी न बाणी पउण न पाणी। आपेति खपति न आवण जाणी।।
खंड पताल सपत नही सागर नदी न नीरु वहाइदा।।2।।

ना तदि सुरगु मछु पइआला। दोजकु भिसतु नही खै काला।।
नरकु सुरगु नही जंमणु मरणा ना को आइ न जाइदा।।3।।

ब्रह्मा बिसनु महेसु न कोई। अवरु न दीसै एको सोई।।
नारि पुरखु नही जाति न जनमा ना को दुखु सुखु पाइदा।।4।।

ना तदि जती सती बनवासी। ना तदि सिध साधिक सुखवासी।।
जोगी जंगम भेखु न कोई ना को नाथु कहाइदा।।5।।

जप तप संजम ना ब्रत पूजा। ना को आखि वखाणै दूजा।
आपे आपि उपाइ विगसै आपे कीमति पाइदा।।6।।

ना सुचि संजमु तुलसी माला। गोपी कानु न गऊ गोवाला।।
तंतु मंतु पाखंडु न कोई ना को वंसु वजाइदा।।7।।

करम धरम नही माइआ माखी। जाति जनमु नही दीसै आखी।।
ममता जालु कालु नही माथै ना को किसै धिआइदा।।8।।
निंदु बिंदु नही जीउ न जिंदो। ना तदि गोरखु ना माछिंदो।।
ना तदि गिआनु धिआनु कुल ओपति ना को गणत गणाइदा।।9।।

वरन भेख नही ब्रह्मण खत्री। देउ न देहुरा गऊ गाइत्री।।
होम जग नही तीरथि नावणु ना को पूजा लाइदा।।10।।

ना को मुला ना को काजी। ना को सेखु मसाइकु हाजी।।
रईअति राउ न हउमै दुनीआ ना को कहणु कहाइदा।।11।।

भाउ न भगति ना सिव सकति। साजनु मीतु बिंदु नही रकती।।
आपे साहु आपे वणजाना साचो एहो भाइदा।।12।।

बेद कतेब न सिंमृत सासत। पाठ पुराण उदै नही आसत।।
कहता बकता आपि अगोचरु आपे अलखु लखाइदा।।13।।

जा तिसु भाणा ता जगतु उपाइआ। बाझु कला आडाणु रहाइआ।।
ब्रह्मा बिसनु महेसु उपाए माइआ मोहु वधाइदा।।14।।

विरले कउ गुरि सबदु सुणाइआ। करि करि देखै हुकमु सबाइआ।।
खंड ब्रह्मंड पाताल अरंभे गुपतहु परगटी आइदा।।15।।

ता का अंतु न जाणै कोई। पूरे गुर ते सोझी होई।।
नानक साचि रते बिसमादी बिसम भए गुण गाइदा।।16।।3।।15।।

आपे आपु उपाइ निराला। साचा थानु कीओ दइआला।।
पउण पाणी अगनी का बंधनु काइआ कोटु रचाइदा।।1।।

नउ घर थापे थापणहारै। दसवै वासा अलख अपारै।।
साइर सपत भरे जलि निरमलि गुरमुखि मैलु न लाइदा।।2।।

रवि ससि दीपक जोति सबाई। आपे करि वेखै वडिआई।।
जोति सरुप सदा सुखदाता सचे सोभा पाइदा।।3।।

गड़ महि हाट पटण वापारा। पूरै तोलि तोलै वणजारा।।
आपे रतनु विसाहे लेवै आपे कीमति पाइदा।।4।।

कीमति पाई पावणहारै। वेपरवाह पूरे भंडारै।।
सरब कला ले आपे रहिआ गुरमुखि किसै बुझाइदा।।5।।

नदरि करे पूरा गुरु भेटै। जम जंदारु न मारै फेटै।।
जिउ जल अंतरि कमलु बिगासी आपे बिगसि धिआइदा।।6।।

आपे बरखै अंमृतधारा। रतन जवेहर लाल अपारा।।
सतिगुरु मिलै त पूरा पाईऐ प्रेम पदारथु पाइदा।।7।।

प्रेम पदारथ लहै अमोलो। कबही न घाटसि पूरा तोलो।।
सचे का वापारी होवै सचो सउदा पाइदा।।8।।

सचा सउदा विरला को पाए। पूरा सतिगुरु मिलै मिलाए।।
गुरमुखि होइ सु हुकमु पछाणै मानै हुकमु समाइदा।।9।।

हुकमे आइआ हुकमि समाइआ। हुकमे दीसै जगतु उपाइआ।।
हुकमे सुरगु मछु पइआला हुकमे कला रहाइदा।।10।।

हुकमे धरती धउल सिरि भारं। हुकमे पउण पाणी गैणारं।।
हुकमे सिव सकती घरि वासा हुकमे खेल खेलाइदा।।11।।

हुकमे आडाणे आगासी। हुकमे जल थल त्रिभवण वासी।।
हुकमे सास गिरास सदा फुनि हुकमे देखि दिखाइदा।।12।।

हुकमि उपाए दस अउतारा। देव दानव अगणत अपारा।।
मानै हुकमु सु दरगह पैझै साचि मिलाइ समाइदा।।13।।

हुकमे जुग छतीह गुदारे। हुकमे सिध साधिक वीचारे।।
आपि नाथु नथीं सभ जा की बखसे मुकति कराइदा।।14।।

काइआ कोटु गडै महि राजा। नेब खवास भला दरवाजा।।
मिथिआ लोभु नाही घरि वासा लबि पापि पछुताइदा।।15।।

सतु संतोखु नगर महि कारी। जतु सतु संजमु सरणि मुरारी।
नानक सहजि मिलै जगजीवनु गुर सबदी पति पाइदा।।16।।4।।16।।

सुंन कला अपरंपरि धारि। आपि निरालमु अपर अपारी।।
आपके कुदरति करि करि देखै सुंनहु सुंनु उपाइदा।।1।।

पउणु पाणी सुनै ते साजे। सृसटि, उपाइ काइआ गड़ राजे।।
अगनि पाणी जीउ जोति तुमारी सुंने कला रहाइदा।।2।।

सुंनहु ब्रह्मा विसनु महेसु उपाए। सुंने वरते जुग सबाए।।
इसु पदु वीचारे सो जनु पूरा तिसु मिलीऐ भरमु चुकाइदा।।3।।

सुंनहु सपत सरोवर थापे। जिनि साजे वीचारे आपे।।
तितु सतसरि मनूआ गुरमुखि नावै फिरि बाहुडि जोनि न पाइदा।।4।।

सुनंहु चंदु सूरजु गैणरे। तिस की जोति त्रिभवण सारे।।
सुंने अलख अपार निरालमु सुंने ताडी लाइदा।।5।।

सुंनहु धरति अकासु उपाए। विनु थंमा राखे सचु कल पाए।।
त्रिभवण साजि मेखुली माइआ आपि उपाइ खपाइदा।।6।।

सुंनहु खाणी सुंनहु बाणी। सुंनहु उपजी सुंनि समाणी।।
उतभुज चलतु कीआ सिरि करतै बिसमादु सबदि देखाइदा।।7।।

सुंनहु राति दिवसु दुइ कीए। ओपति खपति सुखा दुख दीए।।
सुख दुख ही ते अमरु अतीता गुरमुखि निजघरु पाइदा।।8।।

साम वेदु रिगु जुजरु अथरवणु। ब्रह्मे मुखि माइआ है त्रैगुण।।
ताकी कीमति कहि न सकै को तिउ बोलै जिउ बोलाइदा।।9।।

सुंनहु सपत पाताल उपाए। सुंनहु भवण रखे लिव लाए।।

आपे कारणु कीआ अपरंपरि सभु तेरो कीआ कमाइदा।।10।।

राज तम सत कल तेरी छाइआ। जनम मरण हउमै दुखु पाइआ।।
जिसनो कृपा करे हरि गुरमुखि गुणि चउथै मुकति कराइदा।।11।।

सुंनहु उपजे दस अवतारा। सृसटि उपाइ कीआ पासारा।।
देव दानव गण गंधरब साजे सभि लिखिआ करम कमाइदा।।12।।

गुरमुखि समझै रोगु न होई। इह गुर की पउडी जाणै जनु कोई।।
जुगह जुगंतरि मुकति पराइण सो मुकति भइआ पति पाइदा।।13।।

पंच ततु सुंनहु परगासा। देह संजोगी करम अभिआसा।।
बुरा भला दुइ मसतकि लीखे पापु पुंनु बीजाइदा।।14।।

ऊतम सतिगुर पुरख निराले। सबदि रते हरि रसि मतवाले।।
रिधि बुधि सिधि गिआनु गुरु ते पाईऐ पूरै भागि मिलाइदा।।15।।

इसु मन माइआ कउ नेहु घनेरा। कोई बूझहु गिआनी करहु निबेरा।।
आसा मनसा हउमै सहसा नरु लोभी कूड़ु कमाइदा।।16।।

सतिगुरु ते पाए वीचारा। सुंन समाधि सचे घर बारा।।
नानक निरमल नादु सबद धुनि सचु रामै नामि समाइदा।।17।।5।।17।।

सलोकु

विणु गाहक गुणु वेचीऐ तउ गुण सहघो जाइ।
गुण का गाहकु जे मिलै तउ गुणु लाख विकाइ।।
गुण ते गुण मिलि पाईऐ जे सतिगुर माहि समाइ।।
मोलि आमोलु न पाईऐ वणजि न लीजै हाटि।
नानक पूरा तोलु है कबहु न होवै घाटि।।1।।

भूली भूली मै फिरी पाधरु कहै न कोइ।
पूछहु जाइ सिआणिआ दुखु काटै मेरा कोइ।।

सतिगुरु साचा मनि वसै साजनु उत ही ठाइ।
नानक मनु तृपतासीऐ सिफती साचै नाइ।।2।।

महल कुचजी मड़वती काली मनहु कसुध।
जे गुण होवनि ता पिरु रवै नानक अवगुण मुंध।।3।।

साचु सील सचु संजम सा पूरी परवारि।
नानक अहिनिसि सदा भली पिर कै हेति पिआरि।।4।।

पउडी

तखति राजा सो बहै जि तखतै लाइक होई।
जिनी सचु पछाणिआ सचु राजे सेई।।
एहि भूपति राजे न आखीअहि दूजै भाइ दुखु होई।
कीता किआ सालाहीएं जिसु जादे विलम न होई।।
निहचलु सचा एकु है गुरमुखि बूझै सु निहचलु होई।।2।।

सभे थोक विसारि इको मितु करि।
मनु तनु होइ निहालु पाप दहै हरि।।
आवण जाणा चुकै जनमि न जाहि मरि।।
सचु नामु आधारु सोगि न मोहि जरि।।
नानक नामु निधानु मन महि संजि घरि।।7।।

रागु सारंग

अपने ठाकुर की हउ चेरी।
चरन गहे जगजीवन प्रभ के हउमै मारि निबैरी।।1।। रहाउ।।

पूरन परम जोति परमेसर प्रीतम प्रान हमारे।।
मोहन मोहि लिआ मनु मेरा समझसि सबदु बीचारे।।1।।

मनमुख हीन होछी मति झूठी मनि तनि पीर सरीरे।
जब की राम रंगीलै राती राम जपत मन धीरे।।2।।

हउमै छोडि भई बैरागनि तब साची सुरति समानी।
अकुल निरंजन सिउ मनु मानिआ बिसरी लाज लोकानी।।3।।

भूत भविख नाही तुम जैसे मेरे प्रीतम प्रान अधारा।
हरि कै नामि रती सोहागनि नानक राम भतारा।।4।।1।।

दूरि नाही मेरो प्रभु पिआरा।
सतिगुरि बचनि मेरो मनु मानिआ हरि पाए प्रान अधारा।।1।। रहाउ।।

इन बिधि हरि मिलीऐ वर कामनि धन सोहागु पिआरी।
जाति वरन कुल सहसा चूका गुरमति सबदि विचारी।।1।।

जिसु मनु मानै अभिमानु न ताकउ हिंसा लोभु विसारे।
सहजि रवै वरु कामणि पिर की गुरमुखि रंगि सवारे।।2।।
जारहु ऐसी प्रीति कुटंब सनबंधी माइआ मोह पसारी।

जिसु अंतरि प्रीति राम रसु नाही दुविधा करम बिकारी।।3।।

अंतरि रतन पदारथ हित कौ दुरै न लाल पिआरी।
नानक गुरमुखि नामु अमोलकु जुगि जुगि अंतरि धारी।।4।।3।।

हरि विनु किउ रहीऐ दुखु विआपै।
जिहवा सादु न फीकी रस बिनु बिनु प्रभ कालु संतापै।।1।। रहाउ।।

जब लगु दरसु न परसै प्रीतम तब लगु भूख पिआसी।
दरसनु देखत ही मनु मानिआ जल रसि कमल बिगासी।।1।।

ऊनवि घनहरु गरजै बरसै कोकिल मोर बैरागै।
तरवर बिरख विहंग भुइअंगम धरि पिरु धन सोहागै।।2।।

कुचिल कुरूपि कुनारि कुलखनी पिर का सहजु न जानिआ।
हरि रस रंगि रसन नही तृपती दुरमति दूख समानिआ।।3।।

आइ न जावै ना दुखु पावै ना दुख दरदु सरीरे।
नानक प्रभ ते सहज सुहेली प्रभ देखत ही मनु धीरे।।4।।2।।

असटपदीआं

हरि बिनु किउ धीरै मनु मेरा।
कोटि कलप के दूख बिनासन साचु द्रड़ाइ निबेरा।। रहाउ।।

क्रोधु निवारि जले हउ ममता प्रेमु सदा नउरंगी।
अनभउ बिसरि गए प्रभु जाचिआ हरि निरमाइलु संगी।।1।।

चंचल मति तिआगि भउ भंजन पाइआ एक सबदि लिव लागी।
हरि रसु चाखि तृखा निवारी हरि मेलि लए वडभागी।।2।।

अभरत सिंचि भए सुभर सर गुरमति साचु निहाला।
मन रति नाभि रते निहकेवल आदि जुगादि दइआला।।3।।

मोहनि मोहि लीआ मनु मोरा वडै भाग लिव लागी।
साचु बीचारि किलविख दुख काटे मनु निरमलु अनरागी।।4।।

गहिर गंभीर सागर रतनागर अवर नही अंन पूजा।
सबदु बीचारि भरम भउ भंजन अवरु न जानिआ दूजा।।5।।

मनूआ मारि निरमलु पदु चीनिआ हरि रस रते अधिकाई।
एकस बिनु मै अवरु न जानां सतिगुरि बूझ बुझाई।।6।।

अगम अगोचरु अनाथु अजोनी गुरमति एको जानिआ।
सुभर भरे नाही चितु डोलै मन ही ते मनु मानिआ।।7।।

गुरपरसादी अकथउ कथीऐ कहउ कहावै सोई।
नानक दीन दइआल हमारे अवरु न जानिआ कोई।।8।।2।।

न भीजै रागी नादी बेदि।
न भीजै सुरती गिआनी जोगि। न भीजै सोगी कीतै रोजि।।
न भीजै रूपीं मालीं रंगि। न भीजै तीरथि भविऐ नंगि।।
न भीजै दातीं कीतै पुंनि। न भीजै बाहरि बैठिआ सुंनि।।
न भीजै भेडि मरहि भिडि सूर। न भीजै केते होवहि धूड।।
लेखा लिखीऐ मन के भाइ। नानक भीजै साचै नाइ।।1।।

नव छिअ खट का करे बीचारु। निसि दिन उचरै भार अठार।।
तिनि भी अंतु न पाइआ तोहि। नाम बिहूण मुकति किउ होइ।।
नाभि वसत ब्रह्मै अंतु न जाणिआ। गुरमुखि नानक नामु पछाणिआ।।2।।

नानक तुलीअहि तोल जे जीउ पिछै पाईऐ।
इकसु न पुजहि बोल जे पूरे पूरा करि मिलै।
वडा आखणु भारा तोलु। होर हउली मती हउले बोल।।
धरती पाणी परबत भारु। किउं कडै तोलै सुनि आरु।।
तोला मासा रतक पाइ। नानक पुछिआ देइ पुजाइ।।
मूरखु अंधिआ अंधी धातु। कहि कहि कहणु कहाइनि आपु।।5।।

आखणि अउखा सुनणि अउखा आखि न जापी आखि।
इकि आखि आखहि सबदु भाखहि अरध उरध दिनु राति।।
जे किहु होइ त किहु दिसै जापै रूपु न जाति।
सभि कारण करता करे घट अउघट घट थापि।।
आखणि अउखा नानका आखि न जापै आखि।।6।।

दुख विचि जंमणु दुखि मरणु दुखि वरतणु संसारि।

दुखु दुखु अगै आखीऐ पढि पढि करहि पुकार।।
दुख कीआ पंडा खुल्हीआ सुखु न निकलिओ कोइ।
दुखु विचि जीउ जलाइआ दुखीआ चलिआ रोइ।
नानक सिफति रतिआ मनु तनु हरिआ होइ।
दुख कीआ अगी मारीअहि भी दुखु दारु होइ।।19।।

नानक दुनीआ भसु रंगु भसू भसु खेह।
भसो भसु कमावणी भी भसु भरीऐ देह।।
जा जीउ विचहु कढीऐ भसू भरिआ जाइ।
अगै लेखै मंगिए होर दसूणी पाइ।।10।।

सासत्र बेद पुराण पढंता। पूकारंता अजाणंता।।
जां बूझै तां सूझै सोई। नानकु आखै कूक न होई।।19।।

जां हउ तेरा तां सभु किछु मेरा हउ नाही तू होवहि।
आपे सकता आपे सुरता सकती जगतु परोवहि।।
आपे भेजे आपे सदे रचना रचि रचि देखै।
नानक सचा सची नांई सचु पवै धुरि लेखै।।20।।

कलि होई कुते मुही खाजु होआ मुरदारु।
कुडु बोलि बोलि भउकणा चूका धरमु बीचारु।
जिन जीवंदिआ पति नही मुइआ मंदी सोइ।
लिखिआ होवै नानक करता करे सु होइ।।21।।

लख सिउ प्रीति होवै लख जीवणु किआ खुसीआ किआ चाउ।
विछुड़िआ विसु होइ विछोड़ा एक घड़ी महि जाइ।।
जे सउ वरिआ मिठा खाजै भी फिरि कउड़ा खाइ।
मिठा खाधा चिति न आवै कउड़तणु धाइ जाइ।।
मिठा कउड़ा दोवै रोग। नानक अंति विगुते भोग।।
झखि झखि झखणा झगड़ा झाख।
झखि झखि जाहि झखहि तिन्ह पासि।।23।।

कापडु काठु रंगाइआ रांगि। घर गच कीते बागे बाग।।
साद सहज करि मनु खेलाइआ। तै सह पासहु कहणु कहाइआ।।
मिठा करि कै कउडा खाइआ। तिनि कउडै तनि रोगु जमाइआ।।
जे फिरि मिठा पैडे पाइ। तउ कउडातण चूकसि माइ।

नानक गुरमुखि पावै सोइ। जिस नो प्रापति लिखिआ होइ।।24।।

मरणि न मूरतु पूछिआ पुछी थिति न वारु।
इकनी लदिआ इकि लदि चले इकनी बधे भार।
इकना होई साखती इकना होई सार।
लसकर सणै दमामिआ छुटे बंक दुआर।
नानक ढेरी छारु की भी फिरि होई छार।।26।।

नानक ढेरी ढहि पई मिटि संदा कोटु।
भीतरि चोरु बहालिआ खोटु वे जीआ खोटु।।27।।

धृगु तिना का जीविआ जि लिखि लिखि वेचहि नाउ।
खेती जिन की उजडै खलवाडे किआ थाउ।।
सचै सरमै बाहरे अगै लहहि न दादि।
अकली एह न आखाऐ अकली गवाईऐ वादि।।
अकली साहिबु सेवीऐ अकली पाईऐ मानु।
अकली पढि कै बुझीऐ अकली कीचै दानु।।
नानकु आखै राहु एहु होरि गलां सैतानु।।30।।

सचु वरतु संतोखु तीरथु गिआनु धिआनु इसनानु।
दइआ देवता खिमा जपमाली ते माणस परधान।।
जुगति धोती सुरति चउका तिलकु करणी होइ।
भाउ भोजनु नानका विरला त कोइ कोइ।।31।।

गिआन विहूणा गावै गीत। भुखे मुलां घरे मसीति।।
मखटू होइकै कंन पड़ाए। फकरु करे होरु जातु गवाए।।
गुरु पीरु सदाए मंगण जाइ। ता कै मूलि न लगीऐ पाइ।।
घालि खाइ किछु हथहु देइ। नानक राहु पछाणहि सेइ।।32।।

मनहु जि अंधे कूप कहिआ बिरदु न जाणनी।।
मनि अंधै ऊंधै कवलि दिसनि खरे करुपा।।
इकि कहि जाणहि कहिआ बुझहि ते नर सुघड सरूप।।
इकना नाद न बेद न गीअरसु रस कस न जाणंति।
इकना सुधि न बुधि न अकलि सर अखर का भेउ न लहंति।।
नानक से नर असलि खर जि बिनु गुण गरबु करंति।।33।।

गुरु तेगबहादुर

गुरु तेगबहादुर

उसका नाम था, मक्खण शाह लुबाणा। वह एक बड़ा व्यापारी था। उसके जहाज़ अरब सागर की तरंगों पर तैरते हुए दूर-दूर के देशों तक जाते थे। अपने देश का माल वह उन देशों में वेचता था और उन देशों से माल ख़रीद कर वह अपने देश में ले आता था। वह वहुत श्रद्धालु व्यक्ति था। उसका जीवन हमेशा ख़तरों और जोखिमों से भरा रहता था। कभी उसे समुद्री डाकू घेर लेते, कभी बड़ी-बड़ी समुद्री मछलियां अपना मुंह खोलकर उसके जहाज़ की तरफ़ दौड़ पड़तीं और कभी समुद्र की तूफानी लहरें आकर उसके जहाज़ से टकराने लगतीं। तब ऐसा लगता जैसे जीवन की डोर का पतला धागा अव टूटा कि तब टूटा।

ऐसे ही, एक बार वह विदेश यात्रा से लौट रहा था। उसका जहाज़ माल से भरा हुआ था। उसके जहाज़ पर अनेक नाविक भी थे। सभी को अपने घर-परिवार से बिछुड़े कई-कई महीने गुज़र चुके थे, इसीलिए सभी घर लौटने को बहुत उत्सुक थे। शाम का समय था। मक्खण शाह का जहाज़ पश्चिम से पूर्व की ओर तेज़ी से बढ़ रहा था और उधर सूरज पूर्व से पश्चिम की यात्रा समाप्त कर पश्चिमी समुद्र में धीरे-धीरे उतरता चला जा रहा था। मक्खण शाह एक ओर बैठा 'रहिरास' का पाठ कर रहा था। उसका पाठ पूरा हुआ और उसने बड़ी श्रद्धा से मस्तक झुकाया और दोनों हाथ जोड़ दिए। फिर उसके मुख से धीरे-धीरे निकला–

सत् करतार...! सत् करतार!

वह अपने पलंग से उठकर वाहर आने की सोच ही रहा था कि उसका सेवक जीवन दास बड़े घबराए स्वर में आकर बोला–'शाह जी! ज़रा बाहर चलकर तो देखिए।... आकाश बिल्कुल काला हो गया है।... लगता है, बहुत तेज़ तूफान आएगा।

मक्खण शाह के मुंह से फिर निकला–

सत् करतार...! सत् करतार!

वह बाहर आकर आकाश की ओर देखने लगा। अभी तो शाम ही ढली थी; पर ऐसा लगता था कि काली अंधेरी रात एकाएक उन पर घिर आई हो। समुद्र की लहरें भी उस कालिमा में खो गई लगती थीं; पर उनकी तेज़ आवाज़ पहले से कहीं अधिक भयावह लग रही थी।

फिर तेज़ हवा चलने लगी। समुद्र की लहरें उछल-उछल कर जहाज़ से टकराने लगीं। उन लहरों पर जहाज़ एक पत्ते की तरह डोलने लगा।

हवा और अन्धड़ का दबाव बढ़ता ही जा रहा था। लहरों का भयावह चीत्कार जहाज़ को झिंडोड़ रहा था। जहाज़ के नाविक और अन्य कर्मचारी घबरा गए थे। रात के अंधेरे में दिशाओं का ज्ञान भी लुप्त हो गया। समुद्र का पानी लहरों से उछल-उछल कर जहाज़ के अन्दर घुस रहा था। भयंकर कोलाहाल में लोग पाल की रस्सियों को थाम रहे थे; पर उस सारे कोलाहल में गहरी निराशा भी भरती चली जा रही थी। लोगों को लगने लगा था कि शायद सुबह के सूरज की किरण देखना अब उनके भाग्य में नहीं है।

इस सारी संकटमयी स्थिति में भी मक्खण शाह शांत था। उसके मुंह से लगातार सत् करतार...! सत् करतार...! की धुन निकल रही थी।

तूफान भी अजीब था। कभी उसका दबाव बढ़ जाता। हवा की सांय-सांय में लगता था कि कुछ ही क्षणों में लहरों पर हिचकोले खाता हुआ जहाज़ या तो टुकड़े-टुकड़े हो जाएगा या समुद्र की अनंत गहराइयों में बैठ जाएगा। कभी उस घुप अंधेरी रात में रोशनी की कोई किरण कहीं से चमक पड़ती। हवा की सनसनाहट और लहरों की घरघराहट कुछ हल्की पड़ जाती। निराश और हताश कर्मचारियों में नई उमंग आ जाती और जहाज़ को बचाने के प्रयत्न में वे अधिक जोश से जुट जाते।

सबके बीच से गुज़रता, सबको ढांढ़स बंधाता मक्खण शाह सत् करतार...! सत् करतार...! का उच्चारण करता रहता।

इस तरह संघर्ष करते, आशा और निराशा की लहरों पर हिचकोले खाते, जीवन और मृत्यु के बीच निरन्तर झूलते हुए सारी रात वीत गई। उषा फूटने लगी और फिर भुवन-भास्कर की लालिमा पूर्व के समुद्र में डूबे हुए कोने से झांकने लगी।

तूफान का उन्माद भी ठंडा पड़ गया था। लहरों का आवेग भी थम गया था और फिर कुछ देर ही में उड़ते हुए पक्षी दिखाई देने लग गए थे। किनारा दूर नहीं था।

मक्खण शाह ने 'जपुजी' का पाठ पूरा किया—

जिन्नी नाम धिआइआ गए मुसक्कत घाल।
नानक ते मुख उजले केती छुट्टी नाल।

फिर श्रद्धा से मस्तक झुका दिया।

"शाह जी!" जीवन दास बोला—"आपका धीरज कितना अडोल है। मौत मुंह बाए सामने खड़ी थी। एक छिन-पल का कोई भरोसा नहीं था। जहाज़ के सभी लोगों के हाथ

से उम्मीद की पतवार छूट गई थी; पर आप के चेहरे पर न कोई चिंता थी, न परेशानी। आपकी लिव तो 'सत करतार' में लगी हुई थी।"

"जीवन दास!" मक्खण शाह ने कहा—"मेरे सद्गुरु नानक ने मुझे एक ही बात बताई है कि सुख-दुख में अडोल रहो। अपना कर्म करो और करतार पर भरोसा रखो।"

दूसरे ही दिन जहाज़ भड़ौंच के बंदरगाह पर आ लगा। मक्खण शाह ने निश्चय किया जहाज़ के सामान को आढ़तियों को सौंप कर वह अपने सभी कर्मचारियों सहित पहला काम गुरु के दर्शन का करेगा और उनके चरणों में पांच सौ अशर्फियों की भेंट चढ़ा कर अपनी श्रद्धा अर्पित करेगा।

भाई मक्खण शाह और उसके साथी जब पंजाब पहुंचे तो उन्होंने अजीब-अजीब बातें सुनीं। आठवें गुरु हरिकृष्ण का कुल आठ वर्ष की आयु में ही शीतला की बीमारी से दिल्ली में देहांत हो गया था। चूंकि अपने उत्तराधिकारी के सम्बन्ध में वे मात्र इतना ही कह गए थे—बाबा बकाले! इसलिए अमृतसर के निकट बकाला ग्राम में गुरु हरिकृष्ण के दूर-पास के अनेक सम्बन्धियों ने अपने आप को गुरु घोषित कर दिया था। मक्खण शाह सोच में पड़ गया। पाखंडी गुरुओं की इस भीड़ से वास्तविक गुरु की पहचान कैसे हो? वह और उसके साथी दिल्ली और पंजाब के अनेक गुरुधामों की यात्रा करते हुए बकाला पहुंचे।

मक्खण शाह गुरु-घर का पुराना सेवक था और पंजाब का जाना-माना व्यापारी था। गांव में उसके आगमन का समाचार सुनते ही पाखंडी गुरुओं के दलालों ने उसे घेरना शुरू कर दिया।

मक्खण शाह ने अपने साथियों से कहा—"हमें गुरु महाराज के चरणों पर अपनी भेंट ही नहीं चढ़ानी है, बल्कि पाखंड के इस अंधेरे को दूर करके लोगों को वास्तविक गुरु के दर्शन भी कराने हैं।"

मक्खण शाह और उसके साथी एक-एक करके उन सभी के पास जाने लगे जो अपने आप को गुरु कह रहे थे। वह जहां भी जाता पांच अशर्फियों की भेंट चढ़ाता और प्रणाम करता। अशर्फियां देखते ही तथाकथित गुरु की बांछे खिल जातीं और वह आशीर्वादों की झड़ी लगा देता। मक्खण शाह निराश होकर बाहर आ जाता।

ऐसे सभी व्यक्तियों के वह दर्शन कर आया। अब कोई दलाल भी उसे नहीं घेर रहा था, परन्तु इनमें से कोई भी ऐसा नहीं था जो उसके मन को छू पाता।

"क्यों जीवन दास... अब क्या करें?"—वह चिंतित स्वर में बोला।

"शाह जी!"—जीवन दास बोला—"जिस माल को आप खोज रहे हैं, वह इनमें से किसी की दुकान में नहीं है; पर सुना है—एक व्यक्ति और है। छठे गुरु—गुरु हरि गोविंद के छोटे बेटे तेग बहादुर जी भी बकाला गांव में ही रहते हैं; पर वे किसी से मिलते-जुलते नहीं। रात-दिन भगवान के नाम में ही डूबे रहते हैं।"

मक्खण शाह को ख्याल आया—गुरु हरिकृष्ण ने कहा था, 'बाबा बकाले!' तेग

बहादुर जी रिश्ते में गुरु हरिकृष्ण के बाबा ही लगते थे। कहीं यह इशारा उनकी तरफ़ ही न हो।

वह जीवन दास को लेकर झटपट उनसे मिलने चल दिया।

तेग बहादुर जी समाधि में लीन थे। मक्खण शाह वहीं बैठकर प्रतीक्षा करने लगा। समाधि टूटने पर उनके दर्शन करने गया। उसी तरह पांच अशर्फियां उनके सामने रख कर प्रणाम किया।

तेग बहादुर जी के मुख से निकला—सत् करतार...। सत् करतार....।

सत् करतार की धुन सुनते ही मक्खण शाह का रोम-रोम पुलकित हो गया। उसने पांच सौ अशर्फियों की थैली उनके सन्मुख रख कर माथा टेका और फिर बाहर निकल कर चिल्लाया—

गुरु लाधो रे...! गुरु लाधो रे!

(मैंने वास्तविक गुरु ढूंढ लिया है...मैंने वास्तविक गुरु ढूंढ लिया है।)

देखते-देखते एक बड़ी भीड़ वहां जमा हो गई! पाखंड की गद्दियां उखड़ने लगीं। दूर-दूर की सिख-संगतों तक यह गूंज पहुंच गई और असंख्य दर्शनार्थी बकाला ग्राम की ओर उमड़ चले।

गुरु तेग बहादुर छठे गुरु—गुरु हरगोविंद के छोटे बेटे थे। बचपन से ही उनमें भक्ति और शक्ति का अद्भुत समन्वय था। छोटी आयु में ही वे प्रायः किसी एकान्त स्थान पर जाकर साधना में लीन हो जाया करते थे। उन्होंने शस्त्र-विद्या भी सीखी थी। उनके पिता, गुरु हरिगोविंद को मुग़ल शासक शाहजहां की सेनाओं से कई बार युद्ध करना पड़ा था। एक बार पैंदे खां नामक एक मुग़ल सरदार ने बड़ी सेना लेकर करतारपुर पर आक्रमण कर दिया। गुरु हरगोविंद और उनके सिख सैनिकों ने उसका डटकर मुकाबला किया। गुरु तेग़बहादुर की आयु उस समय कुल पंद्रह वर्ष की थी। उन्होंने भी युद्ध में भाग लिया और ऐसी वीरता दिखाई कि पिता, गुरु हरगोविंद ने कहा—"तुम सचमुच तेगबहादुर हो।"

परन्तु उनका मन ईश्वर-भक्ति और दीन-दुखियों की सेवा में ही अधिक लगता था। इसलिए पिता के देहावसान के पश्चात् वे अपनी माता (नानकी) और पत्नी (गूजरी) सहित अपनी ननिहाल (बकाला) में आकर रहने लगे।

गुरु पद् संभालने के बाद वे देशाटन के लिए निकल पड़े। पहले उन्होंने पंजाब में अनेक स्थानों की यात्रा की। वे जहां भी गए, उन्हें अशिक्षा और ग़रीबी के बोझ से दबी हुई जनता के दर्शन हुए। दिल्ली के मुग़ल शासक औरंगजेब के अत्याचार वढ़ते ही जा रहे थे। स्थान-स्थान पर मंदिर तोड़े जा रहे थे, लोगों को धर्म-परिवर्तन के लिए मजबूर किया जा रहा था। एक दिन उन्होंने अपने निकट सहयोगी भाई मती दास से कहा—

"मती दास जी!"

"जी, सद्गुरु!"

"आप देश की जनता की दुर्दशा तो देख ही रहे हैं। एक तरफ़ यह ग़रीबी के बोझ से पिस रही है; जमींदार और सेठ-साहूकार इसके खून की अंतिम बूंद तक चूस लेना चाहते हैं। दूसरी तरफ़, इसके अज्ञान और अंध-विश्वास का लाभ उठाकर पंडे-पुरोहित और काज़ी-मुल्ला अपना उल्लू सीधा कर रहे हैं। जजिया कर के बोझ से हिन्दू जनता की कमर टूटती जा रही है।"

"जी सद्गुरु...!" मती दास जी बोले–"देश के ऊपर संकट का ऐसा पहाड़ तो कभी नहीं टूटा। पता नहीं करतार को क्या मंजूर है!"

"छठे गुरु, पिता हरगोविंद जी को अत्याचार का सामना करने के लिए लाचार होकर तलवार उठानी पड़ी थी; पर अब तो अत्याचारों का दौर-दौरा पहले से कहीं ज़्यादा है!" गुरु जी ने सोचते हुए कहा–"इस सब का सामना करने के लिए, पता नहीं, क्या कुछ करना होगा?"

उन्होंने सोचा, सबसे पहले तो अपना केन्द्र स्थान ऐसी जगह बनाना होगा जो प्रकृति की गोद में हो। मुग़ल शासकों की आंखों से थोड़ा दूर हो और सामरिक दृष्टि से उपयोगी हो। उन्होंने पास की पहाड़ी रियासत विलासपुर के एक गांव माखोवाल को उपयुक्त स्थान समझा और वहां एक नगर बसाना शुरू किया जो कुछ समय बाद 'आनन्दपुर' नाम से विख्यात हुआ।

उन्हें देश के विभिन्न भागों मे स्थापित सिख-संगतों की ओर से लगातार पत्र मिल रहे थे। ढाका की संगत ने उन्हें विशेष रूप से आमंत्रित किया था। गुरु तेग़ बहादुर देश के दूर-दूर भागों की यात्रा करके अपनी आंखों से देश की जनता का हाल-चाल जानना चाहते थे। अपने चुने हुए साथियों को लेकर वे पूर्वी भारत की यात्रा पर निकल पड़े। उनके साथ उनकी पत्नी (माता गूजरी) भी थीं।

पंजाब से निकल कर अम्बाला, कुरुक्षेत्र, दिल्ली, मथुरा, आगरा, कानपुर और फतेहपुर होते हुए प्रयाग पहुंचे। हर स्थान पर हज़ारों की संख्या में संगत आ जुड़ती। उन्होंने देखा, लोग डरे-सहमे और भविष्य की चिंता में डूबे हुए हैं। एक स्थान पर किसी ने प्रश्न किया–"गुरुदेव! इस संकटमयी स्थिति से हमारी मुक्ति कैसे होगी?'

वे मुस्कराए–"मेरे प्यारे भाई! संकट हमारे मन में है। हमारे मन को भय ने घेर रखा है। संकट से मुक्त होना चाहते तो तो भय का त्याग करो। ईश्वर को स्मरण करो और अपने अंदर आत्म-विश्वास को जगाओ...।"

भै नासन दुरमति हरन कलि मैं हरि को नाम।
निस दिन जो नानक भजै सफल होहि तिह काम।।

किसी ने पूछा–"सद्गुरु! भय से मुक्त कैसे हों? पंडे-पुरोहित मृत्यु का भय दिखाते

हैं। देश के हाकिम अपनी शक्ति का भय दिखाते हैं। हम दीन-हीन, दुर्बल और लाचार लोग आखिर अपनी रक्षा कैसे करें?''

''अपने आप को दीन-हीन और लाचार समझना सबसे बड़ी भूल है मेरे भाई!'' वे बोले–''जो धार्मिक अगुवा ईश्वर के नाम पर तुम्हारे अंदर मृत्यु का भय पैदा करता है, वह ईश्वर को नहीं समझता। बल्कि तुम्हारे अंदर मृत्यु-भय पैदा करके वह अपने स्वार्थ का साधन करता है। ईश्वर तो पतितों का उद्धार करने वाले हैं, हमारा भय नष्ट करने वाले हैं और अनाथों के नाथ हैं। ऐसे परमेश्वर को सदा अपने साथ समझो...

पतित उधारन भै हरन हरि अनाथ को नाथ।
कहु नानक तिह जानिए सदा बसतु तुम साथ।।

गुरु तेग बहादुर स्थान-स्थान की संगत को एक ही उपदेश दे रहे थे–अपने आप में विश्वास पैदा करो, भय से मुक्त हो जाओ। न किसी को भयभीत करो, न किसी का भय स्वीकार करो...

भै काहू को देत नहि नहि भै मानत आनि।
कहु नानक सुन रे मना गिआनी ताहि बखानि।।

प्रयाग तो तीर्थराज कहलाता है। देश के कोने-कोने से लोग संगम पर स्नान करने के लिए वहां आते हैं। देश के विभिन्न भागों की स्थिति का परिचय पाने तथा जन-मानस में विचरते भावों को जानने के लिए उससे अच्छा स्थान भला और कौन-सा हो सकता है। गुरु तेग बहादुर अपने परिवार और साथियों सहित लगभग 6 मास तक प्रयाग में रहे। सुदूर भारत के तीर्थ-यात्रियों के बीच वे विचरे और सभी में भय-मुक्ति का संदेश प्रसारित करते रहे।

प्रयाग से चलकर मिर्ज़ापुर बनारस और गया होते हुए वे पटना पहुंचे।

पटना पहुंचे उन्हें कुछ ही दिन हुए थे कि आमेर के राजा महाराज जयसिंह के पुत्र राजा राम सिंह का दूत उनके पास आया।

''गुरुदेव!'' दूत बोला–''राजा साहब आपके दर्शन करना चाहते हैं।''

''कौन...! राजा राम सिंह जी? वे कहां हैं?''

''गुरुदेव...! राजा साहब एक बड़ी सेना लेकर असम की ओर जा रहे हैं। बादशाह ने उन्हें असम के राजा चक्रध्वज पर चढ़ाई करने के लिए भेजा है। इस समय वे मुंगेर में डेरा डाले हुए हैं।''

''अच्छा...!'' गुरु तेग बहादुर प्रसन्नता से बोले–''आमेर का राजघराना तो गुरु-घर का बहुत प्रेमी है। उनसे मिल कर हमें बड़ी प्रसन्नता होगी।''

''गुरुदेव...!'' दूत बोला–''अन्नदाता राजा साहब को इस समय आपके आशीर्वाद की बहुत आवश्यकता है।''

''क्यों?'' उन्होंने आश्चर्य से पूछा—''क्या बात है?''

''महाराज!'' दूत बोला—''असम के वीर राजा चक्रध्वज की सेनाओं ने मुग़लों को गौहाटी से खदेड़ दिया है। बादशाह ने मीर जुमला को मुग़लों की हार का बदला लेने के लिए भेजा था, पर वहां के ख़राब मौसम में वह बीमार पड़ गया और ढाका में उसकी मौत को गई। आप तो जानते ही हैं सद्गुरु! कि वह क्षेत्र तो जादू-टोने का घर है। पता नहीं, मीर जुमला बीमारी से मरा है या उस पर किसी भूत-प्रेत की छाया पड़ गई।''

वे मुस्कराए—''परमात्मा राजा राम सिंह के अंग-संग है। वे सकुशल रहेंगे।''

''धन्य हो गुरुदेव!'' दूत ने अपना मस्तक झुका दिया—''आप जानते ही हैं कि बादशाह आजकल आमेर के राज-वंश से खुश नहीं हैं। हमारा तो अनुमान है कि अन्नदाता को असम भेजने में उसकी दोहरी चाल है। हम सफल हो गए तो मुग़ल साम्राज्य की खोई प्रतिष्ठा फिर लौट आएगी और भगवान न करे यदि अन्नदाता का हाल भी मीर जुमला जैसा हुआ तो भी बादशाह मन-ही-मन खुश होगा।''

''राजा राम सिंह का बाल भी बांका नहीं होगा।'' वे बोले—''हम स्वयं मुंगेर आने वाले हैं। वहां की संगत ने हमें बहुत से बुलावे भेजे हैं। तुम राजा जी से कहो कि अकाल पुरुष पर भरोसा रखें। हम शीघ्र ही उन्हें मुंगेर में आकर मिलेंगे।''

गुरु तेग बहादुर मुंगेर पहुंचे तो राजा राम सिंह शाही-शिविर छोड़कर उनसे मिलने आए और उन्होंने कहा—''सद्गुरु जी! आपका आशीर्वाद मुझे मिला और मेरे मन का सारा भय दूर हो गया; परन्तु मैं चाहता हुं कि इस मुहिम पर आप मेरे साथ चलने की कृपा करें। आपका वरदहस्त मेरे सिर पर रहेगा तो मुझे रत्ती भर चिंता नहीं रहेगी।''

गुरु तेग बहादुर को सुदूर पूर्वी क्षेत्रों में जाना ही था। वे सहर्ष राजा राम सिंह के साथ जाने को तैयार हो गए।

माता गूजरी उस समय गर्भवती थीं। उन्हें और अपने अनेक साथियों को पटना की संगत की देख-रेख में छोड़ कर वे राजा राम सिंह के साथ हो लिये।

पहले बड़ा पड़ाव ढाका का था। राजा राम सिंह युद्ध की तैयारियां करने लगे और गुरु तेग बहादुर संगतों के बीच रम गए। लगभग दो शती पहले गुरु नानक ने भी उस प्रदेश की यात्रा की थी। तभी से स्थान-स्थान पर संगतें बन गई थीं। ढाका की संगत 'हजूरी संगत' थी, जहां गुरुओं का एक विशेष प्रतिनिधि रहता था, जिसे 'मसंद' कहते थे। यह मसंद आस-पास की संगतों का मार्ग-निर्देशन करता था।

ढाका-निवास के दिनों में दूर-दूर से श्रद्धालु जन गुरु जी का उपदेश सुनने के लिए आने लगे। सुबह-शाम संगत का लाभ लेने के लिए श्रद्धालुओं की बड़ी भीड़ एकत्र हो जाती थी।

इन्हीं दिनों पंजाब का एक व्यापारी रक्खी शाह उन्हें ढाका में आ मिला।

वह बोला—''सद्गुरु! दिल्ली के शहंशाह के जुल्म बढ़ते ही जा रहे हैं। चारों तरफ़ अत्याचार और लूट-पाट का बोल-बाला है। किसी का जीवन, मान और सम्पत्ति सुरक्षित

नहीं है। पता नहीं क्या होगा?"

गुरु तेग बहादुर सोच में डूब गए। फिर बोले—"रक्खी शाह! जुल्म जितना बड़ा होता है, उसका सामना करने के उपाय भी उतने ही बड़े होने चाहिए। अत्याचार रोकने के लिए बलिदान की ज़रूरत हैं। बलिदान से जनता जागृत होती है और तब जागी हुई जनता, अत्याचारों की आंधी के सामने चट्टान की तरह खड़ी हो जाती है।"

तभी भाई संगतिया ने आकर उन्हें प्रणाम किया। गुरु जी उसे देखकर थोड़ा आश्चर्यचकित हुए। वह उनके साथ आनन्दपुर से आया था और उन्होंने उसे अपने परिवार तथा कुछ अन्य साथियों के साथ पटना में ही छोड़ दिया था।

"क्यों भाई संगतिया...तुम यहां कैसे?"

"सच्चे पातशाह! मैं एक बड़ा सुखद समाचार लेकर आया हूं।"

गुरु जी मुस्कराए।

भाई संगतिया बोला—"माता गूजरी जी ने पुत्र-रत्न को जन्म दिया है। पटना की संगतें इस खुशी में फूली नहीं समा रही हैं। वहां नित नए उत्सव मनाए जा रहे हैं। पटना के महाराज और महारानी नन्हें साहबज़ादे के दर्शन करने के लिए नित्य आते हैं।"

गुरु जी विचारों में डूबे हुए थे।

"सद्गुरु!" भाई संगतिया बोला—"माता जी की इच्छा है कि आप पटना पधारें और साहबज़ादे को अपना आशीर्वाद दें।"

"भाई संगतिया!" वे बोले—"तुम बड़ा सुखद समाचार लाए हो। तुम्हारा कल्याण होगा। पटना की संगत से भी हम बहुत खुश हैं। उन्होंने गुरु-परिवार और तुम सबकी कितनी सेवा की है। साहबज़ादे को देखने का मेरा मन भी करता है; परन्तु मैं अभी पटना नहीं लौट सकता। मुझे यहां की उन सारी संगतों से मिलना है, जो दूर-दूर नगरों में फैली हुई हैं, फिर मैंने राजा राम सिंह को भी वचन दिया है। तुम अभी थोड़ा विश्राम करो, फिर पटना वापस चले आओ। सबको हमारी कुशल-क्षेम कहना और हमारा आशीर्वाद देना।"

गुरु तेग बहादुर ने चटगांव सिलहट, लस्कर आदि अनेक स्थानों की यात्रा की। राजा राम सिंह अपनी सेना लेकर रंगामती पहुंच चुके थे। वे वहां जाकर उनसे मिले। राजा राम सिंह बहुत घबराए हुए थे। अहोम जाति के राजा चक्रध्वज के नेतृत्व में सारी जनता मुग़लों के विरुद्ध उठ खड़ी हुई थी। राजा राम सिंह के नेतृत्व में मुग़ल और राजपूत सेनाओं ने गौहाटी पर अधिकार करने का कई बार प्रयत्न किया; परन्तु उन्हें सफलता नहीं मिली।

"सद्गुरु!" राजा राम सिंह ने कहा—"मैं बड़ी कठिनाइयों में फंस गया हूं। शहंशाह के बार-बार पैगाम आ रहे हैं कि गौहाटी पर तुरन्त कब्जा किया जाए; परन्तु राजा चक्रध्वज और उसकी सेना गौहाटी की जिस तरह जी तोड़कर रक्षा कर रही है, उसमें हमारी कोई युक्ति काम नहीं आ रही है। दूसरी तरफ़ हमारी सेना में तेज़ी से बीमारी फैलती जा रही है। ऐसी स्थिति में क्या किया जाए? कुछ भी समझ में नहीं आता।"

"राजन्...!" गुरु तेगबहादुर बोले—"आपका प्रयत्न अहोम जाति को मुग़लों की

दासता में लाने का है, जब कि राजा चक्रध्वज का प्रयत्न अहोम जाति की स्वतंत्रता की रक्षा करना है। आपमें से किसका उद्देश्य पवित्र है?"

"सद्गुरु!"—राजा राम सिंह बोले—"आप ठीक कहते हैं। हमारा घराना कई पीढ़ियों से मुग़ल बादशाहों की सेवा करता आ रहा है। मुग़ल साम्राज्य को बढ़ाने के लिए हमने क्या नहीं किया। उदयपुर के राजाओं की स्वतन्त्रता को नष्ट करने के लिए बादशाहों ने सदा हमें अपना हथियार बनाया। कावुल के आज़ादी-पसंद पठानों को मुग़ल सल्तनत के नीचे लाने के लिए सदा हम लड़ते-मरते रहे। महाराष्ट्र के वीर शिवाजी की स्वराज्य की लड़ाई के विरुद्ध पूज्य पिताजी महाराज जयसिंह को भेजा गया। मुग़ल सल्तनत के लिए हमने क्या नहीं किया?"

"परन्तु राजन्!" गुरु तेगबहादुर बोले—"जिस सल्तनत के लिए आपने और आपके पूर्वजों ने इतना कुछ किया, उसने इस देश को क्या दिया? आज आप देख ही रहे हैं कि औरंगजेब की बादशाहत में प्रजा को स्वधर्म-पालन करने की भी आज़ादी नहीं है। लोगों के धर्म-स्थान नष्ट किए जा रहे हैं, उन पर अनुचित कर लगाए जा रहे हैं, उन्हें अपना धर्म बदलने कि लिए मजबूर किया जा रहा है।"

उनकी बात सुनकर राजा राम सिंह सोच में डूब गए, फिर बोले—"गुरुदेव! मैं बड़े धर्म-संकट में हूं। मैं राजा चक्रध्वज से नहीं लड़ना चाहता। मैं नहीं चाहता कि अहोम जाति, जिसमें स्वतन्त्रता की चिनगारियां शेष हैं, मेरे कारण बुझ जाएं; परन्तु शाही दरबार में हमारी प्रतिष्ठा का भी प्रश्न है। कहीं राजा चक्रध्वज इसे हमारी दुर्वलता समझ कर मुग़ल राज्य की सीमाओं की ओर बढ़ने लगे तो मेरी स्थिति विषम हो जाएगी। तब उनसे युद्ध किए बिना मेरे पास कोई उपाय नहीं रहेगा।"

गुरु तेग बहादुर मुस्कराए—"राजन्! आप इसकी चिंता न करें। राजा चक्रध्वज का घराना भी गुरु-घर से वहुत प्रेम करता है। आप को पता ही है कि सद्गुरु नानक इस प्रदेश में आए थे। तभी से यह वंश गुरु-घर में अपार श्रद्धा रखता है। मैं आपको यह भी बता दूं कि राजा चक्रध्वज मुझसे मिल चुके हैं। वे केवल इतना ही चाहते हैं कि आप उनके प्रदेश पर मुग़लों की हुकूमत कायम करने का विचार छोड़ दें। मुग़लों के राज्य में घुसकर उस पर अधिकार करने का उनका कोई विचार नहीं है।"

राजा राम सिंह की आंखें प्रसन्नता से चमक उठीं—"धन्य हो गुरुदेव! मुझे यह स्वीकार है। चाहे मेरे प्राण ही क्यों न चले जाएं। मेरे हाथों अहोम जाति की स्वतन्त्रता नष्ट नहीं होगी।"

असमवासी अहोम जाति के राजा चक्रध्वज और राजा राम सिंह में इस प्रकार संधि करवा कर गुरु तेग बहादुर वहुत प्रसन्न हुए। इधर उन्हें बराबर समाचार मिल रहे थे कि देश मे औरंगज़ेब की धार्मिक नीति के कारण अत्याचार अपनी सभी सीमाएं लांघते जा रहे हैं।

उन्हें लगा कि उन्हें तुरन्त पंजाब की और लौटना चाहिए। बंगाल और उड़ीसा में

अनेक भागों की यात्रा करते हुए गुरु तेगबहादुर पटना वापस आ गए। शिशु गोबिंद राय की आयु ढाई वर्ष की हो चुकी थी। उनकी बाल-लीलाओं ने पटना की जनता को मोह लिया था। पिता-पुत्र की यह पहली भेंट थी। बालक गोबिंद की बाल-क्रीड़ाए देखकर उसके मुख से मगही बोली के शब्द सुनकर उनका हृदय वात्सल्य से भर आता, परन्तु पंजाब से उन्हें नित्य समाचार मिल रहे थे। हर ओर जुल्म का बोलबाला था। निरपराध लोग बंदी बनाए जा रहे थे। जज़िया कर के बोझ से निर्धन जनता की कमर टूटती जा रही थी।

पटना में तीन महीने रहकर उन्होंने पंजाब की ओर लौटने का निश्चय किया।

"क्या आप हमें अपने साथ नहीं ले जा रहे हैं?"—माता गूजरी ने पूछा।

"नहीं...!" गुरु तेगबहादुर की मुद्रा गंभीर हो गई—"आप जानती हैं कि देश में इस समय अत्याचारों का दौर आया हुआ है। पंजाब की जनता पर तो विशेष रूप से कहर ढाये जा रहे हैं। हमें वहां शीघ्र पहुंचना चाहिए। आजकल तो रास्ते भी सुरक्षित नहीं हैं और गोबिंद जी अभी बहुत छोटे हैं। आप कुछ और समय तक पटना में ही रहिए। यहां की संगत आपकी पूरी देख-भाल करेगी। हम आनन्दपुर पहुंच कर सारी परिस्थिति का अध्ययन करेंगे, फिर आप को बुला भेजेंगे।"

"जैसी आप की इच्छा।" माता गूजरी ने सिर झुका दिया। मार्ग में अनेक स्थानों की यात्रा करते, वहां की संगतों से मिलते, स्थितियों का अध्ययन करते हुए गुरु तेगबहादुर आनन्दपुर वापस पहुंचे।

पांच वर्ष बीत गए।

इस बीच माता गूजरी और बालक गोबिंद पटना में ही रहे, उनके विश्वस्त सिख जन वापस आनन्दपुर आ चुके थे।

पहाड़ियों से घिरा आनन्दपुर नगर धीरे-धीरे विकसित होता जा रहा था।

दूर-दूर की सिख-संगतें गुरु के दर्शन के लिए यहां आती थीं। दूर-दूर से लोग भी इस नगर में आकर बस रहे थे।

गुरु तेगबहादुर का निवास-स्थान सदा भक्तों और दर्शनार्थियों से भरा रहता था। कथा, कीर्तन और उपदेशों से सारा वातावरण गूंजता रहता।

साथ ही गुरु का लंगर था। सभी के लिए एक आज्ञा थी—गुरु का दर्शन करना है तो पहले लंगर में प्रसाद ग्रहण करो।

"क्यों हमें भी पहले लंगर में जाना पड़ेगा?" विलासपुर की रानी ने, जो गुरु-दर्शन के लिए आई थीं, बड़े आश्चर्य से पूछा।

"हां, महारानी जी!" सेवादार ने बड़ी नम्रता से कहा—"गुरु घर का यह नियम है।"

"परन्तु हम उस लंगर से भोजन कैसे ग्रहण करेंगे, जिसके सम्बन्ध में यह भी पता नहीं कि उसे पकाने वाला ब्राह्मण है या शूद्र।"

सेवादार ने फिर बड़ी नम्रता के कहा—"महारानी जी! गुरु के दरबार में न कोई ब्राह्मण है न शूद्र, न हिन्दू है न मुसलमान। यहां सभी एक हैं, बराबर हैं और भाई हैं।"

रानी विना दर्शन किए ही वापस लौट गयीं।

वे गहरी चिंता में डूबे हुए थे।

उनके सामने बैठे हुए कश्मीर से आए सभी पंडित भी चुप थे और उदास थे।

पंडित कृपा राम ने उदासी भरे वातावरण को तोड़ते हुए कहा—"गुरुदेव! सद्‌गुरु नानक ने दो शती पहले कहा था—इस कलियुग में राजे कसाई हो गए हैं, धर्म पंख लगा कर उड़ गया है, चारों ओर झूठ की अमावस्या छाई है, सच्चाई का चंद्रमा कहीं दिखाई नहीं देता; परन्तु आज की स्थिति तो उससे भी भयानक है।[1] आज के कसाई राजाओं की बनाई हुई झूठ की काली अमावस हम सब को निगल जाने को तैयार खड़ी है। ऐसा लगता है, हममें से कोई भी नहीं बचेगा। हमारे सामने दो ही रास्ते हैं—सिर झुकाओ या सिर कटाओ'।"

पंडित कृपा राम चुप हुए, तो उदासी का कोहरा और घना हो गया।

पंडित कृपा राम कश्मीर की एक प्राचीन संस्कृत पाठशाला के आचार्य थे। उसी पाठशाला के एक अन्य अध्यापक पंडित धर्मदास बोले—"सद्‌गुरु! कश्मीर के नए सूबेदार ने तो अति ही कर दी है। सारे प्रदेश में डोंडी पिटवा दी गई है मंदिर तोड़े जा रहे हैं। पाठशालाएं बलात् वन्द की जा रही हैं। सिपाही यदि किसी के शरीर पर यज्ञोपवीत या किसी के मस्तक पर तिलक लगा हुआ देख लें तो शिकारी कुत्तों की तरह उन पर टूट पड़ते हैं।"

गुरु तेगबहादुर के मस्तक की रेखाएं और सघन हो गईं। आंखें कहीं बहुत दूर देखने लगीं।

"गुरु देव!" यह तीसरी आवाज़ थी—"गुरु नानक देव ने उस समय आशा और विश्वास का दीपक इस धरती पर जलाया था, जब सचमुच अमावस की काली रात थी। दूर-दूर तक प्रकाश की कोई किरण दिखाई नहीं दे रही थी। आज इस दीपक को जलते हुए दो सौ वर्ष हो चुके हैं। यह दीपक अब एक तेजपुंज के रूप में बदल गया है। गुरु का घर अब बेसहारों का सहारा है, निराश्रितों का आश्रय है और सबसे बड़ी बात यह है कि हम सभी के मार्ग-दर्शन का केन्द्र हैं।"

पंडित कृपा राम बोले—"सद्‌गुरु! आप जानते ही हैं कि आज अपने समाज की क्य स्थिति हैं लोग समझ रहे हैं कि उनके साथ अन्याय हो रहा है, फिर भी चुप हैं और सब कुछ सह रहे हैं। कारण भी आप जानते हैं। लोग भयभीत हैं, डरे हुए हैं। अन्याय

---

1. कलि काते राजै कसाई, धरम पंख करि उडरीआ।
कूड़ अमावस सच चंद्रमा, दीसे नाहीं कहि चड़ीसा।

के सामने कौन खड़ा हो? जीवन की बाजी कौन लगाए?''

''जीवन की बाजी कौन लगाए?''–गुरु तेग बहादुर के मुंह से अस्फुट स्वर में निकला, फिर वे गुरु नानक की पंक्तियां दोहराने लगे–

जे तउ प्रेम खेलण का चाउ।
सिर धर तली गली मेरी आउ।।
इत मारग पैर धरो जै।
सिर दीजै कणि न कीजै।।[1]

आगन्तुक पंडित उनकी ओर टकटकी लगाए देख रहे थे। गुरुदेव का स्वर गंभीर होता जा रहा था। उनकी आंखें मुंद गई थीं और उनके मुख पर रक्त की लालिमा गहराने लगी थी।

फिर उनकी आंखें खुलीं। उन आंखों में गहरा आश्वासन झांक रहा था और उसी के साथ एक निश्चय भी।

''पंडित जी!'' वे बोले–''आपने ठीक कहा है। जो भी संकट हमें घेरे हुए हैं, उसका कारण भय है। यह भय शासन का है। उसकी ताकत का है; पर इस बाहरी भय से भी कहीं अधिक भय हमारे मन का है। हमारी आत्मिक शक्ति दुर्बल हो गई है। हमारा आत्मबल नष्ट हो गया है। इस बल को प्राप्त किए बिना यह समाज भय-मुक्त नहीं होगा। बिना भय-मुक्त हुए यह समाज अन्याय और अत्याचार का सामना नहीं कर सकेगा।''

''परन्तु गुरुदेव!''–पंडित कृपा राम बोले–''सदियों से विदेशी पराधीनता और आन्तरिक कलह में डूबे हुए इस समाज को भय से छुटकारा किस तरह मिलेगा?''

''वह अकाल पुरुष ही हमारे भय का नाश करेगा?''–गुरुदेव की दृष्टि ऊपर की ओर उठ गई और मुंह से शब्द फूटने लगे–

पतित उधारन भै हरन हरि अनाथ के नाथ।
कहु नानक तिह जानिए सदा बसत तुम साथ।।

''हमारे साथ सदा बसने वाला परमेश्वर ही हमें वह शक्ति देगा कि हम भय मुक्त होकर अन्याय का सामना कर सकें।''

''गुरुदेव, इसके लिए हमें और कितनी लम्बी प्रतीक्षा करनी होगी?'' पंडित कृपा राम ने व्यग्र होकर पूछा।

---

1. यदि तुम सच्चे प्रेम का खेल खेलना चाहते हो, तो सिर को हथेली पर रखकर मेरे रास्ते पर आओ। यदि इस मार्ग पर पैर धरना है, तो सिर देना होगा और तनिक भी संकोच नहीं करना होगा।

''प्रतीक्षा की घड़ियां समाप्त हो गईं पंडित जी!'' गुरुजी ने मुस्कराते हुए कहा—''परमात्मा की इच्छा का निमित्त हमें ही बनना होगा।''

इस बीच नौ वर्ष के बालक गोबिंद भी पिता के पास आकर बैठ गए थे। गुरु तेग बहादुर ने बड़े स्नेह से बालक की ओर देखा। उसकी पीठ पर हाथ फेरा और कहा—''पंडित जी! भय का कारण अंधेरा है, जिसमें व्यक्ति को कोई मार्ग नहीं सूझता। अंधेरा दूर करने के लिए दीपक जलाना पड़ता है और दीपक तेल से जलता है। आइए हम सब मिलकर दीपक जलाएं। उसमें अपने जीवन का तेल डालें, जिससे अंधेरा दूर हो सके।''

''और सबसे पहले इस दीपक में तेल मैं अपने जीवन का डालूंगा। परमेश्वर की यही इच्छा है।''

सन्नाटा कुछ और गहरा गया था।

वे बोले—''अंधेरा बहुत घना है। प्रकश भी उसी मात्रा में चाहिए। एक दीपक से अनेक दीपक जलेंगे। एक जीवन की आहुति अनेक जीवनों को इस रास्ते पर लाएंगी।''

''गुरुदेव!'' पं. कृपा राम बोले—''आपने क्या निश्चय किया है, यह ठीक-ठीक हमारी समझ में नहीं आया। यह भी बताइए कि हमें क्या करना होगा?''

वे मुस्कराए—''पंडित जी, भयग्रस्त और पीड़ित जातियों को जगाने के लिए आवश्यक है कि कोई ऐसा व्यक्ति अपने जीवन का बलिदान दे, जिसके बलिदान से लोग हिल उठें, जिससे उनके अंदर की आत्मा चीत्कार कर उठे। वह बलिदान उन्हें कुछ करने के लिए प्रेरित कर सके। आप मेरे पास आए हैं। सद्‌गुरु नानक की गद्दी की ज़िम्मेदारी मेरे कंधों पर है। गुरु नानक का घर सब का सांझा घर है। मैंने निश्चय किया है कि समाज की आत्मा को जगाने के लिए सबसे पहले मैं अपने प्राण दूंगा और फिर सिर देने वालों की एक श्रृंखला बन जाएगी। लोग हंसते-हंसते मौत को गले लगा लेंगे। हमारे लहू से समाज की आत्मा पर चढ़ी कायरता और भय की काई धुल जाएगी और तब... ।''

''और तब शहीदों के लहू से नहाई हुई तलवारें अत्याचार का सामना करने के लिए तड़प उठेंगी।''

यह बात बालक गोबिंद के मुंह से निकली थी। उन सरल आंखों में भावी संघर्ष की चिनगारियां फूटने लगी थीं।

दिल्ली मे चांदनी चौक की शाही कोतवाली।

गुरु तेग बहादुर और तीन साथी—भाई मती दास, भाई सती दास और भाई दयाल दास—वहां बंदी बना कर रखे गए हैं।

काज़ी बोला—''आप लोग अपना भला क्यों नहीं सोचते। मुफ्त में जान गंवाने का क्या फायदा हैं आप जहांपनाह की बात क्यों नहीं मान लेते?''

''काज़ी जी!'' गुरु तेग बहादुर बोले—''आप खुदा परस्त हैं। आप अच्छी तरह जानते हैं कि खुदा एक है। उस तक पहुंचने के रास्ते अलग-अलग हो सकते हैं। हर इंसान

को खुदा तक पहुंचने के लिए अपनी राह चुनने की आज़ादी है। आप बादशाह को समझाइए कि वे अपनी रिआया के इस हक को न छीनें।''

काज़ी बोला—''बादशाह सलामत अच्छी तरह जानते हैं कि आप हिन्दुओं के रहनुमा हैं। अच्छा तो यह है कि आप लोगों को समझाएं कि वे सही रास्ते पर आ जाएं और बादशाह जो मज़हब कबूल करने के लिए कहते हैं, उसे कबूल कर लें। इसी में उनकी भलाई है।''

शाही कारिन्दों और गुरु तेगवहादुर के बीच यह बातचीत कई दिन तक चलती रही। आखिर एक दिन उन्हें कहा गया—''हमारे पास बादशाह का आखिरी फरमान आ चुका है। या तो आप हमारी बात मान लें या मौत के लिए तैयार हो जाएं।''

गुरु तेगबहादुर मुस्कराए—हमारे प्रियतम का भी आखिरी फरमान हमारे पास आ चुका है—

जिस मरने ते जग डरे मेरे मन आनन्द,
मरने ही ते पाइए पूरन परमानंद।

सबसे पहले सिपाही भाई मती दास को ले गए। कोतवाली के सामने उन्हें दो तख्तों के बीच बांध दिया गया। तो जल्लादों ने आरा सिर पर रख दिया।

आरा चला।

भाई मती दास का शरीर दो टुकड़ों में कटने लगा। चौक को घेर कर खड़ी विशाल भीड़ फटी आंखों से यह दृश्य देखती रही।

फिर बारी आई भाई दयाल दास की।

उनके हाथ-पैर बांध दिए गए।

फिर उन्हें उबलते हुए तेल के कढ़ाव में डाल दिया गया। जिस भीड़ ने यह नज़ारा देखा, उसकी आंखें पथरा-सी गईं।

तीसरे दिन शाही कारिन्दे भाई सती दास को लेने आ गए।

''क्या तुम्हारा भी वही फैसला है?''काज़ी ने पूछा।

''मेरा फैसला तो मेरे सद्गुरु ने कब का सुना दिया।''—उन्होंने मुस्कराते हुए कहा।

भाई सती दास के सारे शरीर को रुई से लपेट दिया गया और फिर उसमें आग लगा दी गई। शरीर धू-धू कर जलने लगा। उसी के साथ भीड़ की पथराई आंखें पिघल उठीं और वह चीत्कार कर उठी।

फिर वह घड़ी भी आ गई।

काज़ी ने गुरु तेगबहादुर के लिए भी फतवा पढ़ दिया—'धर्म बदलो या मृत्यु स्वीकार करो।'

कोतवाली के खुले मैदान में विशाल वृक्ष के नीचे गुरु तेगबहादुर गहरे ध्यान में डूबे हुए थे। जल्लाद जलालुद्दीन नंगी तलवार लेकर खड़ा था। आकाश में घने बादल छा गए

थे। कोतवाली के बाहर असंख्य भीड़ उमड़ रही थी। शाही सिपाही उस भीड़ को काबू में रखने के लिए डंडों की बौछार कर रहे थे। शाही घुड़सवार भीड़ को रौंदते और गालियां बकते अपने घोड़े दौड़ा रहे थे।

उधर आकाश में बादल और गहरे हो उठे थे। हवा की रफ़्तार तेज़ होती चली जा रही थी।

काज़ी ने इशारा किया
जल्लाद की तलवार चली
और
गुरु तेग बहादुर ने–
'सीस दिया पर सी न उचरी'

एकाएक हवा का दबाव तेज़ हो उठा और तेज अंधड़ चलने लगा। आकाश से मोटी-मोटी बूंदें भी गिरीं। चारों ओर कोहराम मच गया। घुड़सवारों के घोड़े हिनहिनाने लगे। सूरज घने बादलों के पीछे छिप गया और अंधेरा गहरा हो उठा।

तभी बिजली की चमक की भांति एक व्यक्ति गुरु के कटे हुए शरीर तक पहुंच गया। उसका शरीर काले कपड़े से ढका हुआ था। उसने पलक झपकते गुरु-शीश को उठाकर अपने कपड़ों में छिपा लिया और भीड़ में गायब हो गया।

यह था भाई जैता।

उसका घोड़ा कुछ दूर तक वृक्ष से बंधा तैयार खड़ा था।

गुरु-शिर लेकर वह आनन्दपुर की ओर निकल गया।

अंधड़ और अंधेरा और घना होता गया।

भीड़ का कोहराम और तेज़ हो गया।

बेकाबू भीड़ को संभालना सिपाहियों के लिए और मुश्किल हो उठा।

तभी फतेहपुरी की तरफ़ से आता हुआ बैलगाड़ियों का एक काफिला तेज़ी से लाल किले की ओर बढ़ने लगा।

यह काफिला लक्खी शाह लुवाणे का था, जो शाही ठेकेदार था और क़िले में रसद आदि पहुंचाने का काम किया करता था।

साथ ही वह गुरु का सिख भी था।

"चलो, हटो...रास्ता छोड़ो!...शाही रसद का काफिला जा रहा है!...चलो हटो...! चलो...!" काफिले के आगे-आगे लक्खी शाह का बेटा नगाहिया हांक लगा रहा था। उसके अन्य सात बेटे भी हांक लगाते चल रहे थे।

एकाएक गाड़िया कोतवाली के सामने आकर रुक गयीं। गाड़ियों के खड़े हो जाने से शाही सिपाही इधर-उधर छितर गए।

और अंधड़ था कि तेज़ ही होता चला जा रहा था। धूल सबकी आंखों में भरती चली जा रही थी। नगाहिया और उसके तीन भाई झटपट, कोतवाली के वृक्ष के

नीचे पहुंच गए।

खून में डूबी गुरु-देह पड़ी हुई थी।

उन्होंने उसे एक चादर में लपेट लिया और बीच की जिस बैलगाड़ी में रुई लदी थी, उसमें लाकर रुई से ढंक दिया।

काफिला फिर आगे बढ़ चला।

चलो, हटो!...रास्ता छोड़ा!...शाही रसद का काफिला जा रहा है!...चलो, हटो!...चलो हटो....!

गुरु-शीश का अग्नि संस्कार हुआ आनन्दपुर में और गुरु-देह को लक्खी शाह दिल्ली के पास ही अपने गांव रायसीना में ले आया, अंतिम संस्कार के लिए।

जहां गुरु तेगबहादुर शहीद हुए वहीं आज बना हुआ है चांदनी चौक का भव्य गुरुद्वारा 'शीश गंज'।

जहां गुरु-देह का संस्कार हुआ, वहां बना है—सुन्दर गुरुद्वारा 'रकाव गंज' नई दिल्ली संसद भवन के एकदम निकट।

जीवन आदर्श

गुरु तेग बहादुर के जीवनादर्श का एक पहलू उनका अपना जीवन है और दूसरा पहलू उनकी रचनाएं हैं। गुरु तेग बहादुर की वाणी में अभिव्यक्ति की एक बड़ी लुभावनी सरलता है जो पाठक से अपना सीधा तादात्म्य स्थापित कर लेती है।

गुरु तेग बहादुर की वाणी का रचना-पक्ष दो स्थितियों को समानान्तर ढंग से हमारे सामने रखता है। एक स्थिति है संसार और सांसारिकता की, जिसमें धन-सम्पत्ति है, पत्नी और पुत्र हैं; लोभ, मोह, काम, क्रोध और अहंकार आदि मानसिक प्रवृत्तियां हैं। इस पक्ष का एक सामूहिक नाम है 'माया'। दूसरी स्थिति परमात्मा की है, जिसमें सांसारिकता से छूटने, उससे उबरने, उससे मुक्त होने और उस परमसत्ता से जुड़ने का बारम्बार आग्रह है। इस पक्ष को 'नाम' कहा गया है।

मानवीय संकट क्या है? संसार के सभी सम्बन्ध, सभी सुख, सभी आनन्दमयी वस्तुएं मनुष्य के लिए हैं। मनुष्य साध्य है। ये सभी चीज़ें साधन हैं। ये चीज़ें मनुष्य को व्यापक बनाती हैं। उसे पूर्णता प्रदान करती हैं और जीवन को सार्थक बनाती हैं, परन्तु होता क्या है? मनुष्य सम्बन्धों, सुखों और सुविधाओं का इतना दास बन जाता है कि ये सभी चीज़ें उसके लिए न होकर वह इन चीज़ों के लिए हो जाता है। परिणाम यह होता है कि व्यापकता के स्थान पर उसके हाथ लघुता आती है। पूर्णता की अपेक्षा वह कटे-पिटे अधूरेपन का शिकार हो जाता है और सार्थकता से बहुत दूर होकर जीवन की निरर्थकता के बोझ को ढोने लगता है। इसके सामने कोई बड़ा आदर्श नहीं रहता। सुख की खोज में कुत्ता बना हुआ वह द्वार-द्वार डोलता फिरता है और यदि कुछ पा जाए तो कंचन, कामिनी, छोटे-छोटे मान-अपमान, सुख-दुख, हर्ष-शोक, स्तुति-निन्दा में घिर कर रह जाता है।

गुरु तेग बहादुर अपनी वाणी द्वारा मनुष्य को इन दोनों स्थितियों का साक्षात्कार कराते हैं और फिर 'माया' से उबरकर 'नाम' के साथ जुड़ने की प्रेरणा देते हैं।

गुरुजी के समय का समाज अपने वृहत्तर जीवन-आदर्शों को भूलकर कंचन और कामिनी की आराधना में ही डूबा हुआ था। व्यक्ति की ऐसी मानसिकता को चित्रित करते हुए उन्होंने कहा–

कहउ कहा अपनी अधमाई।
उरझिओ कनक कामिनी के रस नह कीरति प्रेम गाई।
जग झूठै कउ साचु जानि कै ता सिउ रुच उपजाई।।
दीन बंध सिमरिओ नहीं कबहूं होतु जु संगि सहाई।
मगन रहिओ माइआ मै निस दिनि छुटी न मन की काई।
कहि नानक अब नाहि अनत गति बिनु हरि की सरनाई।।

इस एक पद से ही अनेक बातें उभर आती हैं। माया के प्रपंच में फंसा हुआ व्यक्ति सोचता है कि मैं अपनी अधमता का वर्णन किस तरह करूं। मैं सोने और स्त्री में ही उंलझकर रह गया हूं, संसार की झूठी चीज़ों को ही सच मान बैठा हूं, इसलिए उन्हीं में ही रुचि ले रहा हूं। क्योंकि रात-दिन माया में ही मग्न रहता हूं, इसलिए मन से अज्ञान की काई दूर नहीं होती। मुझे चाहिए क्या? दीनबंधु का स्मरण करूं। बिना उसकी शरण में गए मेरी गति नहीं है।

गुरु तेगबहादुर व्यक्ति को उसके मोह की छोटी सीमाओं से निकालकर ईश्वर-नाम के व्यापक धरातल पर लाना चाहते थे, जहां से वह अपने आपको, अपने समाज को, अपने परिवेश को देख सके। व्यक्ति को वे जिस ईश्वर से जोड़ना चाहते थे, वह उससे कहीं दूर का ईश्वर नहीं था। वह तो उसी के अंदर बसा हुआ सत्य था जिसे वह अपनी संकुचित मोह-दृष्टि के कारण भुला बैठा था। इसलिए उन लोगों से, जो अपने आप को माया से मुक्त करके ईश्वर की तलाश में जंगलों में भटकने चले जाते थे और अपने आप को एक दूसरे प्रकार की लघु सीमा में घेर लेते थे, कहा–उसे खोजने के लिए वन में मत जाओ वह तो तुम्हारे अन्दर उसी तरह बसा हुआ है, जैसे पुष्प में सुगंध बसती है या दर्पण में छाया बसती है। इसलिए सबसे पहले अपने आपको पहचानो, क्योंकि अपने आपको पहचाने बिना भ्रम की काई नही मिट सकती।[1]

व्यक्ति अपने आपको पहचान कर जिस ईश्वर के साथ जुड़ता है वह है कैसा?

---

1. काहे रे बन खोजन जाई।
सरब निवासी सदा अलेपा तोही संग समाई।।
पुहप मधि जिउ बासु बसतु है मुकर माहि जैसे छाई।
तैसे ही हरि बसे निरंतरि घट की खोजहु भाई।।
बाहरि भीतरि एका जानहु इहु गुरु गिआनु बताई।
जन नानक बिनु आपा चीनै मिटै न भ्रम की काई।।

उसमें बहुत से गुण हैं; परन्तु गुरु तेग बहादुर उसके कुछ विशिष्ट गुणों की ओर संकेत करते हैं—

पतित उधारन भै हरन हरि अनाथ के नाथ।
कहु नानक तिह जानिए सदा बसतु तुम साथ।

वह पतितों का उद्धारक है, भय का नाश करने वाला है और अनाथों का नाथ है। साथ ही वह सदा हमारे साथ रहता है।

उस समय का समाज कैसा था? कहीं लोग शासन द्वारा पतित किए जा रहे थे, तो कहीं उस समाज के द्वारा भी जो किसी (अछूत) की छाया पड़ जाने मात्र से ही व्यक्ति को पतित मान लेता था। दूसरी बात यह थी कि उस समाज में रहने वाला व्यक्ति भयग्रस्त था- डरा हुआ, सहमा हुआ और इसीलिए अपने आपको अनाथ महसूस कर रहा था। उन्होंने कहा—ईश्वर का सम्पर्क हमें भय-मुक्त करता है। गुरु नानक ने अपने 'जपुजी' में भी ईश्वर के अनेक गुणों में एक गुण उसका 'निरभउ' (निर्भय) होना भी बताया था। उसे किसी का भय नहीं और उसका साथ व्यक्ति को भी निर्भय बनाता है। गुरु तेग बहादुर ने कहा—"कलियुग में हरि का नाम भय का नाश करता है, दुरमति को नष्ट करता है। इसलिए जो इसे स्मरण रखता है, उसके सभी काम सफल हो जाते हैं।"[1]

जब व्यक्ति के सम्मुख कोई बड़ा आदर्श नहीं होता, तो उसका सारा ध्यान किसी भी तरह अधिक-से-अधिक धन एकत्र करने और उसे अपनी पत्नी-बच्चों पर लुटने में लग जाता है। ऐसा व्यक्ति—

मद माइआ कै भइयो बावरो हरि जसु नहि उचरै।
करि परपंचु जगत कउ डहकै अपनो उदरु भरै।।

माया में डूबा हुआ व्यक्ति अपने यौवन, धन और अपनी प्रतिष्ठा के अतिरिक्त और कुछ नहीं देख पाता,[2] वह माया के मद में बावरा हो जाता है[3] और धन की आशा में लोभग्रस्त होकर इधर-उधर भागता-फिरता है। सुख की तलाश करता है; परन्तु बहुत से दुख पाता है और जन-जन की नौकरी बजाता हुआ, द्वार-द्वार पर कुत्ते की तरह डोलता फिरता है।[4]

---

1. भै नासन दुरमति हरन कलि मैं हरि को नाम।
   निस दिन जो नानक भजै सफल होहि तिह काम।।
2. साधो इहु जगु भरमु भुलाना।
   जोबन धनु प्रभता के मद् मै अहर्निस रहे दीवाना।।
3. मदि माइया के भइयो बावरो हरिजसु नहिं उचरै।
4. बिरथा कहउ सिउ मन की।
   लोभ ग्रसिओ दसहू दिस धावत आसा लागिओ धन की।।
   सुख कै हेति बहुत दुख पावत सेव करत जन जन की।
   दुआरहि दुआरि सुआन जिउ डोलत नह सुध राम भजन की।।

गुरु तेग बहादुर ने अपनी वाणी में जिस मायाग्रस्त मन या व्यक्ति का चित्र खींचा है, वह तत्कालीन समाज का ही एक चित्र था। ऐसा समाज जिसके घटक वैयक्तिक सुख-साधना में लीन हो गए थे और सभी तरह के उच्चस्तरीय दायित्वों को भुला बैठे थे। लोग वेद-पुराण तो सुनते थे, उत्तम मार्ग क्या है, यह भी जानते थे; परन्तु जीवन में उसका पालन नहीं करते थे और इस तरह दुर्लभ मनुष्य जन्म को व्यर्थ ही गंवा रहे थे।[1]

उससे पहले गुरु नानक ने भी अपने समय में समाज का चित्र अपनी एक रचना में खींचा था। उन्होंने लिखा था—अब लोभ ही राजा बन गया है, हर प्रकार का पाप इसका मंत्री है और झूठ आज का सरदार है। लोभ और पाप के दरबार में काम नायब़ है, उसे बुलाकर सलाह पूछी जाती है और उसी के साथ बैठकर विचार किया जाता है। आम जनता ज्ञान से विहीन होने के कारण अंधी हो गई है। अपने आपको ज्ञानी कहने वाले लोग निरर्थक स्वांग भरने में लगे हुए हैं और किसी भी योद्धा का उच्च स्वर में गुणगान करने लगते हैं। मूर्ख पंडित कोरी चालाकी और तर्क-वितर्क ही करना ज़ानते हैं और संचित धन से ही प्यार करते हैं। धर्मी लोग धर्म करते हैं; पर उसके फल को गंवा देते हैं, क्योंकि वे अपने धर्म के बदले में केवल अपना मोक्ष ही मांगते हैं। जो लोग अपने आपको यति कहते हैं, वे यति बनने की वास्ताविक युक्ति नहीं जानते, बस ऐसे ही अपना घरबार छोड़ बैठते हैं। सभी लोग अपने आपको पूर्ण समझते हैं, कोई अपने आपको कम नहीं समझता।[2]

गुरु तेग बहादुर की वाणी में संसार की नश्वरता का स्वर बहुत प्रमुख है। इस नश्वरता के अनेक पहलू हैं। उनके सामने प्रश्न यह नहीं था कि यह संसार नश्वर है,

---

1. वेद-पुरान साध मग सुनि करि।
निमष न हरि गुन गावै।।
दुरलभ देह पाइ मानस की बिरथा जनमु सिरावै।।
2. लबु पापु दुइ राजा महता कुड़ु होआ सिकदारु।
कामु नेंबु सदि पुछीऐ बहि बहि करे बीचारु।।
अंधी रयति गिआन विहूणी भाहि भरे मुरदारु।
गिआनी नचहि बाजे बावहि रूप करहि सीगारु।।
उचे कूकहि वादा गावहि जोधा का वीचारु।
मूरख पंडित हिकमति हुजति संजै करहि पिआरु।।
धरती धरमु करहि गावावहि मंगहि मोख दुआरु।
जती सदावहि जुगति न जानहि छड़ि बहहि घर बारु।।
सभु को पूरा आपे होवै घाटे न कोई आखै।
पति परवाणा पिछे पाइऐ ता नानक तौलिआ जापै।।

इसलिए व्यक्ति को अपना समाधान खोजने के लिए इसे छोड़ देना चाहिए या संसार से निरपेक्ष हो जाना चाहिए। उनके सामने जो समाज था वह सांसारिक सुखों की भाग-दौड़ में इस तरह डूबा हुआ था कि उसे यह बताना बहुत आवश्यक था कि जीवन में उदात्त आदर्शों के अभाव में सब कुछ व्यर्थ हैं। एक ओर शासक वर्ग के लोग थे, जो अपनी सत्ता के नशे में किसी को कुछ समझते ही नहीं थे और यह समझते थे कि मानो वे सब पर शासन करने का पट्टा लिखाकर लाये हैं। ऐसे लोगों के लिए उन्होंने कहा–"इस संसार में राम और रावण जैसे शक्तिमान पुरुष नहीं रहे, जिनका इतना बड़ा परिवार था। यह संसार या इस संसार की सारी उपलब्धियां तो स्वप्न की तरह अस्थिर हैं।[1] तुम्हें अभिमान किस बात का है। पृथ्वी का राज तो बालू की दीवार की तरह है।"[2]

दूसरी ओर वे लोग थे जो जीवन और लालसाओं के मोह में इस कदर डूबे हुए थे कि उसे बचाये रखने और उसे पाते रहने की लालसा में सभी प्रकार का अपमान सह रहे थे और अपने स्वाभिमान को पूरी तरह भुला बैठे थे। ऐसे समाज को यदि उसके स्वत्व का साक्षात्कार कराना था, यदि उसमें आत्म-विश्वास और स्वाभिमान पैदा करना था, तो उसके घटकों को सांसारिकता के छोटे-छोटे मोहों से मुक्त करना बहुत आवश्यक था। उसे यह समझाया जाना ज़रूरी था कि हाड़-मांस के जिस तन को बचाए रखने का मूल्य वह सभी प्रकार की दीनता और अपमान के रूप में चुका रहा है, वह तो मिथ्या है। वास्तविक सच तो अंदर बसने वाली आत्मा (राम) ही है, उसी को पहचानना चाहिए।[3]

सिख-गुरुओं ने कभी भी संसार त्यागकर वनवासी बनने का उपदेश नहीं दिया। वे संसार में रहकर, सांसारिक दायित्वों और कर्तव्यों का पालन करते हुए जीवन व्यतीत करने का आग्रह करते रहे हैं। जब वे कहते हैं कि संसार झूठा है, तो उनका संकेत उस सांसारिकता या माया की ओर होता है, जिसमें लिप्त होकर व्यक्ति अपने व्यापक दायित्वों को भूल जाता है। गुरु तेग बहादुर के पितामह गुरु अर्जुन ने कहा था–"तुम सदैव उद्यम करते हुए जिओ, कमाते हुए सुख प्राप्त करो, ध्यान करते हुए प्रभु से मिलो, तुम्हारी सारी चिंता दूर हो जाएगी।"[4] इसमें व्यक्ति का उद्यम करना, धन अर्जित करना, ईश्वर की बृहत्तर सत्ता से अपने आपको जोड़ना सब कुछ एक साथ है।

गुरु तेग बहादुर व्यक्ति को उस मानसिक स्तर पर लाना चाहते थे, जहां से वह

---

1. राम गइओ रावनु गइयो जाकउ बहु परवार।
   कहु नानक थिरु कुछ नहीं सुपने जिउ संसार।।
2. काहे पर करत मानु।
   बारु की भीति जैसे वसुधा को राजु है।।
3. साधो इहु तनु मिथ्या मानउ।
   या भीतर जो राम बसत है, साचउ ताहि मछानउ।।
4. उद्दम करेंदिआं जीउ तू कमावदिंआ सुख भुंच।
   धिआदिंआ तू प्रभ मिलि नानक उतरी चिंत।।

सभी प्रकार का बलिदान कर सके, अपने प्राणों को अत्याचारी के सिर पर कच्चे ठीकरे की तरह फोड़ सके, हंसते-हंसते मृत्यु का वरण कर सके, अपने उद्देश्य की प्राप्ति के लिए सिर को हथेली पर रखकर चल सके। यह स्थिति उस समय आती है, आज वह दुख में दुख नहीं मानता, उसमें सुख और स्नेह की कामना नहीं रहती, वह भय मुक्त हो जाता है, सोने को मिट्टी की तरह निर्मूल्य मान लेता है। वह निंदा और स्तुति, लोभ, मोह और अभिमान से ऊपर उठ जाता है। न उसे हर्ष छूता है और न शोक, न उसे वैयक्तिमान की चिंता रहती है, न अपमान की। आशा का मनशः त्याग कर वह सांसारिकता की सभी आशाओं से मुक्त हो जाता है। काम-क्रोध उसे छूते भी नहीं। उसके हृदय में तो माया के स्थान पर ब्रह्म निवास करने लगता है।[1]

इसीलिए ऐसा साधक मृत्यु की रत्ती भर चिंता नहीं करता, क्योंकि वह जानता है कि चिंता उस बात की करनी चाहिए जो अनहोनी हो। जो जीवन से चिपटे रहते हैं, मृत्यु तो उन्हें भी नहीं छोड़ती।[2] वे व्यक्ति को बार-बार सावधान करते हैं कि वह जीवन की सच्चाई की ओर जीवन के महत् आदर्शों की ओर उन्मुख हो। अन्यथा जैसे फूटे घड़े से पानी निकलता रहता है, उसका जीवन भी निरर्थक कामों में फंस कर क्षण-क्षण घटता चला जा रहा है।[3]

गुरु तेग बहादुर बार-बार ईश्वरीय शक्ति पर, जो व्यक्ति के अपने अंदर की ही शक्ति है; भरोसा रखने, उसे उत्पन्न करने का आग्रह करते हैं। जीवन में एक स्थिति ऐसी आती है, जब व्यक्ति यह अनुभव करता है कि उसका बल छूट गया है, उस पर अनेक बंधन पड़ गए हैं और उसके सम्मुख कोई उपाय नहीं रह गया है। अपने एक दोहे में वे इसी तरह की एक मनःस्थिति को उभारते हैं—

---

1. जो नर दुख में दुख नहिं माने।
   सुख सनेहु अरुभै नहीं कंचन माटी मानै।।
   नह निंदिआ नह उससति जाकै, लोभ मोह अभिमान।
   हरष सांग ते रहे निआरउ नाहिं मान अपमाना।
   आसा मनसा सगल तिआगी, जग ते रहे निरासा।
   काम क्रोध जिह परसै नाहनि, तिह घट ब्रह्म निवासा।।
   गुरु किरपा जिह नर कउ कीनी, तिह इह जुगति पछानी।
   नानक लीन भइओ गोबिंद सिउ, जिउ पानी संगि पानी।।
2. चिंता ताकी कीजिए जो अनहोनी होइ।
   इह मारगु संसार को नानक थिरु नहिं कोइ।।
3. चेतना है तउ चेति लै निस दिन में प्रानी।
   छिन छिन अउध बिहात है फूटे घट जिउ पानी।।

वलु छुटकिउ बंधन परे कुछ न होत उपाइ।
कहु नानक अब ओट हरि गजि जिउ होहु सहाइ।।

फिर वे इस मनःस्थिति का समाधान करते हुए कहते हैं–

बल होआ बंधन छुटे सम किछु होत उपाइ।
नानक सब किछु तुमरै हाथ मै तुम ही होत सहाइ।।

एक स्थिति ऐसी आती है जब सभी संगी-साथी व्यक्ति को बेसहारा छोड़कर भाग जाते हैं–

संग सखा सभ तजि गए कोऊ न निबहिओ साथ।
कहु नानक इह बिपत मै टेक एक रघुनाथ।।

ऐसी स्थिति में वे साधक को आश्वासन देते हुए स्वयं ही कहते हैं–

नामु रहिओ साधू रहिओ रहिओ गुरु गोबिंद ।
कहु नानक इह जगत में किन जपिओ गुरमंत।।

अतः निर्भय पद प्राप्त करने की एक मात्र उपाय है कि व्यक्ति अपने मन मे 'माया' की जगह 'नाम' को स्थान दे, क्योंकि उसके समान कुछ भी नहीं है–

राम नाम उरि मै गहिओ जा कै सम नहीं कोइ।
जिह सिमरत संकट मिटै दरसु तुहारो होइ।।

निर्भय पद को प्राप्त ऐसा साधक साधना और बलिदान के मार्ग पर निश्शंक होकर चल पड़ता है। न वह किसी को भयभीत करता है और न ही किसी र्स भयभीत होना जानता है–

भै काहु कउ देत नहि, नहिं भै मानत आनि।
कहु नानक सुनरे मना ज्ञानी ताहि बखानि।।

इस प्रकार हम देखते हैं कि गुरु तेग बहादुर के जीवन आदर्श की महान परम्पराओं ने समाज को नई दिशा दी, जिसमें सामाजिकता और ईश्वरीय सत्ता का समान्तर आवाहन किया गया।

गुरु तेगबहादुर की वाणी
रागु गउड़ी

साधो मन का मानु तिआगउ।
कामु क्रोधु संगति दुरजन की ता तै अहिनिसि भागउ।
सुखु दुखु दोनों सम करि जानै अउरु मानु अपमाना।
हरष सोग ते रहै अतीता तिनि जगि ततु पछाना।
उसतति निंदा दोऊ तिआनै खोजै पदु निरबाना।
जन नानक इहु खेलु कठनु है किनहूं गुरमुखि जाना।।

हे साधुजनो, अपने मन का अंहकार त्याग दो। काम-क्रोध और बुरे लोगों की संगति से रात-दिन अलग रहो। जो व्यक्ति सुख और दुख को एक समान समझता है, मान-अपमान की भावना से ऊपर उठ जाता है, हर्ष और शोक के भी मुक्त हो जाता है, वही व्यक्ति इस संसार के सही तत्व को समझ लेता है। ऐसा व्यक्ति स्तुति और निंदा दोनों का त्याग कर देता है और निर्वाण (मुक्ति) की स्थिति को खोजता है।

नानक जी कहते हैं, यह सब-कुछ करना बड़े कठिन खेल के समान है। किन्हीं गुरुमुख लोगों को ही इस कठिन खेल की युक्ति का पता होता है।

साधो रचना राम बनाई।
इकि बिनसै इक असथिरु मानै अचरजु लखिओ न जाई।
काम क्रोध माह बसि प्रानी हरि मूरति बिसराई।
झूठा तनु साचा करि मानिओ जिउ सपुना रैनाई।
जो दीसै सो सगल बिनासै जिउ बादर की छाई।

जन नानक जगु जानिओ मिथिआ रहिओ राम सरनाई।

हे साधुजनो, परमेश्वर ने कैसी सृष्टि बनाई है। एक व्यक्ति इस सृष्टि को नाशवान मानता है तो दूसरा इसी में स्थिरता की खोज करता है। इस आश्चर्य को देखा भी नहीं जा सकता। प्राणी काम-क्रोध और मोह के वश में होकर परमेश्वर के स्वरूप को भुला देता है। इस नाशवान शरीर को वह सच मान बैठता है, उसी प्रकार जैसे कोई व्यक्ति रात के सपने को सच मान ले। जो कुछ हमें दीखता है वह उसी प्रकार अस्थिर है, जैसे बादल की छाया होती है।

नानक जी कहते हैं, इस संसार के आकर्षणों को झूठ समझो और परमेश्वर की शरण ग्रहण करो।

प्रानी कउ हरि जसु मनि नही आवै।
अहिनिसि मगुन रहै माइआ मै कहु कैसे गुन गावै।
पूत मीत माइआ ममता सिउ इह विधि आपु बंधावै।
मृग तृसना जिउ झूठो इह जग देखि तासि उठि धावै।
भुगति मुकति का कारनु सुआमी मूढ़ ताहि बिसरावै।
जन नानक कोटन मै कोऊ भजनु राम को पावै।

हरि का यश जीव के मन में क्यों नहीं आता? यह तो रात-दिन माया में मगन रहता है, फिर भला, यह हरि के गुण किस तरह गायन करे? इसने अपने आपको पुत्र, मित्र, धन, मोह से इस प्रकार वांध लिया है कि मृग-तृष्णा के समान इस झूठे संसार को देखकर उसकी ओर दौड़ना शुरू कर देता है। यह मूर्ख उस परमेश्वर को भूल बैठा है जो सभी प्रकार के भोगों और मुक्ति का एकमात्र कारण है।

नानक जी कहते हैं कि करोड़ों में किसी एक को परमेश्वर के नाम का भजन करने का सौभाग्य मिलता है।

साधो इहु मनु गहिओ न जाई।
चंचल तृसना संगि बसतु है या ते थिरु न रहाई।
कठन क्रोध घट ही के भीतर जिह सुधि सभ बिसराई।
रतनु गिआनु सभ को हिरि लीना ता सिउ कछु न बसाई।
जोगी जतन करत सभ हारे गुनी रहे गुन गाई।
जन नानक हरि भए दइआला तउ सभ बिधि बनि आई।।

हे साधुजन, यह चंचल मन पकड़ में नहीं आता, सांसारिक पदार्थों की चंचल तृष्णा इसके साथ बसती है, इसलिए यह स्थिर नहीं हो पाता। इसके अंदर भयानक क्रोध का निवास है, जिसके कारण यह अपनी सुधि भूल गया है। इसने इसके ज्ञानरूपी रत्न को

ले लिया है, इसका कोई बस नहीं चला। बड़े-बड़े योगी प्रयत्न करके हार गए, गुणीजन गुण गाते रहते हैं।

नानक जी कहते हैं कि जब परमेश्वर भक्त पर दयालु हो जाते हैं तो सभी उपाय बन जाते हैं।

साधो गोबिंद के गुन गावउ।
मानस जनमु अमोलकु पाइओ बिरथा काहे गवावउ।
पतति पुनीत दीन बंधा हरि सरनि ताहि तुमे आवउ।
गज को त्रास मिटिओ जिह सिमरत तुम काहे बिसरावउ।
तजि अभिमान मोह माइआ फुनि भजन राम चितु लावउ।
नानक कहत मुकतिपंथ इहु गुरमुखि होइ तुम पावउ।।

हे साधुजनो, गोबिंद के गुणों का गायन करो। यह मनुष्य जीवन अमूल्य है, इसे व्यर्थ नष्ट क्यों करते हो। परमेश्वर की शरण में आओ जो पतितों को पवित्र करने वाला है, दीन जनों का बंधु है। जिसका नाम लेते ही हाथी (पुराण कथा) का दुःख मिट गया था उसे तुमने क्यों भुला दिया है। अहंकार, मोह माय का त्याग का राम भजन में अपना मन लगाओ।

नानक जी कहते हैं यही मुक्ति का मार्ग है। गुरुमुख होकर ही तुम इसे प्राप्त कर सकते हो।

कोऊ माई भूलिओ मनु समझावै।
बेद पुरान साध मग सुनि करि निमख न हरि गुन गावै।
दुरलभ देह पाइ मानस की बिरथा जनमु सिरावै।
माइआ मोह महा संकट बन ता सिउ रुच उपजावै।
अंतरि बाहरि सदा संगि प्रभु ता सिउ नेहु न लावै।
नानक मुकति ताहि तुम मानहु जिह घटि रामु समावै।।

हे माई, कोई मेरे भूले हुए मन को समझाए। वेद, पुराण और साधुजनों का मार्ग सुनकर भी यह एक पल के लिए परमेश्वर को याद नहीं करता। इसे मनुष्य की दुर्लभ देह प्राप्त हुई है, किन्तु यह इस जीवन को व्यर्थ गंवा रहा है। माया, मोह तो महान संकटों का वन है। यह मन इन्हीं में अपनी रुचि उत्पन्न कर रहा है। प्रभु तो इसके अंदर-बाहर सदा ही बसते हैं, किन्तु यह उनसे प्रेम नहीं करता।

नानक जी कहते हैं, मुक्त-जन उसी को मानना चाहिए जिसके हृदय में राम का निवास है।

साधो राम सरनि बिसरामा।

बेद पुरान पढ़े को इह गुन सिमरे हरि को नामा।
लोभ मोह माइआ ममता फुनि अउ बिखअन की सेवा।
हरष सोग परसै जिह नाहनि सौ मूरति है देवा।
सुरग नरक अमृतु बिखु ए सब तिउ कंचन अरु पैसा।
उसतति निंदा ऐ सम जा कै लोभु मोहु फुनि तैसा।
दुखु सुखु ए बाधे जिह नाहनि तिह तुम जानउ गिआनी।
नानक मुकति ताह तुम मानउ इह विधि को जो प्रानी।

हे साधुजन, राम की शरण में ही विश्राम मिलता है। वेद-पुराण पढ़ने से भी हरिनाम के स्मरण का ही गुण प्राप्त होता है। लोभ, मोह, माया तथा अन्य विषयों की सेवा छोड़कर हर्ष और शोक से अछूता रहकर जो जीवन जीता है वही परमात्मा का रूप बन जाता है। उसके लिए स्वर्ग और नरक, अमृत और विष, सोना और पैसा, स्तुति और निंदा, लोभ और मोह सभी एक समान हैं। ऐसे ज्ञानीजनों को सुख-दुःख का बोध पीड़ित नहीं करता।

नानक जी कहते हैं कि इस प्रकार का जो जीव है, उसे तुम जीवन-मुक्त मान लो।

मन रे कहा भइयो तै बउरा।
अहिनिसि अउघ घटै नहीं जानै भइयो लोभ संगि हउरा।
जो तनु तै अपनो करि मानिओ अरु सुन्दर गृह नारी।
इन मै कुछ तेरो रे नाहनि देखो सोच बिचारी।
रतन जनमु अपनो तै हारिओ गोबिंद गति नही जानी।
निमख न लीन भइयो चरनन सिउ बिरथा अउघ सिरानी।
कहु नानक सोई नरु सुखीआ राम नाम गुन गावै।
अउर सगल जगु माइआ मोहिआ निरभै पदु नही पावै।।

हे मन, तू पागल क्यों हो रहा है। तू यह नहीं जानता कि रात-दिन तेरे जीवन की अवधि घट रही है और तू लोभ में पड़कर अपने आप को तुच्छ बनाता जा रहा है। जिस शरीर और घर की सुंदर नारी को तू अपना मान रहा है, तू विचार करके देख कि इसमें तेरा कुछ भी नहीं है। तूने रत्न के समान अपना अमूल्य जीवन हार दिया है, क्योंकि तूने परमेश्वर की गति को पहचाना ही नहीं। तूने परमात्मा के चरणों से पल भर के लिए भी अपने आप को लीन नहीं किया और इस प्रकार अपनी आयु को व्यर्थ नष्ट कर दिया।

नानक जी कहते हैं, वही नर सुखी है जो राम नाम का गुण गाता है। शेष संसार तो माया के मोह में फंसा हुआ है, उससे निर्भय पद प्राप्त नहीं हो सकता।

नर अचेत पाप ते डरु रे।
दीन दइआल सगल भै भंजन सरनि ताहि तुम परु रे।

बेद पुरान जास गुनगावत ता को नामु हीए मो धरु रे।
पावन नामु जगति मै हरि को सिमरि सिमरि कसमल सभु हरु रे।
मानस देह बहुरि नहि पावै कछू उपाउ मुकति का करु रे।
नानक कहत गाइ करुनामै भव सागर कै पारि उतरु रे।

हे अचेत नर, तू पाप से डर। दीनों पर दया करने वाले, सभी प्रकार के भय को नष्ट करने वाले परमेश्वर की शरण में आ। वेद पुराण जिसका यश गाते हैं, उसका नाम अपने हृदय में बसा। संसार में हरि का नाम पवित्र है। उसका स्मरण करके सभी पापों को धो डालो। हे प्राणी! मानव देह बार-बार नहीं प्राप्त होती, इसलिए अपनी मुक्ति का कुछ उपाय करो।

नानक जी कहते हैं, उस करुणामय परमेश्वर के नाम का स्मरण करो। इस प्रकार तुम संसार सागर से पार उतर जाओगे।

रागु आसा

बिरथा कहउ कउन सिउ मन की।
लोभि ग्रसिओ दसहू दिस धावत आसा लागिओ धन की।
सुख कै हेति बहुतु दुखु पावत सेव करत जन-जन की।
दुआरहि दुआरि सुआन जिउ डोलत नह सुध राम भजन की।
मानस जनम अकारथ खोवत लाज न लोक हसन की।
नानक हरि जसु किउ नही गावत कुमति बिनासै तन की।

मैं अपने मन की व्यथा का वर्णन किससे करूं। धन के लोभ में फंसा हुआ मेरा मन दसों दिशाओं में दौड़ता-फिरता है। सुख प्राप्त करने के लिए वह जिस-तिस की सेवा करता रहता है और इस कारण बहुत दुःख पाता है। वह राम-भजन की सुधि भुलाकर द्वार-द्वार पर कुत्ते की तरह डोलता फिरता है। लोग उस पर हंसते हैं, पर उसे लज्जा नहीं आती। वह अपना मानव जन्म व्यर्थ की गंवाता रहता है।

नानक जी कहते हैं कि हे प्राणी! तू अपनी कुबुद्धि नष्ट करने के लिए हरि यश का गायन क्यों नहीं करता!

रागु देवगंधारी

यह मनु नैक न कहिओ करै।
सीख सिखाइ रहिओ अपनी सी दुरमति ते न टरै।

मदि माइआ के भइयो बावरो हरि जसु नहि उचरै।
करि परपंचु जगत कउ डहकै अपना उदरु भरै।
सुआन पूछ जिउ होइ न सूधो कहिओ न कान धरै।
कहु नानक भजु रामनाम नित जाते काजु सरै।

यह (चंचल) मन मेरा कहना बिलकुल नहीं मानता। मैं इसे बहुत शिक्षा दे चुका हूं, परंतु यह अपनी खोटी मति से ज़रा भी दूर नहीं होता। यह मन तो माया के नशे में पागल हो गया है और हरि यश का गायन नहीं करता। सदा प्रपंच करके संसार को ठगता है और अपना पेट भरता रहता है। इसे कितना भी समझाया जाए, यह उसकी ओर ध्यान नहीं देता; कुत्ते की पूंछ की तरह कभी सीधा नहीं होता।,

नानक जी कहते हैं, हे मन, नित्य राम-नाम कर भजन करो, इससे तुम्हारे सभी काम सफल हो जाएंगे।

सभि किछु जीवत को बिवहार।
मात पिता भाई सुत बंधप अरु फुनि गृह की नारि।
तन तै प्रान होत जब निआरे टेरत प्रेति पुकारि।
आध घरी कोऊ नहि राखै घरि ते द्रेत निकारि।
मृग तृसना जिउ जग रचना यह देखहु रिदै विचारि।
कहु नानक भजु रामनाम नित जा ते होत उधार।।

माता, पिता, भाई, पुत्र, बंधु और घर की स्त्री—इन सभी के व्यवहार उसी समय तक हैं; जब तक मनुष्य जीवित है। जब व्यक्ति के शरीर से प्राण निकल जाते हैं तो लोग उसे प्रेत कह कर पुकारने लगते हैं। फिर उसे कोई आधी घड़ी भी घर में नहीं रखना चाहता। उसे घर से निकाल देते हैं। अपने हृदय में विचार करके देखो कि यह संसार मृग-तृष्णा के समान है।

नानक जी कहते हैं नित्य राम-नाम का भजन करो। इसी से उद्धार होता है।

जगत में झूठी देखी प्रीति।
अपने ही सुख सिउ सम लागै किआ दारा किआ मीत।
मेरउ मेरउ सभै कहत हैं हित सिउ बाधिओ चीत।
अंति कालि संगी नह कोऊ इह अचरज है रीति।
मन मूरख अजहू नह समझत सिख दै हारिओ नीत।
नानक भउजलु पारि परै जउ गावै प्रभ के गीत।

हे भाई, संसार में जो भी प्रीति देखी, वह झूठी देखी। चाहे पत्नी हो या मित्र—सभी

अपने ही सुख के कारण साथ जुड़े हुए हैं। अपने मन को स्वार्थों से बांध कर सभी मेरा-मेरा कहते हैं। यह कितने आश्चर्य की बात है कि अंत काल में कोई भी संगी नहीं बनता। मेरे मूर्ख मन इस बात को अभी भी नहीं समझता। मैं इसे नित्य शिक्षा दे-देकर हार गया हूं।

नानक जी कहते हैं, जो प्रभु के गीत गाता है, वही संसार से पार हो जाता है।

रागु बिहागड़ा

हरि की गति नहि कोऊ जानै।
जोगी जती तपी पचि हारे अरु बहु लोग सिआने।
छिन महि राउ रंक कउ करई राउ रंक कर डारे।
रीते भरे, भरे सखनावै यह ता को बिवहारे।
अपनी माइआ आपि पसारी आपहि देखनहारा।
नाना रूप धरे बहु रंगी सभ तै रहे निआरा।
अगनत अपारु अलख निरंजन जिह सभ जगु भरमाइओ।
सगल भरम तजि नानक प्राणी चरनि ताहि चितु लाइओ।

हरि की गति को कोई नहीं जानता। इस गति को समझने में योगी, यति, तपस्वी और बहुत सयाने लोग—सभी हार गए हैं। परमेश्वर क्षण भर में राजा को भिखारी और भिखारी को राजा बना सकता है। उसका व्यवहार तो यह है कि वह खाली को भर देता है और भरे को खाली कर देता है। ईश्वर अपनी माया को स्वयं ही फैलाता है और स्वयं ही उसे देखता है। बहुरंगी परमेश्वर के अनेक रूप हैं, वह सवसे अलग है। उसकी कोई गणना नहीं। वह अपार है, उसे देखा नहीं जा सकता। वह माया से रहित है। उसी प्रभु ने सारे संसार को वशीभूत किया हुआ है।

नानक जी कहते हैं, हे प्राणी, सभी प्रकार के भ्रम छोड़कर प्रभु के चरणों में अपना चित लगा।

रागु सोरठि

रे मन राम सिउ करि प्रीति।
स्रवन गोबिंद गुनु सुनउ अरु गाउ रसना गीति।
कहि साध संगति सिमरु माधो होहि पतित पुनीत।
कालु बिआलु जिउ परिओ डोलै मुख पसारे मीत।
आजु कालि फुनि तोहि ग्रसि है समझि राखउ चीति।

कहै नानकु रामु भजि लै जात अउसरु बीति।

हे मेरे मन, तुम राम से प्रीति लगाओ। अपने कानों से गोबिंद के गुण सुनो और जीभ से उसी के गीत गाओ। साधुजनों की संगति में माधव का सुमिरन करो, इससे पतित भी पुनीत हो जाते हैं। हे मित्र, कालरूपी सांप तुम्हारे सामने मुहं-बाए डोल रहा है। आज-कल में वह तुम्हें डस लेगा, यह बात अपने मन में भली प्रकार समझ लो।

नानक जी कहते हैं कि अवसर बीता जा रहा है, राम भजन में अपना मन लगाओ।

मन की मन ही माहि रही।
ना हरि भजे न तीरथि सेवे चोटी कालि गही।
दारा मीत पूत रथ संपत्ति धन पूरन सभ मही।
अवर सगल मिथिआ ए जानउ भजनु राम को सही।
फिरत फिरत बहुते जुग हारिओ मानस देह लही।
नानक कहत मिलन की बरीआ सिमरत कहा नही।।

जीव के मन की इच्छा मन ही में रह गई। उसने न हरि का नाम लिया, **न तीर्थों** की यात्रा की। अचानक ही मृत्यु ने आकर उसकी चोटी पकड़ ली। पत्नी, मित्र, पुत्र, रथ, सम्पत्ति और धन से पृथ्वी भरी पड़ी है। हे जीव, ये सभी चीजें मिथ्या हैं। केवल योनियों में भटक कर जीव को मानव देह प्राप्त होती है।

नानक जी कहते हैं कि यही समय प्रभु रो मिलने का है, तू उसे स्मरण क्यों नहीं करता।

मन रे कउनु कुमति तै लीनी।
परदारा निंदिआ रस रचिओ राम भगति नहीं कीनीं।
मुकति पंथ जानियो तै नाहनि धन जोरन कउ धाइआ।
अंति संग काहू नहीं दीना बिरथा आपु बंधाइआ।
ना हरि भजिओ न गुर जनु सेविओ नह उपजिओ कुछ गिआना।
घटि ही माहि निरंजनु तेरै तै खोजत उदिआना।
बहुतु जनम भरमत तै हारिओ असथिर मति नहीं पाई।
मानस देह पाइ पद हरि भजु नानक बात बताई।

हे मेरे मन, तुमने कौन-सी खोटी मति अपना ली है। तू दूसरे की स्त्री और निंदा के रस में डूबा रहता है। राम की भक्ति तो करता ही नहीं। तुमने मुक्ति का रास्ता तो जाना नहीं। उसके स्थान पर सदा धन जोड़ने में लगा रहता है। अंत में कोई साथ नहीं देता। तूने व्यर्थ में ही अपने आपको (माया में) बांध रखा है। न तुमने हरि का भजन किया, न गुरुजनों की सेवा की और न तुममें कुछ ज्ञान ही उत्पन्न हुआ। तेरे शरीर के अंदर ही परमेश्वर का वास है, तू उसे जंगलों में ढूंढ़ता फिरता है। मुझे भटकते-भटकते

अनेक जन्म बीत गए, परन्तु तुम्हें स्थिर बुद्धि प्राप्त नहीं हुई।

नानक जी कहते हैं कि तेरी भलाई इसी में है कि तुझे यह जो मानव देह प्राप्त हुई है, इसमें हरि का स्मरण कर ले।

मन रे प्रभ की सरनि बिचारो।
जिह सिमरत गनका सी उधरी ता को जसु उरधारो।
अटल भइओ धूअ जा कै सिमरनि अरु निरभै पदु पाइआ।
दुर हरता इह बिधि को सुआमी तै काहे बिसराइआ।
जब ही सरनि गही किरपा निधि गज गराह ते छूटा।
महमा नाम कहां लउ बरनउ राम कहत बंधन तिह तूटा।
अजामलु पापी जग जाने निमख माहि निसतारा।
नानक कहत चेत चिंतामनि तै भी उतरहि पारा।।

हे मेरे मन, प्रभु की शरण का ध्यान धर। जिसे स्मरण करके वेश्या का उद्धार हो गया था, उसी प्रभु के यश को हृदय में ग्रहण कर। ध्रुव भक्त उसी का स्मरण कर के अटल हो गया और उसने निर्भय पद प्राप्त कर लिया। जो प्रभु स्वामी इस प्रकार दुःखों को नष्ट करने वाला है उसे तुमने क्यों भुला दिया है। जब संकट में फंसे हुए हाथी ने कृपानिधि की शरण ग्रहण की थी, तो वह मगरमच्छ की पकड़ से छूट गया था। मैं नाम की महिमा का कहां तक वर्णन करूं, राम का नाम लेते ही उसका (हाथी का) बंधन टूट गया था। अजामिल नाम के पापी को सारा संसार जानता था, उसका भी क्षण मात्र में उद्धार हो गया था।

नानक जी कहते हैं कि तू भी चिंतामणि प्रभु का ध्यान कर, तेरा भी उद्धार हो जाएगा।

प्रानी कउनु उपाउ करै।
जा तै भगति राम की पावै जम को त्रासु हरै।
कउनु करम बिधा कहु कैसी धरनु कउनु फुनि करई।
कउनु नाम गुर जा कै सिमरै भव सागर कउ तरई।
कल मैं एकु नामु कृपा निधि जाहि जपै गति पावै।
अउर धरम ता कै समि नाहनि इह बिधि वेदु बतावै।
सुख दुख रहत सदा निरलेपी जा कउ कहत गुसाई।
सो तुम ही महि बसै निरंतरि नानक दरपनि निआई।

प्राणी ऐसे कौन से उपाय करे, जिससे उसे परमेश्वर की भक्ति प्राप्त हो और यम का त्रास दूर हो जाए। जीव कैसे कर्म करे? उसकी विद्या कैसी हो? कैसा उसका धर्म हो? ऐसा कौन सा बड़ा नाम है, जिसका वह सुमिरन करे और भव सागर से पार हो जाए।

कलयुग में कृपानिधि परमेश्वर का नाम ही एकमात्र ऐसा है जिसके जपने से प्राणी को सद्गति प्राप्त हो जाती है। अन्य कोई धर्म उसके बराबर नहीं है, यह बात वेद भी बताते हैं। जो सुख-दुख से सदा निर्लिप्त है, वही गोसाईं या परमेश्वर है।

नानक जी कहते हैं—वह तुम्हारे अंदर उसी प्रकार सदा निवास करता है, जैसे दर्पण में प्रतिबिंब रहता है।

भाई मैं किंह बिधि लखउ गुसाईं।
महा मोह अज्ञानि तिमिर मो मनु रहिओ उरझाई।
सगल जनम भरम ही भरम खोइओ नह असथिरु मति पाई।
बिखिआ सकत रहिओ निस बासुर नह छूटी अधमाई।
साध संगु कबहू नहीं कीना नह कीरति प्रभु गाई।
जन नानक मैं नाहि कोऊ गुनु राखि लेहु सरनाई।।

हे भाई, मैं किस प्रकार प्रभु के दर्शन करूं। मेरा मन तो माया मोह और अज्ञान के अंधेरे में उलझा हुआ है। मैंने अपने सभी जन्म भ्रम में ही गंवा दिये हैं, मुझे स्थिर मति कभी नहीं मिली। मैं रात-दिन विषय-वासनाओं में डूबा रहा हूं और नीचता मुझसे कभी छूटी नहीं। मैंने साधुजनों की कभी संगति नहीं की, प्रभु की कीर्ति का कभी गायन नहीं किया।

नानक जी कहते हैं कि हे प्रभु! मुझमें गुण तो कोई भी नहीं है, फिर भी मुझे अपनी शरण में ले लो।

भाई मनु मेरो बसि नाहि।
निस बासुर बिखिअन कउ धावत किहि विधि रोकउ ताति।
बेद पुरान सिमृति के मत सुनि निमख न हीए बसावै।
पर धन पर दारा सिउ रचिओ बिरथा जनमु सिरावै।
मदि माइआ कै भइयौ बावरो सूझत नह कुछ गिआना।
घट ही भीतरि बसत निरंजनु ता को मरमु न जाना।
जब ही सरनि साध की आइओ दुरमति सगल बिनासी।
तब नानक चेतिओ चिंतामनि काटी जम की फासी।

हे भाई मेरा मन मेरे वश में नहीं हैं। यह रात-दिन विषय-वासनाओं की ओर ही दौड़ता रहता है, इसे मैं किस प्रकार रोकूं। वेद, पुरान और स्मृतियों से जो इसे अच्छी मति प्राप्त होती है, उसे यह मन कुछ पल भी अपने हृदय में नहीं बसाता। इसकी रुचि सदैव दूसरे के धन और दूसरे की स्त्री में लगी रहती है। इस प्रकार अपना जन्म व्यर्थ गंवा रहा है। माया के नशे में यह बावला हो गया है और ज्ञान की कोई बात नहीं सूझती। माया रहित परमेश्वर का वास इसके हृदय में है। इस भेद को तो यह जानता ही नहीं, परन्तु जब यह मन साधुजनों की शरण

में आया, तो इसकी सारी खोटी बुद्धि नष्ट हो गई।

नानक जी कहते हैं कि तब इसने चेतकर चिंतामणि प्रभु का ध्यान किया और इसका यम का बंधन कट गया।

रे नर इह साची जीअ धारि।
सगल जगतु है जैसे सुपना बिनसत लगत न बार।
बारूभीति बनाई रचि पचि रहत नहीं दिन चारि।
तैसे ही इह सुखु माइआ के उरझिओ कहा गवार।
अजहू समझि कछू बिगरिओ नाहिनि भजि लै नाम मुरारि।
कहु नानक निज मतु साधन कउ भाखिओ तोहि पुकारि।।

हे नर, इस सच्ची बात को हृदय में ग्रहण कर ले। यह माया-ग्रस्त संसार स्वप्न के समान है। इसके नष्ट होने में कोई समय नहीं लगता। जिस प्रकार बड़े यत्न से रेत की दीवार बनाई गई हो, परन्तु वह तो चार दिन भी नहीं टिकती। उसी प्रकार माया से पैदा हुए ये सुख हैं। मूर्ख तू इनमें कहां से फंस गया है। तू अभी भी समझ जा, क्योंकि अभी कुछ बिगड़ा नहीं है। तू मुरारी का नाम भज ले।

नानक जी कहते हैं कि साधु जनों का यही मत है, जिसे मैंने पुकार कर तुझे सुना दिया है।

इहि जगि मीतु ने देखिओ कोई।
सगल जगतु अपनै सुखि लागिओ दुख में संग न होई।
दारा मीत पूत सनबंधी सगरे धन सिउ लागे।
जब ही निरधन देखिओ नर कउ संगु छाड़ि सम भागे।
कहंउ कहा यिआ मन बउरे कउ इन सिउ नेहु लगाइओ।
दीना नाथ सकल भै भंजन जसु ता कौ बिसराइओ।
सुआन पूछ जिउ भइओ न सुधउ बहुतु जतनु मैं कीनउ।
नानक लाज बिरद की राखहु नामु तुहारउ लीनउ।।

इस संसार में कोई मित्र नहीं दिखाई देता। सारा संसार अपने सुख में ही लगा हुआ है। दुःख में कोई किसी का साथ नहीं देता। पत्नी, मित्र, पुत्र और सम्बन्धी सभी धन के लोभ के कारण ही तुम्हारे साथ जुड़े हुए हैं। जब व्यक्ति निर्धन हो जाता है तो सभी उसका साथ छोड़ कर भाग जाते हैं। मैं अपने बावले मन को क्या कहूं जो इनसे नेह लगाए बैठा है। इस कारण उसने दीनों के नाथ, सभी प्रकार के भय का नाश करने वाले प्रभु के यश को भुला दिया है। मैंने इसे समझाने का बहुत यत्न किया, परन्तु यह तो कुत्ते की पूंछ की तरह किसी प्रकार सीधा ही नहीं होता।

नानक जी कहते हैं कि हे प्रभु, मैंने तुम्हारे नाम का सहारा लिया है अब आप कृपा करके अपने यश की लाज रख लीजिए।

मन रे गहिओ न गुरु उपदेसु।
कहा भइओ जउ मूंड मुडाइओ भगवउ कीनो भेसु।
साच छाड़ि के झूठह लागिओ जनमु अकारथु खोइओ।
करि परपंच उदर निज पोखिआ पसु की निआई सोइओ।
राम भजन की गति नहीं जानी माइआ हाथि बिकाना।
उरझि रहिओ बिखिअन संगि बउरा नामु रतनु बिसराना।
रहिओ अचेत न चेतिओ गोबिंद बिरथा अउध सिरानी।
कहु नानक हरि बिरदु पछानउ भूलै सदा परानी।।

हे मेरे मन, तूने गुरु का उपदेश क्यों ग्रहण नहीं किया। तूने सिर मुंडवाकर भगवा वेश धारण कर लिया है, परन्तु इससे होगा क्या? तूने सच को छोड़ दिया है, झूठ के पीछे लग गया है और इस प्रकार तूने जन्म को व्यर्थ ही गंवा दिया है। अनेक प्रपंच करके तू अपना पेट भरता है। फिर पशु की भांति सो जाता है। राम भजन की महत्ता को तू जानता नहीं। तू तो माया के हाथ बिक गया है। हे मेरे पागल मन, तूने विषय-वासनाओं के संग उलझ कर भगवान के नाम रूपी रत्न को भुला दिया है। तू अचेत है, इसलिए तूने कभी ईश्वर को याद नहीं किया। तेरी आयु व्यर्थ की चली गई।

नानक जी कहते हैं कि हम संसार के प्राणी तो हमेशा भूल करते रहते हैं, पर हे प्रभु, आप तो अपने यश को पहचान कर हमारा उद्धार करो।

जो नरु दुख में दुखु नहीं माने।
सुख सनेहु अरु भै नहीं जा कै कंचन माटी मानै।
नह निंदियां नह उसतति जाके लोभु मोहु अभिमाना।
हरष सोग तै रहै निआरउ नाहि मान अपमाना।
आसा मनसा सगल तिआगै जग तै रहे निरासा।
कामु क्रोधु जिस परसै नाहनि तिह घट ब्रहमु निवास
गुर कृपा जिह नर कउ कीनी तिह इह जुगति पछानी।
नानक लीन भइओ गोबिंद सिउ जिउ पानी संगि पानी।।

जो नर दुःख में दुःख नहीं मानता। जिसे सुखों से प्रेम नहीं है, जो किसी का भय नहीं मानता, जो सोने को मिट्टी के बराबर समझता है, जिसे निंदा और स्तुति की चिंता नहीं, जिसे लोभ, मोह और अभिमान नहीं, जो हर्ष और शोक से अलग रहता है, जिसे मान-अपमान की चिंता नहीं, जो सभी प्रकार की आशा-मनसा का त्याग कर देता है और

सांसारिक सुखों की ओर से उपराम हो जाता है, जिसे काम और क्रोध छूते नहीं, उसी के हृदय में ब्रह्म का निवास रहता है। जिस व्यक्ति पर गुरु की कृपा हो जाती है, वह इस युक्ति को पहचान लेता है।

नानक जी कहते हैं कि ऐसा व्यक्ति प्रभु में उसी तरह लीन हो जाता है, जैसे पानी के साथ पानी मिल जाता है।

प्रीतम जानि लेहु मन माही।
अपने सुख सिउ ही जगु फांधिओ को काहू को नाही।
सुख मै आनि बहुतु मिलि बैठत रहत चहू दिसि घेरै।
बिपति परी सभ ही संगु छाडित कोउ न आवत नेरै।
घर की नारि बहुतु हितु जा सिउ सदा रहत संग लागी।
जब ही हंस तजी इह काइआ प्रेत प्रेत करि भागी।
इह बिधि को बिउहारु बनिओ है जो सिउ नेहु लगाइओ।
अंत बार नानक बिनु हरि जी कोउ कामि न आइओ।

हे मेरे प्रियजनो! यह बात अपने मन में भली प्रकार समझ लो। इस संसार में सभी लोग अपने सुख के लिए ही एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं, कोई किसी का नहीं है। जब व्यक्ति सुखी होता है तो उसके पास आकर बहुत लोग बैठते हैं, वे उस चारों ओर से घेरे रहते हैं, परन्तु जब व्यक्ति पर विपत्ति आती है तो सभी उसका साथ छोड़ देते हैं। फिर कोई निकट नहीं आता। अपनी पत्नी से बहुत प्रेम होता है, वह हमेशा साथ रहती है, परन्तु जब प्राण इस शरीर को छोड़ जाते हैं, तो वह भी मृत शरीर को प्रेत मानकर उससे दूर चली जाती है। संसार में इसी प्रकार का व्यवहार बना हुआ है। इसी संसार से तूने अपना प्रेम जोड़ रखा है।

नानक जी कहते हैं कि अंत समय में हरि जी के अतिरिक्त और कोई काम नहीं आता।

रागु धनासरी

काहे रे बन खोजन जाई।
सरब निवासी सदा अलेपा तोही संगि समाई।
पुहप मधि जिउ बासु बसतु है मुकर माहि जैसे छाई।
तैसे ही हरि बसै निरंतरि घट ही खोजहु भाई।
बाहरि भीतरि एका जानहु इहु गुर गिआनु बताई।
जन नानक बिनु आपा चीनै मिटै न भ्रम की काई।

हे भाई, परमेश्वर को जंगल में ढूंढने क्यों जाते हो? सभी स्थानों पर विद्यमान और सबसे अलिप्त रहने वाला परमेश्वर तो तुम्हारे ही अंदर समाया हुआ है। जैसे पुष्प के अंदर गंध का वास है, जैसे दर्पण में परछाईं बसती है, इसी प्रकार ईश्वर तुम्हारे अंदर निरन्तर रहता है। हे भाई, उसे अपने अंदर खोजो। गुरु की शिक्षा यह है कि ब्रह्म का निवास बाहर-भीतर एक समान है।

नानक जी कहते हैं कि अपने आपको पहचाने बिना भ्रम की काई मिटती ही नहीं।

साधो इहु जगु भरम भुलाना।
रामनामा का सिमरनु छोडिआ माइआ हाथि बिकाना।।
मात पिता भाई सुत बनिता ता कै रसि लपटाना।।
जोबनु धनु प्रभुता कै मद मै अहिनिसि रहै दिवाना।।
दीन दइयाल सदा दुख भंजन ता सिउ मनु न लगाना।।
जन नानक कोटन मै किनहू गुरमुखि होइ पछाना।।

हे साधु जनो, यह संसार भ्रम में भूला हुआ है। उसने राम-नाम के सुमिरन का मूल तत्व छोड़ दिया है और माया के हाथों बिक गया है। यह अपने सांसारिक सम्बन्धों, माता-पिता, भाई, पुत्र पत्नी के प्रेम में ही डूबा हुआ है। अपने यौवन धन और प्रभुता के नशे में रात-दिन दीवाना रहता है। उस परमेश्वर से, जो दीन दयाल है, सदा दुःखों का नाश करने वाला है, अपना मन नहीं लगाता।

नानक जी कहते हैं कि करोड़ों लोगों में कोई गुरुमुख ही ऐसा होता है, जो इस सत्य को पहचान पाता है।

तिह जोगी कउ जुगति न जानउ।
लोभ मोह माइआ ममता फुनि जिह घटि माहि पछानउ।
पर निंदा उसतनि नह जाकै कंचन लौह समानो।
हरष सोग ते रहै अतीता जोगी ताहि बखानो।
चंचल मनु दह दिसि कउ धावत अचल जाहि ठहरानो।
कहु नानक इह विधि को जो नरु मुकति ताहि तुम मानौ।।

ये दिखावे के योगी, परमेश्वर प्राप्ति की युक्ति नहीं जानते। ये लोग तो अपने अंदर लोभ, मोह, माया, ममता को ही पहचानते हैं। वास्तविक योगी तो वह है जो परनिंदा में लिप्त नहीं है और अपनी स्तुति की चिंता नहीं करता। सोने को लोहे जैसा मानता है, और हर्ष और शोक से परे रहता है। मनुष्य मन तो बड़ा चंचल है। यह दसों दिशाओं की ओर दौड़ता है। वास्तविक योगी इसे अचल बनाकर ठहराव प्रदान कर देता है।

नानक जी कहते हैं कि नर इस प्रकार से जीता है, वह जीवन-मुक्त हो जाता है।

अब मैं कउनु उपाय करउ।
जिह विधि मन को संसा चूकै भउ निधि पारि परउ।
जनमु पाइ कछु भलो न कीनो ता ते अधक डरउ।
मन बच क्रम हरि गुन नही गाए यह जीउ सोच धरउ।
गुरमति सुनि कछु गिआनु न उपजिओ पसु जिउ उदरु भरउ।
कहु नानक प्रभ बिरदु पछानउ तब हउ पतत तरउ।।

अब मैं कौन सा उपाय करूं, जिससे मेरे मन की सभी शंकाएं दूर हो जाएं और मैं संसार रूपी सागर पार कर जाऊं। मैंने मानव-जन्म पाकर भी कोई भला काम नहीं किया। यही सोच-सोच कर डरता हूं। मैंने मन, वचन और कर्म से कभी हरि गुण का गायन नहीं किया, यह सोच मेरे हृदय में बराबर बनी रहती है। गुरु की शिक्षा सुनकर भी मेरे अंदर ज्ञान नहीं उत्पन्न हुआ है, मैं सदा पशुओं की भांति अपना पेट भरता रहा।

नानक जी कहते हैं कि हे प्रभु, मेरे जैसे पतित का उद्धार तभी होगा जब तुम अपना यश पहचानकर उसके अनुरूप कार्य करोगे।

रागु जैतसरी

भूलिओ मनु माइया उरझाइओ।
जो जो करम कीओ लालच लगि तिह तिह आपु बंधाइओ।
समझ न परी बिखै रस रचिओ जसु हरि को बिसराइओ।
संगि सुआमी सो जानिओ नाहिन बनु खोजन कउ धाइओ।
रतनु रामु घट ही के भीतरि ता को गिआनु न पाइओ।
जन नानक भगवंत भजन बिनु बिरथा जनमु गवाइओ।

हे प्रभु, मेरा मन तुम्हें भूल कर माया के प्रपंचों में ही उलझा हुआ है। लालच में आकर मैंने जीवन में जो भी कर्म किए, उनके कारण मैं स्वयं बंधनों में बंध गया। मुझे कुछ समझ में नहीं आया। मैं विषय-वासनाओं में डूबा रहा और हरि यश को भुला ही दिया। मैंने यह जाना ही नहीं कि मेरा स्वामी मेरे साथ है। तुम्हें खोजने के लिए मैं जंगल की ओर दौड़ा। राम नाम का रत्न मेरे अंदर है, यह ज्ञान मुझे नहीं मिला।

नानक जी कहते हैं कि मनुष्य भगवान के भजन के बिना अपना जन्म व्यर्थ ही गंवा देता है।

हरि जू राखि लु पति मेरी।
जम को त्रास भइओ उर अंतरि, सरनि गही कृपा निधि तेरी।
महा पतित मुगध लोभी फुनि करत पाप अब हारा।

भै मरबे को बिसरत नाहन तिह चिंता तनु जारा।
कीए उपाव मुकति के कारनि दहदिस कउ उठि धाइआ।
घटि ही भीतरि बसै निरंजनु ता कौ मरमु न पाइआ।
नाहिन गुनु नाहिन कछु जपु तपु कउनु करमु अब कीजै।
नानक हरि परिओ सरनागति अभै दान प्रभु दीजै।।

हे हरि जी, तुम मेरी लाज रख लो। मेरे मन में मृत्यु का भय समा गया है, इसलिए मैंने तुम्हारी शरण ग्रहण की है। मैं महा पतित, मूर्ख और लोभी हूं। मैं पाप करते-करते अब हार गया हूं। मृत्यु का भय मैं भूलता नहीं। इस चिंता में मेरा शरीर जल गया है। मैंने अपनी मुक्ति के अनेक उपाय किये। इसके लिए मैं दसों दिशाओं में दौड़ा। परमेश्वर मेरे हृदय के अंदर ही निवास करता है, इस मर्म को मैंने कभी नहीं समझा। मेरे अंदर कोई गुण नहीं, न ही मैंने जप-तप किया है। अब मैं कौन से कर्म करूं जिससे मेरा उद्धार हो।

नानक जी कहते है कि हे प्रभु, अब मैं सभी ओर से हार कर तुम्हारी शरण में आ गया हूं, मुझे भयमुक्त होने का दान दीजिए।

मन रे साचा गहो विचारा।
राम नाम विनु मिथिआ मानो सगरो इहु संसार।
जाकउ जोगी खोजत हारे पाइओ नाहि तिह पारा।
सो सुआमी तुम निकटि पछानो रूप रेख ते निआरा।
पावन नाम जगत मै हरि को कबहू नाहि संभारा।
नानक सरिन परिओ जग बंदन राखहु विरदु तुम्हारा।।

हे मन, तुम इस सच्चे विचार को ग्रहण कर लो। राम नाम के अतिरिक्त इस संसार को तुम मिथ्या मान लो। जिस परमेश्वर को योगी लोग खोजते-खोजते हार गए हैं, परन्तु उसका पार नहीं पा सकते। वह रूप-रंग के सर्वथा भिन्न स्वामी तुम्हारे निकट हैं, इसे पहचान लो। परमेश्वर का नाम इस संसार में सबसे पवित्र है, इसे तुमने कभी नहीं संभाला।

नानक जी कहते हैं कि हे प्रभु, मैं तुम्हारी शरण में आ गया हूं। मेरा उद्धार करके तुम अपने यश की रक्षा करो।

रागु टोडो

कहउ कहा अपनी अधमाई।
उरझिओ कनक कामनी के रस नह कीरति प्रभ गाई।

जग झूठे कउ साचु जानि कै ता सिउ रुच उपजाई।
दीन बंध सिमरिओ नहीं कबहू होत जु संगि सहाई।
मगन रहिओ माइआ मै निसि दिनि छुटी न मन की काई।
कहि नानक अब नाहि अनत गति बिनु हरि की सरनाई।

हे प्रभु, मैं अपनी नीचता का वर्णन कैसे, कितना करूं। मैं धन और स्त्री के रस में सदा उलझा रहता हूं और कभी प्रभु की कीर्ति का गायन नहीं किया। मैंने इस झूठे संसार को सच मानकर, उसमें अपनी रुचि उत्पन्न कर ली है। जो दीन बंधु परमेश्वर सदा संग रहता होता है, उसका मैंने स्मरण कभी नहीं किया। मैं सदा माया में ही मग्न रहा, इसलिए मेरे मन की कोई अभी साफ़ नहीं हुई।

नानक जी कहते हैं कि हरि की शरण में गए बिना अब और कोई मार्ग नहीं है।

रागु तिलंग

चेतना है तउ चेत लै निसि दिनि मै प्रानी।
छिनु छिनु अउघ बिहातु है फूटे घट जिउ पानी।
हरि गुन काहि न गावही मूरख अज्ञाना।
झूठे लालचि लागि कै नहि मरनु पछाना।
अजहू कुछ बिगरिओ नही जो प्रभु गुन गावै।
कहु नानक तिह भजन ते निरभै पदु पावै।।

हे प्राणी, यदि तू चेतना चाहता है तो रात-दिन में चेत जा। जैसे फूटे हुए घड़े का पानी लगातार रिसता रहता है, वैसे ही मनुष्य की आयु भी क्षण-क्षण घटती जाती है। हे मूर्ख अज्ञानी, तू हरि के गुणों का गायन क्यों नहीं करता। तूने झूठे लालचों में फंस कर मृत्यु को भुला दिया है। अभी भी कुछ बिगड़ा नहीं है। प्रभु नाम का गायन प्रारम्भ कर दे।

नानक जी कहते हैं कि प्रभु के भजन से व्यक्ति को निर्भय-पद प्राप्ति हो जाती है।

जाग लेहु रे मना जागि लेहु।
कहा गाफल सोइआ।
जो तन उपजिआ संग ही सो भी संग न होइआ।
मात पिता सुत बंध जन हितु जा सिउ कीना।
जीउ छूटिओ जब देह ते डारि आगनि मै दीना।
जीवत लउ बिउहारु है जग कउ तुम जानउ।
नानक हरि गुन गाइ लै सभ सुफन समानउ।।

हे मेरे मन, अब तो जाग जा, क्यों गाफिल होकर सो रहा है। जो शरीर हमारे साथ जन्म लेता है, वह भी साथ नहीं रहता। माता, पिता, पुत्र, बंधुजन—जिनसे भी तूने अपना हित लगाया, वे सब तेरी देह से प्राण निकलते ही शरीर को आग मे डाल देते हैं। इसलिए यह मान ले कि संसार का सम्पूर्ण व्यवहार उसी समय तक है जब तक व्यक्ति जीवित है।

नानक जी कहते हैं कि हरि के गुण गावो क्योंकि शेष सब कुछ स्वप्न के समान है।

हरि जसु रे मना गाइ लै जो संगी है तेरो ।
अउसरु बीतिओ जातु है कहिओ मान लै मेरो।
संपति रथ धन राज सिउ अति नेहु लगाइओ।
काल फास जब गलि परी सभ भइओ पराइओ।
जानि बूझ कै बावरे तै काजु बिगारिओ।
पाप करत सुकचिओ नहीं नह गरबु निवारिओ।
जिस विधि गुर उपदेसिआ सो सुनु रे भाई।
नानक कहत पुकारि कै गहु प्रभ सरनाई।

हे मन, तू हरि यश का गायन कर। यही तुम्हारा संगी है। अवसर बीतता जा रहा है, इसलिए मेरा कहना मान ले। तूने अपना प्रेम सम्पत्ति, रथ, धन और राज से लगा रखा है, परन्तु जब काल की फांसी गले में पड़ेगी तो ये सभी पराये हो जाएंगे। हे पागल मन, तूने जान-बूझकर अपना ही काम बिगाड़ लिया है। पाप करते तुझे संकोच नहीं होता, न ही तुमने अपने अहंकार को छोड़ा है। हे पागल मन, तूने जान-बूझकर अपना ही काम बिगाड़ लिया है। पाप करते तूझे संकोच नहीं होता, न ही तुमने अपने अहंकार को छोड़ा हैं। हे मेरे भाई, गुरु ने जो उपदेश दिया है, उसे सुनो।

नानक जी कहते हैं कि मैं पुकार कर कहता हूं कि तू प्रभु की शरण ग्रहण कर।

रागु बिलावलु

दुख हरता हरिनामु पछानो।
अजामलु गनका जिह सिमरत मुकति भए जीउ जानो।
गज की त्रास मिटी छिनहू महि जब ही रामु बखानो।
नारद कहत सुनत ध्रुअ बारिक भजन माहि लपटानो।
अचल अमर निरभै पदु पाइओ जगत जाहि हैरानो।
नानक कहत भगत रछक हरि निकटि ताहि तुम मानो।।

सभी प्रकार के दुःखों को नष्ट करने वाले हरि नाम को पहचानो। अजामिल, गणिका आदि पापी भी जिसका नाम लेकर मुक्त हो गए, उसे अपने हृदय में अच्छी तरह धारण कर लो। राम का नाम लेते ही संकट में फंसे हुए हाथी का त्रास क्षण भर में मिट गया था। नारद का उपदेश सुनकर ध्रुव बालक भगवान के भजन मे मगन हो गया था। उसे अटल, अमर और निर्भय पद प्राप्त हुआ, जिसे देखकर सारा संसार चकित रह गया।

नानक जी कहते हैं कि भगवान जगत के रक्षक हैं, तुम सदा उन्हें अपने निकट समझो।

रागु बिलावलु

हरि के नाम बिना दुख पावै।
भगति बिना सहसा नह चूकै गुर इह भेदु बतावै।
कहा भइओ तीरथ व्रत कीए राम सरनि नही आवै।
जोग जग निहफल तिह मानउ जो प्रभु जसु बिसरावै।
मान मोह दोनौ कउ परहरि गोबिंद के गुन गावै।
कहु नानक इह विधि को प्रानी जीवन मुकति कहावै।।

हे प्राणी! हरि के नाम के बिना सदा ही दुःख मिलता है। गुरु ने यह रहस्य बता दिया है कि हरि-भक्ति के बिना शंका दूर नहीं होती। यदि राम की शरण में तुम नहीं आते तो तीर्थों की यात्रा और व्रत आदि किस काम के? प्रभु को भुला कर किया गया योग और यज्ञ भी निष्फल मानना चाहिए। इसलिए जो प्राणी अभिमान और मोह दोनों को त्याग कर प्रभु के गुण गाता है, नानक जी कहते हैं कि वही जीवन-मुक्त कहलाता है।

जा मै भजनु राम को नांही।
तिह नर जनमु अकारथ खोइआ यह राखहु मन माही।
तीरथ करै व्रत फुनि राखै नह मनूआ वसि जा कउ।
निहफल धरम ताहि तुम मानो साचु कहत मै या कउ।
जैसे पाहनि जल महि राखिओ भेदै नाहि तिहि पानी।
तैसे ही तुम ताहि पछानो भगति हीन जो प्रानी।
कल मै मुकति नाम तै पावत गुर यह भेद बतावै।
कहु नानक सोई नरु गरुआ जे प्रभ के गुन गावै।

जिस व्यक्ति ने राम नाम का भजन नहीं किया, तो यह अपने मन में समझ लो कि उसने अपना जन्म व्यथ गंवा दिया है। तो तीर्थ-स्नान करता है, व्रत भी करता है, परन्तु उसके हृदय में राम नहीं बसता, तो जान लो कि उसके ये सभी धर्म-कर्म निष्फल

हैं। यह मैं सच कहता हूं। जैसे जल में रख देने पर भी पत्थर अंदर से नहीं भीगता, वही स्थिति भक्ति-हीन प्राणी की होती है, यह पहचान लो। गुरु ने यह भेद बताया है कि कलियुग में प्राणी की मुक्ति प्रभु नाम से ही होती हैं।

नानक जी कहते हैं कि वही व्यक्ति महत्वपूर्ण है, जो प्रभु के गुणों का गायन करता है।

रागु रामकली

रे मन ओट लेहु हरिनामा।
जा कै सिमरनि दुरमति नासै पावहि पदु निरबाना।
वडमागी तिह जन कउ जानउ तो हरि ने गुन गावै।
जनम जनम के पाप खोइ कै फुनि बैकुंठि सिधावै।
अजामलु कउ अन्त काल मै नाराइन सुधि आई।
जां गति कउ जोगीसुर वाछत सो गति छिन महि पाई।
नाहन गुनु नाहनि कछु बिदिआ धरमु कउनु गजि कीना।
नानक विरदु राम का देखो अभै दानु तिहि दीना।।

हे मन, हरि नाम का सहारा लो। इसके सुमिरन से दुर्मति का नाश होता है और मोक्ष की प्राप्ति होती है। उस व्यक्ति को बड़ा भाग्यशाली मानना चाहिए जो हरि के गुण गाता है। उसके जन्म-जन्म के पाप नष्ट हो जाते हैं और उसे बैकुंठ में स्थान प्राप्त होता हैं अजामिल जैसे पापी को अंतकाल में नारायण की सुधि आई थी। जिस स्थान को पाने की कामना बड़े-बड़े योगी करते हैं, वह स्थान उसे क्षण भर में मिल गया था। संकट में फंसे उस हाथी में कोई गुण नहीं था, कोई विद्या भी नहीं थी, उसने बड़े धर्म-कार्य भी नहीं किए थे, परन्तु नानक जी कहते हैं कि राम का यश देखो, उसे भी नाम की आर्त पुकार करते ही अभय पद प्राप्त हो गया।

साधो कउनु जुगति अब कीजै।
जा ते दुरमति सगल बिनासै राम भगति मनु भीजै।
मन माइआ मै उरझि रहिओ है बूझै नह कछु ज्ञाना।
कउनु नामु जग जा कै सिमरै पावै पदु निरबाना।
भए दइआल कृपाल संत जन तब इह बात बताई।
सरब धरम मानो तिह कीए जिह प्रभ कीरति गाई।
राम नाम नर निसि बासुर मै निमख एक उरधारै।
जम को त्रासु मिटै नानक तिह अपुनो जनमु सवारै।।

हे साधु जनो, अब मैं कौन-सी युक्ति करूं जिससे मेरी सारी दुर्मति नष्ट हो जाए और मेरा मन राम-भक्ति में भीग जाए। मेरा मन माया में उलझ रहा है और ज्ञान की बात समझता नहीं। संसार में ऐसा कौन-सा नाम है जिसके सुमिरन से व्यक्ति को निर्वाण-पद प्राप्त होता है। जब संतजन मुझ पर दयालु और कृपालु हुए तो उन्होंने मुझे यह बात बताई कि जो व्यक्ति प्रभु की कीर्ति का गायन करता है, मानो उसने सभी धर्म-कार्य कर लिए हैं। जो व्यक्ति रात-दिन में एक क्षण के लिए राम नाम को अपने हृदय में बसाता है, नानक जी कहते हैं कि उसका यम का त्रास दूर हो जाता है और वह अपना जन्म संवार लेता है।

प्रानी नारइनि सुधि लेइ।
छिनु छिनु अउध घटै निस बासुर वृथा जातु है देह।
तरनापो बिखिअन सिउ खोइओ बालपनु अज्ञाना।
बिरध भइओ अजहू नहीं समझे कउनु कुमति उरझाना।
मानस जनम दीओ जिह ठाकुर सो तै किओ बिसराइओ।
मुकति होत नर जाकै सिमरै निमख न ता को गाइओ।
माइया को मदु कहा करतु है संग न काहू जाई।
नानक कहत चेति चिंतामनि होइ है अंति सहाई।

हे प्राणी, नारायण का स्मरण करो। जीवन की अवधि रात-दिन पल-पल करके कम होती जा रही है और इस प्रकार यह देह व्यर्थ ही जा रही है। तूने युवावस्था सांसारिक विषय वासनाओ में खो दी, बचपन अज्ञान में गंवा दिया। अब तुम वृद्ध हो गए, परन्तु तुम्हें सही बात अब भी समझ में नहीं आई। अभी भी तुम न जाने किस प्रकार की कुमति मे उलझे हुए हो। जिस प्रभु ने तुम्हें मानव-जीवन दिया, उसे क्यों भुला दिया है। जिसके स्मरण करने से नर मुक्त हो जाता है, उसे तू पल भर भी याद नहीं करता। तू अपनी सांसारिक प्राप्तियों का इतना अभिमान क्यों करता है, ये तेरे संग नही जाएंगी।

नानक जी कहते हैं कि चिंतामणि प्रभु का ध्यान करो, अंत में वे ही सहायक होंगे।

हहि को नामु सदा सुखदाई।
जा कउ सिमरि अजामलु उधरिओ गनका हू गति पाई।
पंचाली कउ राज सभा मै राम नाम सुधि आई।
ता को दूख हरिओ करुनामै अपनी पैज बढ़ाई।
जिह नर जसु कृपा निधि गाइयो ता कउ भइओ सहाई।
कहु नानक मै इही भरोसै गही आन सरनाई।

हरि का नाम सदा ही सुख देने वाला है। इस नाम का सुमिरन करके अजामिल

का उद्धार हो गया था और गणिका को भी परम गति प्राप्त हो गई थी। द्रौपदी को राज सभा में (जब चीर हरण हो रहा था) स्मरण आया था तो करुणामय प्रभु ने उसके दुःख को दूर करके अपने वचन की प्रतिष्ठा को बढ़ाया था। जो नर कृपानिधि प्रभु के नाम का गायन करता है, प्रभु उसकी सहायता करते हैं।

नानक जी कहते हैं कि मैंने इसी विश्वास पर उसकी शरण ग्रहण की है।

अब मै कहा करउ री माई।
सगल जनम बिखिअनि सिउ खोइआ सिमरिओ नाहि कन्हाई।
काल फास जब गर मै मेली तिह सुधि सभ बिसराई।
राम नाम बिनु या संकट मै को अब होत सहाई।
जो संपत्ति अपनी करि मानी छिन मौ भई पराई।
कहु नानक यह सोच रही मनि हरि जसु कबहू न गाई।

हे माई, अब मै क्या करूं। मैंने अपना सारा जीवन विषय-वासनाओं में ही खो दिया, कन्हाई (प्रभु) का सुमिरन नहीं किया। जब मृत्यु की फांसी गले में पड़ गई तो उसने सारी सुधि भुला दी। इस संकट में राम नाम के बिना कौन सहायक होता जिस सम्पत्ति को मैं अपनी मानता था, वह पल भर में पराई हो गई।

नानक जी कहते हैं कि मेरे मन में सदा यही चिंता रही कि मैंने हरि यश का कभी गायन नहीं किया।

भाई मै मन को मानु न तिआगियो।
माइआ के मदि जनमु सिराइओ राम भजनि नही लागिओ।
जम को डंडु परिओ सिर ऊपरि तब सोवत तै जागिओ।
कहा होत अब कै पछुताए छूटत नाहिन भागिओ।
इह चिता उपजी घट में जब गुरु चरनन अनुरागिओ।
सुफलु जनमु नानक तब हुआ जो प्रभु जस मै पागिओ।

हे भाई, मैंने अपने मन के अभिमान को कभी नहीं छोड़ा। मैंने माया के नशे में सारा जन्म गंवा दिया, राम नाम का भजन नहीं किया। जब यमराज का डंडा सिर पर पड़ा तो मैं जैसे सोते से जागा। अब पछताने से क्या होता है अब छूटकर भागा नहीं जा सकता था। जब मेरे हृदय में यह चिंता पैदा हुई तो मैंने गुरु के चरणों से प्रेम उत्पन्न किया।

नानक जी कहते हैं कि मेरा जन्म जो तब सफल हुआ जब मैं प्रभु के यश में पग (रम) गया।

रागु बसंतु हिंडोल

साधो इह तनु मिथिआ जानउ।
या भीतरि जो राम बसतु है साचो ताहि पछानो।
इहु जगु है संपति सुपने की देखि कहा ऐडानो।
संगि तिहारे कछु न चालै ताहि कहा लपटानो।
उसतति निंदा दोऊ परहर हरि कीरति उरआनो।
जन नानक सभ ही मै पूरन एक पुरख भगवानो।

साधु जनो! इस शरीर को मिथ्या ही समझो। इस शरीर के भीतर परमेश्वर की जो ज्योति है, उसे ही सच के रूप में पहचानना चाहिए। संसार तो सपने में पाई हुई सम्पत्ति के समान है। इसे देखकर इतना क्यों इतरा रहे हो। तुम्हारे साथ तो कुछ जाएगा नहीं। इससे इतना क्यों लिपट रहे हो। इसलिए स्तुति और निंदा दोनों का विचार छोड़कर हरि की कीर्ति को ही अपने मन में बसाओ।

नानक जी कहते हैं कि एक भगवान ही सब में व्यापत है।

पापी हीए मै कामु बसाइ।
मनु चंचलु याते गहिओ न जाइ।
जोगी जंगम अरु संनिआस।
सभ ही परि डारो इह फास।
जिहि जिहि हरि को नामु सम्हारि।
तै भव सागर उतरे पारि।
जन नानक हरि की सरनाई
दीजै नामु रहै गुन गाई।।

अरे पापी तूने तो अपने हृदय में काम को बसा लिया है। यही कारण है कि यह चंचल मन तेरी पकड़ में नहीं आता। काम-भाव ने जोगी, जंगम और संन्यासी, सभी पर फांस डाली हुई है, परन्तु जिन लोगों ने हरिनाम को अपने अंदर सहेज लिया, वे भवसागर पार कर गए।

नानक जी कहते हैं कि हरि, मैं तुम्हारी शरण में आ गया हूं, मुझे नाम दीजिए जिससे मैं सदा तुम्हारे गुण गाता रहूं।

भाई मैं धनु पाइओ हरि नामु।
मनु मेरो धावन ते छूटिओ करि बैठो बिसरामु।
माइआ ममता तन ते भागी उपजिओ निरमल ज्ञानु।

लोभ मोह इह परसि न साकै गही भगति भगवान।
जनम जनम का संसा चूका रतनु नामु जव पाइआ।
तृसना सकल विनासीं मन तै निज सुख माहि समाइआ।
जा कउ होत दइआलु कृपा निधि सो गोबिंद गुन गावै।।
कहु नानक इह बिधि को संपै कोऊ गुरमुखि पावै।।

हे भाई, मुझे हरिनाम रूपी धन प्राप्त हो गया है। अब मेरा मन इधर-उधर भटकने से छूट गया है और वह शांति की स्थिति में आ गया है। मेरे शरीर से माया-ममता भाग गई है और उसमें पवित्र ज्ञान उत्पन्न हो गया है। अब इस शरीर को लोभ, मोह जैसे विकार छू भी नहीं सकते। इसने भगवान की भक्ति ग्रहण कर ली। भगवान के नाम का रत्न जब मैंने पा लिया, तो मेरे मन से जन्म-जन्म का संशय समाप्त हो गया। मेरे मन से सांसारिक वस्तुओं की तृष्णा नष्ट हो गई और वह अलौकिक सुख में समा गया है। जिस पर कृपानिधि भगवान की दया होती है, वह परमेश्वर के गुण गाता है।

नानक जी कहते हैं कि इस प्रकार की सम्पत्ति किसी गुरुमुख को ही प्राप्त होती है।

मन कहा बिसारिओ राम नामु।
तनु बिनसै जम सिउ परै कामु।
इहु जगु धुए का पहार।
तै साचा मानिआ किह बीचारि।
धनु दारा संपति ग्रेह।
कछु संगि न चालै समझ लेह।
इक भगति नाराइन होइ संगि।
कहु नानक भजु तिह एक रंगि।।

हे मन, तूने राम नाम को क्यों भुला दिया है? जब शरीर नष्ट हो जाता है तो यमदूत से काम पड़ता है। यह जग तो धुएं के पहाड़ के समान है। तुमने क्या सोचकर इसे सच मान लिया? धन, स्त्री, सम्पत्ति और घर, इसमें तुम्हारे साथ कुछ भी नहीं जाएगा, इसे समझ लो। भगवान की भक्ति ही तुम्हारे संग जाएगी।

नानक जी कहते हैं कि उसे एक रंग, एकाग्र होकर भजो।

कहा भूलिओ रे झूठे लोभ लाग।
कछु बिगरिओ नाहनि अजहु जाग।
सम सुपनै क इहु जगु जानु।
बिनसै छिन मै साची मानु।
संगि तेरै हरि बसत नीत।

निस बासुर भजु ताहि मीत।
बार अंत की होइ सहाइ।
कहु नानक गुन ताके गाइ।

हे मन, तू झूठे लोभ से जुड़ कर क्यों भूल कर रहा है। जाग जाओ, अभी भी कुछ बिगड़ा नहीं है। इस संसार को सपने की तरह जानो। यह सच मान लो कि जो कुछ दिख रहा है, वह क्षणमात्र में नष्ट हो जाएगा। हरि सदा तुम्हारे साथ रहता है। इसलिए हे मेरे मित्र, रात-दिन उसी को भजो। अंत समय वही सहायता करता है।

नानक जी कहते हैं कि सदा उसी के गुण गाने चाहिए।

रागु सांग

हरि बिनु तेरो को न सहाई।
कांकी मात पिता सुत बनिता को काहू को भाई।
धनु धरनी अरु संपत्ति सगरी जो मानिओ अपनाई।
तन छूटै कछु संगि न चालै कहा ताहि लपटाई।
दीन दइआल सदा दुख भंजन ता सिउ रुचि न बढ़ाई।
नानक कहत जगत सभ मिथिआ जिउ सुपना रैनाई।

हे प्राणी, हरि के बिना तेरा कोई सहायक नहीं है। किसकी माता, किसका पिता, पुत्र या स्त्री, कौन किसका भाई? यह धन, ज़मीन और सारी सम्पत्ति जिसे तू अपना मान कर अपना रहा है, तन छूटने पर तेरे साथ नहीं जाएंगे, इनसे क्यों लिपट रहा है। दीनदयाल, सदा दुखों को नष्ट करने वाले प्रभु से तुमने अपना प्रेम नहीं बढ़ाया।

नानक जी कहते हैं कि यह संसार उसी तरह मिथ्या है जैसे रात का सपना।

कहा मन बिखिआ सिउ लतटाही।
या जग मै कोउ रहनु न पावै इक आवहि इक जाही।
कांको तनु धनु संपत्ति कांकी का सिउ नेहु लगाही।
जो दीसै सो सगल बिनासै जिउ बादर की जाही।
तजि अभिमानु सरणि संतन गहु मुकति होहि छिन माही।
जन नानक भगवंत भजन बिनु सुखु सुपने भी नाही।

हे मेरे मन, तू विषय-वासनाओं से क्यों लिपट रहा है। इस संसार में कुछ रहने नहीं पाता। एक आता है तो एक जाता है। आज तक तन, धन और सम्पत्ति किसके हुए हैं? तुम किससे स्नेह लगा रहे हो? जो कुछ दिखता है, वह नाशवान है, जैसे बादलों

की छाया जल्दी ही नष्ट हो जाती है। इसलिए अभिमान को छोड़कर संत जनों की शरण ग्रहण करो। इससे क्षण भर में तुम्हारी मुक्ति हो जाएगी।

नानक जी कहते हैं कि भगवान के भजन के बिना तो व्यक्ति को सपने में भी सुख नहीं मिल सकता।

कहा नर अपनो जनमु गवावै।
माइआ मदि बिखिआ रसि रचिओ राम सरनि नहीं आवै।
इहु संसारु सगल है सुपनो देखि कहा लोभावै।
जो उपजे सो सगल बिनासै रहनु न कोउ पावै।
मिथिआ तनु साचो करि मानिओ इह बिधि आपु बंधावै।
जन नानक सोऊ जग मुकता राम भजन चितु लावै।

हे नर, तू अपना जन्म क्यों नष्ट कर रहा है। तू माया के नशे में चूर होकर विषय-वासनाओं में डूबा हुआ है और राम की शरण में नहीं आता। यह संसार तो स्वप्न के समान है। इसे देखकर लोभ में क्यों पड़ता है? संसार में जो भी वस्तु जन्म लेती है, वह नष्ट होती है । कुछ भी रहने नहीं पाता। तूने इस मिथ्या शरीर को अपना करके मान लिया है। इस प्रकार तू स्वयं माया के बंधन में बंध गया है।

नानक जी कहते हैं कि वही व्यक्ति मुक्त है, जो राम भजन में अपना मन लगाता है।

मन करि कबहु न हरि गुन गाइओ।
बिखिआ सकति रहिओ निस बासुर कीनो अपनो भाइओ।
गुर उपदेसु सुनिओ नह काननि पर दारा लपटाइओ।
पर निदिआ कारनि बहु धावत समझिओ नह समझाइओ।
कहा कहउ मैं अपनी करनी जिह बिधि जनमु गवाइओ।
कहि नानक सभ अउगन भौ मै राखि लेहु सरनाइओ।

जान बुझकर मैंने कभी भी हरि के गुणों का गायन नहीं किया। विषय वासनाओं के साथ मैं रात-दिन जीता रहा और अपने किए पर प्रसन्न होता रहा। गुरु का उपदेश मैंने कभी ग्रहण नहीं किया। दूसरे की पत्नी में ही सदा रुचि लेता रहा। मेरा मन परनिंदा के लिए सदैव दौड़ता रहा इसे बहुत समझाया, परन्तु यह समझता नहीं। अपनी करनी का मैं क्या वर्णन करूं कि किस प्रकार मैंने अपना जन्म गंवा दिया।

नानक जी कहते हैं कि हे प्रभु, मुझमें सभी प्रकार के अवगुण हैं। मैं आपकी शरण में आया हूं, मेरी रक्षा कीजिए।

रागु जैजावंती

राम सिमर राम सिमर इह तैरै काजि है।
माइआ को संगु तिआगि प्रभ जू की सरनि लाग।
जगत सुख मानु मिथिआ झूठो सभ साजु है।
सुपने जिउ धनु पछानु।
काहे पर करत मानु।
बारू की भीति जैसे बसुधा की राजु है।
नानक जन कहत बात बिनसि जै है तेरो गात।
छिनु छिनु करि गइओ कालु तैसे जातु आजु है।

हे भाई, राम का सुमिरन करो, यही तुम्हारा काम है। माया का संग त्यागकर प्रभु की शरण में आओ। संसार के सुखों को मिथ्या मानों क्योंकि संसार के सभी साज झूठे हैं। तुम्हारे पास जो धन है, वह स्वप्न की तरह है, इसलिए इस पर मान क्यों करते हो। पृथ्वी का राज्य भी रेत की दीवार की तरह है।

नानक जी कहते हैं—मैं एक बात कहता हूं कि तुम्हारा यह शरीर नष्ट हो जाएगा। जैसे-जैसे तुम्हारा आज का समय बीतता जा रहा है, उसी तरह क्षण-क्षण करके तुम्हें काल पकड़ता जा रहा है।

राम भजु राम भजु जनमु सिरातु है।
कहउ कहा बार बार समझत नह किउ गवार।
बिनसत नह लगै बार औरे सम गात है।
सगल भरम डारि देह गोबिंद को नामु लेह।
अंति बार संगि तेरे इहै एक जातु है।
बिखिआ बिख जिउ बिसारि प्रभु को जसु हीए धार।
नानक जन कहि पुकार अउसरु बिहातु है।।

हे भाई, राम नाम का भजन करो, जन्म बीतता जा रहा है। मैंने तुम्हें बार-बार कहा, परन्तु मूर्ख की भांति तू कुछ समझता ही नहीं। तेरा शरीर तो ओले के समान गलकर नष्ट हो जाने वाला है। अपने सभी भ्रम त्याग कर प्रभु का नाम लो क्योंकि अंत समय में यही एक चीज़ तुम्हारे साथ जाएगी। विषय-वासनाओं को विष समझकर भुला दो। प्रभु के यश को अपने हृदय में धारण करो।

नानक जी कहते है कि मैं यह पुकार-पुकार कर कह रहा हूं, कि क्षण-क्षण अवसर बीतता जा रहा है।

रे मन कउन गति होइ है तेरी।
इह जग मै राम नामु सो तउ नही सुनिओ कान।
बिखिअन सिउ अति लुभान मति नाहिन फेरी।
मानस को जनमु लीन सिमरनु नह निमख कीन।
दारा सुख भइओ दीन पगहु परी बैरी।
नानक जन कहि पुकारि सुपनै जिउ जगु पसारि।
सिमरत नहि किओ मुरारि।
माइआ जा की चेरी।।

रे मन, तेरी कैसी गति होगी? इस संसार में राम-नाम ही सार तत्व है, जिसे तूने कभी सुना नहीं। विषय-वासनाओं के लोभ में तू पड़ा रहता है। इनकी ओर से अपनी मति तू नहीं फेरता। मनुष्य का जन्म लेकर तूने राम नाम का पल भर भी सुमिरन नहीं किया। तू सदा स्त्री-सुख में ही लीन रहा, तेरे पैरों में मौत की बेड़ी पड़ गई।

नानक जी कहते हैं कि मैं पुकार कर कहता हूं कि इस संसार का सम्पूर्ण पसारा सपने के समान है। इसलिए तू अब प्रभु का सुमिरन क्यों नहीं करता, माया जिसकी दासी है।

बीत जै है बीत जै हैं जनमु अकाज रे।
निस दिन सुन कै पुरान।
समझत नह रे अजान।
काल तउ पहूंचिओ आनि कहा ज है भाजि रे।
असथिरू जो मानिओ देह सो तउ तेरउ होइ हैं खेह।
किउ न हरि को नामु लेउ मूरख निलाज रे।
राम भगति हीए आनि छाड़ि दे तै मन को मानु।
नानक जन इह बखान जग मैं बिराजु रे।।

हे भाई, तेरा जन्म तो व्यर्थ ही व्यतीत हो जाएगा। हे अज्ञानी, तू रात-दिन की पुकार सुनकर भी समझता क्यों नहीं? काल तेरे पास पहुंच गया है, तू इससे भागकर कहां जाएगा? जिस शरीर को तू स्थायी मान बैठा है, वह तो एक दिन मिट्टी हो जाएगा। इसलिए हे मूर्ख, हे निर्लज्ज, तू हरि का नाम क्यों नहीं लेता? तू अपने मन का अभिमान छोड़कर उसमें राम-भक्ति को वसा।

नानक जी कहते हैं कि इस प्रकार तुम संसार में अपना स्थान बनाओ।

सलोक

गुन गोबिंद गाइओ नहीं जनमु अकारथ कीन।
कहु नानक हरि भजु मना जिहि बिधि जल कौ मीन।।

(हे भाई, तुमने गोबिंद के गुणों का गायन नहीं किया, फलस्वरूप अपने जन्म को व्यर्थ बना लिया। नानक जी कहते हैं कि हे मन, हरि के भजन में उसी प्रकार लीन हो जा जैसे मछली जल में लीन रहती है।)

बिखिअन सिउ काहे रचिउ निमख न होहि उदास।
कहु नानक भजु हरि मना परै न जम की फास।।

(हे मन, तुम विषय-वासनाओं में इतना क्यों डूबे रहते हो? इनसे पल भर भी तुम उदास नहीं होते। नानक जी कहते हैं कि हे मन हरि का भजन करो। इससे तुम यम की फांसी से दूर रहोगे।)

तरनापो इउ ही गइओ लीओ जरा तनु जीति।
कहु नानक भज हरि मना अउध जातु है बीति।।

(युवावस्था तो ऐसे ही निकल गई, अब बुढ़ापे ने शरीर को जीत लिया है। नानक जी कहते हैं कि हे मन, हरि का भजन कर, क्योंकि आयु बीतती ही जा रही है।)

बिरध भइओ सूझै नहीं कालु पहुचिओ आन।
कहु नानक नर बावरे किउ न भजै भगवान।।

(हे नर, तुम बूढ़े हो गए, तुम्हें कुछ सुझाई तक नहीं देता। काल भी आ पहुंचा है। नानक जी कहते हैं कि हे पागल नर, इस समय भी तुम भगवान का स्मरण नहीं करते।)

धनु दारा संपति सगल जिनि अपुनी करि मानि।
इन मै कछु संगी नहीं नानक साची जानि।।

(जो लोग धन, स्त्री, सम्पत्ति को अपनी मान कर चलते हैं, नानक जी उनसे कहते हैं, हे भाई इसमें कोई भी अंतकाल के संगी नहीं हैं, यह सच मान लो।)

पतित उधारन भै हरन हरि अनाथ को नाथ।
कहु नानक तिह जानिऐ सदा बसतु तुम साथ।।

(हरि पतितों का उद्धार करने वाले हैं और भय का नाश करने वाले हैं। वे अनाथों के नाथ हैं। नानक जी कहते हैं कि उन्हें ही जानना चाहिए। वे सदा तुम्हारे साथ रहते हैं।)

तनु धनु जिह तोकउ दीओ तां सिउ नेहु न कीन।
कहु नानक नर बावरे अब किउ डोलत दीन।।

(जिस परमेश्वर ने तुम्हें तन और धन दिया, उससे तुमने प्रीति नहीं की। नानक जी कहते हैं कि हे पागल मनुष्य, अब (दुख में) तुम दीन होकर इधर-उधर क्यों डोलते फिरते हो?)

तनु धनु संपै सुख दीओ अरु जिह नीके धाम।
कहु नानक सुन रे मना, सिमरत काहि न राम।।

(जिस राम ने तुम्हें तन, धन और सभी प्रकार के सुख दिए और रहने के लिए सुंदर घर दिए, नानक जी कहते हैं, हे मन, उस राम को तुम स्मरण क्यों नहीं करते?)

सभ सुख दाता रामु है दूसर नाहि न कोइ।
कहु नानक सुनि रे मना अउध घटत है नीत।।

(हे मित्र, जिसे याद करने से मुक्ति प्राप्त होती है, उसे भजना चाहिए। नानक जी कहते हैं कि हे मन सुनो, जीवन की अवधि दिन-प्रतिदिन घटती चली जा रही है।)

जिह सिमरत गति पाइए तिहि भ़जु रे तै मीत।
कहु नानक सुन रे मना अउध घटत है नीत।।

(हे मित्र, जिसे याद करने से मुक्ति प्राप्त होती है, उसे भजना चाहिए। नानक जी कहते हैं कि हे मन सुनो, जीवन की अवधि दिन-प्रतिदिन घटती चली जा रही है।)

पांच तत्त को तनु रचिउ चतुर सुजान।
जिह ते उपजिउ नानका, लीन ताहि मै मान।।

(हे चतुर ज्ञानी जन, यह जान लो कि यह शरीर पांच तत्वों (जल, पृथ्वी, अग्नि, वायु और आकाश) से मिलकर बनता है। नानक जी कहते हैं कि यह शरीर जिन तत्वों से मिलकर बनता है, अंत में उन्हीं में समा जाता है।)

घटि घटि मै हरिजू बसै, संतन कहिओ पुकारि।
कहु नानक तिह भजु मना, भउ निधि उतरहि पारि।।

(संत जन यह बात पुकार-पुकार कर कहते हैं कि परमेश्वर का वास हर शरीर में है। नानक जी कहते हैं कि हे मन उसका नाम सदा भजो, इससे तुम संसार रूपी समुद्र से पार उतर जाओगे।)

सुख दुख जिह परसै नहीं लोभ मोह अभिमानु।
कहु नानक सुन रे मना, सो मूरत भगवान।

(जिस व्यक्ति को सुख, दुख मोह और अभिमान नहीं छूते, नानक जी कहते हैं कि ऐसा व्यक्ति तो भगवान की मूर्ति की भांति की है।)

उसतति निंदिआ नाहि जिहि कंचन लोह समानि।
कहु नानक सुनि रे मना मुकति ताहि तै जानि।।

(जिस व्यक्ति को न स्तुति की परवाह है, न निंदा की; जो सोने और लोहे को बराबर समझता है, नानक जी कहते हैं कि ऐसे व्यक्ति को मुक्त व्यक्ति समझना चाहिए।)

हरष सोग जाकै नहीं बैरी मीत समान।
कहु नानक सुनि रे मना मुकति ताहि तै मान।।

(जिसे न हर्ष की चिंता है, न शोक की; जो शत्रु और मित्र को एक समान समझता है, नानक जी कहते हैं कि उसे मुक्तजन समझना चाहिए।)

भै काहू कउ देत नहि, नहि भै मानत आनि।
कहु नानक सुनि रे मना, गिआनी ताहि बखानि।।

(जो व्यक्ति संसार में किसी को न तो भय देता, न ही किसी का भय स्वीकार करता है, नानक जी कहते हैं कि हे मन, वही व्यक्ति ज्ञानी है।)

जिहि बिखिआ सगली तजी लीओ भेरव बैराग।

कहु नानक सुन रे मना, तिह नर माथै भाग।।

(जिस व्यक्ति ने सभी विषय-वासनाओं का त्याग कर दिया है और मन में वैराग्य धारण कर लिया है! नानक जी कहते हैं कि हे मन, वह व्यक्ति बड़ा भाग्यशाली है।)

जिहि माया ममता तजी सभत भइओ उदास।
कहु नानक सुन रे मना, तिह घटि ब्रह्म निवास।।

(जिस व्यक्ति ने माया, ममता को तज दिया है और सांसारिक आकर्षणों के प्रति उदासीन हो गया है, नानक जी कहते हैं कि उसके हृदय में ब्रह्म का निवास हो गया है।)

जिहि प्राणी हउमै तजी करता राम पछान।
कहु नानक वहु मुकति नरु इह मन साची मान।।

(जिस व्यक्ति ने अंहकार को तज दिया है और सृष्टि के कर्त्ता राम को जान लिया है, नानक जी कहते हैं कि हे मन, यह सच मान लो कि वह व्यक्ति मुक्त जन है।)

भै नासन दुरमति हरन, कलि मै हरि को नामु।
निसदिनि जो नानक भजै सफल होहि तिह काम।।

(कलियुग में हरि का नाम भय का नाश करता है और दुर्मति को दूर करता है। नानक जी कहते हैं कि जो व्यक्ति हरिनाम को रात-दिन भजता है, उसके सभी काम सफल हो जाते हैं।)

जिहबा गुन गोविंद भजहु करन सुनहु हरि नाम।
कहु नानक सुन रे मना, परहि न जम कै धाम।।

(जो व्यक्ति अपनी जीभ से गोविंद के गुणों का बखान करता है, अपने कानों से हरिनाम सुनता है, नानक जी कहते हैं कि हे मन, ऐसा व्यक्ति यम के धाम नहीं जाता।)

जो प्रानी ममता तजै लोभ मोह अंहकार।
कहु नानक आपन तरै अउरन लेत उधार।।

(जो प्राणी ममता, लोभ, मोह और अंहकार को छोड़ देता है, नानक जी कहते हैं कि वह स्वयं तर जाता है तथा और लोगों का भी उद्धार कर देता है।)

जिउ सुपना अरु पेखना ऐसे जग कउ जानि।
इन मै कछु साचो नहीं, नानक बिनु भगवान।।

(जैसे सपना लेना और उसमें कुछ देखना मिथ्या है, उसी प्रकार संसार को भी समझना चाहिए। नानक जी कहते हैं कि भगवान के नाम के बिना इसमें कुछ भी सच

नहीं।)

निसि दिन माइआ कारने प्रानी डोलत नीति।
कोटक मैं नानक कोऊ नाराइन जिह चीति।।

(सांसारिक प्राणी तो रात-दिन माया के चक्कर में इधर-उधर डोलते रहते हैं। नानक जी कहते हैं कि करोड़ों लोगों में कुछ ही ऐसे होते हैं, जिनके चित्त में नारायण बसता है।)

जैसे जल ते बुदबुदा उपजै बिनसै नीत।
जब रचना तैसे रची कहु नानक सुन मीत।।

(जिस प्रकार जल में बहुत से बुदबुदे नित्य ही बनते-बिगड़ते रहते हैं, नानक जी कहते हैं कि मित्र, उसी प्रकार इस संसार की रचना भी अस्थिर है।)

प्राणी कछु न चेतई मद माइआ कै अंध।
कहु नानक बिनु हरि भजन परत ताहि जम फंद।।

(माया के मद में अंधा हुआ प्राणी कुछ भी नहीं सोचता। नानक जी कहते हैं कि हरिभजन के बिना वह यम के बंधन में पड़ा रहता है।)

जउ सुख कउ चाहै सदा सरनि राम की लेह।
कहु नानक सुन रे मना दुरलभ मानुख देह।।

(हे प्राणी, यदि तुम स्थायी सुख चाहते हो तो राम की शरण में आओ। नानक जी कहते हैं कि हे मेरे मन सुनो। मनुष्य देह बड़ी दुर्लभ है। इसे व्यर्थ ही नष्ट मत करो।

माइआ कारनि धावई मूरख लोग अजान।
कहु नानक बिनु हरिभजन बिरथा जनमु सिरान।।

(माया की प्राप्ति के लिए मूर्ख, अज्ञानी लोग दौड़ते फिरते हैं। नानक जी कहते हैं कि हरि के भजन के बिना जन्म व्यर्थ ही बीत जाता है।)

जो प्रानी निसि दिनि भजे रूप राम तिह जानु।
हरिजन हरि अंतरु नहीं, नानक साची मानु।।

(जो प्राणी, रात-दिन ईश्वर भजन में लीन रहता है, उसे राम का ही रूप मानना चाहिए। नानक जी कहते हैं कि इस बात को सच मान लो कि हरि और हरि के भक्तों में कोई अंतर नहीं है।)

मनु माइआ मैं बंधि रहिओ बिसरिउ गोबिंद नाम।
कहु नानक बिनु हरि भजन जीवन कउने काम।।

(मन तो माया के बंधन में बंधा हुआ है, उसने परमेश्वर का नाम भुला दिया है। नानक जी कहते हैं कि हरि के भजन बिना जीवन किसी काम का नहीं है।)

प्राणी राम न चेतई मदि माइआ कै अंध।
कहु नानक हरिभजन बिनु परत ताहि जम फंद।।

(हे प्राणी, माया के नशे में अंधे होकर तुम राम-नाम का स्मरण नहीं करते। नानक जी कहते हैं कि हरि के भजन के बिना यम का बंधन ही प्राप्त होता है।)

सुख मै बहु संगी भए दुख मै संगि न कोइ।
कहु नानक हरिभज मना, अंति सहाई होइ।।

(सुख में बहुत से लोग साथी बन जाते हैं, दुःख में कोई साथी नहीं बनता। नानक जी कहते हैं कि हे मन, हरि का नाम लो, वही अंत में सहायक बनता है।)

जनम-जनम भरमत फिरिओ मिटिओ न जम की त्रासु।
कहु नानक हरि भजु मना, निरभै पावहि बासु।।

(मनुष्य कई जन्मों तक भटकता रहता है, परन्तु उसे यम के त्रास से मुक्ति नहीं मिलती। नानक जी कहते हैं कि हे मन, हरि का नाम भजो, इससे तुम्हें निर्भय पद की प्राप्ति होगी)

जतन बहुतु मैं कर रहिओ मिटिओ न मन को मानि।
दुरमति सिउ नानक फधिओ राखि लेहु भगवानि।।

(मैंने बहुत से यत्न किए, परन्तु मेरे मन का मान नहीं मिट सका। नानक जी कहते हैं कि मैं सदा खोटी मति में फंसा रहा। हे भगवान, मेरी रक्षा करो।)

बाल जुआनी अरु बिरध फुनि तीन अवस्था जानि।
कहु नानक हरि भजन बिनु बिरथा सम की मानि।।

(मनुष्य की तीन अवस्थाएं होती हैं—बालपन, जवानी और बुढ़ापा। नानक जी कहते हैं कि हरि के भजन के बिना, सभी को व्यर्थ मानना चाहिए।)

करणो हुतो सु ना कीओ परिओ लोभ कै फंध।
नानक समिओ रमि गइओ अब किऊ रोवत अंध।।

(लोभ के बंधन में फंसकर हे प्राणी, तुम्हें जो करना चाहिए था, वह तुमने नहीं किया। नानक जी कहते हैं कि इस प्रकार समय तो निकल गया। अरे अंधे! अब क्यों रोते हो?)

मनि माइआ मै रमि रहिओ निकसत नाहिनि मीत।
नानक मूरहि चित्र जिउ छाडित नाहनि भीत।।

(हे मित्र, मन माया के रंग में रमा हुआ है। वह वहां से निकलता ही नहीं। नानक जी कहते हैं कि इसकी अवस्था दीवार पर बने हुए चित्र की तरह है, जो दीवार को छोड़ता नहीं।)

नर चाहत कछु अउर, अउरै की अउरै भई।
चितवन रहिओ ठगउर, नानक फासी गल परी।।

(व्यक्ति कुछ और चाहता है परन्तु हो कुछ और जाता है। माया में फंसा हुआ व्यक्ति लोगों को ठगने की बात सोचता रहा, किन्तु नानक जी कहते हैं कि उसके गले में मृत्यु की फांसी आ पड़ी।)

जतन बहुत सुख के किए दुख को कीओ न कोइ।
कहु नानक सुन रे मना, हरि भावै सो होइ।।

(व्यक्ति अपने जीवन में सुख-प्राप्ति के लिए अनेक यत्न करता है, परन्तु दुख का कोई उपाय नहीं करता। नानक ही कहते हैं कि हे मन सुनो, होता वही है जो ईश्वर को अच्छा लगता है।)

जगतु भिखारी फिरतु है सभ को दाता राम।
कहु नानक मन सिमरु तिह पूरन होवहि काम।।

(संसार भिखारी के समान इधर-उधर घूमता रहता है, किन्तु सभी को देने वाले तो राम हैं। नानक जी कहते हैं कि हे मन, उसी का स्मरण करो, तुम्हारे सभी काम पूरे हो जाएंगे।)

झूठे मानु कहा करै जगु सुपने जिउ जान।
इन मै कछु तेरो नहीं नानक कहिउ वखान।।

(हे भाई, तुम झूठा अभिमान क्यों करते हो। यह संसार तो सपने के समान है। नानक ज़ी कहते हैं कि मैं यह कहता हूं कि इन सांसारिक पदार्थों में तुम्हारा कुछ भी नहीं है।)

गरबु करतु है देह को बिनसै, छिन मै मीत।
जिहि प्रानी हरि जसु कहिओ, नानक तिहि जगुजीत।।

(हे मित्र, तुम अपनी देह का इतना अभिमान क्यों करते हो? यह तो क्षण भर में

नष्ट हो जाती है। नानक जी कहते हैं संसार में जीत उसी प्राणी की होती है जो हरि यश का गान करता है।)

जिह घट सिमरन राम को सो नरु मुकता जानु।
तिहि नर हरि अंतरु नहीं नानक साची मानु।।

(जिस शरीर में राम नाम का सिमरन है, वह नर मुक्तजनों की भांति हैं। नानक जी कहते हैं कि उस व्यक्ति में और ईश्वर में कोई अन्तर नहीं है, इस बात को सच मान लो।)

एक भगति भगवान जिह प्रानी कै नाहि मन।
जैसे सूकरू सुआनु नानक मानो ताहि जन।।

(जिस प्राणी के मन में भगवान की भक्ति नहीं है, नानक जी कहते हैं कि उसका शरीर तो किसी सुअर या कुत्ते जैसा ही है।)

सुआमी को ग्रिहु जिउ सदा, सुआन तजत नहीं नित।
नानक इह बिधि हरि भजहु इकमन हुइ इकि चित।।

(जिस प्रकार एक कुत्ता कभी अपने स्वामी का घर नही छोड़ता, नानक जी कहते हैं कि उसी प्रकार एक मन और एक चित होकर हरि का भजन करना चाहिए।)

तीरथ बरत अरु दान करि मन मै धरै गुमानु।
नानक निहफल जात तिह जिउ़ कुंचर इसनानु।।

(जो लोग तीर्थ, व्रत और दान करते हैं, किन्तु मन में अंहकार को बसाए रखते हैं। नानक जी कहते हैं कि उनका यह कार्य उसी तरह निष्फल हो जाता है, जैसे हाथी का स्नान।)

सिरू कंपिओ पग डगमगै नैन जोति ते हीन।
कहु नानक इह बिधि भई तऊ न हरि रस लीन।।

(वृद्धावस्था में सिर कांपने लगा है, पैर डगमगाने लगे हैं, नेत्रों की ज्योति भी जाती रही है। नानक जी कहते हैं कि हे प्राणी, तुम्हारी यह स्थिति हो गई है, तब भी तुम हरि-नाम का रस नहीं लेते?।)

निज करि देखिओ जगतु मै को काहू नाहि।
नानक थिरू हरि भगति है तिह राखो मन माहि।।

(संसार में बहुत से लोगों को अपना बना कर देखा, किन्तु कोई किसी का नहीं

वनता। नानक जी कहते हैं—केवल हरि की भक्ति ही स्थिर वस्तु है, सदा उसे ही मन में रखना चाहिए।)

जग रचना सब झूठ है जानि लेहो के मीत।
कहि नानक थिरू ना रहे जिऊ बालू की भीत।।

(हे मित्र, यह जान लो कि माया पर आधारित इस संसार की रचना झूठी है। नानक जी कहते हैं कि बालू की दीवार की तरह यह स्थिर नहीं रहती।)

राम गइओ रावनु गइओ जाकउ बहु परवार।
कहु नानक थिरू कछु नहीं सुपने जिउ संसार।।

(रामचंद्र जी और रावण जैसे व्यक्ति भी इस संसार से चले गए, जिनके बड़े-वड़े परिवार थे। नानक जी कहते हैं कि इस संसार में कुछ भी स्थिर नहीं, यह तो स्वप्न के समान है।)

चिंता ताकी कीजिए जो अनहोनी होइ।
इह मारगु संसार को नानक थिरू नहीं कोइ।।

(संसार में चिंता उस बात की करनी चाहिए जो अनहोनी हो। नानक जी कहते हैं कि इस संसार में कोई भी चीज़ स्थिर नहीं है।)

जो उपजिओ सो विनस है परो आजु के काल।
नानक हरि गुन गाइले छाड़ि सगल जंजाल।।

(जो उत्पन्न हुआ है उसका नाश भी होगा, आज हो या कल। नानक जी कहते हैं कि इसलिए सभी सांसारिक जंजालों को छोड़कर हरि गुण का गायन कर लो।)

बलु छुटकिओ बंधन परे कछु न होत उपाइ।
कहु नानक अब ओट हरि गजि जिउ होहु सहाइ।।

(जिस समय व्यक्ति का बल समाप्त हो जाता है, अनेक प्रकार के बंधन उसे घेर लेते हैं, कोई उपाय नहीं सूझता। नानक जी कहते हैं कि तव ईश्वर का ही सहारा होता है। वह प्राणी की उसी प्रकार रक्षा करता है जैसे उसने जल में मगरमच्छ द्वारा पकड़े गए हाथी की रक्षा की थी।)

बलु होआ बंधन छुटे सभ किछु होत उपाइ।
नानक सभ किछु तुमरे हाथ मै तुम ही होत सहाइ।।

(ईश्वर की कृपा से व्यक्ति को बल प्राप्त होता है, उसके बंधन टूट जाते हैं, सभी

प्रकार के उपाय निकल आते हैं। नानक जी कहते हैं कि हे प्रभु! सब कुछ तुम्हारे हाथ में है, तुम ही सहायता करते हो।)

संग सखा सभ तजि गए कोऊ न निबहिओ साथ।
कहु नानक इह बिपत मै टेक एक रघुनाथ।।

(मनुष्य के जीवन में ऐसी स्थिति आती है कि उसके संगी-साथी-उसे छोड़ देते हैं, कोई भी साथ नहीं रहता। नानक जी कहते हैं कि ऐसी विपत्ति में ईश्वर का ही भरोसा रह जाता है।)

नाम रहिओ, साधु रहिओ रहिओ गुरु गोबिंद।
कहु नानक इह जगत मै किन जपिओ गुरमंत।।

(जो व्यक्ति ईश्वर भक्ति करता है उसके साथ अंत तक ईश्वर नाम रहता है और साधु संगति रहती है, गुरु रहता है और अकाल पुरुष रहता है। नानक जी कहते हैं कि संसार में विरले लोग ही ईश्वर नाम के मंत्र का जप कर पाते हैं।)

राम नाम उरि मै गहिओ जाकै सभ नहि कोइ।
जिह सिमरत संकट मिटै दरसु तिहारो होइ।।

(मैंने अपने हृदय में राम नाम धारण कर लिया है, इसके समान और कुछ नहीं। इसके सुमिरन से सभी संकट मिट जाते हैं और परमेश्वर के दर्शन हो जाते हैं।)

स्वामी विवेकानन्द
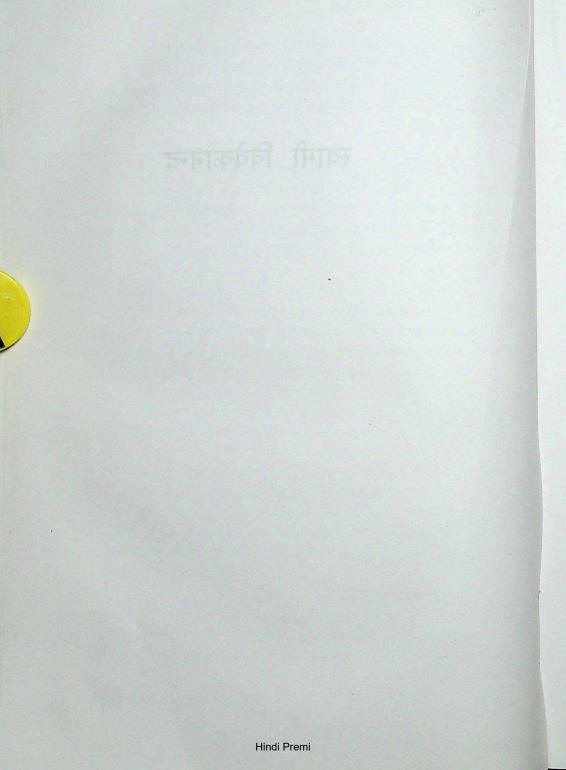
स्वामी विवेकानंद

स्वामी विवेकानन्द जैसा चित्ताकर्षक बहुमुखी प्रतिभा से सम्पन्न व्यक्तित्व लेकर जन्म लेने वाले महापुरुषों का इस देश में कभी अभाव नहीं रहा। फिर भी इस श्रृंखला की नवीनतम कड़ी होने के कारण यह कहा जा सकता है कि उन्नीसवीं शताब्दी में आरम्भ हुए भारतीय नवजागरण के प्रयासों पर यदि किसी एक व्यक्तित्व की सबसे गहरी छाप लगी तो वह स्वामी विवेकानन्द की। इस नवजागरण के परवर्ती अग्रदूतों ने भी स्वामी विवेकाननद की अपने जीवन पर पड़ी छाप को उन्मुक्त कण्ठ से स्वीकार किया है। अपने मोहक व्यक्तिव से संसार भर को चमत्कृत करने वाले स्वामी रामतीर्थ भी विवेकानन्द के तेजस्वी व्यक्तित्व से जीवन का प्रकाश पा चुके थे। महायोगी अरविंद अपने बंदी जीवन की साधनाओं में स्वामी विवेकानन्द की जीवन दृष्टि से उत्स्फूर्त और प्रेरित हुए थे। महात्मा गांधी ने भी स्वीकार किया है कि स्वामी विवेकानन्द की रचनाओं ने भारत को समझने और उसके प्रति प्रेम की भावना की अभिवृद्धि करने में उनकी बहुत बड़ी सहायता की है।

स्वामी विवेकानन्द का प्रादुर्भाव इस देश में उस समय हुआ जब पश्चिम के नवीन धर्म, नवीन संस्कृति एंव नवीन जीवन के सर्म्पक में आयी हुई भारतीय चिंता अपने नवजागरण की आरंभिक अंगड़ाइयां ले रही थी। उसके सम्मुख एक वड़ा प्रश्न चिह्न खड़ा था : उस नवजागरण की दिशा कौन सी हो? क्या समाज बाह्म आक्रमणों से भयभीत होकर अपने कर्मकाण्डी दुर्ग की दीवारों को और भी ऊंचा बना ले जहां से उसे बाहर का कोई भी दृश्य दृष्टिगोचर न हो या वह अपने टूटे फूटे हथियारों को त्याग कर समय की आवश्यकताओं को दृष्टिगत रखते हुए नवीन शस्त्र ग्रहण करे और साहस से मैदान में उतरकर, आयी हुई विपत्ति का सामना करे?

लगभग इसी प्रकार की अवस्था इससे पांच-छः शताब्दियों पूर्व इस्लाम के आगमन

के समय इस देश में उपस्थित हुई थी। उस समय समाज के रूढ़िवादी वर्ग ने अपने चारों ओर जातिभेद, छुआछूत और कर्मकाण्ड का एक अभेद्य दुर्ग बनाकर अपनी रक्षा का प्रयास किया था और उस दुर्ग से बाहर रह गये असंख्य लोगों को उन्होंने नवागन्तुक इस्लाम की कृपा पर छोड़ दिया था जो कालान्तर में इस्लाम धर्मावलम्बी बन गये थे।

विवेकानन्द के पूर्ववर्ती काल में रूढ़िग्रस्त पुरातन पंथी समाज के अभेद्य दुर्ग से बाहर पड़े हुए असंख्य तथाकथित निम्न श्रेणी के हिन्दू ईसाई मत को अपनाते जा रहे थे। उस समय भी रक्षणशील हिन्दू समाज लकीर का फकीर बना कुछ पुरानी प्रथाओं और निषेधों को मानकर ही चल रहा था। बारह महीनों में तेरह त्योहार मनाना, तीर्थयात्रा और गंगास्नान करना, ब्राह्मण-पुरोहितों को दान-दक्षिणा देना और खान-पान तथा आचार-व्यवहार में कट्टर कर्मकांड का पालन करने को ही वह अपना धर्म समझ रहा था। ऐसे समय में सबसे प्रथम राजा राममोहन राय ने तथा फिर स्वामी दयानन्द ने भारतीय संस्कृति की इस संकीर्ण रक्षणशीलता पर गहरी चोटें कीं। इसके बाद आए विवेकानन्द, जिन्होंने इस नवजागरण के बल और तेज में अपूर्व वृद्धि की।

राजा राममोहन राय के देहान्त के लगभग 30 वर्ष पश्चात् स्वामी विवेकानन्द का जन्म हुआ। वे राजा राममोहन राय के तीन मूल-सूत्रों से विशेष प्रभावित थे–(1) वेदान्त, (2) स्वदेश-प्रेम तथा (3) हिन्दू और मुसलमानों से समान प्रीति। वे प्रायः कहा करते थे कि इन बातों में राजा राममोहन राय की उदारता और दूरदर्शिता ने जिस कार्यप्रणाली का श्रीगणेश किया, वे उसी के सहारे अग्रसर हुए हैं। राजा राममोहन राय, महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर और केशवचन्द्र सेन और उनके ब्रह्म-समाज के विभिन्न रूप स्वामी विवेकानन्द के अपेक्षाकृत अधिक सफल और प्रभावशाली आन्दोलन के लिए स्वस्थ पृष्ठभूमि बने।

जन्म और बाल्यकाल

राशिनाम से वीरेश्वर, अन्नप्राशन के समय से जनसाधारण में नरेन्द्रनाथ तथा संन्यास-ग्रहण के पश्चात् स्वामी विवेकानन्द नाम से प्रख्यात बालक का जन्म 12 जनवरी सन् 1863 में कलकत्ता नगर में हुआ था। उनके पिता का नाम था श्री विश्वनाथ दत्त। वे एक सफल वकील थे। वकालत में व्यस्त रहते हुए भी अध्ययन से उनका प्रबल अनुराग था। फारसी और अंग्रेज़ी साहित्य का उनको अच्छा ज्ञान था। धार्मिक कट्टरता से वे मुक्त थे। कई उच्च घरानों के मुसलमान उनके आसामी थे और इसी निमित्त लखनऊ, इलाहाबाद, दिल्ली, लाहौर आदि की यात्राओं से वे अनेक प्रतिष्ठित मुसलमान परिवारों के संपर्क में आ चुके थे। धर्म और ईश्वर के संबंध में उनका कोई विशेष आग्रह नहीं था। खूब कमाना और खूब खर्च करना ही उनका आदर्श था। स्वातंत्र्य-प्रेमी, उदार-हृदय, मित्र-वत्सल एवं अतिथिसेवी श्री विश्वनाथ दत्त के घर में किसी लौकिक सुख का अभाव न था।

और मां थीं भुवनेश्वरी देवी। एक आदर्श हिंदू महिला की प्रतिमूर्ति। वे शिव की उपासिका थीं। कहते हैं कि उन्होंने एक बार स्वप्न में देखा–तुषारधवल, कपूरगौर, कैलाशपति शिव उनके सामने खड़े हैं। फिर धीरे-धीरे दृश्य बदला। भक्त के विस्मयविमुग्ध हृदय को एक अपूर्व आनन्द से आप्लावित करते हुए भगवान शिव ने एक छोटे शिशु का रूप धारण कर माता की गोद में शरण ली।

उसी प्रातः उन्होंने उस पुत्र को जन्म दिया जो सही अर्थों में रत्न था। अपने स्वप्न की बात स्मरण कर माता ने बालक का नाम वीरेश्वर रखा जिसे अन्नप्राशन के दिन नरेन्द्रनाथ के रूप में परिवर्तित कर दिया गया।

संसार के अधिकांश महापुरुषों पर उनकी माताओं की अमिट छाप पड़ी है। नरेन्द्रनाथ भी इसके अपवाद नहीं थे। मां की गोद में बैठकर उन्होंने रामायण और महाभारत की कहानियां सुनी थीं। सुदूर अतीत के उन धर्मवीरों की प्रेरक जीवनियां स्वभाव से ही नटखट बालक नरेन्द्र को आत्मविभोर कर देती थीं। किन्तु उनके आदर्श सीताराम अथवा राधा-कृष्ण की युगल मूर्ति नहीं बन सके। बचपन से ही उनके मन में विवाह के प्रति एक विचित्र-सी वितृष्णा उत्पन्न हो गई थी। इसीलिए बालक नरेन्द्र ने एक दिन सीताराम की मूर्त्ति को छत से नीचे फेंक दिया और उसके स्थान पर शिव-मूर्ति की स्थापना कर दी।

नरेन्द्र को संन्यासवृत्ति तो जैसे अपनी वंश-परम्परा से ही प्राप्त हो गई थी। उनके पितामह श्री दुर्गाचरण 25 वर्ष की आयु में ही युवा पत्नी और अबोध शिशु को छोड़कर संन्यासी बन गए थे। नरेन्द्र भी बचपन से ही माता के अनुकरण पर शिवपूजा करते तथा अपने साथियों को बुलाकर शिवमूर्ति के चारों ओर ध्यानस्थ होकर बैठा करते थे।

पांच वर्ष की अवस्था में उनका शिक्षारम्भ हुआ। प्राथमिक शिक्षा समाप्त होने पर नरेन्द्र मेट्रोपोलिटन इंस्टीट्यूशन में भेजे गए। वे बड़े नटखट और चंचल स्वभाव के थे। भय किसे कहते हैं, यह उन्होंने कभी जाना ही नहीं। साधारण बालक हौआ, भूत आदि का नाम सुनकर भयभीत हो जाते हैं परन्तु नरेन्द्र की जिज्ञासा सदा उन भूतों को देखने की हुआ करती थी।

दूसरों से सुनकर किसी भी बात पर विश्वास कर लेना नरेन्द्र के स्वभाव के विरुद्ध था। बचपन से ही किसी भी वस्तु पर प्रत्यक्ष प्रमाण के विना विश्वास कर लेना वे जानते ही नहीं थे।

चौदह वर्ष की आयु में नरेन्द्रनाथ को उदर-रोग हो गया। उस समय उनके पिता मध्यप्रदेश के अन्तर्गत रायपुर में रहते थे। जलवायु परिवर्तन से स्वास्थ्य सुधार की आशा कर उन्होंने अपने परिवार को भी रायपुर में बुला लिया। उन दिनों यातायात के साधन इतने सुलभ नहीं थे। इलाहाबाद से जबलपुर होकर नागपुर तक रेल से जाना होता था। नागपुर से रायपुर पहुंचने में लगभग पन्द्रह दिन बैलगाड़ी से यात्रा करनी पड़ती थी। किशोर नरेन्द्रनाथ को इस यात्रा में पहली बार भारत के विराट् रूप के दर्शन हुए। इस यात्रा की

सजीव स्मृतियां जीवन-पर्यन्त उनके मानस पटल पर सजग रहीं।

रायपुर में कार्य की व्यस्तता न होने के कारण उनके पिता के घर में विद्वानों का जमघट सा लगा रहता था। वहां साहित्य, दर्शन आदि विभिन्न विषयों पर वाद-विवाद होता था। जिसमें नरेन्द्र भी बड़े उत्साह से भाग लेते थे। पुत्र की विकासोन्मुख बुद्धि एवं प्रतिभा को भली भांति जानने के लिए विश्वनाथ दत्त उन्हें पुस्तकीय विद्या के भार से अधिक क्लान्त न कर उनसे विभिन्न विषयों पर तर्क किया करते एवं उन्हें स्वाधीन भाव से अपना मत प्रकट करने का अवसर देते थे।

रायपुर में दो वर्ष के निवास ने नरेन्द्रनाथ के शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य में अत्यधिक सुधार किया। सोलह वर्ष की आयु में उनके दीर्घ और बलिष्ठ शरीर को देखकर लोग उनकी उम्र का अनुमान बीस वर्ष लगाते थे।

सन् 1871 में प्रवेशिका-परीक्षा में पास होकर नरेन्द्रनाथ जब कालिज में प्रविष्ट हुए, उस समय उनकी अवस्था अठारह वर्ष की थी। व्यायाम, कुश्ती, क्रिकेट आदि में उनकी विशेष रुचि थी, पर अध्ययन में वे कभी किसी से पीछे नहीं रहे। जनरल असेम्बली कालिज के अध्यक्ष, विलियम हेस्टी बड़े विद्वान, कवि एवं दार्शनिक थे। हेस्टी साहब नरेन्द्र की प्रतिक्षा से बहुत प्रभावित थे। उन्होंने एक दिन उक्त कालिज की आलोचना-सभा में नरेन्द्र के दार्शनिक विश्लेषण से सन्तुष्ट होकर कहा था—यह दर्शनशास्त्र का अत्युत्तम छात्र है। जर्मनी और इंग्लैण्ड के सारे विश्वविद्यालयों में एक भी ऐसा छात्र नहीं, जो इसके समान मेधावी हो।

एफ. ए. की परीक्षा के पहले ही उन्होंने मिल आदि पाश्चात्य नैयायिकों के मतवाद का ज्ञान प्राप्त कर लिया था तथा ह्यू एवं स्पेंसर के दार्शनिक ग्रन्थों का अध्ययन प्रारम्भ कर दिया था।

पाश्चात्य विज्ञान और दर्शन शास्त्रों की आलोचना ने नरेन्द्र के हृदय में एक विराट आंधी पैदा कर दी। उनका जन्मगत संस्कार और हृदय में गहरा घुसा हुआ विश्वास चारों ओर की स्थिति के संघर्ष में आकर डगमगाने लगा। इस मानसिक अवस्था में उनकी सत्यानुभूति की लालसा प्रतिदिन बढ़ने लगी। वही प्रश्न उनके सामने भी आकर खड़ा हो गया जो किसी भी सत्यप्राप्ति के मार्ग के पथिक के सम्मुख सबसे पहले आता है—इस इन्द्रिय-ग्राह्य जड़ जगत् के पीछे ऐसा कोई शक्तिमान् पुरुष है या नहीं जिसके संकेत से यह जड़ समष्टि परिचालित हो रही है? इस मानव जीवन का उद्देश्य क्या है? इस प्रकार के प्रश्नों ने धीरे-धीरे उनके मानस को पागल सा बना डाला। जब कभी कोई धर्म-प्रचारक धर्म या ईश्वर के सम्बन्ध में भाषण देते, तो नरेन्द्रनाथ अपने अशान्त हृदय की व्याकुलता के साथ उनसे पूछ बैठते—

''महाशय, क्या आपने ईश्वर के दर्शन किये हैं?'' आध्यात्मिक तत्वों की व्याख्या करने वाले प्रचारक महोदय इस विचित्र प्रश्नकर्ता के उत्सुक मुखमण्डल की ओर ताकते हुए 'हां' 'ना' कुछ भी न कह पाते।

उनकी सत्यानुभूति की अभिलाषा बढ़ती ही जा रही थी। इसी प्रेरणा से वे अपने समय के शक्तिशाली धार्मिक आन्दोलन ब्रह्म समाज के सदस्य बने। वे बहुधा महर्षि देवेन्द्रनाथ और केशवचन्द्र के पास चर्चा के लिए जाया करते थे। एक दिन महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर ने उनसे कहा—"तुम्हारे अंग-प्रत्यंग में योगियों के चिह्न मौजूद हैं। ध्यान करने से तुम्हें शांति और सत्य की प्राप्ति होगी।" महर्षि की इस प्रेरणा से नरेन्द्र का ध्यानानुराग द्विगुणित हो गया, परन्तु उनकी आध्यात्मिक क्षुधा प्रतिदिन बढ़ती ही गई। उस क्षुधा के साथ ही साथ उनकी व्याकुलता भी बढ़ती गई। अपने चारों ओर के वातावरण के बीच डूबे हुए भी तथा युक्तिवादी ब्राह्म होते हुए भी वे सद्गुरु की प्राप्ति के लिए व्याकुल हो उठे। एक विराट आध्यात्मिक क्षुधा के आवेश में आकर वे दिन-रात सोचने लगे—उन्हें कौन बताएगा कि शान्ति कहां है? वे किससे पूछें—

"कस्मिन्नु भगवो विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवतीति?"

हे भगवान्, भला किसको जान लेने पर यह सब कुछ जान लिया जाता है?

गुरु की प्राप्ति

सत्य ज्ञान से पहले सत्यानुभूत गुरु को पाना आवश्यक है। कलकत्ता के दक्षिणेश्वर मंदिर के पुजारी श्री रामकृष्ण देव की तीव्र आत्मानुभूति, निश्छल भक्ति और निस्पृह भावना से प्रभावित होकर कलकत्ते के अगणित जिज्ञासु उस समय उनकी ओर आकर्षित हो रहे थे। सत्य की खोज में भटकते हुए तर्कशील नवयुवक नरेन्द्र को इन्हीं महापुरुष के व्यक्तित्व की सघन छाया में शान्ति की शीतलता प्राप्त हुई। सन् 1880 के नवम्बर मास में परमहंस से उनका प्रथम परिचय हुआ। अपने पड़ोसी श्री सुरेन्द्रनाथ मित्र के घर एक आनन्दोत्सव पर वे पधारे हुए थे। नरेन्द्र ने उस अवसर पर अपने सुमधुर कण्ठ से कुछ गीत सुनाए जिससे परमहंस बड़े सन्तुष्ट हुए। विदा होते समय उन्होंने नरेन्द्र से दक्षिणेश्वर आने का अनुरोध किया।

इस घटना के पर्याप्त समय पश्चात् अपनी एफ. ए. की परीक्षा समाप्त कर नरेन्द्र अपने कुछ मित्रों सहित दक्षिणेश्वर पहुंचे।

ज्ञानमार्ग के पथिक को योग्य गुरु की जितनी आवश्यकता और उसकी प्राप्ति की जितनी विकलता होती है, उतनी ही, कदाचित् उससे भी अधिक, आवश्यकता और विकलता गुरु को एक योग्य शिष्य की हुआ करती है और जब वे अनायास एक-दूसरे के सम्मुख आ पड़ते हैं तो एक दूसरे को पहचानने में उन्हें अधिक विलंब नहीं लगता। चिरकाल से विछुड़े पिता-पुत्र की भांति आत्मविभोर हो वे एक-दूसरे को देखा करते हैं और फिर प्रगाढ़ आलिंगन में आवद्ध हो जाते हैं। पुत्र और शिष्य को अपना पिता और गुरु पहचानने में चाहे कुछ विलम्ब लगे, किन्तु पिता और गुरु को अपना पुत्र और शिष्य पहचानने में क्षणमात्र का भी विलम्ब नहीं लगता। परमहंस ने नरेन्द्र को देखते ही

भाव-विभोर हो, हाथ पकड़कर स्नेहपूर्ण गद्गद कंठ से कहा—

"तू इतने दिन तक मुझे भूलकर कैसे रहा? कब से मैं तेरे आने की बाट जोह रहा हूं। विषयी लोगों के साथ बात करते-करते मेरा मुंह जल गया है। अब आज से तेरे समान सच्चे त्यागी के साथ बात करके मुझे शान्ति मिलेगी।"

और यह कहते-कहते उनकी दोनों आंखों में आंसू उमड़ आए। विस्मयपूर्ण स्थिर दृष्टि से नरेन्द्र इस अद्भुत महात्मा को ताकते रहे—क्या कहें, कुछ सोच न सके।

किन्तु तार्किक नरेन्द्र किसी बात को अनायास स्वीकार करने वाले नहीं थे। उन्हें लगा, कहीं यह पागलपन तो नहीं है? कहीं वे विक्षिप्त तो नहीं हैं? पर उनके चाल-चलन में पागलपन और उनकी सामान्य बातों में विक्षिप्त पुरुष के असम्बद्ध प्रलाप का लेशमात्र भी नहीं था। नरेन्द्र की विचार-कुशल सूक्ष्म बुद्धि इस अलौकिक देव मानव का चरित्र का विश्लेषण करने में असमर्थ रही। उन्होंने मन ही मन संकल्प किया, इनकी अच्छी तरह से परीक्षा लिए बिना इन्हें कभी ईश्वरदर्शी महापुरुष न मानूंगा। अपने इस निश्चय का उन्होंने बड़ी सतर्कता से पालन किया। लगातार तीन वर्ष तक वे परमहंस की परीक्षा लेते रहे और फिर पूरी तरह से संतुष्ट होकर उन्होंने परमहंस के चरणों में आत्म-समर्पण कर दिया, पर आत्म-समर्पण से पूर्व, सत्य की खोज में व्याकुल अपने हृदय की तीव्रता से युक्त उस प्रश्न को उन्होंने परमहंस से भी पूछा—

"महाराज, क्या आपने ईश्वर के दर्शन किए हैं?"

मृदु हास्य से पूर्ण परमहंस का प्रशान्त मुखमंडल अपूर्व शान्ति और पुण्य की आभा से उद्भासित हो उठा। उन्होंने तनिक भी सोच-विचार न करते हुए उत्तर दिया, "बेटा, मैंने ईश्वर के दर्शन किए हैं। तुम्हें जिस प्रकार प्रत्यक्ष देख रहा हूं, उससे भी कहीं अधिक स्पष्ट रूप से मैंने उन्हें देखा है।" नरेन्द्र का विस्मय सौ गुना बढ़ाते हुए उन्होंने फिर से कहा—"क्या तुम भी देखना चाहते हो? यदि तुम मेरे कहे अनुसार करो, तो तुम्हें भी दिखा सकता हूं।"

साधना पथ

तार्किक और उद्धत नरेन्द्र का पहाड़ी नदी जैसा उमगता, उछलता और प्रबल प्रवाहमय व्यक्तित्व एक आत्मविभोर संन्यासी की निरभिमान और शिशुसमान सरलता के विशाल समुद्र में मिलकर एकरूप हो गया। पिता की मृत्यु के पश्चात् घर में आए आर्थिक संकट के निवारणार्थ जब वे परमहंस की प्रेरणा से काली मां के सम्मुख भौतिक सुखों की याचना करने गए तो सब कुछ भूलकर वे पुकार उठे—

"मां, विवेक दो, वैराग्य दो, ज्ञान दो, भक्ति दो, माता तुम्हारी कृपा से सदा ही तुम्हें देख सकूं।"

और बार-बार वे अपने पूर्व संकल्प का स्मरण कर मां के पास भौतिक सुख मांगने

जाते पर मांगते क्या? वही विवेक, वही वैराग्य, वही ज्ञान और वही भक्ति।

नरेन्द्र प्रतिदिन साधना-पथ की ओर अधिकाधिक अग्रसर होने लगे। कलकत्ता के उत्तर भाग में स्थित काशीपुर के एक बगीचे में वे परमहंस तथा अन्य अनेक युवक साधकों के साथ अपनी एकाग्र साधना की दीपशिक्षा को अधिकाधिक प्रज्ज्वलित करने लगे। यहीं पर श्रीरामकृष्ण देव ने उन्हें अन्य साधकों के साथ संन्यास की दीक्षा दी।

संन्यास-ग्रहण के पश्चात् अतीत के युग-प्रवर्तक संन्यासियों के जीवन और उपदेश की चर्चा ही उनका कार्य बन गया। ध्यानाभ्यास से एकाग्रचित्त नरेन्द्र जब जिस विषय को आरंभ करते, तब उसी में लीन हो जाते।

एक गम्भीर रात्रि की सर्वत्र व्यापी निस्तब्धता में वे परमहंस की शय्या के पास आ खड़े हुए मन में निर्विकल्प समाधि पाने का दृढ़ संकल्प लेकर। परमहंस ने सस्नेह दृष्टि से उन्हें देखते हुए पूछा–

"नरेन्द्र तू क्या चाहता है?"

उपयुक्त अवसर समझकर उन्होंने उत्तर दिया–

"शुकदेव की तरह निर्विकल्प समाधि के द्वारा सदैव सच्चिदानन्द में डूबे रहना चाहता हूं।"

श्री रामकृष्ण परमहंस के नेत्रों में किंचित् अधीरता प्रगट हुई। बोले–"यह कहते तुझे लज्जा नहीं आती? समय आने पर कहां तू वटवृक्ष की तरह बढ़कर सैकड़ों लोगों को शान्ति की छाया देगा और कहां आज अपनी ही मुक्ति के लिए तू व्यग्र हो उठा है। इतना क्षुद्र आदर्श है तेरा?"

नरेन्द्र की आंखों में आंसू आ गए। वे अभिमान के साथ कहने लगे–"निर्विकल्प समाधि न होने तक मेरा मन किसी भी तरह शान्त नहीं होने का और यदि वह न हुआ तो मैं वह सब कुछ भी न कर सकूंगा।"

परमहंस हंसकर बोले–"वह तू क्या अपनी इच्छा से करेगा? जगदम्बा तेरी गर्दन पकड़कर करा लेंगी। तू न कर, तेरी हड्डियां करेंगी!"

नरेन्द्र की कातर प्रार्थना की उपेक्षा करने में असमर्थ होकर श्री परमहंस ने अंत में कहा–"अच्छा जा, निर्विकल्प समाधि तुझे प्राप्त होगी।"

अपने पट्ट शिष्य नरेन्द्र में भावी विवेकानन्द का बीजारोपण तथा* उन्हें सत्य साक्षात्कार की तीव्र अनुभूति से अनुरंजित कर परमहंस श्री रामकृष्ण देव ने 15 अगस्त, 1886 को महासमाधि ग्रहण कर अपनी नश्वर देह का त्याग कर दिया।

* साधक नरेन्द्रनाथ दत्त ने अपने लिए विवेकानन्द नाम को सन् 1883 में अपनी अमेरिका यात्रा से पूर्व तक अंतिम रूप से स्वीकार नहीं किया था। परमहंस श्री रामकृष्ण देव उन्हें नरेन्द्र या उसका भी संक्षिप्त रूप नरेन, कहकर पुकारते थे। अपनी पहली भारत यात्रा में उन्होंने विभिन्न स्थानों पर विभिन्न नामों का अपने लिए प्रयोग किया। कहीं वे

स्वामी विविदिशानन्द नाम से प्रगट होते तो कहीं स्वामी सच्चिदानन्द के रूप में। अमेरिका जाते समय जब वे थियोसिफिकल सोसाइटी के अध्यक्ष कर्नल अलकाट के पास परिचय पत्र लेने गए तो कर्नल उन्हें सच्चिदानन्द के नाम से ही जानते थे।

बम्बई से पूना की यात्रा में, अक्टूबर 1892 में, उनकी भेंट लोकमान्य तिलक से हुई थी। वे लगभग 10 दिन तक तिलक के अतिथि रहे किन्तु उन दस दिनों में भी तिलक उनका नाम न जान सके। अमेरिका में उनकी विश्वविख्यात सफलता के पश्चात् जब उनके नाम की प्रतिध्वनि सारे संसार में गूंजी तभी तिलक को ज्ञात हुआ कि जो संन्यासी उनके घर में बिना नाम प्रगट किए रहे थे, वे विवेकानन्द ही थे।

वस्तुतः, विवेकानन्द नाम का सुझाव उन्हें अमेरिका प्रस्थान के समय उनके मित्र राजा साहब खेतरी ने दिया था। नरेन्द्र ने उस समय इस नाम को अस्थाई रूप से स्वीकार किया था, किन्तु बाद में यदि वे चाहते भी तो इसे परिवर्तित नहीं कर सकते थे क्योंकि कुछ ही महीनों में यह सारे संसार में प्रख्यात हो चुका था।

देश-दर्शन

विवेकानन्द को उनके गुरु ने लोक-कल्याण का भाव भी विरासत में दिया था और इसकी पहली शर्त है समाज को पहचानना, उसके बीच में जाना। इस जान-पहचान के लिए महापुरुष यात्रा करते हैं, परिव्रज्या ग्रहण करते हैं। विवेकानन्द भी परिव्राजक बनकर निकल पड़े।

सन् 1888 ई. के प्रथम भाग में वे तीर्थभ्रमण की इच्छा से वराह नगर मठ से बाहर निकले। सूर्य उदित होने पर किसी से कहना नहीं पड़ता कि प्रभात हुआ है। ऐसे ही स्वामी विवेकानन्द जहां कहीं जाते थे, उनका तप्त-कांचन वर्ण, तेजस्वी शरीर सभी को मुग्ध कर लेता था। बिहार एवं उत्तरप्रदेश का भ्रमण करते हुए वे अन्त में भारत की धार्मिक राजधानी, काशी आ पहुंचे।

काशी में उन्होंने अनेक विख्यात साधुओं एवं साधकों से भेंट की। वाराणसी के प्रख्यात साधु श्री विश्वेश्वर जी के द्वितीय विग्रहरूपी श्रीमत् त्रैलिंग स्वामी के दर्शन प्राप्त कर वे प्रसन्न हुए। स्वामी भास्करानन्द जी के गुणों को सुनकर उन्होंने उनके भी दर्शन किए। यहीं उनका परिचय बंग-गौरव पंडित भूदेव मुखोपाध्याय से हुआ। स्वामी विवेकानन्द के संबंध में अपना अभिमत प्रगट करते हुए भूदेव बाबू ने एक बार कहा—

"मुझे आश्चर्य हो रहा है कि इस तरुण युवक ने इतनी अल्पायु में इतनी गंभीर अन्तर्दृष्टि और विपुल अभिज्ञता किस प्रकार प्राप्त कर ली है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि भविष्य में वे एक महान् व्यक्ति बनेंगे।"

कुछ दिन काशी में रहकर वे वराह नगर मठ लौट आए। यहां उन्होंने अपने गुरुभाइयों से एक ही आग्रह किया—भारतवर्ष को देखना होगा, समझना होगा। इन

लाखों-करोड़ों नर-नारियों की जीवन-यात्रा के कितने भिन्न-भिन्न स्तरों में कौन-सी वेदना, कौन-सा अभाव दिन-रात एक अपूर्ण लालसा की ज्वाला भड़का कर उन्हें दग्ध कर रहा है उसे समझना होगा। इस कल्याण व्रत की साधना के लिए केवल स्वार्थ-त्याग ही नहीं बल्कि सर्वस्व त्याग करना होगा, यहां तक कि अपनी मुक्ति की कामना तक को भूल जाना होगा।

कुछ समय मठ में रहकर, वे फिर यात्रा के लिए निकल पड़े। काशी की पुनर्यात्रा करते हुए वे अयोध्या पहुंचे। अयोध्या में रामायत संन्यासियों के साथ श्रीराम संकीर्तन में कुछ दिन बिता कर स्वामी जी लखनऊ और आगरा होते हुए पैदल ही वृन्दावन की ओर अग्रसर हुए। जब वे वृन्दावन के निकट पहुंचे तो उन्होंने देखा कि रास्ते के किनारे एक व्यक्ति निश्चिंत होकर तम्बाकू पी रहा है। पथ-श्रम से क्लान्त होकर स्वामी जी ने उस आदमी से हाथ बढ़ा कर चिलम मांगी। वह व्यक्ति भयभीत होकर संकोच के साथ बोला, "महाराज, मैं भंगी हूं। मेहतर!..."। जन्मजात संस्कारों के वशीभूत होकर स्वामी जी का हाथ अनजाने में ही एकदम पीछे हट गया और उन्होंने फिर अपना रास्ता पकड़ लिया। कुछ दूर जाने पर उन्हें होश आया। उन्होंने सोचा—मैंने तो जाति, कुल, मान सभी को त्याग कर संन्यास लिया है। फिर मेहतर जानकर मेरा सोया हुआ जाति-अभिमान क्यों जाग उठा? और वे पश्चाताप से व्याकुल हो उठे। लौटकर उसके पास गये और बड़े प्रेम से चिलम भरवा कर उन्होंने धूम्रपान किया।

भगवान् कृष्ण की लीलाभूमि में कुछ दिन व्यतीत कर वे हाथरस की ओर आये। यहां उनकी भेंट हाथरस के स्टेशन मास्टर श्री शरच्चन्द गुप्त से हुई। श्री शरच्चन्द्र स्वामी जी के कुछ दिन के सहवास से इतने प्रभावित हुए कि वे सब कुछ उनके चरणों में अर्पण कर उन्हीं के मार्ग के पथिक वन गए। स्वामी विवेकानन्द के ये प्रथम शिष्य, अब स्वामी सदानन्द बन कर, स्वामी जी के साथ ही हृषीकेश की यात्रा करते हुए वराह नगर मठ में आ गए।

बिहार और उत्तर-पश्चिमी प्रदेशों में पैदल भ्रमण कर तथा तीर्थ स्थानों की यात्रा कर, उन्हें विभिन्न प्रकार के आचार-व्यवहारों और रीति-रिवाजों से प्रत्यक्ष रूप से परिचित होने का अवसर प्राप्त हुआ। उन्होंने देखा, धर्म के प्रति अनुराग की कमी नहीं है, पर समाज के जीवन में स्वाभाविक गतिशीलता का बहुत अभाव है। उन्होंने अनुभव किया कि दोष धर्म का नहीं है, वरन् धर्म के नाम पर धर्म का व्यवसाय करने वाले पुरोहितों और पंडों का है जिन्होंने समाज-जीवन को पंगु बना रखा है। शत-शत वर्षों के विधिनिषेध के अन्धानुकरण ने समाज में जैसे एक ओर वंश और रक्त की श्रेष्ठता का मिथ्याभिमान उत्पन्न किया है, वहां दूसरी ओर उसने हीनता-बोध, विभिन्न सम्प्रदायों तथा अनेकानेक शाखा-प्रशाखाओं वाले कृत्रिम जाति-विभाग को जन्म दिया है। उन्होंने स्पष्ट घोषणा की कि यदि हम समग्र भारतवासियों को एक अखण्ड जाति में परिणत करना चाहते हैं, तो हमें इन सब गहरे भिदे हुए संस्कारों के विरुद्ध खड़े होकर यह प्रचार करना होगा कि धर्म

की साधना एवं सामाजिक सुख-सुविधा की प्राप्ति में प्रत्येक व्यक्ति का समान अधिकार है।

जुलाई, सन् 1890 में स्वामी विवेकानन्द ने अपनी व्यापक भारत यात्रा प्रारम्भ की। भागलपुर, देवघर, काशी, अयोध्या और नैनीताल होते हुए वे बदरी-केदार के पथ से अलमोड़ा पहुंचे। इस यात्रा में उनके गुरुभाई स्वामी अखण्डानन्द भी साथ थे। यहां के प्रसिद्ध व्यापारी लाला बद्रीप्रसाद ने इन दोनों संन्यासियों के लिए एक सुन्दर बाग वाला मकान दे दिया। यहां उनके अन्य अनेक गुरुभाई संयासी भी उनसे आ मिले। उन सब को लेकर उन्होंने उत्तराखण्ड की यात्रा की। फिर अपने गुरु-भाइयों के स्नेह के माया-बन्धन को तोड़कर वे अकेले ही भारत भ्रमण के लिए निकल पड़े। मेरठ से पंजाब होकर उन्होंने राजस्थान में प्रवेश किया। फरवरी 1811 में वे अलवर नगर पहुंचे। यहां कुछ एक सद्गृहस्थों के निवास-स्थान पर रहते हुए उनकी कीर्ति चारों ओर फैलने लगी। अलवर के दीवान और महाराजा ने भी उनके सम्बन्ध में वहुत कुछ सुना। एक दिन दीवान के निवास-स्थान पर ही अलवर के महाराज मंगलसिंह ने उनसे एक प्रश्न पूछा—"स्वामी जी, मैंने सुना है कि आप धुरन्धर पण्डित तथा वड़े विद्वान् हैं। आप यदि चाहें तो प्रचुर धन उपार्जन कर सकते हैं। फिर भी आपने भिक्षावृत्ति का अवलम्बन क्यों किया है?"

उन्होंने कहा—"महाराज, पहले मेरे एक प्रश्न का उत्तर दीजिये। आप राजकार्य की अवहेलना करते हुए क्यों साहबों के साथ शिकार आदि व्यर्थ के आमोद-प्रमोद में अपना समय बिताते हैं?"

इस प्रश्न से राज-कर्मचारी स्तम्भित से रह गये। महाराज कुछ क्षण सोचते रहे, फिर बोले—"हां, करता तो हूं, परन्तु क्यों, यह नहीं कह सकता। इतना जरूर कह सकता हूं कि वह मुझे अच्छा लगता है।"

विवेकानन्द ने हंस कर कहा—"बस, इसीलिए मैं भी फकीर के वेश में इधर-उधर घूमता फिरता हूं क्योंकि वह मुझे अच्छा लगता है।"

अलवर से वे जयपुर गये। यहां राज्य के एक सभा-पण्डित से उन्होंने पाणिनि-रचित अष्टाध्यायी का अध्ययन किया। जयपुर से वे अजमेर गए। यहां उन्होंने कुछ समय तक एक उदार हृदय मुसलमान सज्जन का आतिथ्य ग्रहण किया। यहीं उनका परिचय खेतरी के राजा के सेक्रेटरी मुंशी जगमोहन लाल और उनके माध्यम से खेतरी के राजा साहब से हुआ। राजा साहब ने उनसे प्रश्न किया—"यह जीवन क्या है?"

उनका उत्तर था—"एक अन्तर्निहित शक्ति मानो लगातार अपने स्वरूप में व्यक्त होने के लिए अविराम चेष्टा कर रही है और बाह्य प्रकृति उसे दवा रही है। इसी चेष्टा का नाम जीवन है।"

खेतरी के राजा अजीतसिंह स्वामी विवेकानन्द की अद्भुत ज्ञान-गरिमा एवं सूक्ष्म आध्यात्मिक दृष्टि से बहुत प्रभावित हुए और आजीवन उनके बड़े अनन्य शिष्य हो गये।

खेतरी से गुजरात के रेगिस्तानी अंचलों को पैदल ही पार कर अहमदाबाद, लिंबड़ी,

जूनागढ़, भोज, भेरावल व प्रभास होते हुए सोमनाथ का दर्शन कर वे पोरबंदर पहुंचे। पोरबंदर में विख्यात विद्वान् पंडित शंकर पांडुरंग से महा-भाष्य का अध्ययन कर वे द्वारका, मांडवी, पालिताणा आदि स्थानों की यात्रा करते हुए बड़ोदा में राज्य के दीवान मणिभाई के अतिथि बने। वहां से मध्यभारत के कुछ स्थानों की यात्रा करते हुए वे बम्बई पहुंचे।

1862 के सितम्बर मास में बम्बई से पूना जाने वाली रेलगाड़ी के एक-दूसरी श्रेणी के डिब्बे में विवेकानन्द बैठे हुए थे। डिब्बे में और भी तीन महाराष्ट्रीय युवक यात्री थे। उनमें घोर तर्क युद्ध छिड़ा हुआ था। तर्क का विषय था संन्यास। दो युवक संन्यास की अकर्मण्यता तथा उसके दोषों का प्रदर्शन कर रहे थे, तीसरा व्यक्ति उनके मतों का खंडन कर संन्यास की महिमा का गुणगान कर रहा था। पास बैठे संन्यासी विवेकानन्द इन तर्करत युवकों की युक्ति और उक्तियों को ध्यान से सुन रहे थे। अंत में संन्यास-समर्थक युवक का पक्ष लेकर वे भी युद्ध में उतर पड़े। इस अंग्रेजी जानने वाले संन्यासी की प्रखर प्रतिभा से वे युवक बहुत प्रभावित हुए। उन तीन युवकों में संन्यास का समर्थन करने वाले युवक अन्य कोई नहीं, लोकमान्य बालगंगाधर तिलक ही थे। पूना स्टेशन पर उतरकर तिलक विवेकानन्द को अपने निवास-स्थान पर ले गए। आधुनिक भारत के इन दो महान् निर्माताओं का यह कैसा अद्भुत मिलन था।

पूना से महाबलेश्वर, बेलगांव की यात्रा करते हुए विवेकानन्द बंगलौर पहुंचे। यहां वे मैसूर राज्य के अतिथि हुए।

एक दिन दीवान बहादुर के सभापतित्व में राजप्रासाद में एक विचार सभा बुलाई गई। बंगलौर के प्रायः सभी विद्वान् इस सभा में सम्मिलित हुए। वेदान्त के विषय पर विचार प्रारम्भ हुआ। विद्या में पारंगत पंडितगण वेदान्त के विभिन्न मतवादों का समर्थन कर एक-दूसरे के मत का बड़े आग्रह से खंडन कर रहे थे। तर्क-वितर्क में बहुत समय गंवाकर भी किसी निर्णय पर न पहुंचा जा सका। अन्त में दीवान बहादुर के अनुरोध से स्वामी विवेकानन्द ने अपूर्व युक्ति द्वारा प्रमाणित कर दिया कि—वेदान्त के विभिन्न मतवाद परस्पर विरोधी नहीं, वरन् एक-दूसरे के समर्थक हैं। वेदान्त शास्त्र कुछ दार्शनिक मतवादों की समष्टि नहीं, वरन् साधक जीवन की विभिन्न स्थितियों में अनुभूत सत्यों का समूह है। अतः एक की सत्यता प्रमाणित करने के लिए ऊपर से विरुद्ध प्रतीत होने वाले दूसरे को मिथ्या प्रमाणित करने की कोई आवश्यकता नहीं है।

वेदान्त की यह नवीन व्याख्या सुनकर उपस्थित पंडित मंडली आश्चर्य चकित रह गई।

बंगलौर से विवेकानन्द त्रिचुण्ड, त्रिवेन्द्रम होकर मदुरा गये। मदुरा में कुछ दिन बिताकर दक्षिण भारत की वाराणसी रामेश्वर में भगवान् रामचन्द्र द्वारा स्थापित शिवलिंग तथा अन्य मंदिरों का दर्शन कर वे कन्याकुमारी की ओर चल पड़े।

कन्याकुमारी में स्वामी विवेकानन्द को प्रकृति के उस अद्भुत स्वरूप के दर्शन हुए जिसका दर्शन उत्तरापथ में उन्हें हृषिकेश में हुआ करता था। उन्होंने देखा—सामने वायु

से आंदोलित तरंगों के विक्षोभ से पूर्ण, उच्छ्वसित सुनील महासागर, पीछे पर्वत, मैदान तथा अरण्यों से सुशोभित शस्यश्यामला भारत माता, पर उस माता का एक दूसरा रूप भी है–दुर्भिक्ष, महामारी, दुख-दैन्य, रोग-शोक से जर्जरित पराधीन भिखारिणी सी मां और पता नहीं कितने क्षण वे उस कल्पना में डूबे रहे।

कन्याकुमारी छोड़ रामनद के बीच में से होकर वे फ्रांसीसियों द्वारा अधिकृत पांडिचेरी आये। यहां थोड़े ही समय में कुछ शिक्षित युवक उनके अनुरागी बन गए। यहीं एक दक्षिणी कट्टर ब्राह्मण विद्वान के साथ उनका वाद-विवाद हुआ। स्वामी विवेकानन्द के उन्नतिशील प्रस्तावों पर युक्ति के बदले गालियों की बौछार करते-करते पंडित जी आग बबूला हो गए। उसी समय स्वामी जी युवकों को संबोधित करते हुए बोले–"धर्म के नाम पर प्रचलित आचार-व्यवहार वास्तव में धर्म है या नहीं, इसकी परीक्षा कर देखने का दायित्व आज के शिक्षित युवकों के कंधे पर आ पड़ा है। हमें अतीत व प्रचलित प्रथा की सीमा से बाहर निकलकर वर्तमान उन्नतिशील जगत की ओर दृष्टिपात करना होगा। यदि हम देखें कि परम्परागत आचार-नियम समाज के विकास व परिपुष्टि के पथ में विघ्न उत्पन्न कर रहे हैं, यदि वे हमारी विशुद्ध ज्ञान की प्राप्ति में रोड़े के सदृश हैं, तो हम जितना शीघ्र उनका त्याग कर दें उतना ही अच्छा है।"

पांडिचेरी से वे मद्रास आए। कुछ ही दिनों में उनकी प्रतिभा और विद्वत्ता की चर्चा सारे शिक्षित समाज में पहुंच गई। विश्वविद्यालय के लब्ध-प्रतिष्ठ छात्र और अध्यापक प्रतिदिन उनके पास धर्म व साहित्य की चर्चा के लिए आने लगे और अनेक ने उनका शिष्यत्व ग्रहण कर लिया। इन्हीं दिनों एक सुप्रसिद्ध नास्तिक, ईसाई कालेज के विज्ञान के अध्यापक, श्री सिंगरावेलु मुदलियार उनसे तर्क-वितर्क करने आए, परन्तु वे उनके व्यक्तित्व एवं गंभीर अध्ययन से युक्त भावनात्मक उपलब्धि से इतने प्रभावित हुए कि उनके शिष्य ही बन गए। आगे चलकर उन्होंने स्वामी विवेकानन्द द्वारा प्रस्थापित 'प्रबुद्ध भारत' नामक अंग्रेजी पत्रिका का संपादन संभाला।

इस समय संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में शिकागो महा-सम्मेलन के साथ ही एक विराट् धर्मसभा का आयोजन हो रहा था। घोषित किया गया था कि पृथ्वी के सभी धर्म-सम्प्रदायों के प्रतिनिधि व्याख्याताओं के रूप में सभा में सम्मिलित हो सकेंगे। स्वामी जी के कुछ उत्साही मद्रासी शिष्यों ने उन्हें हिन्दू धर्म के प्रतिनिधि के रूप में अमेरिका भेजने का संकल्प किया, परन्तु स्वामी जी ने उस समय उस प्रस्ताव को टाल दिया। इसी समय उन्हें हैदराबाद से निमंत्रण प्राप्त हुआ और वे 10 फरवरी को हैदराबाद पहुंचे। स्टेशन पर हैदराबाद के अनेक गण्य-मान्य नागरिक उनका स्वागत करने के लिए उपस्थित थे। यहां उनका महबूब कालेज में सुशिक्षित वर्ग के सम्मुख "पाश्चात्य देशों के लिए मेरा सन्देश" विषय पर व्याख्यान हुआ।

17 फरवरी को वे हैदराबाद से मद्रास लौट आए। मद्रास में उनके अनुरागी बड़े उत्साह से उन्हें शिकागो की धर्मसभा में भेजने की तैयारी कर रहे थे, परन्तु उनके मन

में अभी भी पर्याप्त संकोच था कि इतनी बड़ी सभा में वे हिन्दू-धर्म का प्रतिनिधित्व करने के योग्य हैं या नहीं। अन्त में वे इस महान् कार्य के लिए उद्यत हो गए। भारत के श्रेष्ठतम आध्यात्मिक सत्य का संसार को परिचय देने के लिए और अपने आचार्य श्री रामकृष्ण परमहंस के उपदेश—सभी धर्म सत्य हैं और वे ईश्वर की उपलब्धि के विभिन्न उपाय मात्र हैं—का प्रचार करने के लिए, 31 मई सन् 1893 ई. को स्वामी विवेकानन्द ने बम्बई से अमेरिका को प्रस्थान किया। प्रस्थान से पूर्व उन्होंने माता शारदा देवी (परमहंस की पत्नी) से भी अनुमति एवं आशीर्वाद प्राप्त कर लिया। खेतरी के राजा साहब की ओर से उनके लिए एक बहुमूल्य रेशम का चोगा और पगड़ी भेंट की गई।

विदेश यात्रा

तरुण संन्यासी विवेकानन्द की यह यात्रा सचमुच एक बड़ी साहसिक यात्रा थी। भारत में उन्होंने शिकागो में होने वाले सर्व-धर्म-सम्मेलन की चर्चा भर सुनी थी। न उन्हें उसकी निश्चित तिथि का ज्ञान था, न ही प्रवेश नियमों का परिचय और न कोई प्रमाणपत्र। भारत में उनके किसी भी उत्साही शिष्य ने इन सब महत्वपूर्ण बातों की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया। केवल आत्म-विश्वास का सहारा लेकर वे निकल पड़े।

बम्बई से उनका जलयान कोलम्बो, पेनांग, सिंगापुर, हांगकांग, कैण्टन होता हुआ जापान के नागासाकी नगर में पहुंचा। उन्होंने इन सुंदर पूर्वी देशों में प्राचीन संस्कृति के सशक्त चिह्न देखे। जापान के नागासाकी, कोबी, याकोहामा, ओसाका, किआटो और टोकियो आदि नगर देखकर वे बहुत प्रसन्न हुए। जापानियों के अद्भुत उत्साह, लगन और उद्यम-शीलता को देखकर उन्होंने एक बड़ा ही मार्मिक पत्र अपने मद्रासी शिष्यों को लिखा—

"देश छोड़कर बाहर जाने में तुम लोगों की जाति बिगड़ जाती है। हज़ारों वर्षों के पुराने इस कुसंस्कार का बोझ सिर पर धरे हुए तुम लोग बैठे हो...पौरोहित्य रूपी मूर्खता के गंभीर आवर्त में चक्कर काट रहे हो...तुम्हारा प्राण तथा मन भी उस तीस रुपए की क्लर्की पर निछावर है...और नहीं तो किसी हद तक एक दुष्ट वकील बनने का मतलब साध रहे हो। यही भारतीय युवकों की सर्वोच्च दुराकांक्षा है।

"आओ, मनुष्य वनो। पहले तो इन दुष्ट पुरोहितों को दूर करो, क्योंकि ये मस्तिष्कहीन लोग कभी अच्छी बातें नहीं मानेंगे—उनका हृदय शून्य है जिसका विकास कभी न होगा। सैकड़ों सदियों के कुसंस्कारों व अत्याचारों के बीच उनका जन्म हुआ है। पहले उनका उच्छेद करो। आओ, मनुष्य वनो। अपने संकीर्ण अंधकूप से निकलकर बाहर जाकर देखो, सभी राष्ट्र कैसे उन्नति कर रहे हैं।"

याकोहामा से प्रशान्त महासागर पार करके जहाज बैंकुवर बदरगाह में पहुंचा। यहां से रेल द्वारा कैनेडा के बीच तीन दिन चलने के बाद वे शिकागो पहुंचे और एक होटल

में टिके। यहां उन्हें ज्ञात हुआ कि सर्व-धर्म-सम्मेलन सितम्वर के प्रथम सप्ताह से पहले प्रारम्भ न होगा और उसके प्रतिनिधि बनने के लिए भेजे जाने वाले आवेदन पत्रों की तिथि समाप्त हो चुकी थी। इस प्रकार शिकागो सम्मेलन में भाग ले सकने की उनकी आशा पूर्णतया नष्ट हो गई और वे अपने आपको भाग्य के सहारे छोड़ बोस्टन की ओर चल दिए। मार्ग में एक भद्र महिला उनकी विचित्र वेशभूषा देखकर आकर्षित हुई और कुछ परिचय प्राप्त कर वह उन्हें अपने घर ले गई। इस महिला के घर के अनुभवों पर उन्होंने कुछ पंक्तियां लिखीं–

"यहां पर रहने से मेरी पहली जो सुविधा हुई है वह यह कि प्रतिदिन जो मेरा एक पौंड के हिसाब से खर्च हो रहा था वह बच रहा है और उनका लाभ यह है कि वे अपने मित्रों को आमंत्रित कर भारत से आए हुए एक अद्भुत जीव को दिखा रही हैं।"

इसी महिला के निवास-स्थान पर उनका परिचय हार्वर्ड विश्वविद्यालय में ग्रीक भाषा के विख्यात प्रोफ़ेसर मि. जे. एच. राइट महोदय से हुआ। वे कुछ क्षण के वार्तालाप से ही बहुत प्रभावित हुए और उन्होंने स्वामीजी को शिकागो सम्मेलन में भाग लेने की प्रेरणा दी। स्वामीजी ने जब अपनी कठिनाइयां रखीं तो वे आश्चर्यचकित होकर बोले–

To ask you Swami for your credentials is like asking the Sun to state its right to shine.

(स्वामी, आपसे प्रमाण पत्रों के लिए पूछना सूर्य को उसके चमकने का अधिकार बताने के लिए पूछने के समान है।)

राइट साहब ने उक्त महासभा से संबंधित अपने मित्र मि. बनी के नाम एक पत्र लिखकर स्वामी जी के हाथ में दे दिया। उस पत्र में अन्य बातों के साथ यह भी लिख दिया–"मेरा विश्वास है कि यह अज्ञात हिन्दू संन्यासी, हमारे सभी पंडितों की सामुदायिक विद्वत्ता से भी अधिक विद्वान् है।"

वे बड़े उत्साह से बोस्टन से शिकागो के लिए रवाना हुए पर नियति के चक्र ने अपनी परीक्षा के क्रम को अभी रोका नहीं था। शिकागो उतरते ही उनके पास से परिचय-पत्र कहीं खो गया। उन्होंने रास्ते के दो चार यात्रियों से कुछ पूछने का प्रयास किया पर वे उन्हें नीग्रो समझकर घृणा से मुंह फेरकर चले गए। उन्हें किसी होटल में भी स्थान नहीं मिला। रात्रि किस प्रकार व्यतीत हो?

चारों ओर शीतकाल की प्रखर वायु चल रही थी, बर्फ़ गिरना शुरू हो गई थी और उनके पास पर्याप्त गर्म कपड़े भी नहीं थे। कहीं आश्रय न पाकर उन्होंने रेलवे के माल गोदाम के सामने पड़े एक बड़े से पैकिंग बाक्स में प्रवेश किया और किसी प्रकार रात्रि व्यतीत की। प्रातः निराहार वे राजपथ पर निकल पड़े। प्रबल क्षुधा से उनका शरीर शिथिल हो रहा था। उन्होंने निरुपाय होकर द्वार-द्वार पर भिक्षा मांगी, पर उनके मैले फटे वस्त्र तथा क्लान्त मुख मंडल को देखकर लोगों ने मुंह बिचका लिया। किसी ने गाली दी तो किसी ने द्वार ही बंद कर लिया। निराश होकर वे सड़क के किनारे बैठ गए। सहसा उनके

सामने के भवन का द्वार खुला और एक अपूर्व सुंदरी रमणी ने धीरे से आकर उनसे पूछा—"महाशय, क्या आप धर्म-सभा के प्रतिनिधि हैं?" स्वामीजी ने उसे अपनी स्थिति बतलाई। इस सहृदय महिला, मिसेज़ जार्ज़ डबल्यू. हैल ने उनकी बहुत सहयता की और उन्हें धर्म-सभा के अधिवेशन में ले गई। वहां वे प्रतिनिधि के रूप में स्वीकार कर लिए गए एवं अन्य प्रतिनिधियों के साथ रहने का स्थान भी मिल गया।

11 सितम्बर, 1893 ई. संसार तथा आधुनिक भारत के इतिहास का एक स्मरणीय दिन है। प्राच्य एवं पाश्चात्य विभिन्न धर्म-सम्प्रदायों के सर्वश्रेष्ठ प्रतिनिधि इसी दिन यहां सम्मिलित हुए थे। भारत से इस अधिवेशन में भाग लेने के लिए ब्रह्म-समाज के प्रतापचन्द्र मजूमदार व बम्बई के नगरकर, जैन-समाज के प्रतिनिधि के रूप में वीरचन्द्र गांधी तथा थियोसोफी के प्रतिनिधि के रूप में श्रीमती एनी बेसेन्ट तथा चक्रवर्ती उपस्थित हुए थे, परन्तु इन सब में केवल विवेकानन्द ही थे जो सबसे अल्पायु थे, तेजस्वी थे और जो किसी एक मतवाद का प्रतिनिधित्व नहीं कर रहे थे, जो किसी सम्प्रदाय के नहीं अपितु सम्पूर्ण भारत के प्रतिनिधि थे। उनका तेजस्वी मुख-मंडल और चित्ताकर्षक व्यक्तित्व देखकर सभी उनकी ओर आकृष्ट हुए।

अधिवेशन में सभी प्रतिनिधियों का परिचय कराया गया और परिचय के समय उनसे बोलने कुछ के लिए कहा गया। सभी प्रतिनिधि अपने भाषण लिखकर लाए थे, किन्तु विवेकानन्द ने तो कुछ भी तैयारी नहीं की थी। इसके पूर्व उन्होंने इतनी बड़ी सभा में कभी भाषण भी नहीं दिया था, किन्तु जब वे बोलने के लिए खड़े हुए और बड़े साधारण ढंग से उन्होंने उपस्थित समुदाय को अपने इन प्रारम्भिक शब्दों से संबोधित किया—

"अमेरिका निवासी बहनो और भाइयो।" सैकड़ों व्यक्ति अपनी सीटों पर तीव्र करतल ध्वनि करते हुए खड़े हो गए। उनके लिए यह संबोधन बिल्कुल नया था, किन्तु ऐसा था जो उनके मर्मस्थान को स्पर्श कर गया। उन्होंने अपने भाषण में संसार के सबसे नवीन राष्ट्र अमेरिका का अपनी पद्धति से अभिनन्दन किया। फिर उन्होंने 'हिन्दुत्व' को सभी धर्मों की जननी बतलाते हुए उसके मूलमंत्र की ओर लोगों का ध्यान आकर्षित किया—"एक दूसरे को समझो और स्वीकार करो।" उन्होंने शास्त्रों से दो उत्तम उदाहरण प्रस्तुत किए—

"जो कोई भी जिस किसी मार्ग से चाहे, मेरे पास आ सकता है।"

"सभी मनुष्य उन मार्गों के लिए झगड़ रहे हैं जो अंत में मेरी ओर ही आते हैं।"

अन्य सभी वक्ताओं ने अपने ईश्वर और अपने मत की चर्चा की थी। केवल विवेकानन्द थे जिन्होंने सभी के ईश्वरों की और सभी की महत्ता को स्वीकार किया।

19 सितम्बर को उन्होंने अपना प्रख्यात भाषण 'हिन्दू-धर्म' विषय पर दिया। कुछ लोगों ने आलोचना की कि विवेकानन्द ने जिस हिन्दू धर्म की चर्चा की है वह वर्तमान प्रचलित हिन्दू धर्म नहीं है। 22 सितम्बर की आलोचना सभा में उन्होंने उसी विषय पर नये तर्कों के साथ एक और आकर्षक भाषण दिया और उसी दिन सायंकाल प्रतिवादियों

द्वारा उठाई हुई विद्वेषपूर्ण युक्तियों का बड़ी दृढ़ता के साथ खण्डन किया।

25 तारीख को जिस समय उन्होंने 'हिन्दू धर्म का सार' नामक भाषण देते देते सहसा नीरव होकर उपस्थित को लक्ष्य करके प्रश्न किया—

"इस सभा में जो हिन्दू धर्म व शास्त्र के साथ प्रत्यक्ष रूप से जनसमूह से परिचित हैं वे हाथ उठाएं।" तो प्रायः सात हजार व्यक्तियों के बीच में से केवल तीन चार हाथ उठाए गए। योद्धा संन्यासी मस्तक ऊंचा उठाकर दोनों बाहुओं को दृढ़ता के साथ छाती पर बांध कर भर्त्सना के साथ गरजता बोला—"और फिर भी तुम हमारे धर्म की समालोचना करने की स्पर्धा करते हो?" समस्त सभा मूक बनी रही।

सर्वधर्म-सम्मेलन के अधिवेशन के अन्तिम दिवस, 26 सितम्बर को, अपने भाषण में विवेकानन्द ने वज्रकण्ठ से घोषित किया—"जो लोग इस सभा की कार्य-प्रणाली का निरीक्षण करने के बाद भी हृदय में इस प्रकार की भावना रखते हैं कि कोई विशेष धर्म किसी समय जगत् का एकमात्र धर्म हो जाएगा अथवा कोई विशेष धर्म ही ईश्वरप्राप्ति का एकमात्र उपाय है और दूसरे धर्म भ्रान्त हैं, वे वास्तव में दया के पात्र हैं।"

उन्होंने कहा—"प्रत्येक जाति या धर्म दूसरी जाति या धर्मों के साथ आपस में भावों का आदान-प्रदान करता हुआ अपनी अपनी स्वतन्त्रता की रक्षा करेगा तथा अपनी अपनी अन्तर्निहित शक्ति के अनुसार उन्नति की ओर अग्रसर होगा। आज के सभी धर्मों के झण्डों पर लिख दो—युद्ध नहीं, सहायता। ध्वंस नहीं—आत्म-समीप करना, भेद द्वंद्व नहीं—सामंजस्य एवं शान्ति।"

विवेकानन्द के इन सभी भाषणों का इतना जबरदस्त प्रभाव हुआ कि सम्पूर्ण अमेरिका में तहलका मच गया। कल तक अनजाना, ठुकराया, निराश्रित और उपेक्षित अश्वेत संन्यासी आज एकाएक अमेरिका का सर्वाधिक प्रसिद्ध और आकर्षक व्यक्ति बन गया। 'न्यूयार्क हेरल्ड' ने लिखा—

"शिकागो धर्म सम्मेलन में निस्संदेह विवेकानन्द ही सबसे महान् व्यक्ति हैं। उनका भाषण सुनकर हम अनुभव करते हैं कि इतने विद्वान् राष्ट्र (भारत) में मिशनरियों को भेजना कितना मूर्खतापूर्ण हैं।"

5 अप्रैल 1894 के अंक में 'बोस्टन ईवनिंग ट्रेन्सक्रिप्ट' ने मत प्रगट किया—"वे वास्तव में एक महापुरुष, उदार, सरल व ज्ञानी हैं। वे हमारे देश के विद्वानों से बिना किसी तुलना के ही कई गुना अधिक विद्वान् हैं।"

स्वामी विवेकानन्द के बड़े बड़े चित्र शिकागो नगर में रास्ते-रास्ते पर लटका कर रखे गए। उनके नीचे लिखा था—"संन्यासी विवेकानन्द ।'

शिकागो महासभा की विज्ञान सभा के सभापति मि. स्केल ने लंदन के सुप्रसिद्ध पत्र 'पायोनिअर' में उक्त महासभा का विवरण देते हुए लिखा—

"हिन्दू धर्म ने इस महासभा और जनसाधारण के ऊपर जिस प्रभाव का विस्तार किया है, वैसा करने में कोई भी दूसरा धर्म समर्थ नहीं हुआ। हिन्दू धर्म के एकमात्र आदर्श

प्रतिनिधि स्वामी विवेकानन्द ही इस महासभा के निर्विवाद रूप से सबसे अधिक लोकप्रिय व प्रभावशाली व्यक्ति हैं। उन्होंने इस धर्म-सम्मेलन के व्याख्यान मंच पर तथा विज्ञानशाखा की सभा में अनेक भाषण दिए हैं। वे जहां भी जाते हैं, वहीं जनता की भीड़ उमड़ पड़ती है और लोग उनकी प्रत्येक बात सुनने के लिए आग्रह के साथ उत्कंठित रहा करते हैं। घोर कट्टर ईसाई भी उनके सम्बन्ध में कह रहे हैं—स्वामी विवेकानन्द मनुष्यों के बीच में 'अतिमानव' हैं।''

इस अभूतपूर्व देशव्यापी सम्मान और प्रतिष्ठा ने उनके लक्ष्य को एक क्षण के लिए भी उनके नेत्रों के सम्मुख धूमिल नहीं होने दिया। उन्हें यह कभी नहीं भूला कि वे धार्मिक दृष्टि से सम्पन्न किन्तु आर्थिक दृष्टि से अति विपन्न एक राष्ट्र के प्रतिनिधि हैं। धर्म सभा में सभी ईसाइयों को सम्बोधित करते हुए बड़ी निर्भीकता से उन्होंने प्रश्न किया—

''दरिद्र पौत्तलिकों की पापी आत्मा के उद्धार के लिए तुम लोग लाखों रुपये लगाकर मिशनरियों को भेज रहे हो, क्या उनके शरीर को बचाने के लिय दो दाने अन्न की व्यवस्था कर सकते हो? जब लाखों हीदन (Heathen) दुर्भिक्ष में भूखों मरते हैं तब तुम ईसाई उन्हें बचाने के लिए क्या करते हो? तुमने भारत के नगर नगर में बड़े बड़े गिरजाघर बनवाए हैं परन्तु धर्म हमारा यथेष्ट है। हम रोटी मांग रहे हैं और तुम दे रहे हो पत्थर के टुकड़े। क्या भूखों के दुःख कष्ट की ओर न देखते हुए उन्हें धर्मोपदेश या दर्शनशास्त्र की शिक्षा देने की चेष्टा करना मनुष्यत्व का अपमान करना नहीं है?''

धर्म सभा समाप्त होने के साथ ही एक 'व्याख्यान कम्पनी' ने स्वामी जी को अमेरिका के विभिन्न नगरों में भाषण देने के लिए आमन्त्रित किया। उन्होंने इस प्रस्ताव से सहमत होकर अमेरिका के विभिन्न नगरों में भाषण देना प्रारम्भ किया। लोकप्रिय संन्यासी के नवीन संदेश को अमेरिका निवासी उत्साह के साथ सुनने लगे। प्रत्येक नगर में उनका उन्मुक्त सम्मान हुआ। स्थान-स्थान से उन्हें निमन्त्रण आने लगे।

शिकागो धर्म-सम्मेलन में स्वामी विवेकानन्द की विश्व विख्यात सफलता का समाचार जब भारत पहुंचा, तो सभी स्थानों पर उत्तेजनामिश्रित आनन्दोल्लास की लहर फैल गयी। स्थान स्थान पर विराट् सभाएं आयोजित की गईं और देश के गण्य मान्य विद्वानों द्वारा उन्हें इस महान् सफलता पर बधाइयां दी गयीं।

शिकागो धर्म-सम्मेलन की समाप्ति के बाद प्रायः एक वर्ष तक स्वामी विवेकानन्द अमेरिका के विभिन्न नगरों में भाषण देते रहे। फरवरी 1894 में उन्होंने डिट्राइट युनिटेरिअन चर्च में धारावाही रूप से भाषण दिए। मार्च, अप्रेल, मई और जून में शिकागो, बोस्टन और न्यूयार्क के चारों ओर स्थित छोटे बड़े नगरों में अविराम व्याख्यान देने के पश्चात् वे न्यू इंग्लैण्ड के अन्तर्गत 'ग्रीन एकर' के एक सम्मेलन में भाषण देने के लिए गये। फिर अक्तूबर मास के अन्तिम भाग में बाल्टिमोर व वाशिंगटन नगर में भाषण देकर न्यूयार्क लौटे। न्यूयार्क की एक छोटी सी पारिवारिक सभा में 'ब्राकलिन नैतिक सभा' के सभापति, डा. लुइस जी. जेम्स स्वामी जी के भाषण सुन कर बड़े मुग्ध हुए। उन्होंने उक्त

नैतिक सभा में हिन्दू धर्म के सम्बन्ध में भाषण देने के लिए उन्हें आमन्त्रित किया और उस सभा की ओर से वे 'पौच मेन्शन' नामक विशाल भवन में हिन्दू धर्म के सम्बन्ध में हजारों श्रोताओं के सम्मुख प्रतिदिन धारा-प्रवाह रूप से भाषण देने लगे।

ब्रुकलिन नैतिक सभा में दिये हुए भाषणों को ही स्वामी विवेकानन्द के वेदान्त प्रचार कार्य का प्रारम्भ माना जा सकता है, इस समय से उन्होंने घूम-फिरकर भाषण देना बंद कर न्यूयार्क में स्थायी रूप से वेदान्त और योग की शिक्षा देने के लिए एक कक्षा खोलने का निश्चय किया। फरवरी 1895 में यह कार्य नियमित रूप से प्रारम्भ हुआ। यद्यपि उनका विरोध कर उनके मार्ग में रोड़े अटकाने के लिए भी कुछ प्रतिपक्षी धर्मों एवं मतों द्वारा प्रयास हुआ, परन्तु वे अविचिलित भाव से अपने कार्य में संलग्न रहे।

इस कक्षा में स्वामी जी धारा-प्रवाह रूप से ज्ञानयोग और राजयोग पर भाषण देने लगे। उत्सुक छात्र और छात्राएं स्थानाभाव के कारण भारतीय पद्धति के अनुसार जमीन पर पैर समेट कर बैठते। राजयोग पर दिए गए भाषणों की ख्याति इतनी व्यापक हुई कि जिस दिन राजयोग के सम्बन्ध में भाषण देने का कार्यक्रम रहता, उस दिन नगर के दार्शनिक, वैज्ञानिक और अध्यापकों के आगमन से उनका छोटा सा कमरा भर जाता और वे बड़ी लगन से उनकी योग शास्त्र की युक्तिपूर्ण वैज्ञानिक व्याख्या सुनते। जून मास में उनके इन भाषणों का संग्रह करके 'राजयोग' पुस्तक प्रकाशित हुई। इस पुस्तक का इतना स्वागत हुआ कि प्रकाशित होने के कुछ ही सप्ताहों में उसके तीन संस्करण निकल गए।

इसी बीच उन्होंने अनेक प्रतिष्ठित शिष्य तथा प्रचार कार्य के लिए सभी तरह के सहायक मित्र प्राप्त कर लिए। उनमें से मैडम मेरी लुई (स्वामी अभयानन्द), डा. सैन्ट्स वर्ग (स्वामी कृपानन्द), मिसेज ओली बुल, डा. एलेन डी, मिस वाल्डो, प्रोफेसर वेमैन ओ' राइट, डा. स्ट्रीट तथा अनेक शिक्षित एवं मान्य व्यक्ति उनकी ओर विशेष रूप से आकृष्ट हुए थे। कुछ दिनों के पश्चात् विख्यात गायिका मैडम कैलबे ने उनका शिष्यत्व ग्रहण किया।

सतत उच्चतम दार्शनिक तत्वों की चर्चा का विश्लेषण करते हुए भाषण देने तथा शिक्षा-दान के कार्य मे थक कर वे अपनी एक शिष्या के, सेन्ट लौरेन्स नदी के बीच सहस्त्र द्वीपोद्यान (Thousand Island Park) नामक द्वीप में स्थित एक सुन्दर स्थान पर विश्राम करने चले गए। वहां उनके साथ जो शिष्य-शिष्याएं गयीं, उनमें से एक, मिस. एस. ई. वाल्डो ने लिखा–

"स्वामी विवेकानन्द जैसे व्यक्ति के साथ निवास करना ही लगातार उच्च अनुभूतियों को प्राप्त करना है। प्रातःकाल से रात्रि तक वही एक भाव–हम एक घनीभूत धर्मभाव के राज्य में निवास करते हैं।"

इंग्लैण्ड गये

इस विश्राम स्थल से न्यूयार्क लौट कर स्वामी विवेकानन्द ने इंग्लैण्ड जाने की

तैयारी की। इंग्लैण्ड से उन्हें बार बार निमन्त्रण मिल रहे थे। इसलिए 1895 में वे पेरिस होते हुए इंग्लैण्ड पहुंच गये।

इन्हीं दिनों भारत में ईसाई मिशनरियों तथा कुछ अन्य स्वार्थी वर्गों द्वारा विवेकानन्द के विरुद्ध अनेक प्रकार का कुत्सित प्रचार होने लगा। उनके आचार-व्यवहार आदि का निन्दनीय विवरण देकर छोटी-छोटी पुस्तकें तथा हैण्ड बिल आदि बंटने लगे। अपने भारतीय शिष्यों के मन में शंका बीज को जन्म लेता देख उन्होंने अपने शिष्यों को एक पत्र लिखा, जिसमें उन्होंने बड़ी कड़ी भाषा में अपने विरुद्ध किये जाने वाले दूषित प्रचार का खण्डन किया। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में लिखा—

''अपने जीवन का उद्देश्य मैं भली भांति जानता हूं। किसी प्रकार का हल्ला-गुल्ला तथा निन्दा आदि की मैं परवाह नहीं करता!...ईश्वर और सत्य ही मेरी एकमात्र राजनीति है...बाकी जो कुछ है, केवल कूड़ा-कर्कट है।''

इंग्लैण्ड के निवासियों को स्वामी विवेकानन्द ने अमेरिकनों से कम प्रभावित नहीं किया। वे जिस ओर भी अपना भाषण देने गए, जनता की भीड़ उन्हें देखने और सुनने के लिए उमड़ पड़ी। शायद इसीलिए अंग्रेजों ने उन्हें तूफानी हिन्दू (Cyclonic Hindoo) कहा।

एक दिन उन्होंने 'पिकडेली प्रिन्सेस हाल' में आत्मज्ञान के विषय पर गम्भीर दार्शनिक तत्वों से पूर्ण एक भाषण दिया। यह भाषण इतना उच्चकोटि का था कि दूसरे दिन प्रमुख समाचार पत्रों में उसका विस्तृत विवरण प्रकाशित हुआ। 'दि स्टैण्डर्ड' पत्रिका ने लिखा—

''राममोहन के बाद एकमात्र केशवचन्द्र को छोड़ कर प्रिन्सेस हाल में इस हिन्दू वक्ता की तरह और कोई भी शक्तिशाली भारतीय व्यक्ति इंग्लैण्ड के व्याख्यान मंच पर अवतीर्ण नहीं हुआ।''

'दि लण्डन डेली क्रानिकल' ने लिखा—''लोकप्रिय हिन्दू संन्यासी विवेकानन्द के अंग प्रत्यंगों में बुद्धदेव के मुख (The classic face of Buddha) का सादृश्य अत्यन्त स्पष्ट है।''

'वेस्ट मिनिस्टर' के प्रतिनिधि को दी हुई एक भेंट में स्वामी विवेकानन्द ने स्पष्ट घोषित किया—

''किसी नवीन सम्प्रदाय की स्थापना करना मेरा अभिप्राय नहीं है, किसी विशेष धर्ममत का भी मैं प्रचारक नहीं हूं। मेरा विश्वास है कि वेदान्त के उदार ज्ञान को सभी धर्म सम्प्रदाय अपनी अपनी धर्म सम्बन्धी स्वतन्त्रता को कायम रखते हुए ग्रहण कर सकते हैं।''

यहीं उनकी भेंट एक स्कूल-अध्यापिका असाधारण विदुषी मिस मागरिट नोबल से हुई। इन्हीं मिस नोबल ने स्वामी विवेकानन्द को अच्छी तरह परख कर उनका शिष्यत्व ग्रहण किया और भगिनी निवेदिता के नाम से सम्पूर्ण भारत में प्रख्यात हुईं।

स्वामी विवेकानन्द ने इंग्लैण्ड में तीन मास व्यतीत किये। उन्हें अमेरिका से बार बार शिष्यों तथा भक्तों के वापस लौटने के बारे में अनुरोध भरे पत्र मिले रहे थे। इधर लन्दन वाले उन्हें नहीं छोड़ रहे थे। अमेरिका जाने की आवश्यकता अनुभव कर उन्होंने इंग्लैण्ड की शिष्य-मण्डली को एक समिति का रूप देकर प्रचार कार्य जारी रखने का आदेश दिया और वे अमेरिका लौट गए। 6 दिसम्बर को वे न्यूयार्क पहुंचे। उनकी अनुपस्थिति में उनके स्थानीय शिष्यों द्वारा बड़े उत्साह से प्रचार कार्य चलाया जा रहा था। अब बोस्टन की एक उदार महिला की सहायता से 21 नं. स्ट्रीट में दो बड़े बड़े कमरे किराये पर लिए गए। इस स्थान पर उन्होंने कर्मयोग के सम्बन्ध में धारावाहिक रूप से व्याख्यान दिये जिनका संग्रह 'कर्मयोग' पुस्तक के रूप में प्रकाशित हुआ।

बड़े दिनों के पर्व पर मिसेज ओली बुल द्वारा आमन्त्रित होकर स्वामी जी बोस्टन गए। केम्ब्रिज की महिलाओं के निमंत्रण पर स्वामी जी ने 'भारतीय नारी का आदर्श' के सम्बन्ध में एक सुन्दर तथ्यपूर्ण भाषण दिया। उसे सुन कर वहां का विदुषी नारी समाज ऐसा मुग्ध हुआ कि उसने धन्यवाद का एक पत्र स्वामी जी की माता को लिखा।

फरवरी मास में उन्होंने 'मैविसन स्क्वेअर गार्डन' नामक हाल में 'भक्तियोग' पर भाषण देना प्रारम्भ किया। वे भाषण इतने सुन्दर व आकर्षक होते थे कि प्रतिदिन लगभग दो हज़ार श्रोता लगातार दो घण्टे तक खड़े खड़े उन्हें सुना करते थे। इसी मास में 'हार्टफोर्ड मैटेफिजिकल सोसायटी' में आमन्त्रित होकर 'आत्मा और ईश्वर' के विषय पर उन्होंने एक भाषण दिया।

स्वामी विवेकानन्द की धर्मव्याख्या से आकृष्ट होकर अनेक स्त्री-पुरुष उनका शिष्यत्व ग्रहण करने लगे। डा. स्ट्रीट नामक एक जिज्ञासु को संन्यास देकर उन्होंने स्वामी योगानन्द बना दिया। धीरे धीरे सैकड़ों स्त्री-पुरुष स्वामी जी के शिष्य बन कर अपने को वेदान्ती कहने लगे।

न्यूयार्क में स्वामी जी ने वेदान्त की चर्चा व योग की शिक्षा के लिए एक स्थायी केन्द्र बनाने का निश्चय किया। इधर इंग्लैण्ड से बार-बार आमन्त्रण आ रहे थे। यह निश्चित हुआ था कि वे इंग्लैण्ड से भारत लौटेंगे। तदनुसार शिष्य और भक्तों के साथ परामर्श करके स्वामी जी ने स्थायी रूप से न्यूयार्क में एक वेदान्त सोसाइटी की स्थापना की। प्रसिद्ध धनी मि. फ्रान्सिस एच. लिगेट महोदय उस सोसाइटी के सभापति बनाए गए। भगिनी हरिदासी (मिस एस. ई. वाल्डो) योग की शिक्षिका नियुक्त हुई। स्वामी कृपानन्द तथा स्वामी योगानन्द (मि. लान लेम्बसवर्ग), स्वामी अभयानन्द (मैडम मेरी लुई) तथा स्वामी योगानन्द (डा. स्ट्रीट) तथा कुछ ब्रह्मचारी वेदान्त के प्रचारक नियुक्त हुए। अन्य अनेक अमरीकी शिष्यों ने भी इस कार्य में सहयोग दिया। शिष्य वर्ग की इच्छा एवं अनुरोध से स्वामी जी ने अपने गुरुभाई स्वामी शारदानन्द को इंग्लैण्ड की यात्रा करने के लिए पत्र लिखा। इंग्लैण्ड से उन्हें न्यूयार्क भेजने का वचन देकर उन्होंने 15 अप्रेल सन् 1896 ई. को लंदन की ओर प्रस्थान किया।

इंग्लैण्ड में स्वामी विवेकानन्द के फिर वापस आ जाने का समाचार सुनते ही सैकड़ों स्त्री-पुरुष उनके दर्शन करने और उपदेश सुनने आने लगे। मई मास के अन्त में उन्होंने भक्ति, कर्म और योग विषयों पर अनेक उत्कृष्ट भाषण दिए।

28 मई को स्वामी जी ने आक्सफोर्ड जाकर वेदों के प्रकाण्ड पण्डित, विश्वविख्यात प्रोफेसर मैक्समूलर से भेंट की। भारतवर्ष के सम्बन्ध मे प्रो. मैक्समूलर के असीम ज्ञान का परिचय पाकर वे बड़े प्रसन्न हुए।

स्वामी विवेकानन्द के अंग्रेज शिष्य और शिष्याओं में कुमारी मुलर, कुमारी नोवल (निवेदिता), मि. गुडविन, मि. स्टर्डी आदि उनके कार्य को बढ़ाने का निश्चय करके जीवन दान दे चुके थे। दूसरी बार इंग्लैण्ड में आकर उन्होंने कैप्टन सेविअर तथा श्रीमती सेविअर को शिष्य रूप में प्राप्त किया।

इन शिष्यों ने स्वामी जी को लेकर स्विट्जरलैण्ड की यात्रा की। जुलाई मास के अन्तिम सप्ताह में वे दल बल सहित जिनेवा पहुंचे। स्विट्जरलैण्ड के हृदयग्राही प्राकृतिक दृश्यों को देखकर उन्हें अपने परिव्राजक जीवन की स्मृतियां सजीव हो उठीं। यहां उन्होंने दो सप्ताह एक पहाड़ी गांव में निवास किया। उनकी वृत्तियों ने एक बार फिर पूर्ण अन्तर्मुखी होने का अवसर पाया। दो सप्ताह के पूर्ण विश्राम से ऐसा प्रतीत हुआ मानो गत तीन वर्षो की सारी क्लान्ति दूर हो गयी हो।

इसी बीच जर्मनी की कील नगरी के विश्वविद्यालय के विख्यात संस्कृतज्ञ प्रो. पॉल ड्यूसन ने स्वामी जी को आमन्त्रित किया। निमन्त्रण पाकर वे जर्मनी गए। प्रो. ड्यूसन का वेदों, उपनिषदों आदि भारतीय ग्रन्थों का विशद और गम्भीर अध्ययन था। रायल एशियाटिक सोसाइटी की बम्बई शाखा में सन् 1883 ई. में उन्होंने वेदान्त के सम्बन्ध में उपसंहार करते हुए कहा था—

''अविकृत वेदान्त-दर्शन पवित्र नैतिकता की सुदृढ़ नींव है और जीवन व मृत्यु के दुःखसमूह के लिए परम सान्त्वना का स्थल है। हे भारतवासी! इसे कभी न छोड़ना।''

स्वामी जी उनके इस ज्ञान और रुचि को देखकर बहुत प्रसन्न हुए। कुछ ही दिनों के सहवास में वे एक दूसरे के बहुत निकट आ गए और इसी सहवास के लोभ से वे स्वामी जी के साथ लन्दन तक आए।

13 दिसम्बर सन् 1896 में इंग्लैण्ड के मित्रों एवं शिष्यों ने 'रायल सोसाइटी आफ पेन्टर्स' के पिकाडिली स्थित वृहत् हाल में स्वामी विवेकानन्द की विदाई के उपलक्ष्य में एक भव्य आयोजन किया। वे दिसम्बर के मध्य भाग में भारत की ओर प्रस्थान करेंगे, यह निश्चित हो चुका था।

16 दिसम्बर को वे अपने शिष्य-शिष्याओं से विदा लेकर सेविअर दम्पती के साथ लन्दन से चल दिए। अब अपनी अद्भुत प्रतिभा से सम्पूर्ण संसार को चमत्कृत कर देने वाले विश्व-विजयी स्वामी विवेकानन्द के कर्ममय जीवन के एक महत्वपूर्ण अंश की पूर्ति हुई। सम्पूर्ण संसार में भारत के ज्ञान और गौरव की दुन्दुभी बजाकर अब वे भारत आने

के लिए बालकों की तरह अधीर हो उठे। लन्दन छोड़ने से ठीक पहले एक अंग्रेज़ मित्र ने उनसे पूछा—

"स्वामी जी, चार वर्ष तक विलास की लीला भूमि, गौरव की सिरताज, महाशक्तिशाली पाश्चात्य भूमि में भ्रमण करने के बाद आपकी मातृभूमि आपको कैसी लगेगी?" स्वदेश-प्रेमी विवेकानन्द ने उत्तर दिया—"पाश्चात्य भूमि में आने के पूर्व मैं भारत से प्रेम करता था। इस समय भारत का धूलिकण तक मेरे लिए पवित्र है। भारत की वायु अब मेरी दृष्टि में पवित्रता की प्रतिमूर्ति है। भारत इस समय मेरे लिए तीर्थ जैसा है।"

अब भारत ही केन्द्र है

चार वर्ष की सुदीर्घ विदेश यात्रा के पश्चात् स्वामी विवेकानन्द भारत की ओर लौट रहे थे। वे जहाज में बैठे हिसाब करने लगे, क्या दिया और क्या ले चला। विदेशों में सहस्रों की संख्या में लोगों ने उन्हें सुना, करतल-ध्वनि की, जय घोष किया, समाचार पत्रों ने उनकी प्रशंसा के पुल बांध दिए, पर इन सब का परिणाम क्या हुआ? उन्होंने सोचा कि वे अपने दीन-दरिद्र भारतीयों के लिए इसके प्रतिदान में क्या पा सके? और जब इस प्रश्न पर उन्होंने गम्भीरता से विचार किया तो उन्हें लगा कि भोग-लोलुप, स्वार्थी पाश्चात्यों से दीन दरिद्र भारतीयों के लिए जिस सहायता की उन्होंने आशा की थी, वह उन्हें प्राप्त नहीं हुई। वे क्षुब्ध होने पर भी निराश नहीं हुए। उन्होंने निश्चय किया कि भारत में नये सिरे से कार्य करना होगा। धर्म को जीता जागता और समाज को गतिशील बना कर सत्साहसी व वीर्यवान् मनुष्यों को पैदा करना होगा। उन्होंने स्थिर किया—

"अब भारत ही केन्द्र है।"

16 जनवरी को सूर्योदय के साथ ही लंका की श्यामल तटभूमि दृष्टिगोचर हुई। स्वामी विवेकानन्द आनन्द से प्रफुल्लित हो उठे। कोलम्बो में उनके आगमन का समाचार पहुंच चुका था। वहां उनका भव्य स्वागत हुआ। तीसरे पहर फ्लोरल हाल में उनका भाषण हुआ। विषय था—

"पुण्यभूमि भारतवर्ष।"

कोलम्बो से काण्डी और काण्डी से जाफना में सर्वत्र अपना सत्कार स्वीकार करते हुए वे जाफना से एक स्टीमर द्वारा भारतवर्ष की ओर चले। तट पर रामनद के राजा भास्कर वर्मा विशाल जनसमूह के साथ उनके स्वागतार्थ खड़े थे। भारत भूमि पर शुभ पदार्पण करते ही रामनद नरेश ने साष्टांग प्रणाम कर उनकी चरण रज ली। नगरवासियों की ओर से अभिनन्दन का आयोजन हुआ। भारत भूमि के जिस स्थान पर स्वामी विवेकानन्द ने पहले पहल चरण रखे, उस पुण्यभूमि पर भक्तिमान रामनद नरेश ने चालीस फुट ऊंचा एक स्मृति-स्तम्भ बनवा दिया।

इसके बाद स्वामी विवेकानन्द जिस ओर भी गए, एक विश्वविजयी नायक की भांति उनका स्वागत हुआ। मद्रास के विक्टोरिया हाल में पांच सहस्र श्रोताओं के सम्मुख उन्होंने अपना सुप्रसिद्ध भाषण 'मेरी समर नीति' दिया। इसके बाद क्रम से उन्होंने 'भारतीय जीवन में वेदान्त का प्रयोग' भारतीय महापुरुष', 'हमारा वर्तमान कर्तव्य', 'भारत का भविष्य' शीर्षक चार भाषण दिए।

15 फरवरी, सोमवार को स्वामी विवेकानन्द मद्रास से कलकत्ता जाने वाले जहाज पर चढ़े। यद्यपि लोकमान्य तिलक ने उन्हें पूना आने का बहुत अनुरोध किया था, किन्तु इच्छा होते हुए भी उन्हें वह यात्रा स्थगित करनी पड़ी। जहाज से खिदिरपुर में उतरने के पश्चात् उन्हें स्पेशल ट्रेन द्वारा स्यालदा ले जाया गया। स्टेशन पर उनका सहस्रावधि व्यक्तियों द्वारा भव्य स्वागत किया गया।

28 फरवरी को कलकत्ता निवासियों की ओर से उनके अभिनन्दनार्थ एक विराट सभा हुई और उन्हें अभिनन्दन पत्र भेंट किया गया।

निरन्तर सम्मान और भाषण से ऊब कर अब वे कुछ समय शान्ति से व्यतीत करना चाहते थे। उनके वर्षों के कठोर परिश्रम से उनका वज्र जैसा दृढ़ शरीर भी अस्वस्थ हो गया था, परन्तु इसकी चिन्ता न करते हुए मठ के ब्रह्मचारियों एवं नवदीक्षित शिष्यों को वे गीता, उपनिषद् आदि भाष्य के साथ स्वयं पढ़ाते थे। डाक्टर उनसे मानसिक परिश्रम से अवकाश ग्रहण करने का आग्रह कर रहे थे। अन्त में वे उनका आग्रह स्वीकार कर अपने कुछ स्वदेशी-विदेशी श्रद्धालुओं सहित दार्जिलिंग गए और वहां लगभग दो मास रहे किन्तु स्वास्थ्य में कुछ विशेष सुधार नहीं हुआ और वे पुनः कलकत्ता लौट आए।

रामकृष्ण मिशन की स्थापना

कलकत्ता में कुछ समय व्यतीत कर स्वामी विवेकानन्द ने अपने प्रचार कार्य को संघबद्ध करने की तीव्र आवश्यकता अनुभव की। स्वदेश और विदेशों में स्थान-स्थान पर कार्य का बीजारोपण उन्होंने कर ही दिया था। कार्य की विधिवत प्रगति के लिए इकाइयों का एक सूत्र में आबद्ध होना आवश्यक सा था। 1 मई सन् 1897 को उनके आह्वान पर परमहंस रामकृष्ण देव के गृहस्थ एवं संन्यासी भक्तगण बलराम बाबू के निवास स्थान पर एकत्र हुए। स्वामी विवेकानन्द ने सभी को संघबद्ध कर्म की आवश्यकता समझाई। सभी ने उसका उन्मुक्त हृदय से समर्थन किया। संघ का नाम रखा गया रामकृष्ण मिशन। मिशन के उद्देश्यों की संक्षिप्त घोषणा इस प्रकार की गयी—

उद्देश्य—मानव समाज के हित के लिए श्री रामकृष्ण देव ने जिन सब तत्वों की व्याख्या की है तथा कार्य रूप में उनके जीवन में जो तत्व प्रतिपादित हुए हैं उनका प्रचार तथा मनुष्य की शारीरिक, मानसिक तथा पारमार्थिक उन्नति के लिए जिस-जिस प्रकार उन सब तत्वों का प्रयोग हो सके, उन-उन विषयों में सहायता करना इस मिशन का

उद्देश्य है।

व्रत–जगत् के सभी धर्म मतों को एक अखण्ड सनातन-धर्म का रूपान्तर मात्र समझते हुए सभी धर्मावलम्बियों के बीच आत्मीयता की स्थापना के लिए श्री रामकृष्ण देव ने जिस कार्य का प्रारम्भ किया था, उसका परिचालन ही इस मिशन का व्रत है।

कार्य प्रणाली–मनुष्य की सांसारिक और आध्यात्मिक उन्नति के लिए विद्यादान देने योग्य व्यक्तियों को शिक्षा देना, शिल्प व श्रमोपजीविका को प्रोत्साहित करना तथा जिस रूप में वेदान्त व दूसरे धर्मों के भाव श्री रामकृष्ण देव के जीवन में व्याख्यात हुए थे, उसे समाज में प्रवर्तित करना।

भारतवर्षीय कार्य–भारतवर्ष के नगरों में इस व्रत को ग्रहण करने के अभिलाषी गृहस्थ अथवा संन्यासियों की शिक्षा के लिए आश्रमों की स्थापना तथा ऐसे उपायों का अवलम्बन जिनके द्वारा वे देश-देशान्तरों में जाकर जनता को शिक्षित बना सकें।

विदेशी कार्यविभाग–भारत के बाहर, दूसरे देशों में, व्रतधारियों को भेजना तथा उन स्थानों में स्थापित सभी आश्रमों के साथ भारतीय आश्रमों की घनिष्ठता व सहानुभूति को बढ़ाना और नये-नये आश्रमों की स्थापना करना।

स्वामी विवेकानन्द उक्त समिति के साधारण सभापति बने, स्वामी ब्रह्मानन्द कलकत्ता केन्द्र के सभापति तथा स्वामी योगानन्द उप-सभापति बने। बाबू नरेन्द्रनाथ मिश्र इसके मंत्री बनाए गए।

इसी बीच इंगलैण्ड से स्वामी विवेकानन्द की अनन्य शिष्या कुमारी मूलर भारत आ गयीं। स्वामी जी का स्वास्थ्य काफी खराब हो रहा था, इसलिए डाक्टरों का आग्रह स्वीकार कर उन्होंने कुछ समय के लिए अलमोड़ा जाना स्वीकार कर लिया। 6 मई को उन्होंने शिष्यों एवं गुरुभाइयों के साथ अलमोड़ा की ओर प्रस्थान किया। अलमोड़ा के स्वल्प निवास में ही उनके स्वास्थ्य में सुधार दिखायी देने लगा।

ढाई मास अलमोड़ा में रह कर पंजाव एवं कश्मीर के विभिन्न स्थानों से आमन्त्रण आने के कारण स्वामी जी अलमोड़ा से चल दिये। बरेली, अम्बाला, अमृतसर, रावलपिण्डी, मरी और बारामूला होकर 8 सितम्बर को नौका द्वारा उन्होंने श्रीनगर की यात्रा की। लगभग एक मास की इस सुरम्य पहाड़ी प्रदेश की यात्रा द्वारा उनके स्वास्थ्य में काफी सुधार हुआ।

इसके पश्चात् रावलपिण्डी, जम्मू और स्यालकोट में जिज्ञासु जनता का समाधान करते हुए वे 5 नवम्बर को लाहौर आए।

स्वामी विवेकानन्द का लाहौर आगमन अनेक दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। यहीं उनकी भेंट गणित के विद्वान् प्राध्यापक तीर्थराम गोस्वामी से हुई। प्रो. तीर्थराम ने जीवन के अतीव कष्टमय दिन व्यतीत कर उच्च शिक्षा प्राप्त की थी। आध्यात्मिक रुचिसम्पन्न, भावुक हृदय तीर्थराम में एक महान् संन्यासी एवं वेदान्त-प्रचारक होने के बीच पूर्णरूप से विद्यमान थे। विवेकानन्द से भेंट ने मानो उन बीजों को प्रस्फुटन प्रदान किया। मार्ग मिलते ही चिरसंचित आध्यात्मिक धारा प्रचण्ड वेगवती हो बह निकली, प्रो. तीर्थराम उसमें डूब

गये और महान् संन्यासी स्वामी रामतीर्थ का जन्म हुआ।

लाहौर में स्वामी विवेकानन्द का परिचय उसी युग में उत्पन्न आर्य समाज नामक प्रभावशाली आन्दोलन से हुआ। आर्य समाज के अनेक प्रमुख नेताओं से यहां उन्होंने विचार-विमर्श किया।

लाहौर में स्वामी विवेकानन्द ने क्रमशः 'हिन्दू धर्म की साधारण नींव', 'भक्ति' तथा 'वेदान्त' विषयों पर तीन भाषण दिए। पंजाब की पवित्र भूमि के प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए उन्होंने अपने प्रथम भाषण में कहा—

"यह वही भूमि है जिसने अपनी सभी आपत्तियों को झेलते हुए अभी तक अपना गौरव और तेजस्विता की कीर्ति को पूर्णतया नष्ट नहीं होने दिया है। यही भूमि है जहां दयालु नानक ने अवतीर्ण होकर अद्भूत विश्व प्रेम का उपदेश दिया और यह वही भूमि है जहां उन्होंने अपना विशाल हृदय खोलकर—केवल हिन्दुओं को ही नहीं, वरन् मुसलमानों को भी, यहां तक कि समस्त संसार को गले लगाने के लिए हाथ फैलाए। यहीं पर हमारी जाति के महान् तेजस्वी गुरु गोविंन्द सिंह ने अपना और अपने कुटुम्बियों तक का खून धर्म की रक्षा के लिए बहा दिया।"

लाहौर से देहरादून, दिल्ली, अलवर, जयपुर होते हुए वे खेतरी राज्य में आए। जैसा कि इसके पूर्व उल्लेख किया जा चुका है, खेतरी के राजा स्वामी विवेकानन्द के उन शिष्यों में से थे, जिन्होंने उनके लिए पूर्ण आत्मसमर्पण किया था और पूरी शक्ति से उनके बताए मार्ग पर चलने का प्रयास किया।

सन् 1898 ई. के जनवरी मास के मध्य में स्वामी विवेकानन्द अपने गौरवमय उत्तर भारत-भ्रमण को समाप्त कर कलकत्ता लौट आए। भागीरथी के तट पर एक स्थायी मठ निमार्ण करने की उनकी बहुत समय से इच्छा थी। अब उन्होंने इस दिशा में प्रयास प्रारम्भ किया। अंत में भागीरथी के पश्चिमी तट पर बेलुड़ गांव में योग्य स्थान की खोज हुई। कुमारी मूलर द्वारा प्रदत्त धनराशि से वह भूमि खरीद ली गई। एक वर्ष मे वहां मठ तैयार हो गया। मठ-निमार्ण का सम्पूर्ण व्यय भार विवेकानन्द के लंदन के शिष्यों ने उठाया था। ठाकुर घर के निमार्ण का सम्पूर्ण व्यय उनकी अन्यतम अमरीकी शिष्या श्रीमती ओली बुल ने दिया और मठ का खर्च चलाने के लिए भी संचालकों को एक लाख से अधिक रुपये दिए। इस प्रकार उनका एक महान् संकल्प पूर्ण हुआ।

इसी समय इंग्लैण्ड से कुमारी मागरिट नोवल तथा अमेरिका से श्रीमती ओली बुल और कुमारी मैकलीओड् भारत आयीं। विवेकानन्द ने उन्हें भारतीय आचार-व्यवहार, इतिहास, दर्शन आदि से परिचित कराने का कार्य नियमित रूप से चालू रखा। कुमारी नोवल ने पूर्ण रूप से संघ में सम्मिलित होने की आज्ञा चाही। विवेकानन्द ने उनकी सर्व प्रकार से परीक्षा ले उन्हें ब्रह्मचर्य व्रत में दीक्षित किया। कुमारी मागरिट नोवल की इति हो गई और विवेकानन्द की मानस-कन्या के रूप में 'भगिनी निवेदिता' का जन्म हुआ।

स्वास्थ्य-सुधार के लिए वे कुछ समय के लिए दार्जिलिंग गये, किन्तु इन्हीं दिनों

कलकत्ता में प्लेग व्यापक रूप से फैल गया। विवेकानन्द कलकत्ता वापस आ गये और अपने सभी सहयोगियों सहित 'यत्र जीवः तत्त शिवः' का उद्घोष करते हुए जाति, वर्ण का विचार छोड़ कर जनता-जनार्दन की सेवा में लग गये।

प्लेग का प्रकोप घट जाने पर विवेकानन्द ने अपने स्वदेशी-विदेशी शिष्यों सहित श्री सेविअर के निमन्त्रण पर अलमोड़ा की यात्रा की । सेविअर दम्पती अलमोड़ा में ही एक स्थायी मठ बनाने का प्रयास कर रहे थे।

अलमोड़ा आते ही उन्हें निर्जनता बड़ी प्रिय हो गयी। प्रायः प्रतिदिन वे दस-ग्यारह घण्टे घोर अरण्य में अकेले ध्यान-धारणा में बिताया करते थे। मद्रास से प्रकाशित 'प्रबुद्ध भारत' के सम्पादक का देहावसान हो जाने के कारण उन्होंने उसके प्रकाशन की व्यवस्था अलमोड़ा से की। स्वामी स्वरूपानन्द उसके सम्पादक तथा श्री सेविअर उसके परिचालक नियुक्त हुए। इसके पश्चात् वे अपनी विदेशी शिष्याओं के साथ कश्मीर-भ्रमण के लिए निकल पड़ें। इस यात्रा में उन्होंने प्रख्यात अमरनाथ के भी दर्शन किये।

यात्रा के पश्चात् जब वे कलकत्ता लौटे तब उनका स्वास्थ्य फिर बहुत बिगड़ चुका था। मुख-मण्डल पीला पड़ गया था और उनकी बायीं आंख में रक्त जम गया था किन्तु वे अपनी ओर से पूर्ण उदासीन थे। वे सदैव मन के किसी उच्च भावनामय राज्य में खोए से रहते थे।

एक दिन एक शिष्य ने उनसे पूछा—''स्वामी जी, आप अपने असाधारण भाषण-बल से यूरोप-अमेरिका को मथित कर अपनी जन्मभूमि में चुपचाप बैठे हैं, इसका क्या कारण है?''

उत्तर में उन्होंने कहा—''इस देश में पहले भूमि तैयार करनी होगी। पाश्चात्य देशों का वातावरण अपेक्षाकृत अनुकूल है। अन्नाभाव से दुर्बल देह, दुर्बल मन तथा रोग-शोक व दुःखदैन्य की जन्मभूमि भारत में भाषण देकर क्या होगा। पहले कुछ ऐसे त्यागी पुरुषों की आवश्यकता है, जो अपने परिवार की चिन्ता न करते हुए दूसरों के लिए जीवन का उत्सर्ग करने को तैयार हों। मैं मठ स्थापित कर कुछ बाल संन्यासियों को इसी प्रकार तैयार कर रहा हूं।''

एक बार और विदेशों की ओर

स्वामी विवेकानन्द ने एक बार और विदेश यात्रा की आवश्यकता का अनुभव किया। वे अपने द्वारा प्रस्थापित कार्य का निरीक्षण करना चाहते थे। इस यात्रा में उनके साथ उनके गुरुभाई स्वामी तुरीयानन्द तथा भगिनी निवेदिता भी थीं।

इस दीर्घ समुद्र यात्रा में विवेकानन्द के साथ व्यतीत किये हुए समय को भगिनी निवेदिता ने अपनी 'माई मास्टर' एज़ आई सॉ हिम' नामक पुस्तक में लिपिबद्ध किया है।

31 जुलाई सन् 1899 को वे लंदन पहुंचे। इस बार उन्होंने दर्शनार्थी जिज्ञासुओं के साथ धर्मालोचना करने के अतिरिक्त किसी सर्वसाधारण स्थान में कोई भाषण नहीं दिया।

16 अगस्त को वे न्यूयार्क की ओर चले। न्यूयार्क पहुंचने पर श्री एवं श्रीमती लिगेट ने उन्हें बड़े आदरपूर्वक अपना अतिथि बनाया। विवेकानन्द की अनुपस्थिति में स्वामी अभेदानन्द के निर्देशन में वेदान्त प्रचार अमेरिका में जारी रहा था। 15 अक्टूबर को वेदान्त समिति के नवीन भवन का उद्घाटन हुआ तथा प्रश्नोत्तर कक्षा का कार्य चलने लगा।

कुछ समय पश्चात् वे कैलीफोर्निया की ओर गये। यह प्रदेश उनके स्वास्थ्य की दृष्टि से भी बड़ा उपयोगी था। यहां उन्होंने स्थान-स्थान पर अनेक महत्वपूर्ण भाषण दिए जिनमें से प्रमुख—'संदेशवाहक ईसा' पसादेना में, 'मन की शक्तियां' लीस एंजलेस में, 'सार्वभौम धर्म का आदर्श,' 'गीता', 'बुद्ध', 'ईसा और कृष्ण का संदेश' सान फ्रान्सिसको में दिये गये। सान फ्रान्सिसको में विधिवत वेदान्त-समिति की स्थापना की गई। स्वामी तुरीयानन्द को वहां का कार्यभार सम्भालने का आदेश दिया गया।

वहां से विवेकानन्द न्यूयार्क वापस आ गये। भगिनी निवेदिता ने 'हिन्दू नारी का जीवनादर्श' विषय पर न्यूयार्क की उच्चवंशीय तथा शिक्षित स्त्रियों के बीच कई भाषण दिये। अमेरिकन महिलाएं इन भाषणों से इतनी प्रभावित हुई कि उन्होंने भारत और उसकी संस्कृति सम्बन्धी अपनी जिज्ञासाओं की तृप्ति के लिए भगिनी निवेदिता से अनेक प्रकार के प्रश्न पूछे।

इस बीच स्वामी विवेकानन्द के पास पेरिस में आयोजित प्रदर्शिनी की धर्मेतिहासिक सभा के लिए स्वागत समिति की ओर से भाषण देने का निमन्त्रण प्राप्त हुआ। उसमें भाग लेने के लिए 20 जुलाई सन् 1900 को उन्होंने पेरिस की यात्रा की। पेरिस की इस सभा में उन्होंने वेदों पर, उन्हें हिन्दू और बौद्ध धर्म का सामान्य आधार सिद्ध करते हुए, भाषण दिए। इस प्रदर्शिनी में उनका परिचय संसार के अनेक प्रतिभाशाली व्यक्तियों से हुआ और सभी उनसे बहुत प्रभावित हुए।

पैरिस से विएना, कान्स्टैन्टिनोपल, एथेन्स और काहिरा आदि नगरों की यात्रा के पश्चात् उनका मन में एकाएक भारत लौटने के लिए व्याकुल हो उठा। उक्त नगरों के ऐश्वर्य, विलास और सौन्दर्य को देखकर मानो उनका मन विरक्त हो उठा था। पार्थिव ऐश्वर्य से गर्वित पाश्चात्य राष्ट्रों का उद्धत अहंकार उनके चित्त को सदैव पीड़ित करता रहता था। इस बीच उन्हें एक दुःखद समाचार मिला कि मायावती (अलमोड़ा) मठ के संस्थापक श्री सेविअर स्वर्ग सिधार गये है। इस मर्मान्तक समाचार को पाते ही वे भारत लौट पड़े। साथ के सभी योरोपीय शिष्यों को उन्होंने विदा दे दी और वे अकेले ही भारत आ गये।

भारत में बेलूड़ मठ की व्यवस्था देखकर विवेकानन्द मायावती की व्यवस्था देखने

तथा श्रीमती सेविअर को सान्त्वना देने के लिए गये। दिसम्बर के भयंकर शीत में इस मठ तक पहुंचने में उन्हें बहुत कष्ट हुआ। एक बार वार्तालाप के प्रसंग में उन्होंने श्रीमती सेविअर से कहा—वास्तव में मेरा स्वास्थ्य अब टूट गया है, परन्तु मेरा मस्तिष्क अभी भी पहले जैसा सबल और कार्यक्षम है।

हिमालय स्थित इस मठ का उद्वेगहीन जीवन उन्हें बहुत ही शान्तिपूर्ण लगा। एक दिन शिष्यों के साथ भ्रमण करते हुए वे बोले—''अन्य सब प्रकार के कर्मों को छोड़कर मैं अपने जीवन के शेष दिन इसी मठ में व्यतीत करूंगा, निश्चित तथा स्थिर होकर अध्ययन करूंगा और पुस्तक आदि लिखूंगा। बालक की तरह आनन्द से इधर-उधर घूमता फिरूंगा।'' किन्तु विधि ने तो उनके लिए कुछ दूसरा ही विधान निश्चित कर रखा था। अलमोड़ा में प्रबल तुषारापात से उत्पन्न शीत उनके लिए असहनीय हो रही थी। सन् 1901 की जनवरी में वे बेलूड़ मठ लौट आए।

मार्च में उन्होंने पूर्वी बंगाल और आसाम की यात्रा की। ढाका, गोहाटी और शिलांग की यात्रा करके वे बेलूड़ वापस आ गये। इस यात्रा में उनका स्वास्थ्य सर्वत्र ही खराब रहा था। शिलांग में उन्हें दमे का रोग बड़े भयंकर रूप से उमड़ आया था। बहुमूत्र के रोग से वे पहले से ही कष्ट पा रहे थे। बेलूड़ में उनकी आयुर्वेदीय चिकित्सा होने लगी जिससे उन्हें आंशिक लाभ हुआ।

सन् 1901 के दिसम्बर मास के अन्त में कलकत्ता में इण्डियन नेशनल कांग्रेस का अधिवेशन हुआ। कांग्रेस के अनेक प्रमुख प्रतिनिधि स्वामी विवेकानन्द से भेंट करने के लिए बेलूड़ आने लगे। देश की वर्तमान दुर्दशा तथा अभाव और उनके प्रतिकार के उपाय के सम्बन्ध में उनके विचारों से वे सभी बहुत प्रभावित हुए। उनकी महासमाधि के पश्चात् लखनऊ की 'एडवोकेट' पत्रिका के सम्पादक ने लिखा था—''गत कांग्रेस के अवसर पर मैंने उन्हें अंतिम बार कलकत्ता में देखा था। विशुद्ध एवं उच्च श्रेणी की हिन्दी में उन्होंने बड़ी आसानी से वार्तालाप किया। जिस समय वे भारत के पुनरुत्थान के बारे में अपने विचार व्यक्त कर रहे थे, उनका मुख-मंडल उत्साह से उद्दीप्त हो उठा था।''

इन्हीं दिनों जापान से दो विख्यात विद्वान बेलूड़ पधारे। इनमें एक जापान के एक बौद्ध मठ के नायक रे ओड़ा और दूसरे डॉ. ओकाकुरा थे। इनके साथ स्वामी विवेकानन्द बुद्ध गया गए। यह भी निश्चय हुआ कि वहां से काशी जाकर कुछ दिन विश्राम करेंगे। उनके परिव्राजक जीवन का यही अंतिम भ्रमण था।

श्री रामकृष्ण का जन्मोत्सव निकट आ जाने से वे काशी से बेलूड़ लौट आए। काशी की जलवायु में वे कुछ स्वस्थ हुए थे परन्तु मठ में आकर रोग इतना बढ़ गया कि वे शय्याग्रहण के लिए बाध्य हो गए। रोग की भयंकरता और शिष्यों की व्याकुलता बढ़ती ही जा रही थी। विवेकानन्द ने उन्हें समझाते हुए कहा—''क्या सोच रहे हो? शरीर पैदा हुआ है, नष्ट भी होगा। यदि मैं तुम लोगों में अपने भावों को कुछ भी प्रविष्ट कराने में समर्थ हो सका तभी जानूंगा कि मेरा शरीर-धारण सार्थक हुआ है।''

देहत्याग से एक सप्ताह पूर्व उन्होंने स्वामी शुद्धानन्द को एक पंचांग लाने का निर्देश दिया। पंचांग आ जाने पर उन्होंने स्वयं उसे देख-भालकर अपने कमरे में रख दिया। बीच बीच में वे गंभीर ध्यान के साथ उसे देखते थे, मानो किसी विशेष कार्य के लिए कोई दिन चुनना चाहते हैं।

महानिर्वाण

शुक्रवार, 4 जुलाई सन् 1902 ई.। आज वे गत अनेक वर्षों की अपेक्षा अधिक स्वस्थ एवं प्रसन्न लग रहे थे। कुछ आगन्तुकों से उत्साहपूर्वक वार्तालाप करके वे मठ के ठाकुर-द्वार में प्रविष्ट हुए। उन्होंने उसके सभी दरवाज़े और खिड़कियां बंद कर लीं, ऐसा वे कभी नहीं करते थे। वहां वे तीन घंटे तक ध्यानमग्न रहे, फिर काली की स्तुति में एक भजन गाकर बाहर निकले। भाव-निमग्न विवेकानन्द मठ के प्रांगण में 'मन चल निज निकेतन' गीत गाते हुए धीरे-धीरे टहलने लगे। जिस दिन किशोर नरेन्द्रनाथ की, परमहंस रामकृष्ण देव से पहली भेंट हुई थी, दक्षिणेश्वर के मंदिर में उन्होंने यही गीत गाकर सुनाया था। यह कदाचित् परमहंस से चिरमिलन की तैयारी थी।

उस दिन उन्होंने अपने शिष्यों के साथ बड़ी रुचि एवं आनन्द से भोजन किया। वार्तालाप के प्रसंग में उन्होंने कहा कि दूसरे दिनों की अपेक्षा आज उनका शरीर अधिक स्वस्थ लग रहा है।

भोजन के पश्चात् कुछ विश्राम के बाद वे ब्रह्मचारियों को संस्कृत पढ़ाने बैठ गये और तीन घंटे तक निरंतर पढ़ाते रहे। तीसरे पहर वे स्वामी प्रेमानंद के साथ मठ के बाहर घूमने गए। संध्या आई अपने प्रिय गुरुभाइयों एवं शिष्यों से यह उनका अंतिम स्नेहयुक्त वार्तालाप था। राष्ट्रों के उत्थान और पतन की चर्चा करते हुए उन्होंने कहा—"भारत अमर है, यदि वह ईश्वर की खोज में रत रहेगा, परन्तु यदि वह राजनीतिक-सामाजिक संघर्षों की ओर उन्मुख हुआ, तो उसका विनाश हो जाएगा।"

सात बजे आरती का समय हुआ। ब्रह्मचारी ठाकुरद्वार की ओर चल दिए और विवेकानंद अपने कमरे में आ गए। एक ब्रह्मचारी को जो सदैव उनके साथ रहता था, उन्होंने कमरे से बाहर बैठने का आदेश दिया और स्वयं जयमाला हाथ में लिए पद्मासन में बैठ गए। एक घंटे बाद आसन से उठकर वे बिस्तर पर लेट गए। ब्रह्मचारी आदेश पा पंखा करने लगा।

रात्रि के लगभग 9 बजे का समय था। इसी समय उनका हाथ कांप उठा और साथ ही वे निद्रित शिशु की तरह अस्पष्ट स्वर से थोड़ा क्रंदन कर उठे। एक दीर्घ निश्वास...फिर कुछ क्षणों के लिए शांति, उनकी आंखें उनकी पलकों के मध्य टिकी हुई थीं। दूसरा दीर्घ निश्वास...और अनन्त शांति फैल गई। उनका मस्तक सिरहाने से हिल गया। जगद्नियन्ता ने बाहें फैलाकर अपने बिछुड़े पुत्र को अपने में समेट लिया।

उनकी आयु उस समय 39 वर्ष की थी। उन्होंने कहा भी था—"चालीस वर्ष की आयु का होकर मैं जीवित नहीं रहूंगा।"

संदेश

किसी महापुरुष का जीवन उसकी असामान्यता के कारण, जिसमें उसके त्याग, पौरुष, तन्यमता और ज्ञान आदि गुणों का सम।वेश रहता है, समाज के लिए आदर्श बन जाता है। लोग उसके जीवन की अनेक घटनाएं सुनते और पढ़ते हैं और उनसे अपने जीवन-संग्राम में विश्वास और शक्ति लेकर आगे बढ़ते हैं। महापुरुषों के जीवन से भी महत्वपूर्ण उनका जीवन-संदेश होता है। समाज और व्यक्ति के स्थायी पथ-प्रदर्शन में वे संदेश दीप स्तंभ बनकर जगमगाते हैं। अज्ञान, अंधविश्वास और असहिष्णुता की अंधकारपूर्ण जीवन-यात्रा में ये दीप ही मार्ग का निर्देश करते हैं।

आधुनिक युग के भारतीय महापुरुषों में व्यक्तित्व और संदेश का जैसा सुंदर समन्वय स्वामी विवेकानंद के जीवन में दृष्टिगत होता है, वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। नये और पुराने प्रचारकों की सांप्रदायिक कट्टरता और धर्मान्धता के मध्य अपने मत को जिस प्रगतिशील, उदार, सहिष्णु और सार्वभौम आधार पर पूर्ण आग्रह के साथ उन्होंने रखा, वह सचमुच अद्भुत है।

सर्वप्रथम हम उनकी धर्मसंवंधी धारणा को लें। धर्म को उन्होंने भारत की आत्मा माना था। धर्म की पुनःस्थापना पर उन्होंने अपना पूर्ण आग्रह व्यक्त किया, परंतु कौन-सा धर्म? क्या वही जिसने मानव समाज को अनेक संकीर्ण टुकड़ों में बांटकर सदैव के लिए उनमें कलह का वीज बो दिया है? क्या वही जिसके नाम पर संसार में वड़े-बड़े नरमेध हुए हैं? क्या वही जिसकी दुहाई देकर मनुष्य समाज के एक बहुत बड़े अंग को अछूत करार दे दिया गया, जिनकी छाया मात्र से धार्मिकों के शरीर अपवित्र होने लगे और किसी भी वस्तु में उनका स्पर्श विष के स्पर्श से भी अधिक त्याज्य समझा गया?

नहीं, यह नहीं। स्वामी विवेकानंद ने धर्म का वह स्वरूप प्रस्तुत किया जो भारतवासियों के लिए नया तो नहीं पर कुछ समय से भूला हुआ अवश्य था और शेष संसार के लिए सर्वथा नवीन था। उन्होंने कहा, 'धर्म का अर्थ है प्रत्यक्ष अनुभूति' और इस अनुभूति का सबसे बड़ा शत्रु है असहिष्णुता। इसी असहिष्णुता के वशीभूत होकर एक धर्म के अनुयायी कहते हैं कि हमारा मत ही सत्य है, शेष सभी मिथ्या है। इस घोषणा का परिणाम होता है—विघटन, कलह और नर-संहार। अपने अमेरिका के प्रथम दिन के भाषण में उन्होंने घोषित किया—"जैसे नदियां भिन्न-भिन्न स्रोतों से निकलकर समुद्र में मिल जाती हैं, इसी प्रकार हे, प्रभो! भिन्न-भिन्न विश्वास के लोग, चाहे वे टेढ़े अथवा सीधे रास्ते वाले हों, अंत में तेरी ही ओर आते हैं।"

इसीलिए उन्होंने धर्म को मिलन का साधन बताया, न कि विघटन का। स्वामी

विवेकानंद को हम इस दृष्टि से विश्व संगठन का महान् प्रचारक कह सकते हैं। उनकी वाणी में किसी को मिथ्या सिद्ध करने का दुराग्रह नहीं है। वे सत्य के प्रकाश में विभेद को नहीं, वरन् ऐक्य को खोजते हैं। अपने लाहौर के भाषण में उन्होंने पंचनद वासी जनता को संबोधित करते हुए कहा—

"मैं यहां यह देखने नहीं आया कि हमारे और आपके बीच क्या-क्या मतभेद हैं, वरन् मैं यह खोजने आया हूं कि आपकी और हमारी मिलन भूमि कौन-सी है। मैं यहां आया हूं यह जानने के लिए कि वह कौन-सा आधार है जिसके ऊपर हम आप सदा के लिए भाई का नाता बनाए रख सकते हैं। मैं यहां आया हूं आपके सामने कोई विनाशक कार्यक्रम नहीं, वरन् कुछ रचनात्मक कार्यक्रम रखने के लिए।"

इसी भाषण में उन्होंने कहा—"बस करो, बस करो, निंदा पर्याप्त हो चुकी, दोष-दर्शन बहुत हो चुका अब समय पुनःनिर्माण का है। यह समय फिर से संगठन करने का है। अब समय है अपनी समस्त बिखरी हुई शक्तियों को एकत्र करने का, उन सबको एक ही केंद्र में केंद्रित करने का और उस सम्मिलित शक्ति द्वारा देश को सदियों से रुकी हुई उन्नति के मार्ग में अग्रसर करने का।"

इस संगठन मूलक कार्य प्रणाली का ही प्रभाव था कि एक ओर उनका संदेश हिंदू धर्म के अनेक मतमतान्तर और पंथों को निकट लाने में समर्थ हुआ, दूसरी ओर विश्व को एक सर्वव्यापी मानव धर्म की कल्पना दे सका।

स्वामी विवेकानंद द्वारा प्रतिपादित अद्वैतवेदान्त उनकी सर्व मिलन भूमि का आधार थ। बंगलौर की उस सभा में, जहां वेदान्त के भिन्न मतवादों के विद्वान समर्थक अपने-अपने मत की पुष्टि करते हुए दूसरे को भ्रान्त प्रमाणित करने के लिए तर्क-वितर्क की आंधी उठाए हुए थे, विवेकानंद ने यह घोषित किया कि—सर्व-सन्देह-विनाशक वेदान्त के विभिन्न मतवाद परस्पर विरोधी नहीं, बल्कि एक-दूसरे के समर्थक हैं। वेदांत शास्त्र कुछ दार्शनिक मतवादों की समष्टि नहीं, वरन् साधक जीवन की विभिन्न स्थितियों में अनुभूत सत्यों का समूह है। इसी मत की पुष्टि उन्होंने इंग्लैंड में भी की। 'वेस्ट मिनिस्टर गजट' के प्रतिनिधि को दी हुई एक भेंट में उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा—

"मेरा विश्वास है कि वेदान्त के उदार ज्ञान को सभी धर्म संप्रदाय अपनी-अपनी धर्म संबंधी स्वतंत्रता को कायम रखते हुए भी ग्रहण कर सकते हैं।"

विवेकानंद का धार्मिक दृष्टिकोण बहुत ही प्रगतिशील था। धर्म के नाम पर समाज में आई हुई संस्कार बद्धता, अंधविश्वास और कर्मकांड का उन्होंने डटकर विरोध किया। छुआछूत वादी प्रचलित धर्म पर व्यंग्य करते हुए उन्होंने खेतरी राज्य में दिए गए एक भाषण में कहा—"हम हिंदू नहीं हैं और वैदान्तिक भी नहीं—असल में हम हैं, छुआछूत पंथी। रसोई घर हमारा मंदिर है, पकाने के बर्तन हमारे उपास्य देवता और 'मत छुओ, मत छुओ' हमारा मंत्र है। समाज के इस अंध कुसंस्कार को शीघ्र दूर करना होगा।" जम्मू में भी इसी प्रकार के विचार प्रकट करते हुए उन्होंने कहा था—"इन सब कुसंस्कारों से

चिपके रहना ही भारत की अवनति का कारण है। आश्चर्य की बात है कि जो वास्तव में पाप और सभी अनर्थों की जड़ है अर्थात् व्यभिचार, मद्यपान, परस्त्री-गमन इत्यादि, उनसे तो आजकल समाजच्युत नहीं होना पड़ता, वरन् केवल खान-पान की मामूली बातों पर ही समाज में इतना विरोध होता है।''

स्वामी विवेकानंद जीवनपर्यन्त धर्म को केवल कुछ बाह्माचारों एवं छुआछूत और खान-पान में ही बांध रखने वाले पुरोहित वर्ग की भर्त्सना करते रहे। उन्होंने स्पष्ट एवं आग्रहपूर्ण शब्दों की घोषणा की–

''मैं संस्कार में विश्वास नहीं करता, मैं स्वाभाविक उन्नति का विश्वासी हूं।''

देश के नवयुवकों को संबोधित करते हुए उन्होंने कहा–''धर्म के नाम से प्रचलित आचार-व्यवहार वास्तव में धर्म है या नहीं, इसकी परीक्षा कर देखने का दायित्व आज के शिक्षित युवकों पर है। हमें अतीत एवं प्रचलित प्रथा की सीमा से बाहर निकलकर वर्तमान उन्नतिशील जगत् की ओर दृष्टिपात करना होगा। यदि हम देखें कि परम्परा प्राप्त आचार नियम समाज के विकास व परिपुष्टि के पथ में विघ्न उत्पन्न कर रहे हैं, यदि वे हमारी विशुद्ध ज्ञान की प्राप्ति में रोड़े के सदृश हैं, तो हम जितना शीघ्र उनका त्याग कर दें, उतना अच्छा है।''

स्वामी विवेकानन्द के संदेश की दूसरी महत्वपूर्ण बात, अथाह स्वदेश भक्ति एवं मानव प्रेम है। वे जहां कहीं भी और जिस किसी भी अवस्था में रहे, अपने देश और देशवासियों को नहीं भूल सके। विदेशों में वेदान्त के संदेश के साथ ही साथ वे भारत के पक्ष का समर्थन दृप्त सिंह की तरह करते थे। उस समय उनका स्वरूप अभिमान शून्य संन्यासी जैसा नहीं, वरन् मध्य युग के किसी गर्वित जात्याभिमानी अहंकारी राजपूत जैसा होता था। इस देश के युवकों को स्वदेश भक्ति का जो संदेश उन्होंने दिया, वह चिर नवीन है। उन्होंने कहा–

''आगामी पचास वर्षों तक तुम लोग एकमात्र 'स्वर्गादपि गरीयसी' जननी जन्मभूमि की आराधना करो। इन वर्षों में दूसरे देवताओं को भूल जाने में भी कोई हानि नहीं है। दूसरे देवगण सो रहे हैं, इस समय तुम्हारा एकमात्र देवता है तुम्हारा राष्ट्र।''

स्वामी विवेकानन्द की वृत्ति पूर्णतः समाजोन्मुख थी। उन्होंने व्यक्तिगत मोक्ष की आकांक्षा को स्वार्थ समझा। एक बार अपने बाल मित्र गिरीश बाबू से उन्होंने कहा–''देखो जगत् के कष्टों को दूर करने के लिए, यहां तक कि एक व्यक्ति की वेदना को कम करने के लिए मैं सहस्र बार जन्म ग्रहण करने को तैयार हूं। अपनी मुक्ति मैं नहीं चाहता; मैं प्रत्येक को मुक्त होने में सहायता करना चाहता हूं।''

जिस समय उन्होंने रामकृष्ण मिशन की स्थापना की, कुछ लोग संदेह करने लगे कि रामकृष्ण परमहंस का तो आदर्श था एकान्त भक्ति के साथ अनन्यचित्त होकर साधन-भजन की सहायता से ईश्वर की उपलब्धि की चेष्टा करना। विवेकानन्द रोगी व दीन-दुखियों की सेवा, शिक्षा का विस्तार, धर्म का प्रचार आदि करने का उपदेश दे रहे

हैं। ये सब कर्म मन को स्वाभाविक रूप से ही बहिर्मुख कर देते हैं। लोगों के इन तर्कों को सुनकर उन्होंने कहा–"क्या तुम्हारे कहने का उद्‌देश्य यह है कि लिखना-पढ़ना, जनसाधारण में धर्म का प्रचार, आर्त, रोगी, अनाथ आदि की सेवा या जनता का दुःख दूर करने की चेष्टा से माया में आबद्ध हो जाना पड़ेगा।" यह कहते-कहते वे उत्तेजित हो उठे और गरजकर बोले–"तुम जिस भक्ति का उल्लेख कर रहे हो, वह मूर्खों की भावुकता मात्र है, जो मनुष्य को कापुरुष व कर्मविमुख बना डालती है। तुम श्री रामकृष्ण के प्रचार की बात कर रहे हो? तुम और मैं उनके अनन्त भावों में से कितनों की कल्पना कर सके हैं, जो हम उन्हें जगत् को सिखाने जाएं? छोड़ो इन बातों को। कौन तम्हारे श्री रामकृष्ण को चाहता है, कौन तुम्हारी भक्ति, मुक्ति को लेकर माथापच्ची करता है? शास्त्र क्या कह रहे हैं या नहीं कह रहे हैं, कौन सुनता है? यदि मैं घोर तमोगुण में डूबे हुए अपने स्वदेशवासियों को कर्मयोग के द्वारा अनुप्राणित कर वास्तविक मनुष्य की तरह अपने पैरों पर खड़ा कर देने में समर्थ हूं, तो मैं आनन्द के साथ लाख बार नरक जाऊंगा। मैं तुम्हारे रामकृष्ण या अन्य किसी का चेला नहीं हूं। जो लोग अपनी भक्ति-मुक्ति की कामना को छोड़कर दरिद्र नारायण की सेवा में जीवन का उत्सर्ग करेगे, मैं उन्हीं का चेला हूं, भृत्य हूं, क्रीतदास हूं।"

परिशिष्ट

प्रकाशित कृतियाँ

कहानी संग्रह

1. सुवह के फूल	1959
2. उजाले के उल्लू	1964
3. घिराव	1968
4. कुछ और कितना	1973
5. मेरी प्रिय कहानियां	1973
6. भीड़ से घिरे चेहरे	1977
7. कितने संबंध	1979
8. इक्यावन कहानियां	1980
9. महीप सिंह की चर्चित कहानियां	1984
10. धूप की उगंलियों के निशान	1993
11. सहमे हुए	1998
12. महीप सिंह की समग्र कहानियां (तीन खण्ड)	2000
13. दिल्ली कहां है	2002
14. ऐसा ही है	2002

उपन्यास

1. यह भी नहीं - राजपाल एंड संस दिल्ली, 1976 (प्रथम संस्करण)

द्वितीय संस्करण हिन्दी पाकेट बुक्स, दिल्ली 1979

तृतीय संस्करण अभिव्यंजना प्रकाशन, दिल्ली 1983

चतुर्थ संस्करण नया साहित्य केन्द्र, दिल्ली, 2005

(पंजाबी, गुजराती, मलयालम एवं अंग्रेजी में भी प्रकाशित)

2. अभी शेष है, 2004 (पंजाबी में भी प्रकाशित)

व्यंग्य संग्रह

एक नये भगवान का जन्म	2001
एक गुण्डे का समय बोध	2007

निबंध संग्रह

कुछ सोचा : कुछ समझा 2002

शोध कार्य

- गुरु गोबिन्द सिंह और उनकी हिन्दी कविता
- आदिग्रंथ में संगृहीत संत कवि
- सिख विचारधारा : गुरु नानक से गुरु ग्रंथ साहिब तक

जीवनी

- गुरु गोबिन्द सिंह : जीवन और आदर्श
- गुरु तेग बहादुर : जीवन और आदर्श
- गुरु गोबिन्द सिंह (साहित्य अकादमी के लिए)
- स्वामी विवेकानंद

बाल साहित्य

- न इस तरफ न उस तरफ
- गुरु नानक - जीवन प्रसंग
- एक थी संदूकची

सम्पादन

1. सचेतन कहानी : रचना और विचार
2. पंजाबी की प्रतिनिधि कहानियां
3. गुरु नानक और उनका काव्य
4. विचार कविता की भूमिका
5. लेखक और अभिव्यक्ति की स्वाधीनता
6. हिन्दी उपन्यास : समकालीन परिदृश्य
7. साहित्य और दलित चेतना
8. जापान : साहित्य की झलक
9. आधुनिक उर्दू साहित्य
10. विष्णु प्रभाकर : व्यक्तित्व और साहित्य

महीप सिंह के साहित्य पर प्रकाशित पुस्तकें

1. महीप सिंह का कथा-संसार, डॉ. कमलेश सचदेव, अभिव्यंजना, नई दिल्ली
2. कथाकार महीप सिंह, सं. डॉ. गुरचरण सिंह, अभिव्यंजना, नई दिल्ली
3. करक कलेजे माहि, सं. डॉ. कमलेश सचदेव, भारती पुस्तक भंडार, दिल्ली

पुरस्कार एवं सम्मान

1. भाषा विभाग (पंजाब) द्वारा वर्ष का श्रेष्ठ कथा साहित्य के रूप में 'उजाले के उल्लू' और 'घिराव' कहानी संग्रह पुरस्कृत (1965 एवं 1969)
2. 'उजाले के उल्लू' कहानी संग्रह केन्द्रीय शिक्षा मंत्रालय द्वारा पुरस्कृत (1966)
3. हिन्दी साहित्य संस्थान, उत्तर प्रदेश द्वारा पुरस्कृत (1971 एवं 1989)
4. भाषा विभाग (पंजाब) द्वारा शिरोमणि साहित्यकार के रूप में सम्मानित (1986)
5. हिन्दी और पंजाबी अकादमियों (दिल्ली) द्वारा श्रेष्ठ कहानी संग्रह ('51 कहानियां' हिन्दी तथा 'सहमे हुए' पंजाबी) के लिए पुरस्कृत (1985 एवं 1989)
6. संत निधान सिंह केसर मेमोरियल सम्मान, कथा साहित्य में योगदान के लिए (1990)
7. साहित्यिक उपलिब्धयों के लिए साखा पुरस्कार (1990)
8. हिन्दी साहित्य में विशेष योगदान के लिए अदीव इंटरनेशनल साहिर सम्मान (लुधियाना) (1990)
9. पंजाबी साहित्य में विशिष्ट योगदान के लिए डॉ. साधू सिंह हमदर्द सम्मान (1992)
10. समन्वय सारस्वत सम्मान (1993)
11. हिन्दी प्रचारिणी समिति, कानपुर द्वारा साहित्य भारती (अलंकरण) से सम्मानित (1994)
12. छठे विश्व हिन्दी सम्मेलन (लंदन) में हिन्दी भाषा और साहित्य में विशिष्ट योगदान के लिए सम्मान (1999)
13. इंडो कैनेडियन टाइम्स ट्रस्ट, सरी (कनाडा) द्वारा पंजाबी पत्रकारिता में विशिष्ट योगदान के लिए विशेष सम्मान (1999)
14. राष्ट्रीय हिन्दी परिषद, मेरठ द्वारा हिन्दी रत्न उपाधि से सम्मानित (1999)
15. इंस्टीट्यूट ऑफ पंजाबी लैंगवेज एण्ड कल्चर (लाहौर) द्वारा 'एवार्ड ऑफ डिस्टिंक्शन' सम्मान (2000)
16. लाहौर की इसी संस्था द्वारा कहानी सम्मान (2000)
17. केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा द्वारा हिन्दी के विकास तथा प्रसार में उल्लेखनीय सेवाओं के लिए सम्मानित (2000)
18. पत्रकारिता भूषण सम्मान उ. प्र. हिन्दी संस्थान, लखनऊ (2001)
19. कुँवर चंद्र प्रकाश सिंह साहित्य शिरोमणि सम्मान (2002)
20. इटावा हिन्दी सेवा निधि द्वारा प्रदत्त जनवाणी सम्मान (2002)
21. हिन्दी अकादमी (दिल्ली) द्वारा 'साहित्यकार सम्मान' (2003)
22. पंजाबी अकादमी (दिल्ली) द्वारा 'परम साहित्य सम्मान' (2004)
23. विशिष्ट हिन्दी सेवा सम्मान, राष्ट्रीय हिन्दी परिषद, मेरठ (2006)
24. राष्ट्रीय भाषा गौरव सम्मान, संसदीय हिन्दी परिषद, नई दिल्ली (2006)
25. साहित्यश्री सम्मान, दिल्ली हिन्दी साहित्य सम्मेलन (2006)
26. डॉ. अम्बेडकर राष्ट्रीय सम्मान (2007)
27. पं. जुगल किशोर शुक्ल, उत्कर्ष अकादमी, सम्मान कानपुर (2007)

महीप सिंह के साहित्य पर हुए/हो रहे शोध कार्य

1. महीप सिंह की कहानियों का कथ्य और शिल्प, प्रो. रतन सिंह राजपूत, हिन्दी विभाग, एस. पी. डी. एम. कालेज, शिरपुर जिला-धुलिया, महाराष्ट्र
2. महीप सिंह की कहानी कला, प्रो. हरजी भाई ना. वाघेला, हिन्दी विभाग, सौराष्ट्र यूनिवर्सिटी, राजकोट
3. महीप सिंह का कथा साहित्य : मानव मूल्यों का संदर्भ, सुश्री मनिन्द्र भाटिया, गुरु नानक देव विश्वविद्यालय, अमृतसर
4. सचेतन कहानी आन्दोलन के संदर्भ में महीप सिंह की कहानियों का मूल्यांकन, सुश्री सीमा खान, महर्षि दयानन्द सरस्वती कॉलेज, अजमेर विश्वविद्यालय, अजमेर
5. महीप सिंह का कथा संसार, एम. मनोज कुमार, श्री वेंकटेश्वर विश्वविद्यालय, तिरुपति
6. महीप सिंह और उनका कहानी साहित्य, प्रो. श्रीमती अनिता लक्ष्मण वेताल, हिन्दी विभाग, कला वाणिज्य व विज्ञान महाविद्यालय, राहुरी, जिला-अहमदनगर, पुणे विश्वविद्यालय
7. कहानीकार महीप सिंह के कृतित्व का अनुशीलन, सुश्री सुषमा मोरेश्वर डहाटे, नागपुर विश्वविद्यालय
8. महीप सिंह के कथा साहित्य में चित्रित मध्यम वर्ग, रविन्द्र कुमार, जनता वैदिक कालेज, बड़ौत, बागपत, चौधरी चरण सिंह विश्वविद्यालय, मेरठ
9. कहानीकार महीप सिंह : संवेदना और शिल्प, अजित चुनिलाल चव्हाण, पुणे विश्वविद्यालय, नंदूरबार -424512
10. साठोत्तरी हिन्दी कहानी और कथाकार महीप सिंह, श्रीमती शगुफ्ता खान, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़
11. महीप सिंह की कहानियों में युग बोध, कु. सायरा बानो नवलगुंदु, कर्नाटक विश्वविद्यालय, धारवाड़ (कर्नाटक)
12. कहानीकार महीप सिंह : मानवीय संबंधों की सचेतन दृष्टि, अशोक यादव, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक
13. महीप सिंह तथा इनकी कहानियों का विकास, सन्तोष कुमार मिश्र, कानपुर विश्वविद्यालय, कानपुर
14. महीप सिंह की कहानियों में मानवीय [illegible]
15. महीप सिंह के कथा साहित्य का तथ्[illegible] आगरा विश्वविद्यालय, आगरा
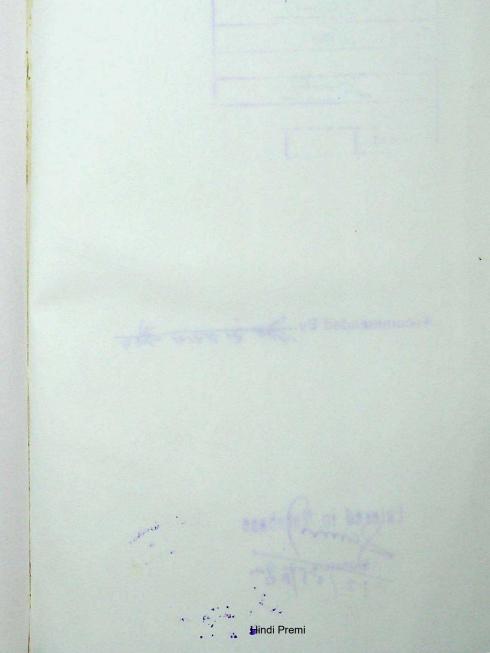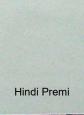
महीप सिंह

जन्म	:	15 अगस्त, 1930 को उत्तर प्रदेश के जिला उन्नाव में
शिक्षा	:	एम. ए. (हिन्दी), डी. ए. वी. कालेज कानपुर (1954), पी-एच. डी.आगरा, विश्वविद्यालय, आगरा (1963)
अध्यापन	:	खालसा कालेज, मुम्बई (1955-1963), खालसा कालेज, दिल्ली (1963-1993), एक वर्ष तक कानसाई विश्वविद्यालय, हीराकाता-जापान में विजिटिंग प्रोफेसर (1974-1975)
सम्प्रति	:	स्वतन्त्र लेखन
कहानी संग्रह	:	सुबह के फूल, उजाले के उल्लू, घिराव, कुछ और कितना, मेरी प्रिय कहानियां, भीड़ से घिरे चेहरे, कितने संबंध, इक्यावन कहानियां, महीप सिंह की चर्चित कहानियां, धूप की उंगलियों के निशान, सहमे हुए, महीप सिंह की समग्र कहानियां, दिल्ली कहां है, ऐसा ही है।
उपन्यास	:	यह भी नहीं (पंजाबी, गुजराती, मलयालम, अंग्रेजी में भी प्रकाशित), अभी शेष है
व्यंग्य	:	एक नये भगवान का जन्म, एक गुण्डे का समय बोध
निबंध	:	कुछ सोचा : कुछ समझा
शोध	:	गुरु गोबिन्द सिंह और उनकी हिन्दी कविता, आदिग्रंथ में संगृहीत संत कवि, सिख विचारधारा : गुरु नानक से गुरु ग्रंथ साहिब तक
जीवनी	:	गुरु गोबिन्द सिंह : जीवन और आदर्श, गुरु तेगबहादुर : जीवन और आदर्श, स्वामी विवेकानन्द
बाल साहित्य	:	न इस तरफ न उस तरफ, गुरु नानक जीवन प्रसंग, एक थी संदूकची।
सम्पादन	:	सचेतन कहानी : रचना और विचार, पंजाबी की प्रतिनिधि कहानियां, गुरु नानक और उनका काव्य, विचार कविता की भूमिका, लेखक और अभिव्यक्ति की स्वाधीनता, हिन्दी उपन्यास : समकालीन परिदृश्य, साहित्य और दलित चेतना, जापानः साहित्य की झलक, आधुनिक उर्दू साहित्य, विष्णु प्रभाकर - व्यक्तित्व और साहित्य चार दशकों से 'संचेतना' का सम्पादन।

नमन प्रकाशन

4231/1, अंसारी रोड, दरियागंज,
नई दिल्ली - 110002
फोन : 23254306, 23247003
e-mail-radhapubnitin@yahoo .com

ISBN 81-8129-132-8